शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र

हिंदी : बीजपत्र MM3 और MM7

हिंदी साहित्य का इतिहास

सत्र 1 और 2

नवीन राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण 2020 नुसार सुधारित अभ्यासक्रम
(शैक्षिक वर्ष 2023-24 से)

एम. ए. भाग–1

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2018
द्वितीय संस्करण : 2021
सुधारित संस्करण : 2023
एम. ए. भाग 1 (हिंदी)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 500

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-81-938801-9-7

★ दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी- शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ सलाहकार समिति ■

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) प्रकाश पवार
राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एस. विद्याशंकर
कुलगुरू, केएसओयू
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

डॉ. राजेंद्र कांकरिया
जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी
डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रा. (डॉ.) कविता ओझा
संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) चेतन आवटी
तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एस. देशमुख
अधिष्ठाता, मानव्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एस. एस. महाजन
अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) श्रीमती एस. एच. ठकार
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) डी. के. मोरे (सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

हिंदी अध्ययन मंडल

अध्यक्ष

डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली

सदस्य

- **डॉ. नितीन चंद्रकांत धावडे**
  मुधोजी कॉलेज, फलटण, जि. सातारा
- **डॉ. श्रीमती मनिषा बाळासाहेब जाधव**
  आर्टस अ‍ॅण्ड कॉमर्स कॉलेज, ११७, शुक्रवार पेठ, सातारा-४१५ ००२.
- **डॉ. श्रीमती वर्षाराणी निवृत्ती सहदेव**
  श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठ वडगाव, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. हणमंत महादेव सोहानी**
  सदाशिवराव मंडलीक महाविद्यालय, मुरगुड, ता. कागल, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. अशोक विठोबा बाचूळकर**
  आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. भास्कर उमराव भवर**
  कर्मवीर हिरे आर्टस, सायन्स, कॉमर्स अ‍ॅण्ड एज्युकेशन कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे**
  आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा, ता. जावळी, जि. सातारा
- **प्रो. डॉ. अनिल मारुती साळुंखे**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा, जि. सोलापूर-४१३२०३
- **डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण**
  श्रीमती जी.के.जी. कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपूर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत**
  प्रो. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापूर, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात**
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली
- **डॉ. परशराम रामजी रागडे**
  शंकरराव जगताप आर्टस अ‍ॅण्ड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

भूमिका

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत एम्.ए. हिंदी भाग-ख के छात्रों के लिए बनायी गयी अध्ययन सामग्री नियमित रूप से प्रवेश न ले सकनेवाले छात्रों की असुविधा को दूर करने की योजना का अच्छा फल है। इसमें विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता तथा शिक्षा से वंचित छात्रों को सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता दिखायी देती है।

प्रस्तुत पुस्तक में सत्र I प्रश्नपत्र MM3 'हिंदी साहित्य का इतिहास I' तथा सत्र II प्रश्नपत्र MM7 'हिंदी साहित्य का इतिहास II' का लेखन संपन्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक की इकाइयों के लेखक हैं- प्रा. डॉ. प्रदीप लाड, प्रा. अस्लम शेख, प्रा. डॉ. वर्षा गायकवाड, प्रा. सुवर्णा कांबळे, डॉ. हेमलता काटे, डॉ. एस. बी. बिडकर। प्रत्येक इकाई लेखक ने अपना अध्ययन तथा अध्यापन अनुभव, लेखन शैली के आधार पर लेखन किया है। दूर शिक्षा के छात्रों की क्षमता ध्यान में रखकर सामग्री तैयार की है। प्रत्येक इकाई लेखक उनके लेखन के प्रति जिम्मेदार हैं।

दूरशिक्षा केंद्र के छात्रों का प्रत्यक्ष रूप में अध्यापकों से कोई संबंध तथा संपर्क नहीं आता। पुस्तक लेखन कार्य के दरमियान निर्धारित पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरूप, अंक विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण मद्दों को ध्यान में रखकर लेखन कार्य संपन्न किया है।

प्रश्नपत्र MM3 के अंतर्गत साहित्येतिहास की आवश्यकता, महत्त्व और लेखन के विविध प्रयास, हिंदी साहित्य का कालविभाजन और प्रवृत्तियाँ, आदिकालीन गद्य साहित्य, संक्रातिकाल का नामकरण, महत्त्व और कवि, भक्तिकाल का परिवेश, भक्ति आंदोलन, निर्गुण की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी तथा सगुण की रामभक्ति, कृष्ण भक्ति काव्यधाराओं का सैद्धांतिक अध्ययन, इन काव्यधाराओं के प्रमुख संत कवि, सूफी कवि, कृष्ण भक्त कवि, अष्टछाप कवि, उनकी रचनाएँ, संप्रदाय निरपेक्ष कृष्णभक्ति काव्यधारा, रीतिकाल का परिवेश, काव्यधाराएँ, प्रवृत्तियाँ, प्रमुख कवि तथा काव्य-कृतियाँ, रीतिकालीन गद्य साहित्य का अध्ययन करना है।

प्रश्नपत्र MM7 के अंतर्गत भारतेन्दुयुगीन, महावीरप्रसाद द्विवेदीयुगीन, छायावादी और उत्तर छायावादीयुगीन कविता के परिवेश, प्रमुख कवि, उनकी रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ; प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, समकालीन कविता के परिवेश, प्रमुख कवि, उनकी रचनाएँ, काव्य-प्रवृत्तियाँ, विविध आंदोलन, वैचारिक पृष्ठभूमि, परिवर्तित नवीन सोपान; उपन्यास, कहानी, नाटक साहित्य का विकास, प्रमुख रचनाकार तथा उनकी कृतियाँ, वैचारिक प्रवाह, साठोत्तरी कथा-साहित्य; निबंध, यात्रा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र, रिपोर्ताज साहित्य का उद्भव और विकास का अध्ययन करना है।

उपरोक्त कवियों ने अपनी रचनाओं का सृजन क्यों किया? अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति क्यों की? उनके समसामायिक परिवेश कैसे रहे? इन कवियों ने अभिव्यक्ति के लिए किस भाषा का प्रयोग किया। कौनसे काव्यरूप अपनाए? आदि प्रमुख मद्दों के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक में पाठ्यक्रम की सभी इकाइयों का सरल भाषा द्वारा स्पष्टीकरण तथा विवेचन किया है। इसके आधार पर निश्चित रूप से एम्. ए. हिंदी के लिए प्रवेशित छात्र अपना अध्ययन कार्य सफलता से पूर्ण कर सकेंगे। स्नातकोत्तर उपाधि के अध्ययन के लिए छात्रों को विषय की संपूर्ण जानकारी प्राप्त होना आवश्यक होता है। इस बात को इकाई लेखकों ने लेखन कार्य के दरमियान ध्यान में रखा। संपादक तथा इकाई लेखक के रूप में जिन्होंने काम संपन्न किया है, उन सभी ने अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभाया है।

प्रस्तुत अध्ययन सामग्री की सफलता सामूहिक प्रयास का फल है। प्रस्तुत लेखन कार्य के लिए समय-समय पर विषय समन्वयक प्रो. पद्मा पाटील जी का मार्गदर्शन रहा है। उसी तरह इकाई लेखकों ने अपनी-अपनी इकाइयों का लेखन समय पर पूरा कर इसकी पूर्णता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के मा. कुलगुरु हिंदी विषय समन्वयक, दूर शिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहकारियों, संबंधित कर्मचारियों का हम अंतस्तल से आभार प्रकट करते हैं।

– संपादक

दूरशिक्षण और ऑनलाईन शिक्षण केंद्र शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर	**हिंदी साहित्य का इतिहास** **एम. ए. भाग–1** **हिंदी : बीजपत्र–MM3 और MM7**

इकाई लेखक

★ **डॉ. प्रदीप लाड** भोगावती महाविद्यालय, कुरुकली
★ **प्रा. डॉ. वर्षा गायकवाड** श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय, सांगली
★ **प्रा. कु. सुवर्णा नरसू कांबळे** कला व वाणिज्य महाविद्यालय, सातारा
★ **प्रा. अस्लम शेख** भोगावती महाविद्यालय, कुरुकली
★ **डॉ. हेमलता काटे,** बाळासाहेब देसाई कॉलेज, पाटण, ता. पाटण, जि. सातारा
★ **डॉ. एस. बी. बिडकर,** डॉ. घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर

■ सम्पादक ■

प्रो. (डॉ.) एस. एस. सावंत
अध्यक्ष, हिंदी अभ्यासमंडळ,
शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली, जि. सांगली.

डॉ. एस. बी. बिडकर,
डॉ. घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज,
ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर

हिंदी साहित्य का इतिहास
एम. ए. भाग–1
हिंदी : बीजपत्र–MM3 और MM7

अनुक्रम

इकाई		पृष्ठ
	सत्र–1 बीजपत्र–MM3 : हिंदी साहित्य का इतिहास	
1.	साहित्येतिहास तथा आदिकाल	1
2.	पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) निर्गुण भक्ति काव्यधारा	27
3.	पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सगुण भक्ति काव्यधारा	50
4.	उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)	97
	सत्र–2 बीजपत्र–MM7 : हिंदी साहित्य का इतिहास	
1.	आधुनिक हिंदी कविता : विकास प्रक्रिया के सोपान	145
2.	आधुनिक हिंदी कविता : विकास प्रक्रिया के सोपान	210
3.	कथा साहित्य का विकास	269
4.	कथेतर साहित्य का इतिहास	318

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे-

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं-अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्‌वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्‌ध होगी।

इकाई–1
साहित्येतिहास तथा आदिकाल

अनुक्रम :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषय–विवेचन

1.2.1 हिंदी साहित्य का इतिहास महत्त्व लेखन के विविध प्रयास, काल विभाजन, सीमी निर्धारण।

1.2.2 आदिकाल की पृष्ठभूमि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक।

1.2.3 आदिकालीन साहित्य का सामान्य परिचय–सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य।

1.2.4 संक्रातिकाल : नामकरण, महत्त्व और कवि।

1.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

1.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.5 सारांश

1.6 स्वाध्याय

1.7 क्षेत्रीय कार्य

1.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप –

- साहित्येतिहास का महत्त्व बता पाएंगे।
- साहित्येतिहास लेखन के विविध प्रयासों से परिचित होंगे।
- हिंदी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन और सीमा निर्धारण को समझा सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि का आकलन कर पाएंगे।
- आदिनालकीन साहित्य का आकलन कर पाएंगे।
- संक्रातिकाल का नामकरण, महत्त्व, कवि का परिचय कर पाएँगे।

1.1 प्रस्तावना :

इस पुस्तक की पहली इकाई में हमे साहित्योतिहास की आवश्यकता, उसका महत्त्व और साहित्येतिहास लेखन के विविध प्रयासों के बारे में अध्ययन करना है। इसके साथ ही विभिन्न विद्वानों ने हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किस प्रकार किया है इसके बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रत्येक युग में साहित्य चेतना परिवर्तित एवं विकसित होने के कारण चाहे युगबोध हो या परिवेश, साहित्य का परिप्रेक्ष्य हो या प्रविधि प्रक्रिया सभी में परिवर्तन आ जाता है। फलस्वरूप साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन करना पडता है। निरंतर अनुसंधान हो जाने के कारण नवीन साहित्य का सृजन हो पाता है। पूर्व मान्यताओं, तथ्यों में परिवर्तन कर नये परिणामों, तथ्यों और मान्यताओं के आधार पर साहित्येतिहास का पुनरावलोकन तथा पुनर्लेखन करना पडता है। साहित्येतिहास का पुनर्लेखन करते समय उसकी आवश्यकता, उसका महत्त्व और साहित्येतिहास लेखन के लिए कौन-कौनसे प्रयास करने चाहिए यह देखना बेहद जरूरी हो जाता है। जिससे साहित्येतिहास लेखन अधुनातन एवं अद्यतन बन सके।

प्रत्येक कवि, साहित्यकार, आलोचक या चिंतक की अपनी एक अलग दृष्टि होती है। साहित्येतिहास-लेखक हरेक कवि, साहित्यकार, आलोचक, उनकी रचनाएँ, उनकी भाषा, उनकी समग्र दृष्टि का अवलोकन कर अपनी एक अलग दृष्टि का निर्माण कर उसी आधार पर उनके प्रति अपना मत प्रदर्शित करता है। इसके लिए उसे सामग्री-संकलन, काल-विभाजन एवं नामकरण और मूल्यांकन जैसे मुख्य चरणों अथवा सोपानों से गुजरना पडता है। तब कहीं जाकर साहित्येतिहास अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं प्रामाणिक बन पडता है।

समग्र साहित्य का अध्ययन करने के लिए काल विभाजन करना आवश्यक हो जाता है। जिससे साहित्य का अध्ययन करने, उसे सही ढंग से समझने, उसमें सुव्यवस्था लाने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती और इसीलिए साहित्य का विभिन्न कालखंडों में विभाजन किया जाता है। फलस्वरूप साहित्य के विकास की दशा, विकास को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों और विभिन्न परिवर्तनों का पता चलता है। इसी आधारपर साहित्य की परिवर्तित प्रवृत्तियों को समझकर उनका मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। साहित्य की इस परिवर्तनशील प्रवृत्ति को समझने के लिए ऐतिहासिक कालक्रम, शासन और शासनकाल, युगप्रवर्तक साहित्यकार, राजनीतिक नेता, राष्ट्रीय सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलन, कोई विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति आदि बातों को मद्देनजर रखते हुए कालविभाजन एवं नामकरण लिया जाता है। विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंने हिंदी साहित्य के काल-विभाजन का प्रयत्न किया है।

हिंदी साहित्य के इतिहासकारोंने दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य के रचना काल को 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' कहा है। साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टिसे आदिकाल का साहित्य अपभ्रंश साहित्य का ही विकसित रूप माना जाता है। इस काल में ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर चरितकाव्य लिखने की कहानी प्रथा, लौकिक रस की रचनाएँ, बौद्ध एवं नाथ सिद्धों, जैन मुनियों की रुक्ष तथा उपदेशमूलक और हठयोग का प्रचार करनेवाली रचनाएँ, उच्च कोटि के साहित्य के दर्शन करानेवाली धार्मिक रचनाएँ लिखने की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। आदिकाल में पद्य के साथ-साथ गद्य में भी साहित्य रचना होने

लगी थी पर गद्य साहित्य की रचनाएँ समय के साथ नष्ट होती गई फिर भी अधिकांश ऐसे ग्रंथ मिलते हैं। जिसमें गद्य-पद्य का प्रयोग भी मिलता है।

हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों के नामकरण को लेकर विद्वानों में अलग-अलग मतभेद देखने को मिलते हैं। इन विभिन्न विद्वानों में ग्रियर्सन ने 'चारणकाल', मिश्रबंधु ने 'प्रारंभिककाल', आ. रामचंद्र शुल्क ने 'वीरगाथा काल', राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध-सामंत काल', आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'बीजवपनकाल', विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'वीरकाल', आ. हाजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल' और डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संधिकाल एवं चारणकाल' इसप्रकार इस कालखंड का नामकरण किया है।

आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक परिनिष्ठित अपभ्रंश में स्वयंभू, पुष्पदंत, नयनन्दि, धनपाल, कानकामर और हेमचंद्र जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं का सृजन किया। साथ ही लोकभाषा को आधार बनाकर परवर्ती अपभ्रंश में अद्दहमाण, विद्यापति, आ. जिनपदसूरि, विनयचंद सूरि, दामोदर पंडित, ज्योतिरीश्वर ठाकुर आदि रचनाकारों ने अपनी कृतियों का सृजन किया। अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिंदी साहित्य के अंतर्गत रासो साहित्य और लौकिक साहित्य का अंतर्भाव किया जाता है। इस अदिकाल के रचनाकारों में प्रमुख हैं, चंदबरवाई, दलपति विजय, नल्हसिंह भाट, नरपतिनाल्ह, शारंगधर, जगनिक, भट्ट केदार, कुशललाभ, अज्ञात कवि, अमीर खुसरो, विद्यापति, रोडा, दामोदर शर्मा और ज्योतिरीश्वर ठाकुर आदि।

1.2 विषय-विवेचन :

1.2.1 हिंदी साहित्य का इतिहास महत्त्व, लेखन के विविध प्रयास, काल विभाजन, सीमा निर्धारण

साहित्येतिहास क्या है? यह देखने से पूर्व हमें यह जानना होगा कि इतिहास और साहित्य क्या है? इतिहास अर्थात 'ऐसे निश्चित रूप से था' ऐसा ही हुआ। जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'अतीत में घटित घटनाओं तथ्यों विवरणों अथवा लेखा-जोखा। लेकिन केवल अतीत की घटनाओं का लेखा जोखा इतिहास नहीं है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत के तथ्यों, विवरणों एवं प्रवृत्तियों का पुनर्मूल्यांकन कर भविष्य के लिए दिशा-निर्देशन करना इतिहास का कार्य है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इतिहास अतीत, वर्तमान और भविष्य में एक संबंध स्थापित करता है।

'साहित्य' वह सार्थक एवं मनोरम रचना है जिसमें मानव मन एवं जातीय जीवन की सुख-दुखात्मक ललित भावनाओं का संचयन किया जाता है। इन ललित भावनाओं की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जाती है कि ये भाव जनसामान्य के भाव बन जाते हैं। अतीत से प्रेरणा लेकर युग-चेतना के अनुरुप उसे विस्तार दिया जाता है। प्रत्येक युग का साहित्य इसी मार्ग का अवलंब कर नयी पीढी को भाव तथा विचार प्रदान करता है। इस प्रकार साहित्य भी वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत और भविष्य में संबंध स्थापित करने का सार्थक प्रयास करता है। इतिहास और साहित्य में अंतर यह है कि, इतिहास में जहाँ केवल तथ्यों, घटनाओं का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाता है, वहाँ साहित्य में जनसामान्य की प्रवृत्तियों एवं चित्रवृत्तियों

का सूक्ष्म विवेचन किया जाता। साथ ही इन चित्तवृत्तियों का राष्ट्रीय परंपराओं, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों एवं राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितीयों के परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया जाता है।

साहित्येतिहास अर्थात् साहित्य के इतिहास में साहित्य की विकासमान परंपरा का उद्‌भव से लेकर आज तक की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इतिहास और साहित्येतिहास दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। इतिहास की उपेक्षा कर साहित्यिक इतिहास लिखा नहीं जा सकता। साहित्य के इतिहासकार का उद्देश्य साहित्य के बहुविध विकास को प्रस्तुत करते हुए साहित्य में अभिव्यक्त मानवजीवन की जटिलता स्पष्ट करना होता है। सामान्य इतिहास और साहित्य के इतिहास लेखन के लिए ऐतिहासिक तथ्यों की खोज, उनका सम्यक अनुशीलन, अन्य कलाकृतियों के साथ उनका संबंध प्रस्थापित करना आवश्यक है। इस प्रकार साहित्य और इतिहास में अंत:संबंध होता है। इतिहास के लिए साहित्य का और साहित्य के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है ।

● **साहित्येतिहास की आवश्यकता :**

साहित्येतिहास दो शब्दों के युग्म से बना है, 'साहित्य' और 'इतिहास' - साहित्य का इतिहास 'साहित्येतिहास' कहलाता है। साहित्य के इतिहास में साहित्य की विकसित परंपरा का उद्‌भव से लेकर आजतक की स्थिति का क्रमबद्‌ध अध्यन-विश्लेषण कि जाता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने 'साहित्य का इतिहास' की परिभाषा इस प्रकार की है - ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।''

अतीत में घटित घटनाओं, तथ्यों का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन इतिहास में किया जाता है, और साहित्य में मानव-मन एवं जातीय जीवन की सुख-दु:खात्मक ललित भावनाओं की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जाती है कि वे भाव सर्वसामान्य के भाव बन जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि, विभिन्न परिस्थितियों अनुसार परिवर्तित होनेवाली जनता की सहज चित्तवृत्तियों की अभिव्यक्ति साहित्य में की जाती है। जिससे साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न परिस्थितियों के आलोक में साहित्य के इसी परिवर्तनशील प्रवृत्ति और साहित्य में अंतर्भूत भावाभिव्यक्ति को प्रस्तुत करना ही साहित्योतिहास कहलाता है। आज साहित्य का अध्ययन एवं विश्लेषण केवल साहित्य और साहित्यकार को केंद्र में रखकर नहीं किया जा सकता बल्कि साहित्य का भावपक्ष, कलापक्ष, युगीन परिवेश, युगीन चेतना, साहित्यकार की प्रतिभा, प्रवृत्ति आदि का भी विवेचन-विश्लेषण किया जाना चाहिए। अत: कहा जा सकता है कि साहित्येतिहास का उद्‌देश्य ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य को वस्तु, कला पक्ष, भावपक्ष, चेतना तथा लक्ष्य की दृष्टि से स्पष्ट करना है। साहित्य का बहुविध विकास, साहित्य में अभिव्यक्त मानव जीवन की जटिलता, ऐतिहासिक तथ्यों की खोज, अनेक सम्यक अनुशीलन के लिए साहित्येतिहास की आवश्यकता होती है।

● साहित्येतिहास का महत्त्व :

किसी भी साहित्य के सम्यक् मूल्यांकन में उस साहित्य का इतिहास अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य की विभिन्न रचनायें, रचनाकार, साहित्य सर्जन के प्रेरक तत्त्व, युगीन चेतना, युगीन परिवेश, युगीन प्रवृत्तियों से परिचित कराने का काम साहित्येतिहास करता है। हर युग में देश-काल-परिस्थितिनुरूप समाज का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब होने के कारण परिवर्तित समाज का प्रभाव साहित्यपर भी दिखायी देता है। फलस्वरूप साहित्येतिहासकार साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समाज-परिवर्तन के कारणों को केवल प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि व्याख्यायित भी करता है। साथ ही साहित्य एवं समाज को प्रभावित करनेवाले विभिन्न आंदोलनों, परिवर्तनों और नवीन प्रयोगों का विवेचन करता है। रचना और रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता को वर्तमान की कसौटी पर कसना साहित्योतिहास का प्रमुख उद्देश्य होता है। साहित्येतिहास का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए विश्वम्भर मानव कहते हैं-''किसी भाषा में उस साहित्य का इतिहास लिखा जाना उस साहित्य की समृद्धि का परिणाम है। साहित्य के इतिहास का लिखा जाना अपनी साहित्यिक निधि की चिंता करना एवं उन साहित्यिकों के प्रति न्याय एवं कृतज्ञता प्रकट करना है जिन्होंने हमारे जातीय एवं राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित किया है। साहित्य के इतिहास को वह भित्तिचित्र समझिए जिसमें साहित्यिकों के आकृति-चित्र ही नहीं होते, हृदयचित्र और मस्तिष्क-चित्र भी होते हैं। इसके लिए निपुण चित्रकार की आवश्यकता होती है।''

● साहित्येतिहास लेखन के विविध प्रयास :

इतिहास चाहे समाज का हो या साहित्य का, उसके लेखन को कई प्रक्रियाओं से गुजरना पडता है। लेखक के लिए ऐतिहासिक बोध का होना आवश्यक है तो इतिहासकार को आधारभूत तथ्यों का संकलन वर्गीकरण विवेचन कर तत्कालीन युग के परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन करना पडता है। इस प्रकार साहित्येतिहास लेखन का कार्य एक वैज्ञानिक शोध के समान है जिसमें सामग्री संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण एवं संश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाओं का अवलंबन करना पडता है। जिससे साहित्येतिहास लेखन कार्य अधिकाधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं प्रामाणिक बन सकता है। इसके लिए सामग्री-संकलन, काल-विभाजन एवं नामकरण एवं मूल्यांकन आदि प्रमुख चरणों अथवा सोपानों का होना आवश्यक माना गया है।

1. समग्री-संकलन :

किसी भी साहित्येतिहास-लेखक को सबसे पहले विभिन्न पुस्तकालयों, संग्रहालयों, शिलालेखों, अभिलेखों, पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री संकलन करना पडता है। रचना एवं रचनाकारों का परिचय, उनके संबंध में लिये गये शोधकार्य, ग्रंथ सूची, साहित्य-कोश आदि से तथ्य प्राप्त लिये जा सकते हैं। प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों से युगीन परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ एवं आंदोलनों की जानकारी ली जा सकती है। प्राचीन साहित्य की पांडुलिपियाँ, लोकगीत, मुहावरें, लोकोक्तियाँ, लोककथाओं से भी साहित्येतिहास के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार विभिन्न स्रोत्रों से सामग्री संकलन कर इतिहास लेखन प्रामाणिक तथ्यों के आधारपर उनका क्रमबद्ध संयोजन करता है ।

2. काल–विभाजन एवं नामकरण :

साहित्येतिहास लेखक को सामग्री संकलन के बाद पूरे इतिहास का कालविभाजन और नामकरण करना पडता है। साहित्य की विभिन्न धाराओं का अध्ययन करने के लिए साहित्य में अंतर्निहित चेतना, परंपरायें, विभिन्न प्रवृत्तियाँ आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना पडता है। इसप्रकार काल–विभाजन करने के पश्चात् प्रतिनिधि रचनाकार, रचना, प्रवृत्ति अथवा विशिष्ट घटना या आंदोलन के आधारपर उस काल का नामकरण किया जा सकता है।

3. मूल्यांकन :

केवल तथ्यों का संकलन मात्र साहित्येतिहास नहीं है बल्कि प्राप्त तथ्यों का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने का काम साहित्येतिहासकार बखूबी निभाता है। साहित्येतिहासकार को साहित्य की आलोचना भी करनी पडती है। नये–पुराने मूल्यों में आये परिवर्तन, नवीन तथ्यों का अन्वेषण, युगीन चेतना को वर्तमान से जोडकर पुनर्मूल्यांकन करना पडता है।

● स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न – 1

1) प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की .... का संचित प्रतिबिंब होता है।

(संस्कृति / निवृत्ति / चित्तवृत्ति / अभिवृत्ति)

2) अतीत में घटित घटनाओं का, तथ्यों का विवेचन विश्लेषण एवं मूल्यांकन ....में किया जाता है।

(इतिहास / भूगोल / समाजशास्त्र / विज्ञान)

3) किसी भी साहित्येतिहास–लेखक को सबसे पहले .... करना पडता है।

(काल–विभाजन / मूल्यांकन / सामग्री–संकलन / इनमें से कोई नहीं)

4) केवल .... का संकलन मात्र साहित्येतिहास नहीं है।

(मतों / तत्त्वों / तथ्यों / वृत्तों)

5) साहित्येतिहास लेखन का कार्य एक .... शोध हैं।

(ऐतिहासिक / भौगोलिक / वैज्ञानिक / सामाजिक)

● हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन, सीमा निर्धारण

किसी भी विषय–वस्तु का बौद्धिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए उसे किन्ही काल्पनिक पक्षों, खंडो, वर्गों या तत्त्वों मे विभक्त कर लिया जाता है। जिससे उसके विभिन्न अंगों को सम्यक् रूप में ग्रहण किया जा सके। इतिहास में मुख्यत: देश के स्थान पर काल का अध्ययन किया जाता है।, अत: अध्ययन की सुविधा के लिए उसे विभिन्न कालखंडों में वर्गीकृत कर लेना सुविधाजनक एवं उपयोगी सिद्ध होता है। काल विभाजन से इतिहास की विभिन्न परिस्थितियाँ, घटनायें, प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती है। समग्र साहित्य का

अध्ययन करने के लिए साहित्य में अंतर्निहित चेतना का क्रमिक विकास, परंपराओं का उत्थान-पतन, विभिन्न प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ - परिवेश आदि के काल-क्रम को स्पष्ट करना होता है। इसलिए काल विभाजन की आवश्यकता होती है। काल विभाजन से साहित्य का विकास, विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करनेवाले तत्त्व, विभिन्न परिवर्तन आदि का पता चलता है। अत: साहित्य की विभिन्न धाराओं के अध्ययन के लिए उसे विभिन्न कालखंडों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है।

हिंदी साहित्य का इतिहास विक्रमी संवत् 1050 से आरंभ होता है। इसप्रकार उसका इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना ठहरता है। इस दीर्घावधि में अनेक साहित्यकारों की गद्य-पद्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस रचनाओं का सुचारू रुपसे अध्ययन करने के लिए तथा हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न विद्वानोंद्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास का जो काल विभाजन लिया गया है। उनके बारे में हम जानकारी प्राप्त करेंगे।

हिंदी साहित्य के इतिहास का लेखन-कार्य लगभग 1000 वर्ष पूर्ण आरंभ हो गया था। फ्रांसीसी लेखक गार्सां द तांसी तथा भारतीय लेखक शिवसिंह सेंगर ने सर्वप्रथम इस दिशा में प्रयास किए। हिंदी साहित्येतिहास के काल-विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया। इसके पश्चात् मिश्रबंधुओं, आ. रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदरदास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. राजकुमार वर्मा, डॉ. नगेंद्र, डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त आदि विद्वानोंने भी काल-विभाजन के प्रयास लिए हैं।

- **जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा किया गया काल - विभाजन :**

i) चारणकाल (700 इ. से 1300 इ. तक), (ii) 19 शती का धार्मिक पुनर्जागरण, (iii) जयसी की प्रेम कविता, (iv) कृष्ण संप्रदाय, (v) मुगल दरबार, (vi) तुलसीदास, (vii) प्रेमकाव्य, (viii) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (ix) 18 वीं शताब्दी, (x) कंपनी के शासन में हिंदुस्तान, (xi) विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान.

जॉर्ज ग्रियर्सन के उक्त वर्गीकरण से यह बात स्पष्ट होती है, कि इसमें काल विभाजन के बजाए साहित्येतिहास के भिन्न-भिन्न अध्यायों का नामकरण किया गया है। इस वर्गीकरण में एकरुपता अभाव तो है ही साथ ही कहीं ऐतिहासिकता तो कहीं प्रमुख कवियों के नाम पर आधारित काल विभाजन किया गया है। जो संगत नहीं लगता। दूसरी बात यह है कि इस प्रकारके काल विभाजन से किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति का न ही किसी ऐतिहासिक चेतना का समग्र अर्थबोध हो पाता है। ग्रियर्सन द्वारा किया गया उक्त काल-विभाजन, त्रुटिपूर्ण एवं असंगत होते हुए भी प्रथम प्रयास के रूप में नि:संदेह प्रशंसीय है।

- **भिश्र बंधूओं द्वारा किया गया काल-विभाजन :**

i) आरंभिक काल (सं. 700 से 1444 विक्रमी तक)

ii) माध्यमिक काल (सं. 1445 से 1680 विक्रमी तक)

iii) अलंकृत काल (सं. 1681 से 1889 विक्रमी तक)

iv) परिवर्तन काल (सं. 1890 से 1925 विक्रमी तक)

v) वर्तमान काल (सं. 1926 से अब तक)

मिश्र बंधुओं द्वारा किया गया यह काल-विभाजन जॉर्ज ग्रियर्सन के काल-विभाजन से कहीं अधिक प्रौढ, विकसित एवं तर्कसंगत होने के बावजूद वैज्ञानिक नहीं है। साथ ही इसके नामकरण में एकता का अभाव है। अलंकृत काल साहित्य की अंत:प्रवृत्ति का तो शेष नाम साहित्य की विकासावस्था के परिचायक हैं। इन्होंने आरंभिक काल सं. 700 से मानकर अपभ्रंश भाषा के साहित्य को भी हिंदी भाषा के साहित्य में अंतर्भूत कर लिया है जो तर्कसंगत नहीं लगता।

- **आ. रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया काल विभाजन :**

i) आदिकाल (वीरगाथाकाल, सं. 1050 से 1375 विक्रमी तक)

ii) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, सं. 1375 से 1700 विक्रमी तक)

iii) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, सं. 1700 से 1900 विक्रमी तक)

iv) आधुनिक काल (गद्यकाल, सं. 1900 से आज तक)

आ. शुक्ल जी ने अपने पूर्ववर्ती किये गये काल विभाजन तथा गुण-दोषों को ध्यान में रखते हुए काव्य की प्रवृत्ति विशेष पर बल देते हुए काल विभाजन एवं नामकरण किया है। मानव मनोविज्ञान के आधारपर शुक्ल जी ने चारों कालों में दोहरे नाम देकर प्रत्येक काल की विशिष्ट प्रवृत्ति भी रेखांकित की है।

- **डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा किया गया काल-विभाजन :**

i) संधिकाल (सं. 700 ते 1000 वि. तक)

ii) चारणकाल (सं. 1000 ते 1375 वि. तक)

iii) भक्तिकाल (सं. 1375 ते 1700 वि. तक)

iv) रीतिकाल (सं. 1700 ते 1900 वि. तक)

v) आधुनिक काल (सं. 1900 से अबतक)

डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिए गए कालविभाजन के अंतिम चार खंड तो आ. शुक्ल के समान ही है, लेकिन वीरगाथा काल को चारणकाल नाम देकर इसके पूर्व एक संधिकाल और जोडकर हिंदी साहित्य का आरंभ सं. 1050 से न मानकर सं. 700 से मानते हुए काल-विभाजन किया है। आदिकाल के दो खंड संधिकाल और चरण काल किए है। 'संधिकाल' जो वस्तुत: गुण-वृद्धि का सूचक कम एवं दोषवृद्धि का द्योतक अधिक है। वैसे देखा जाए तो हिंदी साहित्य का आरंभ 7 वीं, 8 वीं शताब्दी से मानना एक विशेष भ्रांति का परिणाम है तथा 'संधिकाल' यह नामकरण भी उसी भ्राति से संबंधित है। आ. शुक्लजी की रुढ़ि को त्यागने का साहस इन्होंने अवश्य किया है।

- **आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया काल-विभाजन :**

i) आदिकाल (सन 1000 इ. से 1400 इ. तक)

ii) पूर्व मध्यकाल (सन 1400 इ. से 1700 इ. तक)

iii) उत्तर मध्यकाल (सन 1700 इ. से 1900 इ. तक)

iv) आधुनिक काल (सन 1900 इ. से अब तक)

आ. ह. प्र. द्विवेदी ने आ. शुक्ल जी के काल-विभाजन को ही स्वीकार कर केवल संवत के स्थान पर इसवी सन का प्रयोग किया है। आ. द्विवेदीजी ने पूरी शताब्दी को काल विभाजन का आधार बनाकर वीरगाथा की अपेक्षा आदिकाल नाम दिया है।

● **डॉ. नगेंद्र द्वारा किया गया काल-विभाजन :**

i) आदिकाल (7 वी शती के मध्य से 14 वीं शती के मध्यतक)

ii) भक्तिकाल (14 वीं शती के मध्य से 17 वीं शती के मध्यतक)

iii) रीतिकाल (17 वीं शती के मध्य से 19 वीं शती के मध्यतक)

iv) आधुनिक काल (19 वीं शती के मध्य से अबतक)

डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा के समान ही साहित्य का प्रारंभ सातवीं शती के मध्य से मानते हैं। वे विभिन्न कालखंडों का नामकरण आ. शुक्ल के समान न कर द्विवेदी जी के समान पूरी शताब्दी को काल विभाजन का आधार मानकर करते हैं।

● **सर्वाधिक मान्य काल-विभाजन :**

अधिकोश विद्वानों द्वारा मान्य काल-विभाजन इस प्रकार है -

i) आदिकाल (10 वीं शताब्दी से 14 वीं शताब्दी)

ii) पूर्व मध्यकाल (14 वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी)

iii) उत्तर मध्यकाल (17 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी)

iv) आधुनिक काल (19 वीं शताब्दी से अबतक)

● **नामकरण संबंधी मतभेद :**

हिंदी साहित्य के कालविभाजन को लेकर अधिक मतभेद न होकर केवल हिंदी साहित्य के प्रारंभ को लेकर दो प्रकार के मतभेद हैं। एक तो सातवीं शताब्दी से हिंदी साहित्य का प्रारंभ माननेवाला एक वर्ग और दूसरा-दसवीं शताब्दी से। अगर सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी के कालखंड को हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि के रुप में स्वीकार कर लिया जाए तो यह मतभेद समाप्त हो जाता है। इस कालखंड की अधिकांश रचनाएँ अपप्रंश में हैं और अपभ्रंश से ही हिंदी भाषा का जन्म हुआ हैं। हिंदी भाषा एवं साहित्य की मूल चेतना को समझने के लिए इस कालखंड की भाषा के स्वरूप तथा साहित्य-धारा को जानना अत्यावश्यक हैं।

हिंदी साहित्य के दसवीं शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक के आरंभिक काल-विभाजन आर सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक के कालखंड नामतरण को लेकर मतभेद हैं। विभिन्न विद्‌वानों ने इस कालखंड का नामकरण इस प्रकार किया है। जैसे ग्रियर्सन ने इस काल को चारणकाल, मिश्रबंधु-प्रारंभिक काल, आ. रामचंद्र शुक्ल-वीरगाथा काल, राहुल सांकृत्यायन - सिद्‌ध सामंत काल, आ. महावीर प्रसाद द्‌विवेदी-बीजवपन काल, आ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी - आदिकाल, रामकुमार वर्मा - संधिकाल, एवं चारण काल नाम से अभिहित करते हैं।

चारण काल : ग्रियर्सन ने सबसे पहले हिंदी साहित्य के इतिहास के आरंभिक काल को 'चारण काल' कहा। लेकिन कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण तथा 1000 ईसवी तक चारण कवियों की कोई रचना उपलब्ध न होने के कारण यह नामकरण उपयुक्त नहीं है।

प्रारंभिक काल : मिश्रबंधुओं ने 643 इसवी से 1387 इसवी तक के काल को 'प्रारंभिक काल' कहा। यह नाम एक सामान्य संज्ञा का प्रतीत होता है, जो हिंदी भाषा के प्रारंभ को बताता है। यह नाम किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का परिचायक नहीं है।

वीरगाथा काल : आ. रामचंद्र शुक्ल ने सं. 1050 से 1375 इ. तक की कालावधि को वीरगाथाकाल कहा। इस काल में प्राप्त 12 रचनाएँ जैसे विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्ति पताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जयमयंक जसचंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति की पदावली आदि के आधार पर वीरगाथाकाल नामकरण किया है। इसमें से कई ग्रंथ केवल नोटीस मात्र, कुछ अर्ध प्रामाणिक, विरह ग्रंथ हैं। अत: इन ग्रंथों के आधार पर वीरगाथा काल नाम देना उचित प्रतीत नहीं होता। इस काल में वीरकाव्य के साथ-साथ धार्मिक, श्रृंगारिक और लौकिक साहित्य की भी रचना हुई। केवल वीरगाथाकाल कहने से इन रचनाओं की उपेक्षा होती है।

सिद्‌ध-सामंतयुग : सिद्‌धों की वाणी और सामंतों की स्तुति इन दो प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधारपर महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस काल को सिद्‌ध सामंत युग कहा। लेकिन इससे साहित्य की सभी प्रवृत्तियों का बोध नहीं हो सकता।

बीजवपन काल : आ. महावीर प्रसाद द्‌विवेदी जी ने इस काल का नाम 'बीजवपन काल' रखा है। किंतु यह नाम उपयुक्त नहीं है। साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल प्रौढता को प्राप्त था। इसलिए यह नाम उचित नहीं है।

वीरकाल : आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आ. शुक्ल द्‌वारा दिए गए नाम का रुपांतर मात्र कर वीर काल कहा। लेकिन इससे किसी नये तथ्य का आभास नहीं मिलता। इसलिए यह नाम उचित नहीं लगता।

संधि एवं चारणकाल : डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को दो खंडों में विभाजित कर संधिकाल और चारणकाल नाम दिया है। किसी साहित्य प्रवृत्ति को बिना आधार बनाये भाषा और वर्ग विशेष के आधारपर किया गया यह नामकरण उचित नहीं है।

आदिकाल : आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस काल में प्राप्त होनेवाला अधिकांश साहित्य अप्रामाणिक एवं संदिग्ध होने के कारण इसे आदिकाल कहा। अधिकांश विद्वानों द्वारा यही नाम मान्य रहा है।

1.2.2 आदिकाल की पृष्ठभूमि :

आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ समकालीन साहित्य को प्रभावित तो करती है साथ ही उन्हें नया रुप देकर उसका आलंबन भी बनती है। कवि अथवा लेखक इन परिस्थितियों के प्रभावों से मुक्त रहकर साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। इन परिस्थितियों का साहित्य पर व्यक्त और अव्यक्त प्रभाव पडता रहता है।

1. **सामाजिक परिस्थितियाँ :** राजनीतिक और धार्मिक दुर्दशा और पतन के इस युग में समाज की हालत क्या रही होगी इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था गुणों पर आधारित न रहकर जन्म पर आधारित हो गई थी। समाज में छुआछूत की बीमारी फैल गई। शुद्रों को छूना तो दूर उनकी छाया से उच्च वर्ग दूर रहने लगा। धर्मोपदेश सुनने, धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन, भगवान की पूजा-अर्चा से शुद्रों को वंचित कर दिया गया। धार्मिक रुढियों ने समाज को संकुचित बना दिया। जिनसे समाज कमजोर पडकर बहिष्कृत लोगों की संख्या बढती गई। इस काल में वर्ण व्यवस्था जातियों में परिवर्तित हो गई। जो लोग जिस काम को करने लगे उन्हें वहीं कहा जाने लगा। जैसे लकडी काम करने वाला बढई और लोहे के काम करनेवाला लुहार कहलाने लगा। इस प्रकार संपूर्ण समाज सेंकडों जातियों में विभाजित हुआ।

राजपूत जाति में शौर्य और आत्मबलिदान की भावना थी। इनकी रानियों में अपनी इज्जत-आबरु के लिए मर मिटने की भावना थी। जौहर की प्रथा का प्रचलन इसी समय हुआ, जिसने आगे जाकर सती प्रथा के रुप में एक सामाजिक कुरीति का रुप ले लिया। राजपूतों में स्वयंवर प्रथा का प्रचलन था। स्वयंवरों के लिए आपस में लडाई-झगडा करना, दूसरे राजाओं की कन्याओं का बलपूर्वक अपहरण करना, बहुविवाह, जैसी प्रथाएँ विद्यमान थी। राजाओं का जीवन भोग-विलास में डुबा था। जिसकी स्पष्ट झांकी हमें रासों-साहित्य में दिखाई देती है। रासो काव्य से राजदरबारों की न्हासोन्मुख स्थिति का पता चलता है।

आर्य-संस्कृति काल में समाज में जो नारी का स्थान था वह आदिकाल में नहीं था। नारी को केवल भोग्या माना गया और तो और मुसलमानों के यहाँ आने के बाद उनकी स्थिति और भी दयनीय बन गई।

2. **राजनीतिक परिस्थितियाँ :** हर्षवर्धन के पश्चात भारत के संगठित साम्राज्य का रुप समाप्त होकर देश बहुत से राज्यों में बँट गया। गाहरवार, चौहान, चंदेल और परिहार इत्यादि राज्य संगठित होने के बजाए केवल शौर्य प्रदर्शन हेतु परस्पर युद्ध रत रहते थे। इसी समय मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किये। 644 ई. में अरबों ने सिंधु पर आक्रमण किये जिसमें सिंहरण और उसके पुत्र की मृत्यु हुई, परंतु बिजय के पश्चात् अरब वापस लौट गये। 712 ई. में मुहम्मदबिन कासिम ने फिर आक्रमण कर सिंधु पर अरबों का अधिकार प्रस्थापित किया। ब्राह्मण और बौद्धों की आपसी फूट, विश्वासघात, नैतिक पतन के कारण सिंधु अरब का प्रांत बना। 10 वीं शताब्दी के आरंभ में काबुल पर मुसलमानों ने अपना अधिकार प्रस्थापित किया। 987 ई. में भटिंडा पर सुयुक्तगीन ने आक्रमण किया पर साही राजा जयपाल से हारना पडा। 999-1029 ई. के बीच

महमूद गजनवी ने 17 बार भारत पर आक्रमण कर अथाह संपत्ति लुट ली। उसने मथुरा, कन्नौज पर आक्रमण कर मंदिरों को तोडा भयंकर लूट मचाई। 1024 ई. में गुजरात के प्रसिद्‌ध सोमनाथ मंदिर को लूटकर उसने विध्वंस किया। भीम सोलंकी ने उसका सामना किया पर वह पराजित हो गया। भारतीय राजाओं की आपसी फूट के कारण महमूद विजयी हुआ।

सन 1175-76 में मुहम्मद गोरी ने मुल्तान पर आक्रमण किया और वहाँ की रानी के विश्वासघात के कारण किले पर उसका अधिकार हो गया। सिंध के बाद गुजरात पर सन 1178 में आक्रमण किया पर उसे पराजित होना पडा। जिससे वह पंजाब और उत्तर भारत के मध्यभाग की ओर मुडा। करनाल और थानेश्वर के मध्य तलबाडी के मैदान में गोरी को पृथ्वीराज चौहान से पराजित होकर मैदान से भागना पडा। सन 1192 में गोरी ने फिरसे आक्रमण कर पृथ्वीराज को बंदी बनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे देश पराधीनता की बेडियों में जकडता चला गया। पृथ्वीराज के बाद गोरी ने जयचंद को पराजित किया। सन 1193 में गोरी के सेनापति कुतबुद्दीन ने मेरठ, दिल्ली और अजमेर पर अपनी सत्ता प्रस्थापित की। उसके उपसेनापति बख्तियार खिलजी ने बिहार की राजधानी पर धावा बोलकर वहाँ के बौद्‌ध भिक्षुओं को मौत के घाट उतारा। बौद्‌ध भिक्षु नेपाल और तिब्बत चले गये। सन 1203 ई. में कुतुबुद्दीन ने परमालों को पराजित कर कालिंजर-दुर्गपर कब्जा कर लिया। इसी बीच मुहम्मद गोरी की पंजाब में किसी ने हत्या कर दी। कुतुबुद्दीन मुहम्मद गोरी का गुलाम एवं प्रधान सेनापति था। जिसने सन 1206 में गुलामवंश के शासन की स्थापना की।

आदिकाल की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार असंगठित वैमनस्यपूर्ण, विलासपूर्ण और अव्यवस्थित थी। जिसका परिणाम भारत के वैभव, संस्कृति, कला, संपत्ति, मान-मर्यादा, गौरव, प्रतिष्ठा, मंदिर-मठ, पुस्तकालय, विहार इत्यादि के विनाश के रुप में दृष्टिगोचर होता हैं।

3. धार्मिक परिस्थितियाँ : इस काल में वैदिक, बौद्‌ध और जैन धर्मोंने अपनी एकरूपता खो दी थी। वैदिक धर्म पौराणिक काल में आकर शिव और विष्णु के अलावा अन्य अनेक देवी देवताओं को मानने लगा था। इन देवी-देवताओं के अलग-अलग संप्रदाय बन गये थे। वर्णाश्रम-धर्म के समान देवी-देवताओं को लेकर उपासना के क्षेत्र उपशाखाओं में बंट गये थें। ये लोग अपने-अपने देवी-देवताओं को श्रेष्ठ मानते थे। बौद्‌ध धर्म-महायान, वज्रयान, सहजयान हीनयान और नाथ पंथी धाराओं में विभक्त हो चुका था। जैन धर्म में भी दिगंबर-श्वेतांबर दो संप्रदाय बन गये थे। इन संप्रदायों में पारस्परिक वैमनस्य की भावना पनपी थी।

बौद्‌ध धर्मावलंबी सिद्‌ध आचार विहिन हो गये थे। ये भोली-भाली जनता को चमत्कार-प्रदर्शन कर लुटने लगे थे। साथ ही पथ-भ्रष्ट करने लगे थे। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। इसलिए नाथ संप्रदाय ने इनका विरोध कर सदाचार का पथ अपनाया। वैष्णव संप्रदायों ने सिद्‌धों की प्रवृत्तियाँ अपना ली थी। शाक्तों ने भी यही किया था। जैन धर्म में भी वाममार्गी प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी थी।

इसी समय दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य, शंकराचार्य और निम्बार्क ने नारायण की उपासना पद्‌धति का प्रसार कर धार्मिक प्रवृत्तियाँ को एक नई दिशा प्रदान की। इन लोगों ने बौद्‌ध धर्म के प्रभाव को कम करने के लिए हिंदुओं में भी व्रत पूजा का प्रचलन किया। यही भक्ति आंदोलन दक्षिण से चलकर

उत्तर-भारत की ओर अग्रसर होने लगा था। इसमें विष्णु के साथ उनके राम और कृष्णावतार को महत्त्व दिया गया।

जैन धर्म में दिगंबर-श्वेतांबर दो धाराएँ प्रवाहित होने से जन-संपर्क कम हो गया। शंकराचार्य के प्रचार स्वरूप जैन धर्म का प्रभाव निष्प्रभ हुआ। इसी समय तलवार की धार पर भारत में इस्लाम-धर्म का प्रवेश हुआ जिसने बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन करना आरंभ किया।

धार्मिक परिवेश का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है, कि धर्म और उनके संप्रदायों की स्थिति दयनीय बन चुकी थी। उनमें निर्मल तथा पवित्र विचार और भावना का स्थान अनाचार, विद्वेष और कुंठा ने लिया था। इन्ही धार्मिक प्रवृत्तियों के कारण भारतीय जन जीवन विभाजित एवम् असंगठित हुआ। धार्मिक क्षेत्र से समन्वय और सहयोग की भावना अंतर्धान हो चुकी थी।

4. साहित्यिक परिस्थितियाँ : राजनीतिक परिवेश से ही पता चलता है कि यह काल कितना अशांतिपूर्ण था फिर भी इस काल में काव्य रचना हुई। ज्योतिष, दर्शन और स्मृति ग्रंथों की टीकायें लिखी गई साथ ही संस्कृत साहित्य की रचना भी हुई। इस काल की प्रमुख रचना है श्री हर्ष का 'नैषध-चरित्र'। इस काल में आकर कवियों की दृष्टि अलंकार और चमत्कार की ओर अधिक रहने से साहित्य से स्वााभविकता का ह्रास हुआ। धार के शासक भोज स्वयं उच्च कोटि के विद्वान थे। उनके दरबार में कवियों का आदर-सम्मान किया जाता था। भोजकृत 'सरस्वती कंठाभरण' और 'श्रृंगार प्रकाश' संस्कृत-काव्य-शास्त्र की अमर कृतियाँ हैं। इनके दरबार में जयदेव, सोमदत्त जैसे कवि, कुंतक, क्षेमेंद्र, हेमचंद्र, महिम भट्ट, विश्वनाथ जैसे आचार्य और पद्मगुप्त जैसे विद्वान थे।

इस काल में हेमचंद्र ने 'सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' व्याकरण-ग्रंथ की रचना की जिसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश का समावेश है। जैन आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबंध चिंतामणि' में पुराने राजाओं के आख्यान संग्रहीत किए। विद्याधर कवि ने राठौर राजा जयचंद के पराक्रम का वर्णन किया और शारंगधर ने आयुर्वेद के ग्रंथ का सृजन किया।

इस काल में देशज भाषा में भी रचना की जाने लगी थी। परंतु खेद की बात है कि इस काल के किसी भी कवि ने समकालीन परिवेश के बारे में लिखने का प्रयास नहीं किया। इस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, परिस्थितियाँ ही कुछ इस प्रकार की थी कि इस समय कवियों के लिए समकालीन परिवेश के परिपेक्ष्य में लिखना कठिन बात थी।

1.2.3 आदिकालीन साहित्य का सामान्य परिचय – सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य

हिंदी साहित्य के आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने से पूर्व उस काल के जैन, नाथ, सिद्ध-साहित्य के बारे में जानना अत्यंत आवश्यक है। इस साहित्य की रचना अपभ्रंश में हुई। इनमें अपनायी गई साहित्यिक रुढियाँ और प्रवृत्तियों का हिंदी साहित्य के आदिकालीन रचनाओं पर प्रभाव पडा। जो हमें आदिकालीन रासो-काव्य, प्रेमकाव्य, आख्यान-काव्य, ज्ञानाश्रयी संत-काव्य और रीतिकाव्य में दिखाई देता है। हिंदी साहित्य के विषय और रचना-विधान दोनों को इस साहित्य ने प्रभावित किया।

सिद्ध साहित्य : सिद्धों का विकास बौद्ध धर्म की विकृति में निहित है। बुद्ध-निर्वाण के 45 वर्ष पश्चात् तक बौद्ध धर्म विकासोन्मुख होते हुए इसका प्रसार देश-विदेशों में होता रहा। बुद्ध की मृत्यु के 45 वर्ष पश्चात् यह धर्म दो शाखाओं में महायान और हीन यान में विभाजित हुआ। बडे रथों पर सवारी करनेवाले भिक्षु महायानी और छोटे रथों पर यात्रा करनेवाले हीनयानी कहलाये। गुप्तकाल में बौद्ध-धर्म का राजकीय संरक्षण समाप्त हो जाने से धर्म-प्रचार की गति रुक गई। इसके बाद आठवीं शताब्दी में कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य द्वारा बौद्ध धर्म के विरुद्ध व्यापक आंदोलन ने इसे क्षीण कर दिया। इन आचार्यों के प्रसार से जनता का बौद्ध धर्म के प्रति विश्वास उठ गया। बौद्ध धर्म का आवलंबन करनेवालों ने अपने प्रभाव को निष्प्रभ होते देख शैव मत की प्रवृत्तियों को अपना लिया। जिस गौतम बुद्ध ने मूर्तिपूजा का विरोध किया था उसी बुद्ध की मूर्तियाँ मंदिरों में प्रतिष्ठित कर पूजा-अर्चा करने लगे। त्याग, सदाचार, संयम के स्थान पर भोग-विलास, आनंद-व्यभिचार और कुरीतियाँ बढने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि महायान शाखा वज्रयान और सहजयान में बँट गई।

महायान शाखा के जिन लोगों ने मंत्रोद्वारा सिद्धि प्राप्त करने की प्रक्रिया अपनाई वे सिद्ध कहलाये। सिद्ध कवियों पर वज्रयानी शाखा का अधिक प्रभाव दिखायी देता है। निवृत्ति का स्थान प्रवृत्ति ने लेने के कारण भोगवाद की प्रवृत्ति बढी। सहजयानियों ने जीवन की सहज प्रवृत्तियों को अपनाया। 797 ई. से 1257 ई. के मध्य इस धारा के चौरासी सिद्धों ने जन्म लिया। इनमें से 14 की रचनाएँ प्राप्त हेती हैं। ये सिद्ध दर्शन, ब्रह्म-ज्ञान और साधना की आड में भोग-विलासी जीवन व्यतीत करते थे। इनकी कुछ रचनाएँ अर्धमागधी के निकट की अपभ्रंश भाषा में हैं। अपभ्रंश के अंतिम काल की भाषा होने के कारण इसे संधा भाषा / संध्या भाषा भी कहते हैं। साथ ही सिद्ध साहित्य में हमें नीति और आचरण संबंधी उपदेशप्रधान और साधना संबधी अर्थात् रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इनमें कहीकहीं काव्यशास्त्रीय विषयों की भी चर्चा की गई है।

- **सिद्ध-साहित्य की प्रवृत्तियों का प्रभाव :**

हिंदी साहित्य पर सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियों का व्यापक प्रभाव दिखायी देता है। इन प्रवृत्तियों ने केवल समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को ही नहीं बल्कि मध्यकालीन संत और रीतिकालीन प्रवृत्तियों को भी प्रभावित किया है। कबीर की उलटबांसियों पर सिद्धों की उक्तियों का स्पष्ट प्रभाव है। कबीर की रहस्यवादी प्रवृत्ति पूर्णरुप से सिद्धों की देन है। कबीर की कविता में जो योगसंबंधीत शब्दावली का प्रयोग लिया है वह वज्रयानी सिद्धों की शब्दावली है। संतो की भाषा, शैली और रहस्यत्माकता भी इसी सिद्ध साहित्य की देन है। कबीर, नानक, दादू आदि संतोने जिस साहित्य का निर्माण किया वह वज्रयान की सहज साधना रुप में नाथ साधना से प्रभावित हुआ है। सिद्ध-साहित्य की श्रृंगारिक प्रवृत्ति का प्रभाव उत्तर मध्यकालीन हिंदी साहित्य पर भी दिखाई देता है। गोपी-लीला, अभिसार आदि के वर्णन सिद्ध साहित्य के श्रृंगारिक चित्रण की ही कोटि में आते हैं। सिद्ध-साहित्य में उदात्त प्रवृत्तियों का अभाव, रचना शिल्प उखडा हुआ और अपरिपक्व होने के बावजूद इनके चर्यापदों में गीतात्मकता नजर आती है। इसी गीतात्मकता ने

संस्कृत और हिंदी साहित्य को जयदेव, विद्यापति और सूर जैसे गेय पदों के रचनाकार दिये हैं। सिद्ध साहित्य की रचना भूमि पर ही श्रीमद्भगवत की रचना हुई जिससे कृष्ण भक्ति शाखा प्रवाहित हुई।

नाथ साहित्य : नाथ संप्रदाय ने जीवन को वज्रयानी तंत्र और कर्मकांड से मुक्त कर सहज दिशा में ले जाने का प्रयास लिया। सिद्धों के विकृत रुप को व्यवस्था प्रदान कर उनकी मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया। नाथ संप्रदाय को सिद्ध परंपरा से अलग करने पर इनकी सभी मान्यतायें और साहित्य निराधार हो जाने के कारण इन्हें सिद्ध परंपरा में ही लेना उचित है। संत साहित्य पर नाथ पंथ का सीधा प्रभाव पडा। इस प्रकार बौद्ध-धर्म महायान, वज्रयान, सहजयान, धाराओं में प्रवाहित होता हुआ नाथ संप्रदाय में परिवर्तित हुआ।

नाथ साहित्य का प्रभाव : शैवमत की गोद में पलने के कारण नाथ पंथ का दर्शन शैवमत का दर्शन है। ये शून्य को परमसत्ता मानते थे। संत कबीर ने इसी शून्य को सहज, सून्न इत्यादि नामों से संबोधित किया है। नाथ संप्रदायिओं ने इस शून्य को अलखनिरंजन का रुप दिया। इन्होनें वैराग्य का मार्गदर्शन गुरुद्वारा संभव माना साथ ही मर्यादा-रक्षण, इंद्रिय-निग्रह पर बल देते हुए नारी से दूर रहने की बात कही है। कबीर के साहित्य में गुरु का महत्त्व, इंद्रिय-निग्रह, नारी से दूर रहने की सलाह आदि बातें दिखाई देती हैं। ब्राह्मण धर्म में व्याप्त हिंसाचार, कामुकता, सुरा-सुंदरी उपभोग आदि विकृतियों को देखकर जिस प्रकार बुद्ध के मन में प्रतिक्रिया हुई उसी प्रकार बौद्ध विहारों में व्याप्त व्यभिचार के प्रति गोरखनाथ के मन में विद्रोह जगा। उन्होंने मन की साधना से पूर्व इंद्रिय-निग्रह को आवश्यक माना। मन की बाह्यजगत की ओर प्रवृत्ति को यौगिक क्रियाओं द्वारा अंतर्जगत की ओर प्रविष्ट करने पर बल दिया। उलटबांसियों में यही मन को उलटने की प्रक्रिया है, जिसका प्रभाव हमें कबीर के साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलता हैं।

नाथ-पंथ ने अपने साहित्य की रचना जनभाषा में की। इनकी रचनायें सबदियों और पदों में है। इनके प्रधान विषय नीति, आचार-विचार, इंद्रिय निग्रह और योग हैं। जिसप्रकार सिद्धों में 84 सिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार नाथों में 9 नाथ विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनमें शिव आदि नाथ हैं और मत्स्येंद्रनाथ, जलंधरनाथ, तथा गोरखनाथ ने विशेष प्रसिद्धी प्राप्त की। इन लोगों ने ईश्वर में आस्था प्रकट की और रुढियों के प्रति विद्रोह किया। यही विद्रोहात्मक प्रवृत्ति कबीर-साहित्य में दिखायी देती है। इन लोगों ने संयमपूर्ण जीवन पर बल दिया। जीवन के प्रति अनास्था और गृहस्थ-जीवन के प्रति अनादर भाव के कारण इनके साहित्य में शुष्कता और नीरसता दिखाई देती है। इसके बावजूद सामाजिक आचार-विचार में स्थिरता और सदाचार की भावना को जाग्रत किया। इसी सुधारवादी खंडनात्मक दृष्टिकोण का कबीर ने अंगीकार किया।

जैन साहित्य : बौद्ध धर्मावलंबियों के समान जन भाषा को अपनाकर जैन धर्मावलंबी लेखकों ने प्राकृत में रचनायें की। महावीर स्वामी ने ईश्वर को सृष्टि का विनायक न मानकर केवल चित्त और आनंद का स्रोत माना है। इनके विचारानुसार हर व्यक्ति अपनी साधना से ईश्वर पद प्राप्त कर सकता है। इन लोगों ने भी नाथ पंथियों के समान आचार-विचार पर बल दिया और अहिंसा, दया, करूणा तथा त्याग का प्रचार किया। इंद्रियों के अनुशासन के लिए इन्होंने कठिन तपस्या की प्राथमिकता प्रदान की। बौद्धों की तरह कर्मकांड को इन्होंने भी अनावश्यक घोषित किया। जैन मुनियों की अधिकांश रचनायें धार्मिक हैं। जिनमें अहिंसा, विरक्ति, साधना, तपस्या इत्यादि सिद्धांतों का निरुपण किया गयां है। कुछ लोगोंने व्याकरण

इत्यादी की भी रचना की कुछ जैन कवियों ने रामायण और महाभारत की कथाओं और चरित्रों को भी अपनी धार्मिक मान्यता के अनुरूप प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

स्वयंभू ने आठवी शताब्दी में 'पउम चरिउ' (पद्म चरित) 'रिट्ठजेमी चरिउ' (अरिष्ठ नेमि चरित - हरिवंश पुराण) प्रबंध और छंदशास्त्र 'स्वयंभू छन्दस' की रचना की। इन्होंने 'नागकुमार चरित' भी लिखा। इन्हे अपभ्रंश का वाल्मीकि माना जाता है। इनकी रामायण में पाँच काण्ड है और कांडों का नामकरण वाल्मीकि के अनुरूप किया है। अरण्य और किष्किंधा कांड को छोडकर कुछ नए प्रसंग भी जोड दिए हैं। 'पद् चरिउ' इनकी सबसे उत्कृष्ट रचना है। इसके प्रसंग बहुन मार्मिक और चरित्र चित्रण बहुत सुंदर हुआ है। 'पद् चरिउ' में सीता का और 'अरिष्टनेमि चरिउ' में द्रौपदी के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है।

दसवीं शताब्दी में पुष्पदंत नामक कवि हुए जिन्होंने महापुराण की रचना की, जिसके अरि-खंड में तीर्थंकर ऋषभदेव और 23 अन्य तीर्थंकरों तथा उस समय के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के चरित्र हैं। इन्होंने 'नागगकुमार चरित' और 'यशोधरा चरित' खंडकाव्यों की रचना की। इन्होंने काफी उलट फेर कर रामकथा लिखी। इन्हें अपभ्रंश के व्यास की उपाधि दी जाती है। स्वयंभू और पुष्पदंत दरबारी कवि होने के कारण इनकी भाषा और शैली संगीत के अनुरूप थी। इस काल में कुछेक ने लोककथाओं के आधार पर धार्मिक शिक्षाप्रद ग्रंथों का सृजन लिया। धनपाल कृत 'भविष्यत कथा' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। जोइन्दु ने 'परमात्मा प्रकाश' और रामसिंह ने 'पाहुड दोहा' की रचना की। धर्मसूरिने 'जम्बू स्वामी रास' लिखा और हेमचंद्र ने 'शब्दानुशासन' जिसमें श्रृंगार का मनोरम चित्रण है।

जैन साहित्य का प्रभाव : सिद्ध और नाथ साहित्य के समान जैन साहित्य ने भी हिंदी साहित्य को प्रभावित किया। इस साहित्य में महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, रुपक, कथा-साहित्य, जीवन-चरित्र सभी कुछ लिखकर गद्य को रचना का माध्यम बनाया गया। हिंदी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों के उद्भव और विकास को समझने के लिए सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य का परिचय प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।

● स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न- 2

1)	राउलवेल	( )	अ) आर्य भाषाओं के नमुने
2)	वर्णरत्नाकर	( )	ब) दामोदर शर्मा
3)	उक्ति-व्यक्ति प्रकरण	( )	क) ज्योतिरीश्वर ठाकूर
4)	आदिकालीन गद्य साहित्य	( )	ड) रोडा कवि

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर तीन या चार वाक्यों में लिखिए।

1) काल विभाजन आवश्यक क्यों हैं?

2) हिंदी साहित्येतिहास का काल-विभाजन करनेवाले विद्वान कौन-कौन हैं?

3) जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का काल-विभजन किस प्रकार किया है?

4) आ. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का काल-विभाजन किस प्रकार किया है?

5) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने साहित्येतिहास का वर्गीकरण किस प्रकार किया है

1.2.4 संक्रांतिकाल : नामकरण, महत्त्व एवं कवि :

हिंदी साहित्य का आदिकाल एक संक्रांति-काल है। जिसमें विविध प्रकार के साहित्य का निर्माण हुआ। प्रस्तुत काल साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा काव्य-रुपों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रहा है। इस काल की तत्कालीन परिस्थितियाँ संक्रांतिकालीन साहित्य को प्रभावित करती रही हैं। आदिकालीन राजनीतिक परिवेश अत्यंत अशांत और संघर्षमय था। यवनों के बार-बार आक्रमणों से केंद्रीय सत्ता क्षीण हो गई थी। राजा आत्मकेंद्रित हो जाने के कारण विदेशी आक्रमणकारियों से सामना करने में असमर्थ हो गये थे। तत्कालीन मुस्लिम प्रजा विशेष सुखी नहीं थी। राजगद्दी हाथियाने की लालसा प्रबल होने के कारण खून की नदियॉ बहायी जाती थी। जर-जोरु-जमीन के लिए युद्ध करना रोजमर्रा की घटना थी। जहाँ राजनीतिक परिस्थितियाँ इस प्रकार थी वहाँ तत्कालीन भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। ब्राह्मणों-क्षत्रियों में होनेवाला जाति-उपजातियों का विभाजन वैश्यों और शूद्रों में भी हो गया था।

राजनीतिक और सामाजिक परिवेश जहाँ इस प्रकार का था। वहाँ धार्मिक परिवेश के अच्छे होने के कही भी आसार दिखायी नहीं देते। ब्राह्मण, जैन, शैव, वैष्णव इन सभी संप्रदायों में परस्पर स्पर्धा एवम् कटूता थी। जैन, वैष्णव दोनों ने समन्वय का प्रयत्न किया। जिससे भारतीय जनमानस में सभी धार्मिक संप्रदायों के प्रति समन्वय की भावना निर्माण हो गई थी। लेकिन हिंदु समाज में पंडित-पुजारी और मुस्लिम धर्मियों में मुल्ला-मौलवियों के धर्म ने नाम पर लोगों के बीच खाईयाँ पाट दी। सांस्कृतिक-साहित्यिक दृष्टि से यह देश समृद्ध होने के बावजूद विदेशी आक्रमणों के कारण दिन-ब-दिन क्षीण होता गया। केवल देश ही नहीं संस्कृति का भी ह्रास होने लगा था। हाँलाकि हिंदु-मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दूसरे के नजदीक आने के कारण चित्रकला, स्थापत्य, संगीत जैसी कलाओं में समन्वय होता गया। धीरे-धीरे सामंती प्रवृत्ति नष्ट होती गई। जिससे उपेक्षित और दलित सामान्यजन सर्तक होकर एक नये वातावरण की ओर आगे बढे। इन सबका परिपाक भक्ति आंदोलन का उदय हुआ। विद्यापति इस नव जागरण के कवि माने जाते हैं।

इस काल में दो प्रकार के साहित्यिक प्रयत्न प्रमुख हैं - एक तो बौद्ध और नाथ-सिद्धों की, जैन-मुनियों की रुक्ष तथ उपदेश मूलक और हठयोग की महिमा का प्रचार करनेवाली रहस्यमूलक रचनाएँ। दूसरी श्रेणी में चारण कवियों के चरित-काव्य हैं। जिनमें राजस्तुति, युद्ध, विवाह आदि के वर्णन हैं। इन दोनों विशेषताओं को ध्यान में रखकर हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इस काल का नाम देने का प्रयास किया है। आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने अधिकांश वीरगाथाओं के आधारपर 'वीरगाथा काल' नाम दिया। लेकिन उन रचनाओं में से कुछ प्रामाणिक, कुछ अर्धप्रामाणिक, कुछ संदिग्ध रचनाएँ थीं। साथ ही इसी काल में या इसके कुछ पूर्व से ही नाथपंथी, सहजयानी, सिद्धों, जैन मुनियों की रचनाएँ, सिद्धों की वाणी, सामंतो की स्तुतिपरक रचनाओं के आधारपर महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध-सामंत युग' कहा है। लेकिन इस नाम से लौकिक रस की रचनाओं का आभास तक न मिलने के कारण यह नाम भी उपयुक्त नहीं लगता।

कुछ आलोचकों को इस काल का नाम 'आदिकाल' ही सार्थक लगता है। लेकिन आदिकाल कहने से एक भ्रांतिपूर्ण धारणा की सृष्टि होती है। वैसे देखा जाए तो साहित्य की दृष्टि से यह काल बहुत अधिक अपभ्रंश काल का ही विस्तार है पर भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढी हुई भाषा अर्थात हिंदी भाषा और उसके काव्यरुप अंकुरित हुए दिखायी देने हैं। इसलिए इस काल को संक्रांतिकाल कहना ही अधिक समीचीन होगा।

विद्‌यापति इस संक्रमण या संक्रांतिकाल के कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सं. 1425 बिहार के दरभंगा जिले के विसपी गाँव में हुआ था। तिरुहुत के महाराज शिवसिंह के आश्रय में रहते थे। महाराज शिवसिंह और रानी लखिमा देवी उनकी बडी भक्त थी। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में आश्रयदाता शिवसिंह और कीर्तिसिंह की वीरता का प्रभावशाली वर्णन किया है

श्रृंगारिक काव्य–प्रवृत्ति

● **विद्यापति :** (संक्रातिकाल के कवि)

विद्‌यापति मिथिल के जैशोर नामक गाँव के रहने वाले थे। राजा शिवसिंह द्‌वारा 14 वीं शताब्दी ई. में इन्हे 'अभिनव जयदेव' की उपाधि के साथ दान में दिया गया था। अनुमानत: विद्यापति का जन्म 1368 ई. में हुआ था और यह 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक जीवित रहे। 'कीर्तिलता' में उन्होंने स्वयं को कीर्तिसिंह का लेखन–कवि संबोधित किया है। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर ने अपना प्रसिद्‌ध ग्रंथ 'गंगा भक्ति तरंगिनी' मिथिला के महाराजा गणेश्वर की स्मृति में समर्पित किया था। यह तिरहुत के महाराजा शिवसिंह के दरबार में रहते थे। महाराज शिवसिंह के अतिरिक्त रानी लखिमा देवी भी इनमें बडी श्रद्‌धा रखती थी। विद्‌यापति ने 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में अपने आश्रयदाता शिवसिंह और कीर्तिसिंह की वीरता का प्रभावशाली भाषा में गुणगान किया है। संभवत: ऐसा लगता है कि विद्‌यापति अपने ग्राम जैशोर से विद्‌या प्राप्त करने के लिए शिक्षा का प्रसिद्‌ध केंद्र मिथिला गये होंगे। एक प्रतिभासंपन्न कवि होने के नाते मिथिला जाकर शिवसिंह के संपर्क में आकर उनकी कृपा के पात्र बने। जिन्होंने विद्‌यापति को विसपी की जायदाद दी जिससे वे विसपी में आकर रहने लगे।

कुछ विद्‌वान जैसे जार्ज ग्रियर्सन, नगेंद्रनाथ गुप्त और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री मानते हैं, कि विद्‌यापति मूलरूप से मिथिला के ही रहने वाले थे जैशोर गांव से उनका कोई संबंध नहीं था। ये बालकाल से ही शिवसिंह से परिचित थे, बाल मित्र भी थे। शिवसिंह ने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अपने दरबार में इन्हें सम्मानित किया। दूसरी प्रमुख बात यह है कि विद्‌यापति की भाषा भी यह सिद्‌ध करती है कि वे मूलरूप से मिथिला के ही निवासी थे।

● **ग्रंथ रचना :**

विद्‌यापति संस्कृत, अवहट्‌ठ और मैथिली के प्रकांड पंडित होने के कारण इन्ही भाषाओं में उन्होंने काव्य–रचना की है। संस्कृत पर असाधारण अधिकार होने के कारण इनकी अधिकांश रचनाएँ संस्कृत में ही हैं। जैसे 'शैव सर्वस्वसार', 'शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रह', 'भूपरिक्रमा', 'पुरुष–परीक्षा',

'लिखनावली', 'गंगा वाक्यावली', 'दान वाक्यावली', 'विभागसार', 'गया पत्तलक', 'वर्ण कृत्य', 'दुर्गा भक्ति' तरांगिणी' आदि। अवहट्ठ भाषा में 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' तथा मैथिली भाषा में 'पदावली' लिखी'

'कीर्तिलता' में विद्यापति ने अपने आश्रयदाता कीर्तिसिंह के शौर्य का गुणगान किया है। यह ऐतिहासिक काव्य रचना है। आदिकालीन रासों ग्रंथों के समान अनैतिहासिकता इस ग्रंथ में नहीं है। अपने समय के राजा का वर्णन अलंकृत और ओजपूर्ण भाषा एवं शैली में किया है। कवि ने अपने इस काव्य में कहीं भी कल्पना को ऐतिहासिकता पर हावी हो जाने का मौका ही नहीं दिया है। साथ ही न तो तथ्यों को तोडा-मरोडा गया है न घटनाओं तथा नामों को बदला गया है। कवि ने समकालीन संस्कृति, राजनीति, समाज अर्थ-व्यवस्था तथा अन्य परिस्थितियों का सजीव चित्रण किया है। हिंदुओं, मुसलमानों, सामंतों, शहरों, युद्धों इत्यादि के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं। जो जैसा देखा उसे उसी रुप में कवि ने अंकित किया है। कीर्तिसिंह के वीर रुप का भी चित्रण है और जौनपूर का भी चित्रण है और जौनपुर के सुलतान फिरोजशाह के सामने उनका नम्र रुप भी स्पष्ट किया है, जिससे नायक की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना में विद्यापति ने कलात्मक ढंग से छंदो का प्रयोग किया है। साथ परंपरागत रुढियाँ न अपनाते हुए कही भी काल्पनिकता नजर नहीं आती। इस रचना की भाषा में तत्कालीन मैथिली को कवि ने मिश्रित किया है, परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश में रचना नहीं की। विद्यापति ने इस भाषा को अपभ्रंश न कहकर अवहट्ठ भाषा कहा है। 'कीर्तिलता' के गद्य में तत्सम शब्दों की प्रधानता है, पद्य में तद्भव शब्दों की। आदिकाल की प्रामाणिक रचनाओं में 'कीर्तिलता' का अपना विशिष्ट स्थान है। इसकी शैली'पृथ्वीराज-रासो' जैसी है। इसकी रचना भृंग और भृंगी के संवादों के रुप में हुई है। इसमें संस्कृत और प्राकृत के छंदों का प्रयोग है। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' के आरंभ और अंत में छंद तथा भाषा दोनों में संस्कृत छंदो और भाषा का प्रयोग किया है। 'पृथ्वीराज रासो' के समान विद्यापति ने गाहा या गाथा छंद का प्रयोग किया है। साथ ही पद्धरी छंद का प्रयोग भी मिलता है। अपभ्रंश चरित काव्यों की रचना अधिकांशत: पद्धरी छंद में हो जाने के कारण इन काव्यों को 'पद्धदिया बंध' कहा जाने लगा था। 'कीर्तिलता' इसी परंपरा का काव्य है। विद्यापति ने इस ग्रंथ को कथा-काव्य न कहकर 'कहाणी' कहा है। इसमें गद्य होने के कारण इसे कथाकाव्य की श्रेणी में न रखकर विद्यापति ने इसे 'कहाणी' कहा।

● **पदावली :**

पदावली में विद्यापति ने राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं का गेय पदों में मनोहारी चित्रण किया है। संस्कृत कवि जयदेव की रचना 'गीत गोविंद' को आदर्श मानकर पदावली की रचना की है। 'पदावली' की कविताएँ पूर्ण रप से श्रृंगारिक है और उनमें कविने श्रृंगार के संयोग तथा वियोग, दोनों पक्षों को उभारा है। परंतु कवि की तन्मयता संयोगपक्ष में जितनी दिखाई देती है उतनी वियोग पक्ष में नहीं। इसलिए संयोग पक्ष का ही प्राधान्य हो गया है। कवि ने कृष्ण और राधा का बहुत व्यापक और सुंदर चित्रण किया है। परंतु इस चित्रण में कवि की दृष्टि जितनी नायक और नायिका के बाह्यरुप को निखारने में रही है उतनी अंतरभावों की

अभिव्यक्ति की दिशा में नहीं रही। फलस्वरूप विद्यापति का नायक चंचल और सौंदर्यप्रेमी है तो नायिका यौवन और रुप की साक्षात् प्रतिमा।

विद्यापति यौवन के दिनों को ही गौरव के दिन मानते हैं। उनके प्रेमपूर्ण संसार में असुंदर, अशोभनीय नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उनकी कोकिलाओं से कुंजित और सुगंधित वनों-उपवनों में काँटे विहिन फूल खिलते हैं, कलियाँ मुस्कुराती हैं, राधा वहाँ विहार करती है, उसके बदन से यौवन फूट पडता है, उसका रुप चारों दिशाओं में बिखरा पडा है, वहाँ सब कुछ सुंदर ही सुंदर है, मोहक ही मोहक है। विद्यापति की राधा कृष्णमय है और कृष्ण राधामय। राधाकृष्ण का यह एकीकरण उद्दाम प्रेम की प्रवृत्ति हैं, इसमें भक्ति आदि व्यर्थ भावना की खोज करना निरर्थक है।

पदावली का प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है और उसमें पाठक के मर्म को छूने की क्षमता है। इनकी कविता में उन्माद, अनुराग और वषीकरण की व्यापक क्षमता है। इन्होंने विरह वर्णन में परंपरागत वर्णन-शैली को अपनाया है। बारह-मासा भी प्रस्तुत किया है। वय-संधि, अभिसार और सद्य:स्नाता के चित्र प्रस्तुत करने में इन्हें विशेष सफलता मिली है। बहुत से पदों में अलग-अलग प्रकार से नख-शिख वर्णन इन्होंने किया है । विद्यापति सौंदर्य के कवि है और सौंदर्य ही उनका दर्शन है, दृष्टि है। विद्यापति की राधा सौंदर्य की साकार प्रतिमा है जिसकी आभा से पूरा विश्व आलोकित होता है -

'जहाँ-जहाँ पग जुग धरहिं, तंहि-तंहि सरोरुह भरई।

जहाँ-जहाँ झलक अंग, तंहि-तंहि बिजुरि तरंग।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र रुप में चित्रण नहीं है। प्रकृति चित्रण उद्दीपन रुप में है। उन्होंने प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का बिंबग्राही वर्णन किया है। कवि प्रकृति को मानवीय रुप में देखता है। बसंत को बाल, तरूण, दूल्हा, राजा इत्यादि रुपों में चित्रित किया है। पावस ऋतु की भयंकरता का चित्रण इस प्रकार किया है -

'आएल पावस निबिड अंधकार

सधन नीर बरसय जलधार'

कवि ने बारह मासा की पद्धति का प्रयोग भी बिरह वर्णन में किया है। आषाढ से बारहमासा का आरंभ होता है।

मास असाढ उनत नव मेघ

पिया विसलेस रहओं निरमेघ

इस प्रकार कविने प्रकृति को अनेक रुपों में देखा है जहाँ सुख में प्रकृति सुखमय और दु:ख में दु:खमय हो जाती है।

विद्‌यापति के गीतों में अद्‌भूत संगीतात्मकता है जो गेय अर्थात गाये जाने के योग्य हैं। ये गीत लयात्मक हैं। इन गीतों में मानव मन की भावनाओं का व्यापक चित्रण है। कुछ गीतों में लोक-तत्व की प्रधानता हैं। विद्‌यापति स्वयं एक बहुत बडे संगीतज्ञ होने के कारण इन्होंने गीतिकाव्य को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान किया है। उनकी जैसी सरलता, संगीतात्मकता अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। इनके गीतों ने व्यापक जनजीवन में प्रवेश प्राप्त किया और भक्तजनों ने भक्त जनोंने उन्हे भक्ति के क्षेत्र में अपनाया। ये एक उच्च कोटि के कलाकार के रुप में हमारे सामने आते हैं। रुप पारखी और चितेरे कवि विद्‌यापति ने अपने काव्य में माधुर्य, तन्मयता और मस्ती का सामंजस्य स्थापित किया है। इनकी भाषा, शब्द योजना, अलंकार योजना और भावाभिव्यक्ति सभी पर इनका समान अधिकार था।

विद्‌यापति के विषय में मुख्य रुप से दो भ्रांतियां विद्‌वानों के बीच रही है, एक है उनके बंगला अथवा हिंदी कवि होने के विषय में और दूसरी उनके भक्त कवि होने अथवा न होने के विषय में। विद्‌यापति के संबंध में वे हिंदी कवि है या बंगाली कवि यह प्रश्न विवादास्पद रहा। बंगाली विद्‌वान विद्‌यापति को बंगला कवि और हिंदी विद्‌वान हिंदी कवि मानते हैं। सबसे पहले जार्ज ग्रियर्सन ने पदावली की भाषा को हिंदी कहकर बंगला को हिंदी की उपभाषा माना लेकिन यह बात बंगाली विद्‌वानों ने अस्वीकार की। रामकृष्ण मुखर्जी ने विद्‌यापति की भाषा हिंदी स्वीकार की पर बंगला का उद्‌गम मैथिली से न मानकर मागधी से माना। सन 1859 ई.में रामकृष्ण मखोपाध्याय ने पूर्णरूप से यह सिद्‌ध किया कि विद्‌यापति बंगला के कवि न होकर मैथिल के कवि है जो हिंदी की एक उपभाषा है। जिससे यह विवाद समाप्त हुआ। विद्‌यापति को बंगला कवि मानने का पुष्ट कारण यह था कि उन्होंने पदावली की रचना बंगला कवि जयदेव के गीतगोविंद के अनुसार की थी। इन दोनों रचनाओं के विषय और शैली में साम्य है। दूसरा प्रमुख कारण चैतन्य महाप्रभु पदों का मुक्त कंठ से गान करते थे। इसलिए बंगाल में विद्यापति की रचनाएँ लोकप्रिय हुई। उस समय मिथिला में संस्कृत साहित्य की ही मान्यता अधिक होने के कारण इस मान्य को प्रसिद्धी नहीं मिल सकी। इसप्रकार मैथिल प्रदेश में उपेक्षित और बंगाल में सम्मानित होने के कारण इस रचना को बंगला की रचना माना जाने लगा। इसलिए उन्हे बंगला कवि घोषित किया गया । परंतु भाषा विज्ञान पंडितोंने इस मान्यता को खारिज कर उनकी रचना को उनके मूल भाषा क्षेत्र में लौटा दिया। चाहे जो हो हिंदी के आदिकालीन कवियों में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। 'पदावली' 'कीर्तिलता' के रुप में प्रामाणिक ग्रंथों का सृजन कर समकालीन राजनीति, समाज और जन-जीवन का निखरा हुआ रुप प्रस्तुत किया है।

विद्‌यापति भक्त कवि है या शृंगारी कवि यह दूसरा विवादास्पद प्रश्न उनके संदर्भ में उठाया गया। कुछ विद्‌वान उन्हे भक्त मानने लगे तो दूसरों ने उनकी रचना को श्रृंगारिक काव्य की कोटि में रखा। विद्‌यापति ने अपने काव्य में नायक-नायिका के रुप में राधा और कृष्ण को स्थान देकर श्रृंगारपूर्ण रचना की। इनके पद गेय हेने कारण चैतन्य संप्रदाय द्‌वारा अपने मत के प्रचारार्थ कीर्तनों में अपनाया जाने के कारण ये पद भक्तिरंग में रंगे हुए प्रतीत होने लगे जिससे श्रोताओं तथा पाठकों की यही धारणा बनी कि यह रचना भक्तिभावना पूर्ण है। इसी आधारपर विद्यापति को भक्त कवि माना जाने लगा इन्हें भक्त कवियों की कोटि में रखा जाने लगा। इसलिए जार्ज ग्रियर्सन ने भी विद्‌यापति के पदों को 'भजन' कहा अर्थात् भगवान की

भक्ति में लिखे गये गीत। साथ ही सहजिया संप्रदाय के भक्तों ने विद्‌यापति को सात रसिक भक्तों में सर्वोच्च आसन पर आरुढ कर दिया और इन्हें भक्त कवि मानकर इनके पदों का अपनी भक्ति के प्रचार-क्षेत्र में मुक्त कंठ से गान किया। इन्ही आधारों को ग्रहण कर प्रो. विपिन बिहारी, श्यामसुंदर दास, महामहोपाध्याय, हरप्रसाद शास्त्री आदियों ने इन्हें भक्त कवियों की कोटि में स्थान दे दिया। इनमें यह भावना दृढ हो गई कि ये भक्त कवि थे और इन्होंने राधाकृष्ण को लेकर जो श्रृंगार पूर्ण कविता की वह भक्ति भावना से पूर्ण है।

इसके बाद पदावली और उनके संस्कृत ग्रंथों का भी अवलोकन करनेपर इस प्रकार का तथ्य सामने आया कि वास्तव में विद्‌यापति वैष्णव न होकर शैव थे। यह उनके संस्कृत ग्रंथों से स्पष्ट हो जाता है। विद्‌यापति को पदावली में शक्तिपूजा पर विशेष बल देते हुए देखकर कुछ विद्वान उन्हें शाक्त मानने लगे कुछ किंवदंतियो के आधार पर उन्हें शैव माना जाने लगा। वे जिन राजाओं के आश्रित रहे, वे भी शैव ही थे। 'पुरुष परीक्षा' ग्रंथ में विद्‌यापति ने शिव की ही उपासना कराई और महेश-वाणी की रचना की। आज भी यह मिथिल प्रदेश के शिव मंदिरों में गाई जाती है। उनके शैव होने का सबसे सबल प्रमाण यह है कि इनकी मृत्यू के पश्चात् जिस स्थान पर इनका दाह-संस्कार किया गया वहाँ आज भी शिवमंदिर बना हुआ है। यह मंदिर ही घोषणा करता है कि विद्‌यापति वैष्णव न होकर शैव थे। पदावली में अपने राधा-कृष्ण को लेकर जिन पदों की रचना की उसमें वैष्णव भक्ति की भावना न होकर पूर्ण रुपसे श्रृंगारिक अभिव्यक्ति ही थी। इसलिए इन्होंने शिव का चित्रण विशेष आलंकारिक और सन्मानपूर्व शब्दावली में किया है। राधाकृष्ण को लेकर जिन पदों की रचना की गई है उनमें अलौकिक या भक्तिभावनापूर्ण शब्दावली का अभाव है। उनका स्तर साधारण और लौकिक श्रृंगार पूर्ण है। इन श्रृंगारिक पदों की रचना कवि ने अपने आश्रयदाताओं के रिझाने के लिए, प्रसन्न करने के लिए, मनोविनोद के लिए की थी। इन पदों में कहीं कही उनके आश्रयदाता राजाओं और रानियों के नाम भी दिये गये हैं। इनके पद स्पष्ट रुप से श्रृंगारिक हैं। इनमें से कोई सांकेतिक अर्थ निकल नहीं पाता।

इससे यही बात साबित हो जाती है कि पदावली की रचना न तो भक्तिपूर्ण है और न ही इसमें कोई रहस्य है। इस रचना में कविने श्रृंगारिक अभिव्यक्ति की है, परंतु जो चित्रण विद्‌यापति ने प्रस्तुत किए हैं, वे आँखों के सामने चल चित्रावली के समान लगते हैं। राधा का रुप चित्रण मनोहारी बन पडा है। इनकी कविता को भक्ति की सीमा में सीमित करनेका व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए और नही रहस्य खोजना चाहिए।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पदावली जिसमें इन्होंने राधाकृष्ण की प्रणय-लीलाओं का बडा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। इनकी पदावली की भाषा बंगला न होकर मैथिली है। ये कृष्णोपासक न होकर शैव थे। अत: भक्तिभाव से प्रेरित होकर इन्होंने शिव-संबंधी रचनाएँ भी लिखी हैं। जयदेव के 'गीत गोविंद' के आधारपर राधाकृष्ण को नायक-नायिका मानकर विद्‌यापति ने गीतों की रचना की। इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। इसीकारण इनके गीत भी जयदेव के समान अत्याधिक सुकोमल और भावपूर्ण बन पडे हैं।

राधाकृष्ण के विरह-मिलन का तथा नख-शिख सौंदर्य का सरल सुंदर और स्वाभाविक चित्रण हिंदी में सर्वप्रथम विद्यापति ने किया है।

विद्यापति ने पदावली, कीर्तिपताका, कीर्तिलता के साथ साथ संस्कृत में शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार-प्रमाणभूत पुराण-संग्रह, भूपरिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, गंगा-वाक्यावली, दान-व्याख्यावली, विभाग-सार, गयापत्तलक, वर्षकृत्य और दुर्गाभक्ति तरंगिणी आदि 11 रचनाएँ लिखी। विद्याति वस्तुत: संक्रमण काल के कवि थे क्योंकि एक और उनकी रचनायें कीर्तिलता, कीर्तिपताका, चारणकाव्य की वीरगाथा काल की याद दिलाती है। पदावली द्वारा प्रणय और श्रृंगार तथा भक्ति रस का उद्घाटन किया है। संस्कृत रचनाओं द्वारा उनका भक्तिभाव झलकता है। तत्कालीन समाज के दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार विद्यापति में हमें एक साथ बीर कवि, भक्त कवि और श्रृंगारी कवि के दर्शन हो जाते हैं।

1.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

अधुनातन - अत्याधुनिक

दृष्टिगोचर होना - दिखाई देना

युग्म - जोड

शिलांकित - पत्थर पर अंकित

चंपू - गद्य-पद्य मिश्रित रचना

पाट देना - खोद देना

1.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर -1

1) चित्तवृत्ति

2) इतिहास

3) सामग्री-संकलन

4) तथ्यों

5) वैज्ञनिक

स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर -2

अ) 1) - (ड)

2) - (क)

3) - (ब)

4) - (अ)

आ) 1) समय साहित्य का अध्ययन करने के लिए काल विभाजन करना आवश्यक हो जाता है। जिससे साहित्य का अध्ययन करने, उसे सही ढंग से समझने, उसमें सुव्यवस्था लाने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती और इसलिए साहित्य का विभिन्न कालखंडों में विभाजन किया जाता है।

2) हिंदी साहित्येतिहास के काल-विभाजन का प्रयास सर्वप्रथम जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया। इसके पश्चात मिश्रबंधुओं, आ. रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदरदास, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. नगेंद्र, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त आद विद्वानों ने काल-विभाजन के प्रयास किए हैं।

3) जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा किया गया काल-विभाजन - चारण काल, 15 शती का धार्मिक पुनर्जागरण, जायसी की प्रेमकविता, कृष्ण संप्रदाय, मुगल दरबार, तुलसीदास, प्रेम काव्य, तुलसीदास के अन्य परवर्ती, 18 वीं शती, कंपनी के शासन में हिंदुस्तान, विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान ।

4) आ. राचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया काल-विभाजन-आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल, आधुनिक काल। इसी को वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, गद्यकाल आदि दोहरे नाम देकर प्रत्येक काल की विशिष्ट प्रवृत्ति भी रेखांकित की है।

6) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आ. शुक्ल के काल-विभाजन को स्वीकार कर केवल संवत के स्थान पर इसवी सन का प्रयोग कर आदिकाल, पूर्वमध्यकाल, उत्तर मध्यकाल, आधुनिक काल इस प्रकार काल विभाजन किया है।

1.5 सारांश :

'साहित्येतिहास' दो शब्दों के युग्म से बना है। 'साहित्य' और 'इतिहास' - साहित्य का इतिहास 'साहित्येतिहास' कहलाता है। जिसमें साहित्य की विकसित परंपरा का उद्भव से लेकर आज तक की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। इसका उद्देश्य ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य को वस्तु, कला पक्ष, भाव पक्ष, चेतना तथा लक्ष्य की दृष्टिसे स्पष्ट करना है। साहित्य का बहुविध विकास, साहित्य में अभिव्यक्त मानव जीवन की जटिलता, ऐतिहासिक तथ्यों की खोज और उनके सम्यक अनुशीलन के लिए साहित्येतिहास की आवश्यकता होती है। साहित्य की विभिन्न रचनाएँ, रचनाकार, साहित्य सर्जन के प्रेरक तत्त्व, युगीन चेतना युगीन परिवेश, युगीन प्रवृत्तियों से परिचित कराने का काम साहित्येतिहास करता है। रचना और रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता को वर्तमान की कसौटी पर कसना साहित्येतिहास का प्रमुख उद्देश्य होता है। साहित्येतिहास लेखन का कार्य एक वैज्ञानिक शोध के समान है। जिसके लिए सामग्री संकलन, काल-विभान एवं नामकरण, एवं मूल्यांकन आदि प्रमुख चरणों का होना आवश्यक माना गया है।

साहित्य की विभिन्न धाराओं के अध्ययन के लिए उसे विभिन्न कालखंडो में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है। काल-विभाजन से साहित्येतिहास की विभिन्न परिस्थितियाँ, घटनाएँ, प्रवृत्तियाँ, साहित्य में अंतर्निहित चेतना का क्रमिक विकास, परंपराओं का उत्थान-पतन, विभिन्न-परिवर्तन आदि का पता चलता है। साहित्य की विभिन्न धाराओं के अध्ययन के लिए उसे विभिन्न कालखंडों में विभाजित करना आवश्यक

हो जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास जॉर्ज ग्रियर्सन ने लिया। इसके पश्चात मिश्रबंधुओं, आ. रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदरदास, आ. हजारी प्रसाद, द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. नगेंद्र, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त आदि विद्वानोंने भी काल-विभाजन के प्रयास किए है।

अदिकाल में पद्य के साथ-साथ गद्य भी रचा गया। आदिकालीन गद्य रचनाओं में 'राउरवेल', 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण', 'वर्ण रत्नाकर', आदि रचनाएँ प्रमुख रही हैं। 'राउरवेल', एक शिलांकित कृति है जिसमें 'राउल' नामक नायिका का नखशिख वर्णन है। यह एक चंपूकाव्य है। 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' में बनारस के आसपास की संस्कृति और युगीन प्रचलित काव्य-रुपों का परिचय दिया गया है। यह एक व्याकरण-ग्रंथ है। 'वर्णरत्नाकर' एक शब्दकोश के समान है।

हिंदी साहित्य का आदिकाल एक संक्रातिकाल हैं जिसमें विविध प्रकार के साहित्य का निर्माण हुआ। आदिकालीन राजनीतिक परिवेश अत्यंत अशांत और संघर्षमय था। तत्कालीन भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था। सांस्कृतिक-साहित्यिक दृष्टि से देश समृद्ध होने के बावजूद विदेशी आक्रमणों के कारण क्षीण होता गया। सामान्य जनता भक्ति की ओर आकर्षित हुई। इस काल को आदिकाल कहने से भ्रांतिपूर्ण धारणा की सृष्टि होती है। अपभ्रंश काल का विस्तार, परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढी हुई भाषा अर्थात् हिंदी भाषा और उसके काव्यरुप को देखते हुए इस काल को संक्रातिकाल कहना ही अधिक सार्थक लगता है। विद्यापति इसी संक्रांतिकाल के कवि माने जाते है।

1.6 स्वाध्याय :

1) साहित्येतिहास की आवश्यकता एवं महत्त्व बताकर साहित्येतिहास लेखन के विविध प्रयास विशद कीजिए।
2) हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन एवं प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।
3) आदिकालीन गद्य साहित्य निरुपित कीजिए।
4) 'युगीन विषम परिस्थितियों से उपर उठे हुए विद्यापति संक्रमण कालीन कवि है।' - स्पष्ट कीजिए।

1.7 क्षेत्रीय कार्य :

1. प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावजों की सूची तैयार कीजिए।
2. ऐतिहासिक साधनों की सूची तैयार कीजिए।

1.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) डॉ. गुप्त गणपति चंद्र, हिंदी साहित्येतिहास: परंपरागत दृष्टिकोण एवं नये सिद्धांत, अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्युटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1989

2) आ. द्विवेदी हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल संस्करण 1952

3) डॉ. खंडेलवाल जयकिशन प्रसाद, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सप्तम संस्करण, 1969

4) डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973

5) डॉ. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, इकतीसवां संस्करण, सं. 2053 वि.

❑❑❑

इकाई–2
पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) निर्गुण भक्ति काव्यधारा

अनुक्रम :

2.0 उद्‌देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय–विवेचन

2.2.1 भक्तिकाल की पृष्ठभूमी सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक।

2.2.2 निर्गुण भक्ति काव्यधाराओं (ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी) का सैद्‌धांतिक परिचय।

2.2.3 निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख संत कवि तथा रचनाएँ।

2.2.4 निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख सूफी कवि तथा रचनाएँ।

2.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

2.5 सारांश

2.6 स्वाध्याय

2.7 क्षेत्रीय कार्य

2.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप –

- मध्यकालीन साहित्य के युगीन परिवेश से परिचय कर पाएंगे।
- मध्यकालीन विविध काव्यधाराओं का आकलन कर पाएंगे।
- मध्यकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।
- मध्यकालीन रचनाओं तथा उनके काव्यरुपों, शैलियों का विवेचन कर पाएंगे।

2.1 प्रस्तावना :

हमने पहली इकाई में साहित्येतिहास की आवश्यकता, महत्त्व और लेखन के विविध प्रयास, हिंदी साहित्येतिहास का काल विभाजन और प्रवृत्तियाँ, आदिकालीन गद्य साहित्य, संक्राति काल का नामकरण,

महत्त्व और कवि आदि का अध्ययन किया। इस बात से परिचित हो गए कि प्रत्येक युग में साहित्य चेतना परिवर्तित एवं विकसित होने के कारण साहित्येतिहास का पुनर्लेखन करना पडता है। सामग्री संकलन, काल-विभाजन एवं नामकरण और मूल्यांकन आदि सोपानों से गुजरने के बाद ही साहित्येतिहास लेखन अधिकाधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं प्रामाणिक बन पडता है। साथ ही समग्र साहित्य का अध्ययन करने के लिए काल विभाजन करना आवश्यक हो जाता है। साहित्य का बहुविध विकास, साहित्य में अभिव्यक्त मानव जीवन की जटिलता, ऐतिहासिक तथ्यों की खोज, उनके सम्यक अनुशीलन के लिए साहित्येतिहास की आवश्यकता होती है। हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं। आदिकाल में पद्य के साथ-साथ गद्य में भी साहित्य रचना प्राप्त होती है। इनमें अधिकांश ऐसे ग्रंथ मिलते हैं जिनमें गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग मिलता है।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर अब हम दूसरी इकाई में भक्तिकाल की पृष्ठभूमि 'पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) निर्गुण भक्ति काव्यधारा' विषय का अध्ययन करेंगे। अध्ययन के विषय होंगे - निर्गुण भक्ति काव्यधाराओं-ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी का सैद्धांतिक अध्ययन से परिचित होकर निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख संत कवि तथा उनकी रचनाएँ, निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख सूफी कवि तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन करेंगे।

आइए, अब हम पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) निर्गुण भक्ति काव्यधारा के स्वरूप का अध्ययन करना प्रारंभ करते हैं। इसके साथ ही निर्धारित उद्देश्यों को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे।

2.2 विषय-विवेचन :

2.2.1 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि-सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक

भक्तिकाल पृष्ठभूमि :

'भक्तिकाल' हिंदी साहित्य के इतिहास का सुवर्ण युग माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भक्तिकाल का समय वि.सं. 1375 से वि.सं. 1700 तक माना है। कालखंड के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद मिलते हैं परंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिए गए कालखंडों के समय को अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार किया है। 'भक्ति' की प्रमुख प्रवृत्ति को देखकर यह नामकरण किया गया और सभी ने इस नामकरण को स्वीकार किया है। तत्कालीन कालखंड में ङ्गभक्तिफ केवल ईश्वर की उपासना का मार्ग नहीं, तो यह एक जन आंदोलन है। इस आंदोलन के प्रवर्तक रामानंद जी रहें हैं।

अत: यह प्रश्न निर्माण होता है कि ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ निर्माण हुई कि भक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ। इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि मुस्लिम शासकों का राज्य स्थापित होने के कारण हिंदू जनता में हताशा फैल गई थीं, उसी कारण भक्ति साहित्य के माध्यम से भक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ। उन्हीं के शब्दों में, ''देश में मुसलमानों

का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो गया तब परस्पर लड़नेवाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छायी रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?'' इस पर भी अनेक मत-मतांतर रहें, परंतु इतना जरूर है कि भक्ति आंदोलन तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम है। जिसमें सगुण और निर्गुण दोनों भक्त कवियों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा हैं। अत: प्रस्तुत इकाई में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थिति का अध्ययन करेंगे।

1. भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल में राजनीतिक वातावरण से हमें यह आकलन होता है कि जहाँ राज्य को हड़पने के लिए अपने ही लोग अपनों का खून करते हैं, वहाँ सामाजिक परिस्थिति कैसी हो सकती है। चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शती में हिंदू-मुसलमानों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान किया जाता था। उस समय हिंदू और मुस्लिमों के व्यावहारिक संबंधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को 'हिंदू' कहा। इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजयनगर के राजाओं के पंद्रहवीं शताब्दी वाले शिलालेखों में उपलब्ध है। इसके पूर्व कदाचित इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ था। एक ही परिवार के व्यक्ति कुछ हिंदू बने रहें और कुछ मुसलमान बन गए। उस समय तक हिंदू-मुसलमानों में परस्पर विवाह हो जाते थे किंतु शनै: शनै: जाति-पाति के बंध कठोर होते जा रहे थे। कबीरदास आदि संतों ने इसका विरोध किया और हिंदू-मुसलमान दोनों में धार्मिक दृष्टि से समन्वय करने का प्रयास किया। किंतु सत्य है कि इस युग में हिंदुओं में ऊँच-नीच का भेद आया, पर्दे तथा बालविवाह का प्रचलन हुआ। फलस्वरूप जातियों, उपजातियों की संख्या बढ़ती गयी और उनके बीच के व्यवहारों में आत्मीयता नहीं रही थी। वर्णव्यवस्था में आस्था न रखनेवालों में भी किसी न किसी प्रकार का आपसी भेदभाव बना हुआ था। इन दिनों दास प्रथा भी प्रचलित थी। हम देखते हैं कि प्रारंभिक मुस्लिम सुलतान गुलाम वंश से संबंधित थे। दासप्रथा का जैसा मुस्लिम संगठन देशों में रहा, वैसा भारत में नहीं रहा था। भारत में मुस्लिम सत्ता के कारण दासों की माँग बढ़ गई थी। ''इस काल में मुस्लिम देशों के बाजारों में भारतीय दासों की बिक्री बहुत बड़ी मात्रा में हुई थी। भारत में दास का मूल्य फिरोज तुगलक के काल में आठ टंक था। इस काल में बकरे का मूल्य तीन टंक था। फिरोज अपने मनसबदारों से कर के रूप में दासों की मांग करता था।'' उसके काल में दिल्ली में पचास हजार दास थे। हिंदू कन्याओं में संपन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण कर अमीर लोग अपना मनोरंजन का साधन बनाकर रखते थे। मुहम्मद तुगलक ने चीन के सम्राट के पास भारतीय काफीरों में से एक-एक सौ स्त्री-पुरूषों को सौगात के रूप में भेजा था। इसके साथ ही हिंदू राजाओं का भी अभाव नहीं था। जो मुस्लिम महिलाओं, विशेषत: सय्यद स्त्रियों को दासी के रूप में अपने

यहाँ लाकर नृत्य, गीत की शिक्षा दिलवाये करते थे। अर्थात् तत्कालीन कुछ शासकों में रूप लिप्सा और काम-लिप्सा का अधिपत्य था। वे हिंदुओं के साथ कठोर व्यवहार करते थे। अल्लाउद्दीन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उसने दोआब से हिंदुओं से उपज का 50 प्रतिशत भाग कर के रूप में बड़ी कठोरता से वसूल किया था। मुगल शासक अधिक चतुर और दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने शासन को दृढ़ करने के लिए धार्मिक पक्षपात को दूर कर हिंदुओं को साम्राज्य में ऊँचे- ऊँचे पदों पर नियुक्त किया किंतु औरंगजेब इस परंपरा को बनाए न रख सका और मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना।

इस समय मुस्लिम समाज की अवस्था भी हिंदुओं से भिन्न नहीं थी। आक्रमणकारी मुसलमानों के वंशजों में भी कालांतर में सद्भाव और सहिष्णुता का भाव उदित होने लगा। इस प्रवृत्ति को सूफी साधकों द्वारा आश्रय प्राप्त हुआ। उन दिनों इस्लाम की यह विशेष बात बन गई थी कि तलवार द्वारा आतंक उत्पन्न करने के बाद प्रेम की पट्टी बांध दी जाए। उस समय सुलतान का पद सर्वोपरी था और उमेला तथा उमरा का स्थान में बाद में आता था। इसमें द्वितीय वर्ग के अंतर्गत ईराण, तुर्कस्तान, अफगाणिस्तान तथा अरब के मूल निवासियों के नाम लिए जा सकते हैं। जिन्हें क्रमश: शेख, मुगल, पठान और सैय्यद की संज्ञा दी जाने लगी। इन्हें अपनवालों से बाहर संबंध प्रस्थापित करना स्वीकार नहीं था।

इस युग के आर्थिक विपन्नता का चित्र खींचते हुए तारिखे फिरोजशाही के लेखक बर्नीयर ने लिखा है, ''उन हिंदुओं के पास धन संचित करने के लिए कोई साधन नहीं रह गए थे उनमें अधिकांश को निर्धनता, अभावों और आजीविका के लिए निरंतर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न कोटी का था। करों का सारा भार उन्हीं पर था। राज्यपद उन्हें अप्राप्य थे।'' अर्थात् तत्कालीन समाज में दो वर्ग निर्माण हो गए थे। इस संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, ''दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधा-संपन्न और असुविधाग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग राजा, महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामंत और सेठ-साहूकार आते थें जिनमें मनमाने ढंग से वैभव प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज-कर्मचारी और घरेलु उद्योगों में लगी सामान्य जनता थी जो प्रथा-परंपरा का पालन कर संतोष की साँस ले लिया करती थी।'' अमीर और सामंत सूती, रेशमी अथवा कामिक (कढ़े हुए) वस्त्र पहनते थे एवं बहुमूल्य नगींनों से जड़ी सुनहली अंगुठियाँ धारण करते थे। उनकी पत्नियाँ रत्न जडित सुनहलें कंकण तथा मूँगाजटित केयूर धारण करती थी। रूसी व्यापारी अफनेसियन (1470 ई.) के अनुसार बहमनी राज्यों के सुयोग्य वजीर महमूद गाँवा (1405-81 ई.) के समय शासकीय व्यवस्था प्रशंसनीय थी। भूमि की पैदावार प्रचुर थी, सड़के लुटेरों के आंतक से रहित थी तथा राजधानी भव्य नगर के रूप में खुशहाल दिखायी देती थी। पुर्तगाली बारवासा (1500-16 ई.) के अनुसार जहाँ उमरा और बादशाह महलों में निवास करते थे, वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित मकानों में रहते थे, जिनके सामने थोड़ी खुली जगह भी रहती थी। शेष जनता के भाग्य में झोपड़ियों में रहना बदा था। मुगलों के शासनकाल के विषय में पेलसपार्ट नामक लेखक ने लिखा है कि उस समय समाज के भीतर तीन ऐसे वर्ग- श्रमिक, नौकर, दुकानदार थे जिन्हें न तो स्वेच्छापूर्वक कार्य करने का अवकाश था, न यथेष्ट पारिश्रमिक ही मिला करता था। दुकानदारों को अपनी

चीजें छिपाकर रखनी पड़ती थीं कि कहीं क्रूर राज-कर्मचारियों की दृष्टि न पड़ जाय। तत्कालीन साधु समाज पर भी पाखंड की काली छाया मँडरने लगी थी। गोस्वामी तुलसीदास कृत ङ्कवितावलीफ की निम्नांलिखित पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है-

''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।
जीविका विहिन लोग सीद्‌श्मान सोच बस।
कहँ एक एकन सौं, कहाँ जायें, का करी।।''

इसप्रकार सामंती संस्कृति में समाज शोषक और शोषित वर्ग में बँट गया था। भक्तिकालीन कवियों ने समाज के आर्थिक पहलु का निरूपण नहीं किया। उनका ध्यान धार्मिक और सामाजिक ऊँच-नीच के भेद-भाव पर गया क्योंकि वे स्वयं इन असमानताओं से पीड़ित थे। कबीरदास ने निम्न वर्ग में व्याप्त दीनता की भावना को दूर करके, उन्हें सह अक्खडता का आध्यात्मिक उपदेश दिया। उन्होंने एक समान युग धर्म की स्थापना की और सामाजिक रूढ़ियों का खंडन किया। हिंदू-मुस्लिम एकता का संतों का यह प्रयास मुगलकाल में संगीत, कला आदि क्षेत्रों में दोनों संस्कृतियों के समन्वय में देखा जा सकता है।

उस दौरान समाज अनेक जातियों-उपजातियों में बँट गया था। उनके सामने विभिन्न धर्म थे। हिंदुओं के निम्न जातियाँ अत्याधिक उपेक्षित थीं, इसीलिए या तो वे मुस्लिम धर्म को अपनाती या सिद्धों-नाथों के चमत्कारों में भटक जाती थीं।

इस तरह से राजनीतिक अत्याचारों से पीड़ित-विश्रृंखलित-आतंकित और अंधविश्वासों की विसंगतियों से भरे सामाजिक परिवेश का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव भक्तिकालीन साहित्य पर पड़ा है। कबीर, सूर, तुलसी ने अपने-अपने ढंग से इस परिवेश से संघर्ष किया है, जिसके प्रमाण उनकी रचनाओं में देखे जा सकते हैं। भक्ति-आंदोलन के गतिशील प्रस्फुटन में इस सामाजिक-राजनीतिक परिवेश के प्रतिक्रियात्मक योगदान को विद्वान भलेही अस्वीकार करते हों, भक्तिकालीन साहित्य पर पड़े इसके प्रभाव को नकार नहीं सकते।

२. भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ :

राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन अर्थात् तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का अध्ययन करना। जिसमें तत्कालीन शासन-व्यवस्था तथा उनकी शासन नीति का अध्ययन समाविष्ट कर सकते हैं। इस दृष्टि से भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थिति का जब अध्ययन करते हैं, तब एक बात समझ में आती है कि राजनीतिक दृष्टि से यह काल विक्षुब्ध, अशांत और संघर्षमय काल था। कारण 10 वीं- 11 वीं शताब्दी के लगभग विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत पर अपने आक्रमण प्रारंभ किए थे। भक्तिकाल तक आते-आते लूट का प्रमाण बढ़ गया था। इस कालखंड में दिल्ली पर जिन राजवंशों ने राज्य किया उनमें 1. गुलाम वंश (1206-1290 ई.), 2. खिलजी वंश (1290-1320 ई.), ३. तुगलक वंश (1320-1414 ई.), 4. सैयद वंश (1414-1451 ई.), 5. लोदी वंश (1451-1526 ई.) और ६. मुगल वंश (1526-1757 ई.) प्रमुख हैं। मुगल वंश के बाबर, हुआयुँ, अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने राज्य किया।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के राजनीतिक इतिहास की कहानी अलाउद्दीन खिलजी (1295 ई.) से प्रारंभ होती है। उसने उत्तर भारत के बाद 'दक्षिण-विजय' का अभियान प्रारंभ किया और दूर-दूर तक अनेक राजवंशों को परास्त किया। यदि वह राजपूताने का दक्षिण भाग जीत लेता तो संपूर्ण उत्तर पथ और दक्षिण पथ उसका अधिकार हो जाता। पर राणा हम्मीर ने उसके स्वप्न को पूरा होने न दिया। उसके बाद मुहम्मद तुगलक (1325-1351 ई.) ने दक्षिण पर अधिपत्य का प्रयास किया। पर उसे भी अभीष्ट सफलता नहीं मिली, अपितु हुआ उसके विपरित ही। उसके शासन को दुर्बल पाकर अनेक मुस्लिम सुबेदार गुजरात, मालवा और जौनपुर आदि में स्वतंत्र हो गए। इसी समय मध्य एशिया के बादशाह तैमूरलंग ने दिल्ली पर आक्रमण (1398 ई.) किया। उसने दिल्ली को बूरी तरह लूटा। परिणाम यह हुआ कि तुगलक वंश के अंतिम बादशाह सुलतान महमूद शाह के मृत्यु के बाद 1412 ई. में सैयद वंश का खिज्र खाँ दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इस राजवंश का शासन 1411 ई. तक रहा। उसके चार शासकों में कोई भी उल्लेखनीय न हुआ। स्वतंत्र हुए सरदारों में जौनपुर के शर्की सुलतानों में इब्राहीम शाह (1402-1436) का नाम उल्लेख योग्य है। इसने जौनपुर की सीमा कालपी, कन्नौज, बुलंदशहर और संभल तक पहुँचा दी। उसने जौनपुर के प्रसिद्ध अटला मस्जिद का निर्माण कराया। नगर को कला, साहित्य और संस्कृति का केंद्र बना दिया। गुजरात दूसरा स्वतंत्र हुआ राज्य था। सन् 1401 ई. में सुबेदार जफर खाँ ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। यहाँ का वास्तविक शासक अहमदशाह हुआ, जिसने अहमदाबाद बसाया। इसी का पोता अहमद शाह ङ्गमहमूद बघरीफ नाम से मशहूर हुआ। यह इतना पेटू था कि जलपान के लिए एक प्याला शहद, एक प्याला घी और डेढ़ सुनहले केले लिया करता था। सैयद वंश के बाद लोदी वंश दिल्ली की गद्दी पर बैठा। बहलोल लोदी (1479 ई.) के समान उसका लड़का सिकंदर लोदी (1488-1517 ई.) भी वीर और प्रतापी हुआ। सोलहवीं सदी के प्रारंभ (1523 ई.) में जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो लोदी वंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और राजपूताने में राणा सांगा का उदय हुआ। उसने अपने राज्य की सीमा आगरे तक बढ़ा ली।

प्रारंभ में दिल्ली से दूर होने से मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल में अपना स्थायी शासन स्थापित कर सके। अल्लाउद्दीन हुसेन शाह (1493-1519 ई.) पहला मुस्लिम शासक था जो जनता में लोकप्रिय हुआ। हिंदू-मुस्लिम एकता के उद्देश्य से उसने ङ्गसत्यपीरफ नामक संप्रदाय भी चलाया। इस वंश के बाद शेरशाह सूरी ने इस प्रदेश पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

मुहम्मद बिन तुगलक के समय में हसन गंगू ङ्गजॅफर खाँफ उपाधि धारण कर बहमनी राज्य का शासक बना और उसने अपनी राजधानी दौलताबाद (देवगिरि) से हटकर गुलबर्गा में स्थापित की। 1518 ई. में यह राज्य विनष्ट हो गया। फलस्वरूप दक्षिण में पाँच स्वतंत्र मुस्लिम राज्य- 1. बरार का इमादशाही, 2. बीजापुर की आदिलशाही, 3. अहमदनगर की निजामशाही 4. गोलकुण्डा की कुतुबशाही और ५. बीदर की वरीदशाही स्थापित हुए।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली का पठाण राज्य (लोदी वंश) अत्यंत कमजोर हो चुका था। उस समय भारत में राणा सांगा (मेवाड़) और कृष्णदेव राय (विजयनगर) ये दो प्रमुख शासक थे।

तैमूर लंग की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न जहरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने 1526 ई. में भारत पर आक्रमण कर पानीपत की पहली लढ़ाई में विजय प्राप्त की। दिल्ली पर अधिकार कर जैसे ही वह आगे बढ़ा उसका मेवाड़ के राणा कुंभा से संग्राम हुआ। बाबर के पास तोफखाना और बंदूक आदि आग्नेयास्त्र थे, जिनसे वह रूसी तुर्कीस्तान से भाग कर भी काबुल विजय प्राप्त करता हुआ दिल्ली आ पहुँचा। राणा सांगा भी उसके आगे न टिक सका। चंदेरी का किला आदि क्षेत्र उसके हाथ से निकल गए। बाबर यद्यपि तुर्क था पर संयोग से उसे मुगलों का पूर्व-पुरूष बनना पड़ा। फलत: उसका वंश मुगलवंश कहलाया। कहा जाता है कि सैदापुर की एक लड़ाई में गुरू नानक देवजी भी उसके सामने पकड़कर लाए गए थे। बाबर को अपना शासन सुव्यवस्थित करने का अवसर न मिला। अचानक उसका पुत्र हुमायूँ बीमार पड़ा। उसने उसकी स्वास्थ्य-कामना से उसकी शय्या की तीन परिक्रमाएँ कीं। कहते हैं कि उस दिन शहजादा स्वस्थ होने लगा और बाबर बीमार पड़ गया। इसी बीमारी में उसकी 1530 ई. में मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु के तीसरे दिन ही हुमायूँ बादशाह बन गया। इसे एक शेर खाँ नामक वीर कन्नौज की लड़ाई में परास्त कर दिया गया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ जान बचाकर इराण भाग गया। शेर खाँ शेरशाह सूरी नाम से ही दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, पर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। फलस्वरूप ईरान के शाह तहमास्प की सहायता से हुमायूँ ने पुन: भारत पर आक्रमण कर दिल्ली का प्रदेश हस्तगत कर लिया। एक दिन 1556 ई. में वह पुस्तकालय की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, उसके कानों में अजान की आवाज पड़ी। आवाज सुनकर वह एकाएक झुक गया और पैर फिसल जाने से मौत का शिकार हो गया। इस समय उसका लड़का जलालुद्दीन तेरह वर्ष का बालक था। सेनापति बैरम खाँ के संरक्षण में वह अकबर नाम से गद्दी पर बैठा। बैरम खां ने जौनपुर को साम्राज्य में लिया गया। किंतु अकबर ने शीघ्र ही उसे दायित्व से मुक्त कर शासन की बागडौर संभाल ली और बंगाल, बिहार और गुजरात को जीतकर कश्मीर को भी अपने शासन में ले लिया। इसके बाद उसने फतेहपुर सीकरी का निर्माण कराया। उसने संपूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार कर दक्षिण में भी अपने राज्य का विस्तार किया। केवल महाराणा प्रताप ने मेवाड़ का सिर सदा उन्नत रखा और कभी भी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

भारत के मुस्लिम शासकों में अकबर का सर्वोच्च स्थान है। स्वयं कम पढ़ा होने पर भी उसने साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र को पूर्ण विकसित होने का अवसर प्रदान किया। हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतिपादन के लिए उसने ङ्दीन-ए-इलाहीफ नाम मत भी चलाया। अपने दरबार में उसने बीरबल, तानसेन, रहीम जैसे नव रत्न भी रखें। उसका काल भारत में सुख, शांति और विकास का काल कहलाता है। सूर और तुलसी जैसे महाकवि उसी के काल में हुए। वह स्वयं उनके दर्शनों के लिए उनके पास गया था। उसने हिंदुओं को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया। जो पौधा बाबर ने लगाया था, उसकी जड़ अकबर ने सींच कर उसे एक ऐसे विशाल वृक्ष का रूप दे दिया, जिसकी छाया दक्षिण में गोदावरी नदी तक पहुँचती थी। अकबर के दो उत्तराधिकारियों- जहाँगीर (मृत्यु 1627 ई.) और शाहजहॉ (मृत्यु 1666 ई.) ने न मुगल साम्राज्य को अधिकाधिक विस्तृत और दृढ़ बनाया, वरन अकबर की नीति को बहुत कुछ बनाए रखा। अकबर के समय से लेकर शाहजहाँ के समय तक उत्तर भारत में शांति और सुव्यवस्था बनी रहीं यद्यपि स्वतंत्र होने का

प्रयत्न करनेवाले राज्यों से कभी-कभी संघर्ष छिड़ जाता था। शाहजहाँ के शासन के अंतिम दिनों में बुंदेलखंड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवाजी की स्वतंत्रता की चेष्टाएँ प्रगट हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भक्ति युग में राजनीतिक परिस्थितियाँ विषम थी, किंतु राजपूत, मराठे तथा अन्य हिंदू शासक विदेशियों का प्रतिरोध करते रहें और स्वतंत्रता की प्रवृत्ति सदैव जागृत रहीं। उनमें किसी प्रकार की कायरता एवं निराशामय पराजित मनोवृत्ति नहीं थी। अत: भक्ति साहित्य को साहित्य को निराशामय राजनीतिक परिस्थितियों की उपज कहना भ्रामक है। इस युग में मुस्लिम शासकों ने हिंदू जनता पर महान अत्याचार किए, किंतु वे परस्पर लड़ते रहे। मुगल सम्राट भी सिंहासन प्राप्ति के लिए अपने भाई एवं पिता का वध करने में नहीं चूके। मुगल शासक एकदम अनुदार एवं असहिष्णु भी नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि बहुत से मुस्लिम शासकों ने संस्कृत एवं देशी भाषा के साहित्य, संगीत और कला को प्रोत्साहन दिया।

कोई भी साहित्य परिस्थितयों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता हैं किंतु भक्तिकालीन साहित्य इस बात का अपवाद है। भक्तिकाल के प्रमुख चार कवियों- कबीर, जायसी, तुलसी और सूर की वर्ण्य सामग्री युग के राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल है। उन्हें न तो सीकरी से काम था न प्राकृत जन गुण-गान से सरोकार था। इन भक्तों की वाणी धर्म और शांति प्रधान रहीं।

3. भक्तिकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ :

इस समय प्रमुखत: हिंदू, बौद्ध, जैन और मुस्लिम धर्म कई मतों में विभाजित थे। हिंदुओं में प्रमुखत: शैव, शाक्त, स्मार्त और गाणपत्य मत, बौद्धों में मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान आदि मत, नाथ संप्रदाय की १२ शाखाएँ, मुस्लिम धर्म में शरा, बेशरा, सूफियों में चिश्ती, कादिरी, सुहरावर्दी नक्शवंदी और शत्तारी आदि संप्रदाय विद्यमान थे। हर संप्रदाय में कई उपसंप्रदायों का बोलबाला था। सभी धर्म, संप्रदाय, उपसंप्रदाय अपने मूल रूप से भ्रष्ट हो गए थे। गुह्य-साधनाओं की दम घोटनेवाली तांत्रिक क्रियाओं ने धार्मिक जीवन पर आतंक जमाते हुए भोली-भाली जनता को गुमराह करने में अनेक प्रकार के जादू-टोनों का सहारा लिया था। हिंदू धर्म की ऐतिहासिकता ने वर्णाश्रम-धर्म तथा वैदिक कर्मकांडों के नाम पर स्वार्थपूर्ति के ऐसे षड्यंत्र निर्मित किए जिनका बाह्यविधान भव्य और आकर्षक लगता था किंतु जिसके आभ्यतरिक स्वरूप में इंद्रिय-लोलुपता और प्रवंचनाओं का भ्रमजाल बिछा हुआ था। धर्म के ठेकेदारों ने पशुबलि, मद्यपान, माँस-भक्षण और कामुकता की वृत्तियों को छद्म वेश में आवृत्त कर लोगों को ठगने तथा उन्हें पथभ्रष्ट करने का साधन बना लिया था। जिस बौद्ध धर्म ने किसी समय वैदिकी हिंसा का विरोध कर ब्रह्मवाद के मिथ्याडम्बरों का खंडन किया था, वही अपनी विकृत साधना में तांत्रिक रूप धारण कर अपनी अनेकविध शाखाओं और मान्यताओं में संभोग की अश्लील क्रियाओं का दर्शन कराने लगा था। मुस्लिम शासकों के धर्म ने एक ओर आतंक स्वरूप धारण कर लिया था, तो दूसरी ओर स्थानीय धर्मों के प्रभाव से भारतीय जनमानस में अनेक विसंगतियों और आडम्बरों से भरने लगा था। कुल मिलाकर इन विभिन्न धर्मों के भ्रष्टाचरणों से समाज इतना गंदला हो गया था कि उसके शुद्धीकरण के लिए 'विशुध्द और निष्काम भक्ति-

भावना' की अत्यधिक जरूरत थी। हिंदी भाषी क्षेत्र के उस पार दक्षिण में आलवार-नायनार भक्तों ने इसतरह की विशुद्ध और निष्काम भक्ति-भावना का पर्याप्त विस्तार किया था। दक्षिण और उत्तर का संधिस्थल महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, नामदेव, चक्रधर, महदायिसा, मुक्ताबाई आदि संतों ने वारकरी संप्रदाय के रूप में दक्षिण की इस पावन सरिता को हिंदी प्रदेश की सीमा तक ला दिया था। नामदेव ने उसे पंजाब तक पहुँचाया था। रामानंद के शिष्य कबीर, तुलसी और वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास ने इस भक्ति-धारा का विस्तार किया था। इस तरह-

''भक्ती द्राविड उपजी लाये रामानंद
कबीरदास परगट किया सप्त दीप का नव खण्ड।।''

इसका तात्पर्य यह है कि हम कबीरदास से भक्ति आंदोलन का आरंभ 'हिंदीभाषी' क्षेत्र में 'प्रकट रूप' में मानते हैं। भक्ति आंदोलन को विस्तार देने में भागवत धर्म के कई संप्रदायों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, हिंदी क्षेत्र के भी और हिंदीतर क्षेत्र के भी। सूफी संप्रदाय भी भक्ति आंदोलन के प्रभाव से अछूता न रह सका, उसकी भक्ति प्रेम-भक्ति में ढलने लगी थी। इस तरह वर्षो से चली आयी भक्तिसाधना जो बीच में खंडित हो गई थी, पुनः 'भक्तिकाल' में 'जनभाषा' में सर्वव्यापी हो गई। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी। श्रीमद्भागवत को उद्धरित करते हुए कहना हो तो कहा जा सकेगा-

उत्पन्ना द्रविड़े साह वृद्धि कर्णाटके गता।
कवचित् क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ।।४८।।
तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्का।
दुर्वलाहं चिरंयाता पुत्राभ्या सह मन्दताम्।।४९।।
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्।।५०।।
(श्रीमद्भागवत माहात्म्येः अध्याय-१)

४. भक्तिकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ :

एक समय में विद्वान भक्तिकाल को हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग का संबोधन दिया करते थे। आधुनिक काल के प्रचुर साहित्य के सामने भक्तिकाल का साहित्य संख्यात्मक दृष्टि से भलेही अल्प लगे परंतु गुणवत्ता की दृष्टि से किसी भी तरह से कम नहीं है। इसी कालखंड में हिंदी साहित्य की कई मानक कृतियों का सृजन हुआ है। उपलब्ध साहित्य में 'भक्ति' प्रधान प्रवृत्ति है। इसीलिए इस काल के साहित्य का प्रवृत्यात्मक वर्गीकरण उसे ही केंद्र में रखकर किया जाता है। उपासना भेद की दृष्टि से भक्ति साहित्य को प्रमुखतः निर्गुण और सगुण दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। निर्गुण के यहाँ दो भेद पाये जाते हैं। संतों की निर्गुण उपासना और सूफियों की निर्गुण उपासना। सगुण-उपासना में विष्णु के दो अवतार राम और कृष्ण की अलग-अलग उपासना का साहित्य सृजित हुआ है। कृष्णोपासकों के कई संप्रदाय थे और कुछ उपासक ऐसे भी थे, जो

किसी संप्रदाय से जुड़े न थे। कुल मिलाकर भक्ति-साहित्य भी कई रूपों में लिखा गया है। 'भक्ति' के साथ इस काल में अन्य कई प्रवृत्तियों का साहित्य भी लिखा गया, जो इधर कुछ सालों के शोध-अनुंसधान से प्राप्त हो रहा है।

ऊपर की चर्चा में हमने बताया कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अर्थात् साहित्य को पढ़कर हम तत्कालीन समाज के स्वरूप को जान सकते हैं। लोगों के आचार-विचार का अनुमान लगा सकते हैं या यूँ कहिए कि साहित्य के द्वारा समाज का स्पष्ट रूप हमारे सामने व्यक्त हो जाता है। साहित्यकार अपने सामने जो देखता है उसका वर्णन करता है। यद्यपि कल्पना का समावेश उसकी रचनाओं में जरूर होता है किंतु उसके साथ तत्कालीन सत्य भी जुड़ा रहता है।

भक्तिकाल से संबंधित खंड में पहले आपने आदिकालीन साहित्य से संबंधित खंडों का अध्ययन कर लिया है। आपने देखा कि उस समय एक विशेष प्रकार का काव्य रचा जा रहा था। राज्याश्रय के कारण कवि जनता से कट जाते थे। भक्तिकाल में साहित्य की प्रवृत्ति बदल गई। इस युग में जितनी भी साहित्यिक रचनाएँ हुई वह ईश्वर भक्ति और सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं। भक्त कवि किसी साहित्यिक कीर्ति के लिए काव्य रचनाएँ नहीं करते थे, उनके ह्दय से निकले उद्गार ही काव्य बन गए। ईसा की छठी शताब्दी में आरंभ की गई दक्षिण के अलवार संतों की वाणियाँ एक अंत स्रोत धारा के रूप में बहती हुई बाहरवीं-तेरहवीं शती में आकर उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी। कबीर, सूर, जायसी, मीरा, रहीम, नानक आदि जितने भी कवि हुए सबने वचनों द्वारा हिंदी साहित्य के भंडार को अक्षय बनाया। सामाजिक और धार्मिक बुराइयाँ भक्ति साहित्य के उदय का कारण बनी। भक्ति साहित्य में सभी प्रकार की बुराइयों एवं अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया।

तत्कालीन समय में साहित्य के क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ वह था- अनुवाद का। रामायण और महाभारत के ग्रंथों का अनुवाद हुआ। बदायूँनी ने फारसी में इन दोनों ग्रंथों का अनुवाद किया। तत्कालीन बादशाहों में भी साहित्य प्रेम था। मुगल वंश का संस्थापक बाबर स्वयं एक अच्छा कवि था। हुमायूँ को साहित्य से प्रेम था। उनकी बहन गुलबदन ने 'हुमायूँ नामा' की रचना की। शासक वर्ग के कारण फारसी साहित्य के उन्नति हुई। इतिहास ग्रंथों में मुल्ला दाउद की 'तारीखे अल्फी, तबकाते-अकबरी', फैजी 'सरहिंदी का अकबरनामा' प्रसिद्ध हैं। गणित ग्रंथ लीलावती का अनुवाद कवि फैजी ने किया शाहजहाँ-नामा ग्रंथ लिखे गये। औरंगजेब के समय 'आलमगीर नामा', 'मआसिरे आलमगिरी', 'फत्हात आलमगिरी' आदि ग्रंथ रचे गये।

हिंदी के भक्त कवियों ने अधिकतर भक्ति संबंधी रचनाएँ की। कबीर की रचनाओं का संग्रह बहुत बाद में हुआ। जायसी ने 'पद्मावत', सूरदास ने 'सूरसागर', नंददास ने 'रासपंचाध्यायी', तुलसीदास ने 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'कवितावली' की रचना की। अकबर के दरबार के अब्दुरहीम खानखाना टोडरमल तथा बीरबल हिंदी के अच्छे कवि थे। भक्तिकाल में केशवदास जैसे आचार्य हुए। इन्होंने कविप्रिया, रसिकप्रिया और अलंकार मंजरी ग्रंथों की रचना की। तत्कालीन कवि समाज एवं जनता से जुड़े हुए थे। वे

किसी साहित्यिक कीर्ति हासिल करने के उद्देश्य से नहीं लिख रहे थे। बल्कि की अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक था कि वे जनता की भाषा का प्रयोग करें। प्राय: सभी कवियों ने जनता की भाषा में ही अपनी बात कही। कबीर तो घूम-घूम कर उपदेश देते थे। इसलिए तो जगह-जगह के शब्दों का प्रयोग किया। सूर आदि ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया। मीरा की भाषा में भी कई जगहों के शब्दों का मिश्रण हो गया है। सूफी कवि जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया। तुलसीदास ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग किया। तुलसी ने अवधी का परिमार्जित और परिष्कृत रूप का प्रयोग किया। नंददास और कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा के सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत रूप का प्रयोग किया।

भक्तिकाल में काव्य रूपों की विविधता देखने को मिलती है। इसमें प्रबंध-काव्य, मुक्तक काव्य, सूक्ति काव्य, संगीत काव्य, नाटक, कथा-काव्य, जीवन-चरित्र, गद्य काव्य और उपदेश काव्य आदि काव्य-रूपों का प्रयोग किया गया।

फारसी की मसनवी शैली का प्रयोग भक्तिकाव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया। उसे यहाँ की लोककथाओं को प्रबंध का आधार बनाया। इरानी और भारतीय शैलियों का मिश्रित रूप सूफी काव्य की विशेषता है। परियों का चित्रण इरानी प्रभाव के कारण ही हो पाया। इसप्रकार भक्तिकाल के साहित्यिक परिस्थिति में परिवर्तन होता रहा।

2.2.2 निर्गुण भक्ति काव्यधाराओं (ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी) का सैद्धांतिक परिचय :

मध्यकालीन भक्ति के दो पक्ष है। - 'सगुण' और 'निर्गुण' इन्ही दो रुपों के आधार पर हिंदी में भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुई। संतकाव्य परंपरा को विभिन्न नामों से जाना जाता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने 'निर्गुणधारा' को 'ज्ञानाश्रयी' और 'प्रेमाश्रयी' दो शाखाओं में विभाजित करके उसे निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा नाम दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस शाखा के कवि 'ज्ञान' को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। निर्गुण उपासक साधकों को 'संत' और सगुणोपासकों को प्राय: 'भक्त' कहा जाता है।

● निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा :

निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के अंतर्गत हिंदुओं द्वारा हिंदु-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया। संत कवियों ने निर्गुणवाद में हिंदु-मुसलमान एकेश्वरवादी थे, बहु देवतावाद के विरुद्ध थे। अत: संत कवियों ने निर्गुणवाद के आधारपर राम-रहीम की एकता एवं हिंदु मुसलमानों की कोशिश की। कबीर इस धारा के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। इस काव्यधारा में केवल हिंदू-मुसलमानों के धर्म का ही समन्वय न होकर गोरखपंथियों के हठयोग, वेदान्तियों के ज्ञानवाद, सूफियों के प्रेमवाद तथा वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद का भी सुंदर और सफल समन्वय हुआ है। उसमें सामाजिक समन्वय को विशेष महत्त्व है। इस प्रकार के समन्वय द्वारा निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के संतो ने हिंदी साहित्य और हिंदी भाषी प्रदेश दोनों को गौरान्वित किया है। इसी कारण निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के सिद्धांतों का अध्ययन हिंदी साहित्य के विद्यार्थी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

● **नाम की उपासना :**

संत लोग निर्गुणवादी होने के कारण प्राय: नाम की उपासना करते थे। ये लोग रुढिवाद और मिथ्या आंडबर का भी विरोध करते थे। गुरु को ईश्वर के समान महत्ता देते थे। जाती-पाती इनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखती थी। ये लोग साधारण धर्म को मानते हुए वर्णाश्रम संबधी विशेष धर्म के विरोध में थे। वैयक्तिक साधना पर इन्होंने विशेष बल दिया है।

● **निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के सिद्धांत निम्नलिखित हैं। –**

1) **ईश्वर :** निर्गुण ज्ञानाश्रयी संत एकेश्वरवादी हैं। ये निर्गुण निराधार ब्रह्म की उपासना करते हैं। मुसलमान और हिंदु धर्म में समान रुप से ग्राह्य होनेवाले उनका ईश्वर हैं। जो संसार के प्रत्येक कण-कण में व्याप्त है। जिसमें ज्ञान का प्राधान्य है ऐसे योग और निर्गुणभक्ति से उसकी प्राप्ति संभव है। ऐसे ईश्वर की प्राप्ति में गुरु को अनन्य साधारण महत्त्व है। जिसे संतोने ईश्वर समान ही माना है।

2) **माया :** सत्पुरुष से उत्पन्न माया ही सृष्टि की सृजय शक्ति है। जो सत्य और मिथ्या भी है। कबीर ने संसार को भ्रम में डालनेवाली महाठगिनी माया का खंडन किया है।

3) **हठयोग :** बलपूर्वक ब्रह्म से मिलन हठयोग कहलाता है। यह मिलन मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्यता स्वरूप से परिचित करवाता है। शारीरिक और मानसिक परिश्रम के द्वारा ही ब्रह्म की अनुभूति को जाती है। जो हठयोग का आदर्श है। गोरखनाथ द्वारा चलाए हुए इस हठ्योग का कबीर तथा अन्य निर्गुण संतोपर इसका प्रभाव पडा इसी हठयोग कबीर ने ईश्वर प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन माना है।

4) **सूफी मत :** सूफी मत का भी संत-मत पर पर्याप्त प्रभाव दिखायी देता है। आत्मा-परमात्मा का संबंध जो सूफी मतवाले मानते हैं तथा प्रेम की पीर को महत्त्व देते हैं। यही बात संत लोग भी स्वीकार कहते हैं। सूफीमत के अनुसार आत्मा-परमात्मा के ऐक्य में शैतान बाधा उत्पन्न करता है तो निर्गुणमत के अनुसार माया आत्मा-परमात्मा के मिलन में बाधा बनती हैं।

5) **रहस्यवाद :** कबीर का रहस्यवाद अद्वैतवाद और सूफी मत से संयोग से बना है। इसमें आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष रूप में मानकर दोनों का मिलन कराया है। जबतक ईश्वर प्राप्ति नहीं होती तब तक आत्मा विरहिणी की भाँति तडपती रहती है।, परमात्मा से मिलन के बाद ही रहस्यवाद के आदर्श की पूर्ति हो जाती है। संत मत के अन्य कवियों ने भी रहस्यवाद पर लिखा है। लेकिन कबीर जैसी अनुभूति की तीव्रता उनमें दिखाई नहीं देती

6) **रुपक :** संतो ने अपने गूढ तथा गंभीर भावों को रुपक द्वारा प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं ये रुपक बहुत ही अस्पष्ट हो गये हैं। कबीर ने रुपकों का प्रयोग उलटबाँसी के रुप में तथा आश्चर्यजनक घटनाओं की सृष्टि के लिए किया है।

उपर्युक्त सिद्धांतो के अलावा निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के संत आत्मशुद्धि को बडा महत्त्व देते है।साथ ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और अहंकार, सांसारिक पदार्थों के संग्रह, स्वादिष्ट आहार,

मांसाहार, मादक वस्तु, मन की चंचलता, दुर्जन-संग अन्य देवता की पूजा, वेशभूषा संबंधी आंडबर आदि का त्याग करने की सलाह देते हैं।

संतो की साधना वैयक्तिक न होकर समष्टिमूलक थी। वे जाँति-पाति का भेदभाव मिटाकर एकता का प्रचार तथा प्रसार करना चाहते थे। संतों के लिए सभी समान थे। मुगलों के आक्रमण से हिंदुस्थान छिन्न-भिन्न हो चुका था। वर्णभेद के कारण असंतोष फैला था। जिसका संतो ने समूल नाश करना चाहा। तत्कालीन परिवेश के कारण संतोने निम्न वर्ग को अपना लिया परंतु जहाँ पूरी जाति का प्रश्न आ जाता है, वहाँ उनका उदार मतवादी दृष्टिकोण दिखायी नहीं देता।

● प्रेमाश्रयी काव्यधारा :

निर्गुण धारा की यह दूसरी शाखा है। ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवि निराकार परमात्मा की अनुभूति 'ज्ञान' बताते थे। अत: वे ज्ञानाश्रयी कहलाये और प्रेमाश्रेयी शाखा के प्रवर्तक एवं अनुयायियों विश्वास था कि भगवान की अनुभूति प्रेम के माध्यम से हो सकती है। और इस प्रेमसाधना के लिए गुरु का सहयोग अनिवार्य है। यह काव्यधारा सूफी काव्य या सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से भी जानी जाती है।

इस परंपरा के कवियों ने प्रेम रस की ऐसी धारा प्रवाहित की जिसमें सभी सराबोर हो उठे। 'सूफी' शब्द 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है 'सफेद ऊन का'। सूफी लोग वैभव शून्य, सरल जीवन बिताते थे। वे मोटे ऊन के वस्त्र पहनते थे, इसलिए उन्हें 'सूफी' कहा जाता था। सूफी लोग पीर (गुरु) को अधिक महत्त्व देते थे। वे ईश्वर और जीव का संबंध प्रेम का मानते हुए सर्वेश्वरवाद के ओर अधिक झुके हुए दिखायी देते थे। यह काव्यधारा मुसलमान संतो और सूफियों की सद्‌भावना का फल था। सूफी लोग ईश्वर को अपने प्रेमपात्र के रुप में देखना चाहते हैं। इन संतो ने हिंदु प्रेम-गाथाओं को लेकर काव्य रचना की और उसके द्‌वारा अपने सिद्‌धांतों का प्रतिपादन किया। जायसी इस शाखा के प्रधान कवि थे।

● प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सिद्‌धांत निम्नलिखित हैं –

1) **ईश्वर :** सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है जिसका नाम हक है। आत्मा और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है। आत्मा स्वयं को बंदे के रुप में प्रस्तुत कर ईश्वर तक पहुँचने का प्रयत्न करती है। खुदा तक पहुँचने के लिए बंदे को शरीयत, तरीकत, हकीकत, और मारिफत ये चार दशाएँ पार करनी पडती है। प्रेम में चूर होकर आत्मा-परमात्मा में मिल जाती है। सूफी संत ईश्वर कों अपना प्रियतम मानते हैं। उनके लिए ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र आधार 'प्रेम' है।

2) **प्रेम :** सूफी मत के फकीर 'प्रेम' को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं। इनका प्रेम निस्वार्थ होता है सूफी लोग ईश्वर को प्रियतम मानते हुए उससे प्रेम की भीख माँगते है।

3) **शैतान और पीर :** सूफी मत वाले बंदे और ईश्वर के संमिलन में शैतान को बाधक मानते हैं। यह शैतान साधक को पथ से विचलित कर देता है। इसलिए शैतान से बचने के लिए सूफियों ने पीर अर्थात गुरु

की आवश्यकता बतायी है। फलस्वरूप सूफी मत में 'पीर' (गुरु) का बडा सम्मान है। वह पीर ही शक्तिशाली साधन है जो साधक को शैतान से रक्षा करता है।

4) **जीव :** कुरान में ब्रह्म-जीव का संबंध स्वामी और सेवक जैसा है। उसमें अल्लाह और मुहम्मद का संबंध स्पष्ट है। अल्लाह सर्वोपरि है तथा मुहम्मद उनका रसूल है। सूफियों ने वेदान्तियों की तरह जीव के ब्रह्म स्वरूप माना है। आदमी अल्लाह का प्रतिरुप है। मूलत: अल्लाह और बंदे में कोई अतर नहीं है। सूफियोंपर अद्वैतवादियों का काफी प्रभाव पडा है।

5) **सृष्टि :** सूफियों की दृष्टि में सृष्टि का उपादान कारक 'रुह' है। 'रुह' का अर्थ अलौकिक शक्ति है जो इन्सान में अंशरुप में स्थित है। इन्सान की रुह का शरीर से जो संबंध है वही 'रुह' का सृष्टि से है। ईश्वरने अपनी सत्ता को सर्वप्रथम रुह का रुप दिया। जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई। सूफियों के अनुसार सृष्टि के सारे उपकरण अल्लाह के प्रतिबिंब है। इस प्रतिबिंबित अल्लाह के सौंदर्य पर मुग्ध होकर सूफी संत उसमें तन्मय हो जाते हैं, और हक्क तक पहुँच जाते हैं। सूफियों के मतानुसार सृष्टि वह दर्पण है जिसमें अल्लाह का आत्मदर्शन हो जाता है। इस दर्पण अल्लाह का प्रतिबिंब ही इन्सान है।

6) **अन-अल-हक :** सूफियों के अनुसार अल्लाह और इन्सान एक ही तत्व के बने है। उनकी साधना यही है कि साधक 'अन्-अल्-हक' (मैं ब्रह्म हूँ) का स्वयं अनुभव करता है। उसे विरह की साधना की आवश्यकता पडती है। सूफी दिन-रात उसे अल्लाह से 'महामिलन' की आकुलता का अनुभव करना चाहते हैं और अंतत: जीव-ब्रह्म एक हो और अनुभव करना चाहते है कि (अहं ब्रह्मास्मि) मैं ब्रहम् हूँ।

सूफी संतो का संप्रदाय हिंदु धर्म से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। सूफी लोग हिंदुओं के सर्वेश्वरवाद के निकट पहुँच जाते है। जिस प्रकार निर्गुण संतोंने हिंदु-मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया उसी प्रकार सूफी संतों ने सांस्कृतिक एकता का प्रयत्न किया। सूफी ईश्वर को अपने प्रेमपात्र के रुप में देखते हैं और आत्मा-परमात्मा के मिलन में शैतान को बाधक मानते हैं। सूफी संतों ने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को लेकर अपने अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है।

- **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न - 1**

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिरसे लिखिए।

1) भक्तिकाल का समय संवत .... तक माना जाता है।

   (1375 से 1700 / 1376 से 1800 / 1375 से 1900 / 1378 से 1900)

2) भक्तिकालीन साहित्य मूलत: .... में रचा गया था।

   (गद्य / पद्य / चंपू / इनमेंसे कोई नहीं)

3) बलपूर्वक ब्रह्म से मिलन .... कहलाता है।

   (योग / वियोग / हठ्योग / साधना)

4) .... का रहस्यवाद अद्वैतवाद और सूफी मत के संयोग से बना है।

(जायसी / सूर / कबीर / तुलसी)

5) सूफी मत के फकीर .... को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं।

(हिंसा / अहिंसा / प्रेम / सत्य)

आ) उचित मिलान किजिए।

1) मोटे ऊन के वस्त्र	(अ) रुह
2) सृष्टि का उपदान	(ब) सूफी
3) निर्युग संत	(क)महाठगिनी
4) माया	(ड) एकैश्वरवादी

2.2.3 निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख संत कवि तथा रचनाएँ।

- **प्रमुख संत कवियों का परिचय :**

1) **कबीर :** निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख प्रवर्तक संत कवि के रुप ने कबीर सर्वश्रेष्ठ है। इनके जन्म के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। पर यह निर्विवाद है कि ये काशी की जुलाहा जाति में पालित और वर्धित हुए थे। इनके गुरु रामानंद माने जाते हैं। इनकी पत्नी का नाम लोई था। तथा कमाल और कमाली नामक पुत्र तथा पुत्री थी। स्वतंत्र प्रकृति के होने के कारण रुढिवाद के कट्टर विरोधी थे, इसलिए हिंदु-मुर्स्लिम दोनों संप्रदायों की खिल्ली उडायी है। इनकी बाणी तथा वचनों में हठयोग तथा वेदांत की झलक मिलती है।

कबीर के ग्रंथ : वैसे कबीर के नामपर चलने वाली पुस्तकों की संख्या कई दर्जनों तक पहुँचती है, परंतु इनमें अधिकांश कबीर द्‌वारा लिखित नहीं है क्योंकि कबीर स्वयं कहते हैं 'मासि कागद छुयो नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ'। उन्होंने जो कुछ पद लिखे थे, वे दूसरों के संग्रह किए हैं। इसलिए यह बताना कठिन है कि कौनसी रचना उनकी अपनी है, और कौन-सी परवर्तीकाल में उनके नामपर लिखी दूसरों द्‌वारा रचित। नि:संदिग्ध रुप में यह कहा नहीं जा सकता कि उनकी रचनाओं का संग्रह उनके समय की रचना है।

कबीर को कोई शिक्षा-दीक्षा नहीं मिली। अनुभव तथा श्रुति से जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसी को काव्य में निरुपित किया गया है। खोज रिपोर्टों, संदर्भ-ग्रंथो, पुस्तकालय के विवरणों आदि के आधार पर डॉ. नगेंद्र जी के अनुसार 63 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। जिनमें प्रमुख है अगाध मंगल, अनुरागसागर, अमरमूल, अक्षय खंड की रमैनी, अक्षर भेद की रमैनी, उग्रगीता, कबीर की बानी, कबीर की गौरख गोष्टी, कबीर की साखी, बीजक, ब्रह्मनिरुपण, मुहम्मद बोध, रेखता, विचारमाला, विवेकसागर शब्दावली, हंसमुक्तावली, ज्ञानसागर आदि। इन ग्रंथों में ज्ञानोपदेश की प्रधानता है। ज्ञानोपदेश के साथ-साथ योगाभ्यास, भक्त की

दिनचर्या सत्यवचन, विनयशीलता, नामस्मरण-महिमा, संतों का वर्णन, सत्पुरुष का निरुपण, गुरु-महिमा, माया, सत्संग आदि विषय वर्णित हैं। इन्ही विषयों के आधारपर कबीर समाज सुधारक, समन्वयक, भक्त, दार्शनिक कवि इत्यादी विविध रुपों में हमारे सामने आते हैं।

कबीर निर्गुण भक्ति संप्रदाय के प्रतिनिधि संत कवि हैं। इन्होंने निर्गुण, निराकार राम (ब्रह्म) की उपासना की है। कबीर का एकेश्वरवाद भारतीय अद्वैतवाद के अनुरुप ही है। कबीर की कविता में आत्मा-परमात्मा का मिलन है। परमात्मा से मिलन के लिए कबीर गुरु और ज्ञान दोनों को आवश्यक मानते हैं। उनकी योगसाधना शुष्क नहीं है, उसमें प्रेम का निरुपण भी है। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा वेदांत तत्व, नश्वरता, माया, मुर्तिपूजा, हिंदु-मुस्लिम दोनों धर्मों में होनेवाला बाह्यांडबर, अनिष्ठ प्रथाएँ, रीतिरिवाज आदि पर व्यंग्य बाण चलाये हैं। इनकी भाषा सधुक्कडी या खिचडी भाषा अर्थात खडीबोली, अवधी, पूर्वी (बिहारी) ब्रजभाषा आदि बोलियों का संमिश्रण है।

2) **रैदास :** भक्तिकालीन संतों में रैदास अथवा रविदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये कबीर के समकालीन थे तथा रामानंद के शिष्य माने जाते हैं। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं - भक्तमाल, रैदास की परिचई, भक्तमाल की टीका आदि प्रमुख ग्रंथों के आधार पर ज्ञात होता है कि रैदास का जन्म चमार कुल में हुआ था। रैदास ने स्वयं को चमार ही बताया है - ''कह रैदास खलास चमारा। ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।'' इन्होने वैवाहिक जीवन भी व्यतित किया था। अपने जीवन काल में मथुरा, वृंदावन, प्रयाग, भरतपुर, पुष्कर, चितौड आदि स्थानों का भ्रमण किया था। इनका लिखा कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। इनके लिखे 40 पद 'गुरु ग्रंथसाहब' में संकलित है, तथा कुछ फुटकर पदों की रचना भी की।

ये निर्गुण मार्गी संत थे। इन्होंने अपनी अनुभूति और जिज्ञासा का विषय निर्गुण ब्रह्म को माना। इनका साधना-मार्ग कबीर जैसा ही है। कबीर के समान इन्होंने भी तीर्थयात्राओं, मूर्तिपूजा आदि बाह्यविधि विधानों के स्थान पर आंतरिक साधना पर विशेष बल दिया है। इनकी भाषा में अवधी, राजस्थानी, उर्दू, फारसी के शब्द प्रयुक्त हैं। ऐसा माना जाता है कि मीरा ने गुरु के रुपमें इनका स्वीकार किया था। इनके काव्य में संतकाव्य की समस्त प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। इनके अनुयायी अपने आप को 'रविदासी' कहते हैं।

3. **धर्मदास :** कबीर परंपरा के संत कवियों में धर्मदास का नाम इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि क्योंकि कबीर की मृत्यू के बाद उनकी गद्दीपर बैठनेवाले संत धर्मदास ही थे। ये जाति के बनिये थे। ये बांधवगढ के रहनेवाले थे। बचपन से ही ईश्वर के प्रति आस्था तथा भक्ति होने के कारण ये पूजा, सत्संग, तीर्थाटन किया करते थे। पहले इनकी भक्ति सगुण थी, लेकिन कबीर के संपर्क में आने से इनका झुकाव निर्गुण पंथ की ओर हो गया। इन्होंने अपना सारा धन लुटा दिया और निर्गुण पंथ में दीक्षा लेकर आध्यात्मिक विरह के छंद लिखने लगे। इन्होंने पूर्वी भाषा का ही प्रयोग किया है। इनकी अन्योक्तियाँ अत्याधिक मार्मिक हैं। इन्होंने प्रेम तत्व को लेकर अपनी वाणी का प्रचार लिया है। इनके अनुयायियों की शाखा 'धर्मदासी शाखा' के नाम से

प्रसिद्ध है। धर्मदास की रचनाओं का संग्रह 'धरमदास की बानी' नाम से प्रकाशित हो चुका है। ''सुख-निधान'' इनके प्राचीन ग्रंथों में से है।

4) **गुरुनानक :** गुरुनानक को नानकदेव के नाम से भी जाना जाता है। ये महात्मा सिक्ख-संप्रदाय के प्रवर्तक थे। इनका जन्म लाहोर जिले के तलवंडी ग्राम में हुआ था। इन्होंने बचपन में संस्कृत, फारसी, हिंदी और पंजाबी भाषा का अध्ययन किया। इनके पिता का नाम कस्तूरचंद, माता का नाम तृप्ता, पत्नी सुलक्षणा तथा श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नाम के दो पुत्र थे। इनमें से बडे पुत्र श्रीचंद ने आगे चलकर 'उदासी संप्रदाय' का प्रवर्तन किया। ये बालकाल से ही संत प्रवृत्ति के थे। त्यागी तथा साधुसेवी थे। आधिकांश समय संतो के साथ व्यतीत करते थे। इन्होंने भगवत् भक्ति के भजन गाये हैं। इसके लिए कबीर के निर्गुण पंथ का सहारा लेकर निर्गुण उपासना का प्रचार पंजाब में प्रारंभ कर ये सिख्ख संप्रदाय के आदि गुरु सिद्ध हुए।

गुरुनानक ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना, संसार की क्षणभंगुरता, माया, नाम-जप की महिमा, गुरुमहिमा, सात्विक कर्मों की महत्ता आदि विषयों को अपने काव्य में प्रतिपादित किया है। इनके पद, दोहे, साँखियों का संग्रह इनकी वाणी 'गुरु ग्रंथ साहब' में संग्रहीत हैं। इनके कुछ भजन पंजाबी में, कुछ देश की प्रचलित काव्यभाषा हिंदी में, कही खडीबोली के रूप तो और कहीं ब्रजभाषा के रुप में है। कबीर जैसे खंडन मंडन की प्रवृत्ति इनमें दिखाई नहीं देती। इनके काव्य में भक्ति, दीनता, सरलता, समर्पण की प्रधानता के साथ शांत रस की अविरल धारा प्रवाहित है।

5) **दादूदयाल :** भक्तिकालीन संतो में दादू पंथ का प्रवर्तन करनेवाले धर्म सुधारक, समाज सुधारक तथा रहस्यवादी कवि के रुप में संत दादू दयाल विख्यात हुए। कुछ लोग इन्हें गुजराती ब्राह्मण तो कुछ लोक मोची या धुनिया मानते हैं। दादू के जन्म, जाति के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में ही दादू-पंथ की स्थापना की। कहा जाता है कि इन्होंने 20 हजार पदों और साखियों की रचना की। इनके शिष्यों संतदास तथा जगन्नाथदास ने 'हंसवाणी' नाम से काव्य संकलन किया। दादू की बानी कबीरवाणी के अनुरुप ही है, किंतु दादू के काव्य में कबीर जैसी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती। दादू की बानी में सर्वत्र सहजता और सरलता है। भाषा सरल, बोधगम्य, ब्रजभाषा है, जिसमें राजस्थानी और खडीबोली के शब्दों की प्रचुरता है। इन्होंने कुछ पद गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में भी कहे हैं। इनकी बानियों में ईश्वर की व्यापकता गुरु महिमा, जाँति-पाँति का निराकरण, हिंदु मुस्लिम अभेद, संसार की नश्वरता, आत्मबोध आदि प्रसंग आये हैं।

6) **सुंदरदास :** सुंदरदास का जन्म जयपूर की पुरानी राजधानी घौंसा (द्यौसा) नामक नगरी में खंडेवाल परिवार में हुआ। ये दादू दयाल के शिष्य थे तथा छः वर्ष की अवस्था में दादू के संग में रहने लगे। ये आजीवन अविवाहित रहे। इन्होंने विद्याभ्यास के साथ महात्माओं की सत्संगति भी की। इनका हिंदी, पंजाबी, गुजराती, संस्कृत तथा फारसी भाषाओं पर समान अधिकार था। अपने नामके अनुसार इनका शरीर सुडौल और सुंदर तथा स्वभाव कोमल, मृदुल था। इनके लिखे 42 ग्रंथ माने जाते हैं। इनमें से 'ज्ञानसमुद्र'

तथा 'सुंदर विलास' विशेष प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी कविता में रस, अलंकार का निरुपण हुआ है। यमक, अनुप्रास, शब्दालंकार और उत्तमोत्तम अर्थालंकार भी मिलते हैं।

7) **मलूकदास :** इनका जन्म लाला सुंदरदास खत्री के घर जिला इलाहाबाद में 'कडा' नामक ग्राम में अकबर के समय और औरंगजेब के समय इनकी मृत्यु हुई। मलूकदास ने ज्ञान, योग, निर्गुण भक्ति, वैराग्य दार्शनिक चरित्र विषयक, उपदेशात्मक आदिसे संबंधित ग्रंथ लिखे हैं। जिनमें प्रमुख हैं - ज्ञानबोध, रतनखान, शक्ति-विवेक, सुखसागर, भक्त-वच्छाली, बारहखडी, सबद आदि। इनमें से ज्ञानबोध तथा रामावतार लीला इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इन्होंने ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में काव्य रचना की है। इनकी भाषा में बोलचाल की खडीबोली है और उसमें उर्दू-फारसी का पुट मिलता है। कहीं-कहीं पद विन्यास और कवित आदि छंद भी पाये जाते हैं। आत्मबोध, वैराग्य और प्रेम आदि पर इनकी बानी बडी मनोहर हैं।

8) **अक्षर अनन्य :** ये दतिया रियासत के रहनेवाले थे और कुछ दिनों दतिया के राजा पृथ्वीसिंह के दीवान रहे थे। महाराज छत्रसाल ने इनसे दीक्षा ली थी। ये विद्वान तथा वेदांत के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने योग और वेदांत पर कई ग्रंथ लिखे। जिनमें प्रमुख हैं राजयोग, विज्ञान योग, ध्यान योग, सिद्धांतबोध, विवेकदीपिका, ब्रह्मज्ञान, अनन्य प्रकाश आदि। इन्होंने दुर्गा सप्तशती का भी हिंदी पद्यों में अनुवाद किया है।

9) **जम्भननाथ :** इनका जन्म राजस्थान के नागौर प्रदेश के पीपासर ग्राम में एक रजपुत परिवार में हुआ था। इसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि 34 वर्ष की आयु तक इन्होंने कोई शब्द उच्चारित नहीं किया। जब इन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई तब ये जम्भ ऋषि के नाम से विख्यात हुए। इनकी शिक्षा-दीक्षा, परिवार, विवाह आदि के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता किंतु जो फुटकर रचनाएँ मिलती हैं। उनमें योगाभ्यास, ओंकार, जप, निरंजन की उपासना, अजपाजप, सतगुरु, महिमा, सोअहं, जप, अनन्य भक्ति आदि प्रसंगों का वर्णन है।

उपर्युक्त संतो के अतिरिक्त भक्तिकाल में जिन संतो का प्रादुर्भाव हुआ उसमें हरिदास, निरंजनी, संत सींगा, लालदास, बाबालाल, बावरी साहिबा, सदना, बेनी, पीपा, सेन, धन्ना, अंगद, शेख फरीद, भीषन आदि प्रमुख हैं। संतों की यह परंपरा भक्तिकाल के बाद भी अनवरत गीत से चलती रहीं। जिसमें उच्च कोटि के अनेक संतो का प्रादुर्भाव हुआ। भक्तिकाल के परवर्ती संतो में दरिया साहब, बुल्ला साहब, गुल्ला साहब, चरनदास, बालकृष्ण नायक, गरीबदास, जगजीवनदास, दूलनदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि प्रमुख हैं। ये संत रीतिकाल में उत्पन्न हुए। किंतु इन्होंने भक्तिकालीन संत परंपरा को आगे बढ़ाया और विभिन्न संप्रदायों की स्थपना की। सभी संत कवियों समाज को एक नवीन क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रदान किया है।

2.2.4 निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख सूफी कवि तथा रचनाएँ।

निर्गुणभक्ति काव्य की दूसरी शाखा सूफी काव्य या सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की संज्ञा से अभिहित की जाती है। इनका मानना है, कि भगवान की अनुभूति प्रेम द्वारा हो सकती है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी

सूफी काव्य का प्रवर्तन कुतुबन की 'मृगावती' से माना था। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदि ने ईश्वरदास रचित 'सत्यवती कथा' को तो डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने असाइत रचित 'हंसावली' को इस परंपरा की प्रथम कृति माना है। प्रेममार्गी कवि प्राय: मुसलमान थे। इन्होंने धार्मिक एकता के प्रयत्न किये। प्रेमधारा का प्रधान कवि जायसी को माना जाता है।

1) **कुतुबन :** ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। ये जौनपुर के सुलतान हुसेन शाह के आश्रित कवि थे। उन्हीं के आश्रय में रहते हुए कुतुबन ने 'मृगावती' नामक प्रेमाख्यान काव्यग्रंथ की रचना की थी। 'मृगावती' में गणपति देव के पुत्र तथा रुप मुरारी की राजकुमारी 'मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है यह एक दु:खांत प्रेम कथा है। जिसके अंत में नायक राजकुमार की हाथी से गिरकर मृत्यू हो जाती है तथा दोनों रानियाँ मृगावती और सुंदरी सती हो जाती है। सूफी विचारधारा के अनुसार नायिका का प्रेमी के लिए प्राण त्यागना साधना पथ की सिद्धि मानी जाती है। यह ग्रंथ अवधी भाषा तथा दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है। इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेम मार्ग के त्याग और कष्ट का निरुपण करके साधक के भगवत्-प्रेम का स्वरूप दिखाया है।

2) **मंझन :** इनके सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। केवल एक रचना 'मधुमालती' ग्रंथ प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में कनेसरनगर के राजा सूरजभान के पुत्र राजकुमार मनोहर का महारस की राजकुमारी मधुमती के साथ प्रेम हो जाता है। और कुछ अवधि के लिए वे दोनों एकदूसरे से बिछड जाते हैं और फिर दोनों का मिलन हो जाता है। कवि ने नायक और नायिका के अलावा उपनायक और उपनायिका की भी कल्पना करके कथा को विस्तृत रुप दिया है। जन्मजन्मांतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मंझन ने प्रेम के व्यापक स्वरूप को स्पष्ट किया है। इस ग्रंथ में विरह कथा के साथ-साथ आध्यात्मिक तथ्यों का भी निरुपण किया गया है। अवधी भाषा एवं दोहो-चौपाई छंदो में लिखी कृति की शैली सरल एवं सरस है।

3) **मलिक मुहम्मद जायसी :** ये प्रेममार्गी कवियों के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मुहिउद्दीन के शिष्य थे। जायस में रहने के कारण जायसी कहलाये। ये हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनके पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा, कहरानामा, मसलानामा आदि ग्रंथ माने जाते हैं। इसमें 'पद्मावत' सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। सूफी दर्शन के निरुपण तथा साहित्यिकता की दृष्टि से यह एक सफल ग्रंथ है। जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे और अमेठी के राजघराने में इनका विशेष सम्मान किया जाता था। ये देखने में कुरुप थे। जायसी का 'पद्मावत' उनकी अक्षय कीर्ति का आधार है। प्रेम पीर के सफल गायक के रुप में जायसी सम्मानित किए जाते हैं।

जायसी कृत 'पद्मावत' अत्यंत लोकप्रिय काव्य है। इसमें इतिहास और कल्पना का योग है। इसका पूर्वार्ध कल्पित है, तो उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर है। सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पूत्री पद्मावती के रुप की प्रशंसा सुनकर राजा रत्नसेन हीरामन तोते के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से सिंहलद्वीप की और प्रस्थान करता है। वहाँ भगवान शिव की सहायता से रत्नसेन और पद्मावती का विवाह संपन्न होता है। चित्तौड लौटकर ज्योतिष संबंध अनाचार की बातें सुनकर राजा रत्नसेन राघवचेतन पंडित को देश निकाला का दंड

सुनीता हैं। वह अलाउद्दीन से मिलकर पद्मावती की सौंदर्य की प्रशंसा करके चित्तौड पर आक्रमण करने के लिए उकसाता है। गोरा-बादल की सहायता से रत्नसेन को छुडाने में सफल हो जाती है। चित्तोड लौटनेपर द्वंद्वं युद्ध में राजा रत्नसेन और देवपाल मारे जाते हैं। अंत में पद्मावती और नागमती दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं।

'पद्मावत' की सारी कथा को कवि ने एक रुपक में बाँधने का प्रयास किया है। नायिका पद्मावती को परमात्मा का प्रतिरूप माना गया है।नायक रत्नसेन को साधक अथवा आत्मा का प्रतीक माना गया है। तोता हीरामन गुरु (पीर) का प्रतीक है जो रत्नसेन (साधक) को पद्मावती (परमात्मा) का ज्ञान देता है तथा रत्नसेन (आत्मा) को पद्मावती (परमात्मा) की प्राप्ति के मार्ग (साधना) पर अग्रेसर करता है। अल्लाउद्दीन को माया के, राघव चेतन को शैतान के तो नागमती को सांसारिक गोरखधंधे के रुप में चित्रित किया गया है। वर्णन विस्तार और भाव-व्यंजना की दृष्टि से पद्मावत अत्यंत उच्च कोटि का काव्य है। जिसमें अवधी भाषा में दोहा चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है।

4) **उसमान :** ये जहाँगीर के समकालीन सूफी कवि चिश्ती-संप्रदाय के हाजी बाबा के शिष्य थे। इनका 'चित्रावली' प्रेमाख्यानक काव्य है। इसमें काल्पनिक के माध्यम से सूफी भावभिव्यक्ति की गई है। 'चित्रावली' के प्रारंभ में कवि ने स्तुति के उपरांत पैगंबर और चार खलिफों की बादशाह जहाँगीर तथा शाह निजामुद्दीन और हाजी बाबा की प्रशंसा की है। उसके आगे गाजीपुर नगर का वर्णन किया हौ प्रस्तुत रचना में उसमान ने जायसी का पूरा अनुकरण किया है। नेपाल के राजकुमार सुजानकुमार एक साधक है जो कठोर साधना के बाद चित्रावली को प्राप्त कर उसके साथ ब्याह रचाता है। कुल मिलकर 'चित्रावली' सुखान्त रचना है। सौंदर्य वर्णन एवं भाव-व्यंजना में कवि को पूरी सफलता मिली है। सरल एवं प्रवाह पूर्ण अवधी भाषा में दोहो-चौपाई के माध्यम से प्रेमकथानक विकसित होता गया है।

5) **शेख नबी :** ये जौनपुर जिले के दोसुपर के पास स्थित 'मऊ' नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने 'ज्ञानदीप' नामक एक आख्यान काव्य की रचना की। जिसमें राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी के प्रेम की कथा है। चित्रावली की भाँति यह भी सुखांत रचना है। जो अवधी भाषा में लिखी गई है। पूर्व प्रचलित कथाओं से सहायता लेते हुए वीर, श्रृंगार, विरह और संयोग के माध्यम से कथानक विकसित होता दिखाई देता है।

6) **कासिमशाह :** ये दरियाबाद (बाराबंकी) के रहनेवाले थे। इनकी कृति का नाम 'हंस जवाहिर' है। जिसमें राजा हंस तथा रानी जवाहिर की प्रेम कहानी चित्रित की गई है। यह पुस्तक फारसी अक्षरों में छपी है। इस कृति में जायसी की पदावली का आश्रय किया गया है। परंतु फिर भी कथा में किसी भी प्रकार की प्रौढता नजर नहीं आती। कुल मिलाकर यह निम्न कोटि की रचना प्रतीत होती है।

7) **नूर मोहम्मद :** ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समकालीन थे। ये जौनपुर जिले के 'सबरहद' नामक स्थान के रहनेवाले थे। फारसी के अच्छे ज्ञाता, हिंदी काव्यभाषा का ज्ञान होने के कारण इन्होंने

'इंद्रावती' नामक एक सुंदर प्रेमाख्यान काव्य लिखा। जिसमें कलिंजर के राजकुमार राजकुँवर और आगमपुर की राजकुमारी इंद्रावती की प्रेम कहानी हैं।

8) **मुल्ला दाऊद :** अल्लाउद्दीन के समकालीन कवि मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' नामक प्रेमाख्यान काव्य की रचना की। जिसमें नायक लोर तथा नायिका चंदा के उन्मुक्त प्रणय, प्रणय में आनेवाली बाधाएँ तथा अंत में मिलनेवाली सफलता का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ की रचना अवधी भाषा में हुई है।

9) **दामोदर कवि :** दामोदर कवि ने 'लखमसेन पद्मावती कथा' नामक ग्रंथ की रचना की। जिसमें राजा लक्ष्मण सेन तथा राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा का वर्णन है। प्रस्तुत ग्रंथ में दोहा, चौपाई, सोरठा छंडो का प्रयोग किया गया है। साथ ही यथास्थान संस्कृत की उक्तियों का भी निरुपण किया गया है।

10) **नरपति–व्यास :** सूफी मत के अनुयायी नरपति व्यास ने शाहजहां के समय 'नल दमयंती कथा' नामक की एक कहानी लिखी। जिसमें सौंदर्य और विरह का वर्णन अत्यंत सजीव एवं मार्मिक है। इस रचना की भाषा अवधी है और दोहा तथा चौपाई छंदो का प्रयोग किया गया है।

इन कवियों के अतिरिक्त फाजिलशाह, शेख निसार, कासिमशाह, कुशललाभ, नंददास, जानकवि, नारायणदास, पुहकर गणपति, ईश्वरदास, कल्लोल कवि आदि अन्य उल्लेखनीय कवि है। इस प्रकार सौंदर्य, प्रेम और विरह की व्यंजना की दृष्टि से सूफी परंपरा का अनन्य साधारण महत्त्व है। इसका लौकिक प्रेम भी उच्च आदर्श से युक्त है। प्रस्तुत परंपरा अत्यंत लोकप्रिय रही है।

2.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

शरीअत : धर्मग्रंथ के विधि–निषेध के अनुसार जीवन–यापन करना और उपासना में रत रहना।

तरीकत : जगत् से विमुख रह कर अंतर्लीनवस्था में ईश्वरी सत्ता का चिंतन करना।

हकीकत : ईश्वरी सत्ता का परम ज्ञान प्राप्त कर लेना।

मारिफत : परमसत्ता में अव्यवस्थित होने की सिद्धि हासिल करना।

सूफ् : 'सफ़्फ' से निकला अर्थ अंग्रिम पंक्ति ।

सूफ्फा : चबुतरा।

सूफी : ऊन / मोटा कपडा।

2.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर -1

1) 1375 से 1700

2) पद्‌य

3) हठयोग

4) कबीर

5) प्रेम

आ) 1) - (ब)

2) - (अ)

3) - (ड)

4) - (क)

2.5 सारांश :

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो मुसलमानों के आक्रमण और उनके उत्थान-पतन का काल कहा जा सकता है। मुसलमानों ने भारतपर आक्रमण कर अनेक मंदिर-मूर्तियों को खंडित किया। हिंदुओं के धर्म और संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने के अनेक प्रयास किए गए। लेकिन पुनःश्च मंदिर का निर्माण किया जाता रहा। मुसलमानों के इसी धार्मिक नीति के कारण साहित्य के क्षेत्र में भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

भक्तिकाल का समय संवत 1375 से 1700 तक माना जाता है। तुगलक से लेकर शाहजहाँ तक का समय भक्तिकाल के अंतर्गत आता है। भक्तिकाल में तुगलक, सैयद, मुगलवंश के सम्राटोंने भारत पर राज किया। इस दृष्टि से देखा जाए तो भक्तिकाल का पूर्वाद्ध राजनीतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अस्थिर ही रहा। उत्तरी भारत में मुसलमानों के क्रूर दमन चक्र के कारण भक्ति के योग्य भूमि मिली। तत्कालन राजनीतिक परिवेश का भक्ति आंदोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। राजनीतिक परिवेश के समान इस युग का समाज विश्रृंखल दिखाई देता है। भारतीय समाज में छुवा-छुत, ऊँच नीच की भावना प्रबल थी। हिंदुओं को बलात् मुसलमान बनाया जाता जिससे पर्दा पद्धत रूढ होने लगी। धर्म की आड में अनाचार और व्यभिचार प्रचलित था। बाह्यांडबर और कर्मकांड को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। जिसकी कबीर जैसे कवियोंने खिल्ली उडायी है। भक्तिकाल तक आते-आते हिंदु धर्म विविध शाखाओं में विभक्त हुआ जिसे संगठित करने की आवश्यकता आन पडी। मध्यकाल में हिंदी भक्ति साहित्य के प्रवर्तक कवि तुलसी, सूर, कबीर, जायसी ने भक्ति भावना को युगानुरुप सामाजिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में उबार कर जन मानस को ऐसी आधार भूमि प्रदान की जिससे उत्साह, उमंग एवं संघषों का सामना करने की प्रेरणा मिली।

मध्यकाल में भक्ति प्रमुख दो धाराओं में बही एक सगुण और दूसरी निर्गुण। निर्गुण की दो उपशाखाएँ हैं- ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी तथा सगुण की रामभक्ति शाखा तथा कृष्णभक्ति शाखा । निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख प्रवर्तक है कबीर और प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रवर्तक है जायसी। रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक है, तुलसीदास और कृष्णभक्ति शाखा के प्रवर्तक है सूरदास। निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के संतकवि जाँतिपाति का भेदभाव मिटाकर एकता का प्रचार तथा प्रसार करना चाहते थे। प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सूफी कवियों ने सांस्कृतिक एकता का प्रयत्न किया है। इन्होने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को लेकर अपने अलौकिक

प्रेम की अभिव्यक्ति की है। निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवि है – कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, मलुकदास, तो प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख सूफी कवि हैं, कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान, शेख नबी, कासिम शाह, सूर मोहम्मद, मुल्ला दाऊद आदि।

2.6 स्वाध्याय :

1) भक्तिकालीन परिवेश निरुपित कीजिए।

2) 'भक्ति-आंदोलन' स्पष्ट कीजिए।

3) निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए।

4) प्रेमाश्रयी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

5) निर्गण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं को निरुपित कीजिए।

6) प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख सूफी कवि और उनकी रचनाओं को स्पष्ट कीजिए।

2.7 क्षेत्रीय कार्य :

1. निर्गुण ज्ञानाश्रयी संत कवि और उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।
2. प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सूफी कवि और उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।
3. निर्गुण ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा का तुलनात्मक अध्ययन कर साम्य और वैषम्य स्पष्ट कीजिए।

2.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) डॉ. वैरागी लक्ष्मीलाल, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, संधी प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय संस्कारण, 1999

2) टण्डन कमल नारायण, टण्डन पल्लवी; हिंदी साहित्य का इतिहास, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण.

3) शर्मा यज्ञदत्त, प्राचीन हिंदी साहित्य, साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1978.

4) डॉ. चातक, प्रो. वर्मा राजकुमार; हिंदी साहित्य का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर.

5) डॉ. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1996.

❑❑❑

इकाई–3
पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सगुण भक्ति काव्यधारा

अनुक्रम :

3.0 उद्‌देश्य।

3.1 प्रस्तावना।

3.2 विषय–विवेचन।

3.2.1 सगुण भक्ति काव्यधारा (कृष्णभक्ति, रामभक्ति) सैद्‌धांतिक पक्ष।

3.2.2 कृष्णभक्त कवि – अष्टछाप तथा संप्रदाय निरपेक्ष की रचनाएँ, कृष्णभक्ति काव्यधारा की विशेषताएँ।

3.2.3 रामभक्ति काव्य की विशेषताएँ, रामभक्ति काव्यधारा के कवि–तुलसीदास।

3.2.4 रामकृष्ण काव्येत्तर काव्य, भक्तितेर कवि एवं रचनाएँ।

3.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ।

3.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर ।

3.5 सारांश।

3.6 स्वाध्याय।

3.7 क्षेत्रीय कार्य।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

3.0 उद्‌देश्य :

तीसरी इकाई का शीर्षक 'पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सगुण भक्ति काव्यधारा है। दूसरी इकाई में हमनें निर्गुण भक्ति काव्यधारा का अध्ययन किया है। अब इस इकाई में हम सगुण भक्ति काव्यधारा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- सगुण भक्ति काव्यधारा के युगीन परिवेश से परिचित होंगे।
- सगुण भक्ति काव्यधाराओं का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सगुण भक्ति काव्यधाराओं की प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सगुण भक्तिकाव्य के प्रमुख कवियों से परिचित होंगे।

- सगुण भक्ति काव्य की रचनाओं से परिचित होंगे
- अष्टछाप के कवियों से परिचित होंगे।
- संप्रदाय निरपेक्ष कृष्णभक्ति काव्यधारा का परिचय प्राप्त करेंगे।

3.1 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा चरण भक्तिकाल से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर भक्तिकाल का समय निर्धारण 1318 ई. से 1643 ई. तक किया है। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं – निर्गुण भक्ति काव्य धारा एवं सगुण भक्ति काव्यधारा। सगुण भक्ति काव्यधारा में रामभक्ति काव्यधारा एवं कृष्णभक्ति काव्यधारा आती हैं।

भक्तिकाल में भागवत धर्म का प्रचार प्रसार हुआ। इस भक्तिआंदोलन में लोकसंग्रह की भावना थी। लोकप्रचलित भाषाओं में यह भक्तिभावना अभिव्यक्त होने लगी। भक्ति के स्वरूप के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं – सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म का अनुभूति को स्थान है तो सगुण भक्ति में ईश्वर के अवतार को महत्त्व है। निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है, तो सगुण भक्ति में भगवान के अनुग्रह (पुष्टि) का भरोसा होता है। निर्गुण भक्ति आंतरिक सौंदर्य की गरिमा से प्रभावित रहती है। तो सगुण भक्ति बाह्य सौंदर्य की महिमा से प्रभावित होती है। निर्गुण भक्ति निराकार ईश्वर को मानती है, तो सगुण भक्ति के ईश्वर का रंग, रूप, आकार होता है। निर्गुण भक्ति में स्त्री के रमणी या परकीया के प्रति आकर्षण नहीं रहता, जबकि सगुण भक्ति में स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश होता है। सगुण भक्ति में देवलोक की कल्पना है तो निर्गुण भक्ति में ईश्वर पूरे विश्व में व्याप्त रहता है। सगुण भक्ति में भगवान भक्त के हृदय में वास करता है। निर्गुण भक्त अभेद दृष्टि से ईश्वर से आत्मसाक्षात्कार करता है। निर्गुण भक्त सत्य की खोज करते हैं। ज्ञान प्राप्त करते हैं। अपने सत्कर्मों से ईश्वर में एकरूप हो जाते हैं।

सगुण भक्ति विष्णु के विविध अवतारों की भक्ति है। सगुण भक्ति के आश्रय विष्णु के दो अवतार राम और कृष्ण को प्रस्तुत किया गया है। वैष्णव भक्ति की स्थापना महाभारत, गीता तथा पुराण ग्रंथों में हुई है। भागवद् पुराण ने कृष्ण के अवतार को व्यापक और विराट फलक पर चित्रित किया है। रामभक्तिधारा और कृष्ण भक्तिधारा में ईश्वर का सगुण रुप प्रस्तुत है । इन भक्त भवियों ने ज्ञान, कर्म, और भक्ति में से भक्ति को ग्रहण किया है।

3.2 विषय–विवरण :

3.2.1 सगुण भक्ति काव्यधारा (कृष्णभक्ति, रामभक्ति) सैद्धांतिक पक्ष

- **सगुण भक्ति काव्य धारा**

1) **ईश्वर का सगुण रुप :** मध्यकालीन सगुण भक्त कवियों का ईश्वर सगुण है। सगुण ईश्वर के गुण अलौकिक होते हैं। लौकिक गुण परिवर्तनशील, अस्थिर हाते हैं। ईश्वर के गुण अपरिवर्तनशील, स्थिर होते

हैं। भगवान का यह रुप ह्रदय और बुद्धि की समझ से परे है। यह सगुण ईश्वर पालक और संहारक है। ये विष्णु के अवतार हैं। इस ईश्वर का रंग, रुप, आकार होता है। सगुण भक्तों के अनुसार मनुष्य ब्रह्म है। मनुष्य और ईश्वर एकरुप हैं।

2) **अवतार भावना :** मध्यकालीन सगुण भक्ति की एक विशेषता है - अवतारभावना। ईश्वर अपनी इच्छा से पृथ्वी पर लीला करने के लिए अवतार लेते हैं। सारा संसार भगवान का अवतार है। गीता को आधार मानकर वैष्णव भक्त कवि अवतार भावना में विश्वास करते हैं। जो मनुष्य किसी क्षेत्र में कुशलता दिखाते हैं वे भगवान की विभूति को साकार करते हैं। भगवान की विभूतियाँ हैं - ज्ञान, कर्म, वीर्य, ऐश्वर्य, प्रेम आदि।

3) **लीला रहस्य :** सगुण ईश्वर संसार में अवतार लेकर लीलाएँ करते हैं, चाहे वे मर्यादापुरुषोत्तम राम हो या ब्रज के कृष्ण। ईश्वर के लीला करने का कोई उद्‌देश्य नहीं है। तुलसीदास के राम अपनी लीला दिखाते हुए रावण का नाश करते हैं। संपूर्ण रामचरितमानस राम की लीला हैं। राम मानव रुप में व्यवहार करते हुए ईश्वर भी हैं। उन्हें पहले से पता था कि सीता का अपहरण होनेवाला है। इस संबंध में वे सीता को सूचित भी कर देते हैं। राम के लिए सब कुछ संभव है। राम का विरह, सीता की बेबसी तथा विलाप, ऐसे प्रसंगों में मार्मिकता नहीं रह पाती पर तुलसीदास का मुख्य उद्देश्य राम की महिमा बनाए रखना था। कृष्ण लीला करते हुए गोपियों को आकर्षित करते हैं, तथा अघासूर और बकासूर राक्षसों का लीला करते हुए वध करते हैं। ईश्वर ने लीला करने के लिए संसार की निर्मिती की है। सगुण भक्त कवि भगवान की लीला में आनंद प्राप्त करता है।

4) **रूपोपासना :** सगुण भक्ति में रुप की उपासना का महत्त्व है। नाम और रुप से ही वैधी भक्ति का आरंभ होता है। भगवान के नाम स्मरण और दर्शन लेने में आनंद की प्राप्ति होती है। सगुण भक्त को भगवान का नाम और रुप इतना मोहित कर देते हैं कि भगवान का लौकिक रुप भक्ति में बाधा उपस्थित नहीं करता है। राम की मानव रुपी प्रतिमा भक्ति में अवरोध नहीं बनती है। सगुण भक्त कवि आरंभ में ईश्वर भूर्ति के सामने उपस्थित होकर भक्ति करता है। बाद में भगवान के कीर्तन, गुण स्मरण से अपने भगवान से एकरुप हो जाता है, कि बाद में उन्हें किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता नहीं रहती। भगवान का सौंदर्य श्रृंगार रस की निर्मिती करता है। कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण और गोपियों के श्रृंगार का वर्णन है। कृष्ण का सौंदर्य गौपियों को मुग्ध कर देता है। तुलसीदास के राम में शील, शक्ति, सौंदर्य का समन्वय है। फिर भी राम का सुंदर रुप भक्त को मोहित करता है। इसतरह से दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य भाव की भक्ति में ईश्वर के रुप का बहुत महत्त्व है।

5) **शंकर के अद्वैतवाद का विरोध :** शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। 8 वी शती के उत्तरार्द्ध में केरल में शंकराचार्य का अविर्भाव हुआ। शंकर ने बौद्‌ध धर्म का खंडन किया और वेदान्त के माध्यम से वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा की। वे जगत् को माया

मानते हैं। मायावाद मनुष्य को यथार्थ जगत से दूर ले जाता है और शून्य में भटका देता है। शंकर वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक हैं। वे जाति में जन्म लेना पूर्वजन्म का फल मानते हैं।

सगुण काव्य पर भागवत के प्रभाव के अतिरिक्त रामानुज, निम्बार्क मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य के सिद्धांतों का प्रभाव पडा है।

आलवारों के प्रदेश में रामानुज का संपर्क आलवारों के भागवद धर्म और शंकर के अद्वैतवाद से था। आलवारों का भागवत धर्म जनजीवन के निकट था और शंकर का अद्वैतवाद में सीमित विद्ववानों का मानसिक चिंतन था। रामानुजने भागवतों के ईश्वरवाद और शंकर के ब्रह्मवाद को मिलाकर एक नये चिंतन का आरंभ किया। जिसे विशिष्टाद्वैतवाद कहते हैं। ईश्वरवाद याने ईश्वर की पुरुषवादी धारणा। यह ईश्वर अनेक रुपों में अपने भक्त का कल्याण करता है। रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करके जीवन और जगत् को यथार्थ माना है। उनके अनुसार ब्रह्म अंशी है तो जीवन जगत उसके अंश है। मानव तथा प्रकृति ब्रह्म याने ईश्वर के अंश है। मानव की सार्थकता इसमें है कि वह अपने आपको ईश्वर का अंश माने। उन्होंने ईश्वर की भक्ति सभी लोगों को समान रुप से मानी है।

आचार्य निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद की स्थापना की है। जीव और ब्रह्म अलग अलग हैं। जीव ब्रह्म का अंश है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। अत:निम्बार्काचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का विरोध किया है। आ. मध्वाचार्य के अनुसार जगत सत्य है। मानव की उत्पत्ति ब्रह्म से मानी है। ब्रहम् को स्वतंत्र माना है। ईश्वर और जीव में भेद है, वे अलग अलग हैं। जीव जीव में भी भिन्नता होती है। समस्त जीव ईश्वर के अनुगामी हैं। जव के पास शक्ति और ज्ञान की कमी होती है। जीव विष्णु भगवान के अधीन रहकर कार्य करता है। मध्वाचार्यने शंकर के अद्वैतवाद का विरोध करके द्वैतवाद की स्थापना की है।

श्री वल्लभाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का विरोध करके शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की है। उनके अनुसार ब्रह्म माया से अलग है, अर्थात शुद्ध है। जिस प्रकार सोना अनेक रुपों में परिवर्तित होने पर भी शुद्ध सोना रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म शुद्ध है। जीव सत्य है। वह तीन प्रकार का होता है – शुद्ध जीव, संसारी जीव और मुक्त जीव। भगवान की प्राप्ति का साधन भक्ति है। भगवान के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति का साधन मानना चाहिए। इसलिए इस मत को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है। इस पुष्टि-भक्ति को माननेवाले भक्त पुष्टिमार्गी कहलाते हैं। भगवान को जब रमण करने की इच्छा होती है तब वे स्वयं जीव रुप ग्रहण करते हैं। भक्त भगवान की लीला में अप्राकृत देह धारण करके प्रवेश करता है।

6) **विविध स्रोत :** मध्यकालीन भक्तिकाव्य के स्रोत हैं- रामायण और भागवत। पूरा राम काव्य और कृष्ण काव्य इससे प्रभावित हुआ है। हिंदी के भक्ति-काव्य पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का कोई प्रभाव नहीं है। भक्ति काव्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव है। संस्कृत के भगवद्गीता, विष्णु पुराण, पांचरात्र संहिताओं, नारद भक्तिसूत्र, शांडिल्य-भक्तिसूत्र तथा कई अन्य काव्यों और नाटकों का प्रभाव पडा है। भक्तिकाल की रागानुगा भक्ति में दक्षिण के आलवार संतों का योगदान है। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और चैतन्य आदि के सिद्धांत भी सगुण भक्ति काव्य के आधार माने जाते हैं।

7) **भक्ति क्षेत्र में जाति भेद की अमान्यता :** सगुण भक्ति साहित्य में भक्ति के लिए कबीर की पंक्ति मान्य रही है - 'जाति-पांति पूछे नहि कोई, हरि को भजैं सो हरि का होई। सगुण भक्त कवियों ने जांति-पांति का भेद स्वीकार नहीं किया। किसी भी जाति का व्यक्ति भक्ति कर सकता था। पर कर्म क्षेत्र में इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया है। किसी भक्त के शूद्र होने पर उसे भगवद्भक्ति से वंचित नहीं रखा गया है।

8) **गुरु की महत्ता :** सगुण भक्त कवियों ने गुरु का महत्त्व प्रतिपादित किया है। गुरु ब्रह्म का प्रतिनिधि और अंश है। गुरु को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसकी प्रशंसा की गई है। नंददास ने वल्लभ को ब्रह्मा के रुप में माना है। उनके अनुसार गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं है। ज्ञान के अभवा में मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।

9) **भक्ति :** मध्यकाल की सगुण भक्ति काव्यधारा में सगुण भगवान की भक्ति की मान्यता है। भक्ति में माया का प्रभाव उन्होंने नहीं माना है। भगवान की भक्ति से उसकी निकटता प्राप्त करके उससे एकरुप होना तथा उसकी लीलाओं में अपने आपको एकाकार करना होता है। विष्णु ऐश्वर्य संपन्न भगवान हैं। रामानुज संप्रदाय में भगवान के ऐश्वर्य की उपासना पर बल दिया है। भगवान विष्णु और राम, लक्ष्मी या सीता के प्रति कोई प्रेम चेष्टाएँ नहीं करते हैं। वल्लभ और निम्बार्क संप्रदाय में भक्त भगवान के ऐश्वर्य के स्थान पर माधुर्य को महत्त्व देते हैं। चैतन्य मत में कांताभाव की भक्ति है। वल्लभ संप्रदाय में शांत, सख्य और वात्सल्य के भाव की भक्ति को महत्त्व है। वल्लभाचार्य की भक्ति में वियोग की अनुभूति भी है जिसे नन्द, यशोदा, और गोपियों को दु:खी किया है। मध्यकाल के सभी कवियों ने नवधा भक्ति को महत्व दिया है। श्रवण, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन भक्ति की ये नव विधाएँ इंद्रिय, मन और हृदय को भगवान के प्रति उन्मुख करती है। इस नवधा भक्ति से भक्त अपने आपको कृष्ण या राम के प्रति समर्पित कर देता है। ऐसी स्थिति में कवि प्रकृति या समाज का चित्रण अपने काव्य में कर ही नहीं सकता। भक्ति के दो अन्य प्रकार भी हैं - वैधी भक्ति, रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति सामाजिक स्तर से जुडी रहती है। वैधी भक्ति प्रेम से संबंधित भक्ति होती है। प्रेमाभक्ति के ईश्वर कृष्ण हैं। भगवान राक्षसों का संहार इसलिए करते हैं, क्योंकि वे धर्म के साथ साथ रस की अनुभूति में बाधा उपस्थित करते हैं। सख्य भक्ति निस्वार्थ होती है। भक्त सखा भगवान से किसी वस्तु के लिए प्रार्थना नहीं करता है। कांता भाव की भक्ति में ईश्वर एकमात्र पुरुष और अन्य जीव आत्मा स्त्रियां हैं। पति-पत्नी भाव की भक्ति में सब प्रकार की बाधा दूर हो जाती है। भक्त स्त्री रुप में ईश्वर को प्राप्त करता है याने ईश्वर की भक्ति करता है।

10) **लोकजीवन :** कृष्ण काव्य और रामकाव्य में लोक जीवन का चित्रण हुआ है। अष्ट छाप के कवियों में भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्रण है। भगवान कृष्ण की लीलाएँ प्रस्तुत करने के लिए लोक जीवन का चित्रण भी आवश्यक है। तुलसीदास के राम असत्य से संघर्ष करके सत्य का पक्ष लेते हैं। राम अपनी माता का आदेश पूरा करने के लिए वनवास सहते हैं। उस समय वे राजमहल छोडकर लोकजीवन में उपस्थित रहते हैं। लोगों की रक्षा के लिए तथा सीता को वापस लाने के लिए रावन से युद्ध करते हैं। राम में शील, शक्ति, सौंदर्य का समन्वय है तो कृष्ण ब्रज के सर्वस्व है। ये दोनों रुप लोक संग्रह करने में श्रेष्ठ है।

● राम भक्ति काव्यधारा :

रामानुज की शिष्य परंपरा में रामानंद हुए। उन्होंने उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामभक्तिधारा का महत्त्व तुलसीदास के कारण हैं। इस धारा का अध्ययन प्रमुखत: तुलसीदास को केंद्र करके किया जाता है।

3.2.2 कृष्णभक्त कवि – अष्टछाप तथा संप्रदाय निरपेक्ष की रचनाएँ, कृष्णभक्त काव्यधारा की विशेषताएँ।

संस्कृत काव्यों में कृष्ण भक्ति का स्वरुप प्राचीन काल से विकसित था। अश्वघोष (प्रथम शताब्दी) के बुद्‌ध चरित में गोपाल कृष्ण की लीला का उल्लेख है। हाल सातवाहन (प्रथम शती) ने लोक प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संग्रह किया। उनमें कृष्ण, राधा, गोपी और यशोदा का उल्लेख है। इन गाथाओं में कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख है। भट्टनारायण, आनन्दवर्धन, हेमचंद्र, जयदेव, गीत गोविन्द आदि के ग्रंथों में कृष्ण लीला के उल्लेख मिलते हैं।

हिंदी में कृष्ण काव्य का आरंभ विद्‌यापति से माना गया है। विद्‌यापति की पदावली में राधा–कृष्ण के मादक चित्र हैं। सूरदास के द्‌वारा कृष्ण काव्य को लोकप्रियता मिली। पुष्टि मार्ग के अंतर्गत अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण भक्ति का प्रचार प्रसार किया। कृष्ण भक्ति से संबंधित संप्रदायों – राधावल्लभी संप्रदाय, गौडिय संप्रदाय के कवियों ने कृष्ण भक्ति काव्य का विकास किया। हितहरिवंश राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक है। गदाधर भट्ट गौड़ीय संप्रदाय के हैं। वे ब्रजभाषा में कृष्ण भक्ति की सरस कविता करते थे। स्वामी हरिदास निम्बार्क संप्रदाय के अनुयायी थे। वे कविता और संगीत कला में निपुण थे। श्री भट्ट भी निम्बार्क संप्रदाय से थे। उन्होंने कृष्ण के रुपोपासना संबंधी पद मधुर रस में लिखे।

राजस्थान की लोकप्रिय कवयित्री मीराबाई की कृष्ण भक्ति दांपत्य भाव की है। मीराबाई ने राधा का स्थान स्वयं ग्रहण कर लिया। मीरा तन्मय होकर कृष्ण भक्ति के पद गाती थी। हरिराम व्यास राधावल्लभी संप्रदाय से थे। इनके राधा विषयक पद मनमोहक हैं। ध्रुवदास भी राधावल्लभी संप्रदाय से हैं। इन्होंने प्रेमाभक्ति विषयक पदों की रचना की है। कवि नरोत्तमदास ने सुदामा चरित लिखा। सुदामाचरित कृष्ण भक्ति विषयक ग्रंथ है। कृष्ण भक्त कवयित्रीयों में प्रवीणराय, कुंवरिबाई साई, रसिक, बिहारी, रत्निकुंवरि आदि ने कृष्ण भक्ति काव्य लिखा है।

- **कृष्ण भक्त कवि :**

सूरदास :

कृष्ण भक्तिधारा के भक्त कवियों में सूरदास का नाम प्रमुखत: से लिया जाता है। विद्‌वानों ने 1478 ई. को सूरदास का जन्म और 1581 ई. को मृत्यु मानी है। सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सिही नामक गाँव में हुआ था। वे नेत्रविहिन थे, पर जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए, यह बात विवादास्पद है। वे अपने गाँव से चार कोस दूर एक तालाब के पास एक पीपल के पेड के नीचे 18 वर्ष तक रहे। तब वे दास्य भाव

एवं विनय के पद लिखा करते थे। एवं पदों को गाकर सुनाते थे। बाद में वे मथुरा मे यमुना नदी के गऊघाट पर रहने लगे। वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर सूरदास उनके शिष्ट बन गये। वल्लभाचार्य ने उन्हे अपने पद गाकर सुनाने को कहा। सूरदास ने दास्य, विनय के पद गाकर सुनाए।

''प्रभु हौं सब प्रतितन को टीकौ।''

यह सुनकर आचार्य वल्लभ ने कहा -

''जो सूरे हैके ऐसो काहे को घिघियात है। कछु भगवत लीला वर्णन करि।' वल्लभाचार्य ने उन्हें दीक्षा दी और भगवतलीला का वर्णन किया। उन्हें भागवत के आधार पर पद रचना करने को कहा। वल्लभाचार्य के कहने पर सूरदास ने वात्सल्य एवं माधुर्य भाव के पद लिखे।

जन्मजात प्रतिभा, गुणी जनों का सत्संग और अभ्यास से सूरदास ने गायक और महात्मा के नाते लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी कि सम्राट अकबर ने मथुरा में इनसे भेट की थी।

वल्लभाचार्य कृष्ण के बालरुप के भक्त थे। उन्होंने सूरदास को कृष्ण की बाललीला संबंधी पद गाने को कहा था। सूरदास ने कृष्ण के जन्म, यशोदा के वात्सल्य का विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण-गोपियाँ तथा राधा कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है। कृष्ण के अनूप सौंदर्य पर राधा तथा गोपियां मोहित हो गयी हैं।

''नैननि निरखि श्याम स्वरूप।

रह्यो घट-घट व्यापि सोई जोति रूप अनूप।'' - सूरसागर

सूरदास ने गोपियों के माध्यम से माधुर्य भाव के पद लिखे हैं। गोपी कृष्ण प्रेम में एन्द्रियता नहीं बल्कि पवित्रता, उदारता है। कृष्ण के मथुरा चले जानेपर चारों तरफ दु:ख छा जाता है। सूरदास के विरह वर्णन में तन्मयता है। माधुर्य भाव रखनेवालली गोपियाँ समाज का बंधन न मानकर कृष्ण लीला में शामिल होती हैं। सूरदास की सख्य भाव की भक्ति में कोई भी सीमा, आदर्श, नियम की अपेक्षा नहीं है। सूरदास की भक्ति वात्सल्य, सख्य, माधुर्य भाव की है। सूरदास ने कृष्ण संबंधी सवा लाख पद लिखे हैं। सूरदास की रचनाएँ हैं - सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसारावली आदि। विद्‌वानों के अनुसार 'सूरसारावली' ग्रंथ सूरदास का ही है, इसके बारे में कोई निश्चित मत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।

सूरदास भक्त पहले है और कवि बाद में। उनका काव्य स्वन्त: सुखाय है। लीला का वर्णन लीला के लिए है। सूरदास कृष्ण की भक्ति में इतने लीन हो गए थे कि, उन्हें समाज की कोई पर्वा नहीं थी। वे सांसारिक आकर्षण से दूर थे। सूरदास की भक्ति में केवल सूर और कृष्ण हैं। सूरदास के प्रेमसंसार में वे हैं, उनका बाल गोपाल है, गोप, गोपियाँ और राधा है। विहार, मुरली, तानपुरा, माखन, दूध, गौएं, बछडे हैं। सूरदास की इस दुनिया में यशोदा, नंद, यमुना नदी, बगीचे भी है। काव्य में पूरी व्रजनगरी उपस्थित हो जाती हैं। सूरदास ब्रज की कृष्ण लीलाओं में इतने तन्मय हो गए थे कि दिल्ली के राजनीतिक उतार चढाव से उनका कोई वास्ता नहीं था। समाज में होनेवाली क्रिया प्रतिक्रियाओं से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। शासक क्या कर रहे हैं, समय की गतिविधि क्या है, इन बातों से उन्हें कोई लगाव नहीं था। उनके अनुसार संसार

दु:खमय है। इस दु:ख को दूर करने के लिए कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश करने से आनंद की प्राप्ति होगी। पूतना वध, बकासूर और उघासूर वध तथा कालियादमन आदि कृष्ण लीलाओं का एक अंश है।

माधुर्य भाव की भक्त गोपियां समाज से अपना नाता तोडकर कृष्ण की लीलाओं में सम्मिलित होती हैं। सूरदास स्वयं एक गोपी के रुप में कृष्ण लीला में शामिल होते हैं।

सूरदास ने यशोदा और नन्द के गृहस्थ जीवन को भी प्रस्तुत किया है। नंद यशोदा को प्रौढावस्था में बालक कृष्ण की प्राप्ति होती है। उनका कृष्ण के प्रति स्नेह स्वाभाविक है। यशोदा को उठते बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हरदम कृष्ण का ही ध्यान लगा रहता है। वे कृष्ण को लोरियाँ गाकर सुलाती हैं।

''यशोदा हरि पालने झुलावै।''

इस तरह से सूदास के काव्य में वात्सल्य रस, श्रृंगार रस, सख्य भाव का चित्रण हुआ है। इन्होंने ब्रज प्रदेश के त्योहार, उत्सव का वर्णन काव्य में किया है। सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता है। भाषा में प्रवाह बनाए रखने के लिए लय और सूर का प्रयोग किया है। अनेक लोकोक्तियों का समावेश भाषा में है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।

सूर की भक्ति पद्धति का आधार पुष्टिमार्ग है। भगवान की भक्त पर कृपा होती है। कृपा याने पोषण के भाव स्पष्ट करने के लिए भक्ति के दो मार्ग बताये गये हैं, साधन रुप और साध्य रुप। साधन-भक्ति में भक्त को प्रयत्न करना पडता है; साध्य रुप में भक्त भगवान की शरण में अपने आपको छोड देता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति में भगवान स्वयं अपने भक्तों का ध्यान रखते हैं। भक्त अनुग्रह पर भरोसा करके शांत हो जाता है। भगवान का अनुग्रह भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करता है।

● **नंददास :**

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का नाम लिया जाता है। नंददास का जन्म 1533 ई. में उत्तरप्रदेश के सूकर क्षेत्र (सोरो) के रामपुर गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम जीवनराम था और चाचा का नाम आत्माराम था। आत्माराम के पुत्र तुलसीदास थे। तुलसीदास नंददास के चचेरे भाई थे। माता पिता की मृत्यू के बाद दादी ने उनका लालन पालन किया था। उन्होंने बचपन में सोरों में नृसिंह पंडित से संस्कृत और संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था। नृसिंह पंडीत रामानंद को अपना गुरु मानते थे। वे राम भक्ति किया करते थे। नंददास भी प्रारंभ में रामभक्त थे । सारों से नंददास, तुलसीदास के साथ काशी गये। वहाँ वे शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। वहाँ से उन्होंने द्वारका यात्रा के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में किसी स्त्री से प्रेम हो जाने से रास्ता भटक गये। वहाँ से वे गोकुल पहुँचे। वहाँ गोस्वामी विठ्ठलनाथ से उनकी भेट हुई और उन्होंने पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली। तब से वे कृष्णभक्त हो गए। वे आचार्य विठ्ठलनाथ के साथ कथावार्ता करने लगे। उसके बाद गोवर्धन में उनका परिचय सूरदास से हुआ। सूदास की भक्तिभावना को देखकर नंददास का शास्त्र मोहभंग हुआ। सूरदास के आग्रह से वे पुन: अपने गांव रामपूर गये थे। कमला नामक कन्या से उन्होंने विवाह

किया। उन्होंने अपने गाँव में श्यामसर नामक तलाब बनाया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गोवर्धन आ गये। 1583 ई. के आसपास मानसी गंगा के तट पर उनका देहावसान हुआ।

नंददास प्रतिभावान कवि थे। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था।

रचनाएँ – अनेकार्थ मंजूरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रुपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखडी, श्याम सगाई, सुदामाचरित, रुक्मिणीमंगल, भंवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धांतपंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, गोवर्धनलीला, नन्ददास-पदावली।

1) **अनेकार्थ मंजरी :** यह एक पर्याय कोश ग्रंथ है। इसके मंगलाचरण में शुद्धाद्वैत संबंधी दार्शनिक विचार व्यक्त हुए हैं।

2) **मानमंजरी :** 'अमरकोश के आधार पर शब्दों के पर्यायवाची दिए गये हैं। इस पुस्तक में छंद की प्रथम पंक्ति में पर्यायवाची हैं। दूसरी पंक्ति में उस शब्द का प्रयोग करते हुए दूती द्वारा राधा के श्रृंगार का वर्णन है। इस ग्रंथ से नंददास के भाषा विषयक प्रभुत्व एवं ज्ञान का पता चलता है।

3) **विरहमंजरी :** यह भावात्मक काव्य है। कृष्ण वियोग में एक ब्रजवासी की विरह व्यथा का चित्रण इसमें हैं। इस काव्य में कथानक नहीं है। इसमें बारहमासा शैली हैं।

4) **रुपमंजरी :** यह लघु आख्यानकाव्य है। इस काव्य में रुपमंजरी के प्रति कृष्ण प्रेम का वर्णन किया है तथा दूती इन्दुमती के सहाय्य का वर्णन है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह रुपमंजरी वही स्त्री है, जिसके प्रति नंददास अनुरक्त थे।

5) **सुदामाचरित :** इस ग्रंथ की कथा श्रीमद्भागवत से ली गई है। इस काव्य में सख्य भाव की कृष्ण भक्ति का वर्णन है।

6) **रास पंचाध्यायी :** यह नंददास की श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इस काव्य में लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम का समन्वय प्रस्तुत किया है। गोपी प्रेम की लौकिक प्रेम कथा द्वारा अध्यात्मिक कृष्ण का वर्णन है। आत्मा (गोपी) रासलीला के द्वारा परमात्मा (कृष्ण) से मिलने का प्रयास करती है। भाषा, शैली, कवि कल्पना, काव्य सौंदर्य आदि की दृष्टि से रचना मौलिक है।

7) **भंवरगीत :** यह कृष्णभक्ति का श्रेष्ठ ग्रंथ है। इस ग्रंथ के आरंभ में गोपी उद्धव संवाद है। अंत में कृष्ण प्रेम में गोपियों की विरहदशा का वर्णन है। निर्गुण निराकार कृष्ण भक्ति का विरोध करके सगुण साकार कृष्ण भक्ति की स्थापना करना, इस ग्रंथ का उद्देश्य है। ज्ञान, बुद्धि के आधार पर काव्य में तर्क वितर्क किए गए हैं। भागवतपुराण पर आधारित होकर भी रचना में भाव नवीन, आकर्षक लगते हैं। काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें नंददास के पांडित्य का पता-चलता है। संपूर्ण ग्रंथ ब्रजभाषा में है। लोकोक्ति, मुहावरों का प्रयोग है।

8) **सिद्धांतपंचाध्यायी :** इस ग्रंथ में कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। इसमें कृष्ण की रासलीला के आध्यात्मिक पक्ष का उद्‌घाटन किया गया है। रासलीला के लौकिक श्रृंगार भाव को कवि ने पारलौकिक रुप में प्रस्तुत किया ह। कृष्ण, वृंदावन, वेणु, गोपी, रास आदि शब्दों की आध्यात्मिक व्याख्या इस ग्रंथ में प्रस्तुत की गयी है। यह ग्रंथ सांप्रदायिक महत्त्व रखता है।

9) **नन्ददास पदावली :** इस ग्रंथ में बारह प्रकरणों के पद संकलित है। ग्रंथ में काव्यसौंदर्य श्रेष्ठ है। नंददास के सभी ग्रंथ परिमार्जित भाषा में है। मधुर शब्दों का चयन कवि को महत्त्व प्रदान करता है। बानक, लुनाई, रावरे, नीकी, आनि आदि प्रचलित शब्दों का प्रयोग हैं। काव्य में लय, स्वर, प्रवाह है। भाषा में लोकोक्ति, मुहावरों का प्रयोग है।

अष्टछाप :

कृष्ण काव्य में आचार्य वल्लभाचार्य का योगदान है। उनके द्‌वारा चलाए गये पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर अष्टसखा कवियों ने कृष्ण साहित्य की रचना की। ये आठ कवियों की मंडली अष्टछाप कहलाती है। गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने अपने पिता वल्लभ के 84 शिष्यों में से चार चार तथा अपने 252 शिष्यों में से चार को लेकर भक्त कवि तथा संगीतज्ञों की मंडली की स्थापना की। अष्टछाप में वलूलाभाचार्य के चार लोकप्रिय शिष्य थे - कुम्थनदास, परमानन्ददास, सूरदास तथा कृष्णदास और गोस्वामी विठ्ठलनाथ के लोकप्रिय शिष्य थे - गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भजदास तथा नंददास ।

अष्टछाप में जेष्ठ कवि कुम्भनदास थे तता कनिष्ठ कवि नंददास थे। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान सूरदास का है, दूसरा स्थान नंददास का है। पद रचना की दृष्टि से परमानंद दास का नाम है। गोविंन्दस्वामी संगीत के जानकार हैं। कृष्णदास का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व हैं।

वल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग के समर्थक थे। ये आठ भक्त पुष्टिमार्ग के कलाकार, संगीतकार, कीर्तनकार थे। आठों कवि समकालीन कवि थे। ये भक्त पारी पारी से श्रीनाथ के मंदीर में कीर्तन, सेवा, प्रभुलीला संबंधी पदरचना करते थे। गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने इन अष्टसखाओं पर अपने आशिर्वाद की छाप लगायी इसलिए उन्हें अष्टछाप कहा जाता है। ये कवि भगवान कृष्ण की लीला से संबंधित पदरचना करते थे। प्रेम की सूक्ष्म से सूक्ष्म दशाओं का वर्णन, कृष्ण के माधुर्य रुप का वर्णन इन कवियों ने किया हैं। वल्लभाचार्य के शिष्यों की जानकारी 'चौरासी वैष्णबन की वार्ता' में मिलती है, तो विठ्ठलनाथ के शिष्यों का वृत्तांत 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलता है। अष्टछाप में से सूरदास और नंददास की विस्तृत जानकारी हमने पहले देखी है, शेष कवियों की जानकारी इस प्रकार है -

1) **कुंभनदास :** 'चारासी वैष्णवन वार्ता' के अनुसार कुंभनदास का जन्म 1468 ई. एवं मृत्यु 1583 ई. में मानी जाती है। हरिराय के ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में इतना संकेत है कि कुंभनदास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से दूर जमुनावती नामक गांव में रहा करते थे। उनके घर में कृषि कार्य होता था। पारसोली चंद्रसरोवर होकर अपने गाँव से श्रीनाथजी के मंदिर में वे कीर्तन करते थे। वे विवाहित थे, उनके सात बेटे थे। जिनमें सबसे छोटे चतुर्भुजदास हैं। गृहस्थ होकर भी कुम्भनदास कृष्ण भजन में लगे रहते। वे साधुवृत्ति के थे, उन्होंने 1492 ई.

में वल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। वे मधुर स्वर में कृष्ण भक्ति के पद गाते थे। किसी गायक ने उनका एक पद गाकर बादशाह अकबर को सुनाया। बादशाह ने मुग्ध होकर पद के रचयिता को सीकरी बुलवाया। कुम्भनदास ने सीकरी जाकर बादशाह के सामने अपना पद गाकर सुनाया।

'भक्तन को कहा सीकरी सों काम।'

इस पद में विरक्त भाव सूचित होते हैं। बादशाह अकबर उनकी भगवद्भक्ति से प्रसन्न हुए। अकबर ने उन्हें कुछ माँगने के लिए कहा। कुम्भनदास ने अपनी यही इच्छा प्रकट की कि उन्हें फिर कभी सीकरी नहीं बुलाना, ब्रज से बाहर रहने से उन्हें श्रीनाथजी के दर्शन नहीं हो पाते हैं। एक बार गोस्वामी विठ्ठलनाथ उन्हें किसी यात्रा पर ले गये, श्रीनाथ के दर्शन के अभाव में दुःखी होकर वे लौट आये थे।

कुम्भनदास के नाम से स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। कुछ पद रागकल्पद्रुम, राग-रत्नाकर, वर्षात्सवकीर्तन, वसंतधमारकीर्तन आदि में संकलित हैं। कांकरोली विद्या विभाग से प्रकाशित पदसंग्रह में उनके 186 पद हैं। जबकि एक दूसरा संकलन नाथद्वारा के पुस्तकालय में बताया जाता है, जिसमें 367 पद हैं। उनके काव्य की भाषा साधारण ब्रजभाषा हैं, जिसपर संस्कृत का प्रभाव हैं।

● **परमानन्ददास :**

परमानन्ददास का जन्म 1493 ई. में कन्नौज, उत्तरप्रदेश में हुआ। बचपन से उन्हें काव्य लेखन एवं संगीत का ज्ञान था। भक्ति के लिए उन्होंने पदरचना करना आरंभ किया। वे अविवाहित थे, उन्होंने धनप्राप्ति के लिए कोई व्यवसाय नहीं किया। वल्लभाचार्य से प्रयाग में दीक्षा ग्रहण की। परमानंददास ने कृष्ण की बाल लीला संबंधी द लिखे हैं। उन्होंने बाल मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण किया है। उन्होंने कृष्ण की माधुर्य लीला के पद लिखे हैं। कृष्ण के मथुरागमन से भँवर गीत तक के प्रसंग का मुख्यत: वर्णन किया है। उनके काव्य में पुर्वराग-अवस्था की वियोग वेदना और मिलन की कामना का भी प्रभावपूर्ण वर्णन है। एक गोपी का कथन इसप्रकार है -

''जब ते प्रीति शम ते कीनी।

ता दिन ते मेरे इन नैननि नेंकहु नींद न लीनी।।''

इसका अर्थ यह है कि जिस दिन से कृष्ण से प्रीति है तब से गोपी की आँखों में नींद नहीं है।

परमानंददास को वियोग श्रृंगार के वर्णन में सफलता मिली है। गोपियों के माध्यम से मान की अवस्थाओं का राधाकृष्ण के नखशिख का वर्णन है। काव्य की भाषा चित्रात्मक, आलंकारिक है। दोहा, चौपाई आदि छंदों का प्रयोग काव्य में है। उन्होंने मुक्तक में काव्य लिखा है।

रचनाएं - परमानंदसागर, परमानंद के पद, वल्लभसंप्रदायी कीर्तन पदसंग्रह, दानलीला, ध्रुवचरित आदि।

● **कृष्णदास :**

कृष्णदास का जन्म गुजरात में राजनगर राज्य (अहमदाबाद) के चिलोतरा गाँव में 1496 ई. में हुआ। वे बाल्यावस्था में ब्रज आ गयें। उनकी प्रतिभा के कारण श्रीनाथमंदीर का अधिकारी पद उन्हें प्राप्त हुआ था। वे पहले गुजराती भाषा में लिखते थे फिर ब्रजभाषा का अभ्यास करके उसमें काव्यरचना करने लगे। 1510 ई. में कृष्णदास ने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षा ली। वे कवि और गायक थे। उन्होंने कृष्ण की बाल लीला, राधाकृष्ण प्रेम, रुपसौंदर्य का वर्णन किया है। कृष्णदास एक कुआं बनवा रहे थे। 1578 ई. में उसी कुएं में गिरकर उनकी मृत्यु हुई थी। उनके फुटकर पद उपलब्ध हैं। तत्सम पदावली के संयुक्त पद उनके काव्य में हैं।

● **गोविन्दस्वामी :**

गोविंदस्वामी का जन्म 1505 ई. में राजस्थान के भरतपुर राज्य के आंतरी गांव में हुआ। वे शिक्षित थे तथा उन्हें संगीतशास्त्र का ज्ञान था। वे विवाहित थे तथा उन्हें एक बेटी भी थी। पर संसार से विरक्त हो गए थे। वे ईश्वर के भजन स्वयं गाते थे, अन्य भक्तों को भी पद गायन सीखाते थे। गोविन्दस्वामी ने 1535 ई. में विठ्ठलनाथ से पुष्टिमार्ग में दीक्षा ली। बादशाह अकबर के दरबार का कवि तानसेन ने इनके पास पद गायन की शिक्षा ली थी। 1585 ई. को गोवर्धन में उनकी मृत्यु हुई।

गोविन्दस्वामी ने भजन कीर्तन के लिए जो पद लिखे, उनका संकलन 'गोविन्दस्वामी के पद' में किया है। उन्होंने कुल 600 पदों की रचना की जिसमें से 252 पद पुष्टि संप्रदाय में लोकप्रिय हैं। स्वतंत्र रुप से उन्होंने ग्रंथ नहीं लिखा है। उनके दों में कृष्ण की बाल लीला तथा राधा कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है। काव्य की भाषा ब्रज है। भाषा में संगीतात्मकता है।

● **छीतस्वामी :**

छीतस्वामी का जन्म 1515 ई. को मथुरा में हुआ। घर में जजमानी और पंडागिरी होती थी। ये बीरबल के पुरोहित थे। ये युवावस्था में उद्‌दंड प्रकृति के थे। तथा लडाई झगडे के लिए बदनाम थे। छीतू चौबे के नाम से मथुरा के उद्‌दंड लोगों में उनका प्रथम स्थान था। एक बार विठ्ठलनाथ को खोटा रुपया और थोथा नारियल चिढाने के लिए भेंट किया। विठ्ठलनाथ ने खोटे रुपये और नारियल को शुद्‌ध तथा परिपूर्ण बना दिया। छीतस्वामी ने चमत्कृत होकर गोस्वामी विठ्ठलनाथ के पैर पकड लिए। उनसे क्षमा माँगकर वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गये। गोवर्धन के पास पूंछरी नामक स्थान में तमाल वृक्ष की छाया में रहने लगे। उनकी रुचि काव्य एवं संगीत में थी। कीर्तन के लिए उन्होंने स्फूट पद लिखे थे। उनका संकलन पदावली में किया है। पदों की संख्या 200 है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। स्वतंत्र ग्रंथ की रचना उन्होंने नहीं की है। पदों में भक्ति के भाव हैं, जैसे –

> ''अहो विधना! तो पै अंचरा पसार मांगौं।
>
> जनम जनम दीजौ मोहि याही ब्रज वसिनौ।''

इस पद में छीत स्वामी भक्त के रुप में अपना आँचल फैलाकर ब्रजभूमि में कई जन्मों तक वास करने की माँग विधाता से करते हैं। छीतस्वामी की मृत्यु 1585 ई. में हुई।

- **चतुर्भुजदास :**

अष्टछाप के लोकप्रिय कवि कुम्भनदास के ये सबसे छोटे बेटे हैं। इनका जन्म 1530 ई. में गोवर्धन के पास जमुनावती गांव में हुआ था। अपने घर के कृषिकोर्य में उनका मन नहीं लगा। उनका ध्यान भजन कीर्तन में अधिक रहता था। पिता ने उन्हें गान कला की शिक्षा दी तथा पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया। उनके स्फूट पद चतुर्भूज-कीर्तन-संग्रह, कीर्तनावली, दानलीला के नाम से प्रकाशित किये गये हैं। चतुर्भुजदास के पदों में कृष्ण जन्म से लेकर गोपियों के विरह का वर्णन किया है। काव्य की भाषा साधारण ब्रजभाषा है। श्रीनाथ के मंदीर में गाये जाने वाले पदों के अनुकरण पद इन्होंने पद लिखे हैं। कवि की मृत्यु 1585 ई. में हुई।

संप्रदाय निरपेक्ष की रचनाएँ–

कृष्णभक्ति काव्यधारा में कुछ ऐसे कवि भी हैं, जिन्होंने किसी संप्रदाय में न रहकर स्वतंत्र रुप से राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। इनमें मीराबाई और रसखान प्रमुख हैं।

- **मीराबाई :**

मीराबाई का जन्म 1498 ई. में मेडता के निकट कुडकी गाँव में राठौड वंश की मेडतिया शाखा में हुआ। राव दूदा इस शाखा के प्रवर्तक थे। मीरा दूदा के पुत्र रावरत्न सिंह की पुत्री थी। मीरा के बचपन में उनकी माँ की मृत्यु हुई। मीरा के पिता रत्नसंह को कुडकी समेत बारह गाँव की जागीर प्राप्त थी। वे हमेशा युद्ध में व्यवस्त रहते इसलिए बेटी के लालनपालन में असमर्थ थे। मीरा का चचेरा भाई राजकुमार जयमल भक्त प्रकृति का था। निरंतर युद्ध और मृत्यु का सामना करनेवाले राजपूतों के यहाँ शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था नहीं थी। पारिवारिक वातावरण, समाज में प्रचलित लोकगीत, साधुओं का सत्संग आदि से मीरा ने शिक्षा प्राप्त की। लोकगीतों की मधुरता ने उन्हें संगीतप्रेमी बना दिया। राव दूदा वैष्णव थे। मीरा पर इसका प्रभाव पडा। बचपन से कृष्ण भक्ति करने लगी। मीरा का विवाह महाराणा सांगा के बडे बेटे भोजराज के साथ हुआ। विवाह के सात वर्ष बाद भोजराज की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु के बाद तत्कालीन प्रथा के अनुसार मीरा सती नहीं गई। वह अपने आपको कृष्ण की चिरसुहागिनी मानती थी। मीरा साधु संगति और भजन कीर्तन करने लगी। इस आचरण के लिए मीरा को संकट में डाला गया। राणा सांगा के उत्तराधिकारी विक्रमसिंह ने उन्हें विष का प्याला भेजा। पिटारी में भेजे साँप मीरा का कुछ बिगाड नहीं सके। अनेक दु:खों का सामना मीरा ने किया। मीरा के चचेरे भाई तथा चाचा बीरमदेव में उन्हें मेडता बुला लिया किंतु जोधपुर-नरेश मालदेव के आक्रमण के कारण वीरदेव अस्थिर हो गये।

मीरा कृष्ण भक्ति में स्वयं राधा बन गई थी। भक्ति में उन्होंने लोक लाज, राजमर्यादा की पर्वा नहीं की। इसके लिए राजघराने का कठोर विरोध सहन किया। उसके बाद मीरा वृंदावन चली गयी। वहाँ चैतन्य

मत के जीवन गोस्वामी से परिचय हुआ। उन्होंने मीरा को पूरा सम्माद दिया। वे वृंदावन से द्वारिका चली गयीं। रणछोडजी (कृष्ण) के मंदीर में भजन कीर्तन करने लगी। 1573 ई. में इसी मंदीर में उनकी मृत्यु हुई।

- **रचनाएं :**

मीराबाई पद लिखती रहीं और गाकर सुनाती भी थी। उनकी मृत्यु के बाद उनके नाम से पद प्रकाशित हुए हैं। उनके नाम से कुल 11 ग्रंथ हैं - गीत गोविन्द की टिका, नरसीजी का माहरा, राग सोरठ के पद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानुं रुसणं, मीरा की गरबी, रुक्मिणी मंगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरित और प्रस्फुट पद। इनमें से स्फुट पदों को छोडकर शेष अप्रामाणिक हैं। उनके स्फुट पद 'मीराबाई की पदावली' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है। इनके पद गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, खडी बोली आदि में मिलते हैं। पदों में वियोग श्रृंगार के साथ शांत रस का वर्णन है। काव्य में उत्प्रेक्षा, रुपक, उत्प्रेक्षा अलंकार मिलते हैं। मीरा की कृष्ण भक्ति में मिलन, उत्सुकता, आशा और प्रतिक्षा से संबंधित पद हैं। मीरा के पदों में रहस्यात्मकता है, आध्यात्मिकता है। वासना कहीं भी दिखाई नहीं देती। उनके गीतों में अनुभूति की तीव्रता है। मीरा के कुछ पद राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं, कुछ साहित्यिक भाषा में हैं। उनके प्रत्येक पद में गिरधर नागर शब्द है। मीरा के कृष्ण प्रेम मर्यादा के भीतर संयोग-वियोग श्रृंगार का वर्णन है। उनका प्रेम मानवीय मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, निजी और पारिवारिक प्रेम का चित्रण करता है। मीरा की प्रेम भक्ति स्वकीया की है।

''जाके सिर मोर मुगुट मेरो पति सोई।''

वे कृष्ण के स्वागत में कुलवधू की तरह श्रृंगार करती है। राजघराने को वह छोड-चूकी थीं पर राजघराने के अभिजात तत्कालीन गुण उन्होंने नहीं छोडे थे। कृष्ण भक्ति तथा प्रेम में वे स्वच्छंद नहीं हैं। मीरा अपने आपको दासी कहती है और गिरीधर गोपाल को मीरा के प्रभु।

''म्हांने चाकर राखोजी !''

स्त्री का मन प्रेम के विरह की अभिव्यक्ति अधिक व्याकूल होकर कर सकता है।

''मेरी म्हा तो दरद दिवाणी म्हाराँ दरद न जाण्याँ कोय।

घायल री गत घायल जाण्याँ हिवड़ो अगण सँजोय।।''

कहीं पर मीरा प्रेम में बावली होकर स्वच्छ भाव से नाच उठती है। -

''पग घुंघरु बाँध मीराँ नाची रे।''

मीरा का एक एक पद उनके कृष्ण प्रेम की व्याकूलता का व्यक्त करता है -

'बिरहनी बावरी सी भई।

उंची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई।''

सांसारिक धन-वैभव की क्षणभंगुरता का उन्होंने बार बार उल्लेख करके निर्वेद भाव की अभिव्यकित की है।

● **रसखान :**

रसखान मुसलमान कृष्णभक्त कवि हैं। रसखान का असली नाम सैयद इब्राहिम है। वे दिल्ली के रहनेवाले थे। वे दिल्ली से वृंदावन आये। उनके पदों के अनुसार विद्वानों ने उनका जन्म 1533 ई के आसपास स्वीकार किया है। रसखान स्वामी विठ्ठलनाथ से वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए। उन्होंने कई गृहयुद्ध देखे हैं। दिल्ली में हमेशा बादशाह बनने के लिए लडाइयाँ होती थी। बादशाह वंश में जन्मे रसखान ने धन संपत्ति, राज्य का त्याग करके भक्ति, प्रेम में अपना जीवन बीताया। श्रीकृष्ण की लीलागान के लिए कवित, सवैयों में पद लिखे। उन्होंने वात्सल्य रस के अंतर्गत कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया है। काव्य में प्रमुख रस श्रृंगार है, उसके आलंबन श्रीकृष्ण हैं - जिसमें कृष्ण के रुप पर मोहित राधा और गोपिकाओं की मन:स्थिती के चित्रण हैं। इसके साथ काव्य में ब्रजभूमि, पशुपक्षी, वन बाग संबंधी पद सरस हैं। काव्य की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। माधुर्य गुण, प्रसाद गुण ने काव्यभाषा को सरस स्वाभाविक बनाया है। कवित, सवैया, दोहा छंद का विशेष प्रयोग है।

● **रचनाएँ :**

सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम।

1) **सुजान रसखान :** यह ग्रंथ रसखान के स्फुट छंदों का संग्रह है। इसमें 181 सवैये, 17 कवित्त, 12 दोहे तथा 4 सोरठे हैं। इन छंदों के विषय भक्ति, प्रेम, राधा कृष्ण का रुप, बाँसूरी, कृष्ण लीला आदि हैं।

2) **प्रेमवाटिका :** इस ग्रंथ में कवि ने राधा कृष्ण को प्रेम के बगीचे के मालिन-माली मानकर प्रेम के तत्व का सूक्ष्म निरुपण किया है। यह 53 दोहों की लघु रचना है।

3) **दानलीला :** यह 11 छंदों का पद्यबंध है। इसमें रसखान ने पौराणिक प्रसंग को राधा कृष्ण संवाद के रुप में चित्रित किया है।

4) **अष्टयाम :** रसखान के इस ग्रंथ में संकलित दोहों में श्रीकृष्ण के प्रात: जागरण से रात्रिशयन तक की उनकी दिनचर्या एवं विभिन्न क्रीडाओं का वर्णन है।

● **कृष्णभक्ति काव्य धारा की विशषताएँ :**

1) **कृष्ण लीला वर्णन :** वैदिक और संस्कृत साहित्य में कृष्ण के तीन रुप मिलते हैं- 1) ऋषि एवं धर्मोपदेशक 2) नीति विशारद क्षत्रिय राजा 3) बाल एवं युवा रुप में अलौकिक तथा लौकिक लीला करनेवाले अवतारी पुरुष। इसमें से प्रथम रुप गीता में दूसरे रुप का महाभारत में तथा तीसरे रुप का पुराणों में विकास हुआ है। मध्यमकाल में कृष्ण के तीसरे रुप का वर्णन है। कृष्ण के चरित्र में बाद में धार्मिकता और भक्तिभावना का समावेश होता गया। मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने अपने पदों में कृष्ण भक्ति के लिए

कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। मध्यकाल में भागवद्पुराण को आधार मानकर, बाल, युवा का वात्सल्य रस युक्त वर्णन, युवांवस्था का श्रृंगार रस में कृष्ण-गोपी लीला के रुप में वर्णन किया गया है। इस वर्णन में कृष्ण-गोपी लीला के रुप में वर्णन किया गया है। इस वर्णन से आनंद की प्राप्ति होती है। इसमें माधुर्य भाव महत्त्वपूर्ण है। इन पदों का गायन, श्रवण, स्मरण, चिंतन करना ही कृष्ण भक्त कवियों का लक्ष्य था। सूरदास के काव्य में कृष्ण लीला वर्णन में विवेक, अध्यात्म भावना तथा संयम का ध्यान रखा है। निम्बार्क, चैतन्य, हरिवंश और हरिदास इन सभी कृष्ण भक्ति संप्रदायों में माधुर्य भाव का महत्त्व है। सूरदास के बाद के कवियों ने प्रेम के वर्णन कुछ चुने हुए प्रसंगों तक सीमित कर दिए। कृष्ण की लीला का स्थान उन्होंने यमुना नदी, बगीचे, तथा अत:पुर तक सीमित कर दिया। इन वर्णनों में सूक्ष्मता के स्थान पर स्थूलता आ गई, आध्यात्मिकता के स्थान पर सांसारिकता आ गई।

2) **विषयवस्तु में मौलिक उद्भावना :** हिंदी कृष्ण भक्त साहित्य के पूर्व संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश में कृष्ण काव्य की निर्मिती अधिक मात्रा मं हो चुकी थी। विविध कृष्ण भक्ति संप्रदायों की प्रतिष्ठा भी हो गयी थी। इस संपूर्ण कृष्ण काव्य का स्त्रोत भागवत पुराण है। मध्यकाल में भागवत लोकप्रिय था, उसके बिना कवि कर्म या आचार्य पद संभव नहीं था। भागवत के आधार पर कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णलीला का चित्रण किया है। मध्यकालीन कृष्ण भक्त काव्य में विषय वस्तु में मौलिक उद्भावना है। भागवत के कृष्ण गोपियों की प्रार्थना पर लीलाओं में भाग लेते हैं। हिंदी कवियों के कृष्ण स्वयं गोपियों के साथ लीला करते हैं, और गोपियों को प्रभावित करते हैं। भागवत में कृष्ण का ब्रह्म स्वरूप और अलौकिक रुप शुरु से अंत तक बना रहता है। हिंदी कवियों के कृष्ण बाल रुप में बाल लीलाएँ और युवा रुप में प्रणय लीलाएँ करते हैं। भागवत में एक गोपी कृष्ण के साथ प्रेम करती है। राधा का उसमें कहीं भी उल्लेख नहीं है। सूरदास जैसे कवियों ने राधा के प्रेम द्वारा एक अलौकिकता लायी है। भागवत में गोपियों का प्रेम पवित्र नहीं है। कृष्ण की अनुपस्थिति में बलराम मदिरापान करके उन्मत होकर उनसे व्यवहार करते हैं। हिंदी काव्य में गोपियों को केवल कृष्ण की ओर उन्मुख दिखाया गया हैं। हिंदी कवियों ने जयदेव एवं विद्यापति का आधार मानकर कल्पना का समावेश करके कृष्ण काव्य रचना की है। विद्यापति में राधा और कृष्ण के प्रेम वर्णन में जहाँ स्थूलता आ गयी है वहाँ नवीन कल्पना करके उसे आकर्षक बना दिया है। अत: यह कहा जा सकता है कि कृष्ण भक्त कवियों ने उस समय की लोक प्रचलित कृष्ण लीलाएँ तथा समाज का वातावरण देखते हुए नवीन प्रसंगों का निर्माण किया है।

3) **रस चित्रण :** कृष्ण काव्य में मुख्यत: एक रस है, ब्रज रस या भक्तिरस। अधिक विस्तार से कहें तो कृष्ण काव्य में वात्सल्य रस, शांत रस, श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। इन रसों के वर्णन में विभाव, अनुभाव, तथा संचारी भावों का अलग अलग विन्यास नहीं भी हो पर इससे रस चित्रण में बाधा नहीं आयी है। कुल मिलाकर सब जगह ब्रज रस या भक्ति रस का चित्रण है। सूरदास और मीरा में निर्वेद स्थायी भाव दिखाई देता है। सांसारिक जीवन के प्रति वैराग्य की निर्मिती करना यही उनका उद्देश्य है। सभी कृष्ण भक्त कवियों ने संसार से विरक्त होकर या मानसिक संन्यास लेकर कृष्ण भक्ति की है। भक्ति में दैन्य भाव आवश्यक होता है, पर प्रेम में आत्मीयता होती है, दैन्य नहीं। कृष्ण के अप्रतिम सौंदर्य में आनन्द की प्राप्ति

होती है। सूरदास के आरंभिक पदों में दैन्य भाव व्यक्त होता है। पूरे कृष्ण काव्य में दैन्य भाव स्थायी भाव की अपेक्षा संचारी भाव के रुप में अधिक व्यक्त हुआ है। सूरदास ने वात्सल्य भाव के विविध प्रसंग और उनके संदर्भ में उठनेवाले विविध भावों की निर्मिति की है -

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो।''

''मैया कबहिं बढैंगी चोटी।''

सूरदाास नें वात्सल्य और सख्य भाव का वर्णन मनोविज्ञान को आधार मानकर किया है। राधा-कृष्ण तथा गोपी और कृष्ण के श्रृंगार के सभी पक्षों का वर्णन सूरदास ने किया है। श्रृंगार के संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार का वर्णन श्रेष्ठ है। कृष्ण भक्ति काव्य में संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग श्रृंगार का वर्णन अधिक मुग्ध कर देता है। सूरदास और मीरा को मिलन में भी विरह का आभास होता है।

उदाहरण के लिए सूरदास के पद -

''अंखियां हरि दरशन की भूखी।''

''हरि बिछुरत फाट्यों न हियो।

भयो कठोर ब्रज ते भारी, रहिके पापी कहा कियो।''

कृष्ण काव्य में प्रासंगिक रुप से वीर रस, अद्‌भूत रस तथा हास्य रस का भी चित्रण हुआ है।

4) **भक्तिभावना :** कृष्ण भक्ति के मूल में भगवद् रति याने ईश्वर से प्रेम है, जो पात्र के अनुसार वात्सल्य, सख्य और कांता भाव में परिवर्तित हो जाती है। कृष्ण भक्ति काव्य की भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति है। यह भक्ति वैधी भक्ति से अलग है। वैधी भक्तिमें मर्यादा का समावेश है। वैधी भक्ति में भगवान के ऐश्वर्यमन रुप की प्रधानता होती है। वैधी भक्ति में भगवान के ऐश्वर्यमय रुप की प्रधानता होती है। वैधी भक्ति में लोकसंग्रह की चिंता बनी रहती है। प्रेमलक्षणा भक्ति में भगवान के सौंदर्यमय रुप की प्रधानता होती है। प्रेमलक्षणा भक्ति में कृष्ण प्रेम के सामने सामाजिक विधि, वेद, शास्त्र की मर्यादा नहीं होती। कृष्ण भक्ति राधा, गोपी से प्रेम में है। कृष्ण भक्ति के सभी संप्रदाय कांता भाव की भक्ति को महत्त्व देते हैं। निम्बार्क संप्रदाय में स्वकीयाभाव को माना गया है। चैतन्य संप्रदाय में परकीया प्रेम में माधुर्य भाव की निर्मिती है। आगे वल्लभ संप्रदाय में परकीय भाव की भक्ति मानी गयी है। परकीया भाव में किसी भी प्रकार की अनैतिकता नहीं है। परकीया भाव आदर्श प्रेम का प्रतीक है। यह रागानुराग भक्ति होती है। इस भक्तिभावना के अतिरिक्त दास्य भाव की भक्ति का भी चित्रण मिलता है। नवधा भक्ति का भी वर्णन है और प्रधानता रागानुराग भक्ति को है।

5) **पात्र एवं चरित्र चित्रण :** पात्रों के चरित्र के विविध पक्ष कृष्ण भक्ति काव्य में नहीं हैं। कृष्ण कवियों ने कृष्ण जीवन के कोमल अंशों को अपने काव्य का विषय बनाया जिससे प्रेम के विविध रुप इसमें नहीं आ पाए हैं। कृष्ण काव्य के नायक कृष्ण हैं। कृष्ण में मानवीय गुण तथा ईश्वरीय गुणों का मिश्रित रुप है। हिंदी कृष्ण काव्य के कृष्ण महाभारत के नीतिकुशल व्यवहार के योद्धा नहीं हैं बल्कि कृष्ण के बालगोपाल,

सांवले, छलिया कृष्ण हैं। अन्य पात्र जैसे नन्द–यशोदा, गोपी–गोप, कृष्ण से संबंधित हैं, जो कृष्ण के प्रति वात्सल्य, सख्य प्रेम दिखाते हैं। कृष्ण लीला करते हैं और ये पात्र लीला में शामिल होते हैं। राधा का चित्रण कृष्ण के प्रेम को आगे विकसित करता हैं। कृष्ण के सखाओं में उद्धव प्रमुख हैं। उद्धव बुद्धि और तर्क से निर्गुण भक्ति को प्रस्तुत करते हैं। पर उद्धव गोपियों के तर्क वितर्क करके निर्गुण संदेश पहुँचाना चाहते हैं पर सगुण भक्ति की विजय होती है। कृष्ण भक्त कवियों ने उद्धव द्वारा बुद्धि और तर्क पर भाव की, मस्तिष्क पर हृदय की, ज्ञान पर भक्ति की और निर्गुण पर सगुण की विजय प्रस्तुत की है। कृष्ण काव्य में पात्रों का चरित्र चित्रण प्रतीकात्मकता से किया गया है। राधा माधुर्य भाव की भक्ति का प्रतीक हैं। गोपियाँ कृष्ण भाव की भक्ति करती हैं। राधा तथा गोपियाँ भक्ति में कृष्ण से एकरुप हो जाती हैं। श्रीकृष्ण परमात्मा का प्रतीक है। गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। गोपियां निरंतर कृष्ण याने ईश्वर के प्रेम में व्याकूल होकर कृष्ण याने ईश्वर में लीन होने के लिए व्याकूल रहती है। आत्मा परमात्मा में विलीन होने के लिए व्याकूल रहती हैं।

6) **प्रकृति चित्रण :** कृष्ण भक्ति काव्य भावात्मक काव्य हैं। प्रकृति का चित्रण पृष्ठभूमि के रुप में या भावों के उद्‌दीपन के लिए अथवा अलंकारों की निर्मिती के लिए हुआ है। स्वतंत्र रुप से प्रकृति चित्रण हिंदी कृष्ण काव्य में नहीं हैं। पृथ्वी, आकाश, अंतरिक्ष, जलाशय, वन प्रांत, यमूना, नदी, बगीचा, भवन आदि के वर्णन काव्य में हैं। प्रकृति चित्रण जहाँ भी हुए हैं कवि की सूक्ष्म दृष्टि के सूचक हैं। प्रकृति के सुंदर और भयानक तथा अनुकूल तथा प्रतिकूल रुप में चित्रण करने में कवियों की कुशलता का पता चलता है। इन कवियों ने मानव प्रकृति के चित्रण में अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया हैं। मानव हृदय की सुंदरता का वर्णन कवियों ने किया हैं। मानव मन के भावों का चित्रण सुंदर तरीके से है।

7) **रीति तत्व का समावेश :** कृष्ण भक्ति के श्रृंगार के चित्रण के साथ साथ काव्य में रीति तत्व का समावेश भी होता है। सूरदास और नंददास की रचना में रीतित्व मिलते हैं। सूरदास की 'साहित्य लहरी' में नायिका भेद तथा अलंकारों का वर्णन है। अष्टछाप के अन्य कवियों को रीति की शिक्षा देने के लिए ये ग्रंथ लिखे होंगे। विठ्‌ठलनाथ ने भी श्रृंगार रस में रीति परक ग्रंथ लिखा है। नन्ददास की 'रसमंजरी' में नायिका भेद, हाव भाव, हेला, रति आदि का वर्णन है। अष्टछाप के अन्य कवियों के काव्य में भी नायिका भेद के उदाहरण मिलते हैं। उस समय चैतन्य संप्रदाय में भक्ति को काव्यशास्त्र का सांगोपांग रुप देने के लिए ''भक्ति रसामृत सिन्धु'' और ''उज्ज्वल नीलमणि'' की रचना की गई थी। चैतन्य संप्रदाय का पृष्टिमार्गी कवियों पर प्रभाव है।

8) **प्रेम की अलौकिकता :** कृष्ण भक्ति काव्य में चित्रित प्रेम अलौकिक प्रेम है। कृष्ण काव्य में चित्रित श्रृंगार रस माधुर्य रस के अंतर्गत आता है। कृष्ण और राधा के प्रेम में माधुर्य रस की निर्मिती हुई है। माधुर्य रस के आलंबन के आश्रय नायक, नायिका तथा सहायक पात्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में श्रृंगारिक वर्णनों के कारण तत्कालीन परिस्थिति है। तत्कालीन अधिकारी वर्ग विलासी जीवन बीताता था। मंदिरों का वातावरण भी विलासी था। भगवान कृष्ण के लिए उत्कृष्ट भोजन की व्यवस्था की जाती थी। युवा कृष्ण के मनोरंजन के लिए सुंदर वेश्याएँ निमंत्रित की जाती थीं। गोस्वामी भगवान का प्रतिरुप थे। गोस्वामियों को भगवान मानकर सेविकाएँ अपना सर्वस्व उनको अर्पण करती थी। कृष्ण भक्ति साहित्य पर चैतन्य, हितहरिवंश,

हरिदास तथा राधा स्वामी के संप्रदाय का प्रभाव पडा था। जिससे राधा कृष्ण के लौकिक चित्रणों के लिए प्रेरणा मिली।

9) **सामाजिक पक्ष :** कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण लीला का वर्णन है। लीला का संबंध लोक मंगल भावना या समाज से कोई वास्ता नहीं होता, फिर भी कृष्ण काव्य में उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति के यथार्थ वर्णन मिल जाते हैं। सूरदास के काव्य में समाज के वर्णन पाए जाते हैं। सूरदास ने परीक्षित के पश्चाताप तथा भागवत के कुछ प्रसंगों को प्रस्तुत करके तत्कालीन जीवन की उद्देश्यहीनता की आलोचना की है। उन्होंने निर्गुण संतों, पांडित्य का अभिमान करने वाले संतो, निष्फल काया कष्ट में निरत हठयोगियों की उद्भव गोपी संवाद में खबर ली है। कृष्ण भक्त कवियों ने वर्णाश्रम धर्म पतन, साामजिक कुरीतियों और धार्मिक आडंबरों का चित्रण करते हुए कलियुग के प्रभाव का वर्णन किया है। इन कवियों की भक्ति वैयक्तिक होते हुए भी लोकमंगल की भावना लेकर चलती है। कृष्ण भक्त कवियों की साधना वैयक्तिक होते हुए भी लोकमंगल की भावना से युक्त है।

10) **ऐतिहासिक पक्ष :** मधुरा और वृंदावन में रहकर कृष्ण भक्ति करनेवाले कवियों के साहित्य में दिल्ली की राजनीतिक हलचलों का वर्णन नहीं है। पर उनके साहित्य में ऐतिहासिक पक्ष मिलता है। भक्तों की स्तुतियाँ और प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने वल्लभ कुल का परिचय दिया गया हैं। कई भक्त कवियों ने अनेक भक्तों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है। इनका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व है। अष्टछाप के कवियों में तत्कालीन सुंदर सांस्कृतिक चित्रण मिलते हैं। राधावल्लभी भक्तों ने हितहरिवंश को अवतार मानकर उनका यशोगान किया है।

11) **काव्य रुप :** कृष्ण कवियों का साहित्य मुख्य रुप से गेय मुतक रुप में लिखा गया है। कवियों ने कृष्ण के जीवन के जिस भाग को अपने काव्य के लिए चुना वह मुक्तक के लिए उपयुक्त था। संपूर्ण कृष्ण काव्य में प्रबंध का रुप बहुत कम पाया जाता है। सूरदास के काव्य में कृष्ण की संपूर्ण कथा देने का प्रयत्न है। कृष्ण की संपूर्ण कथा ब्रजरत्नदास ने अपने ग्रंथ 'ब्रजविलास' में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। नंददास के भँवरगीत, रुक्मिणी मंगल और रास पंचाध्यायी आदि में कथात्मकता की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसके लिए वृन्दावनदास का 'लाड सागर' भी उल्लेखनीय है। संपूर्ण कृष्ण काव्य में कथासूत्र के रुप में कृष्ण जन्म, गोकुल आगमन, शिशुलीला, नामकरण, अन्न, प्राशन, वर्षगांठ आदि संस्कारो तथा जागने, कलेऊ करने, खेलने, हठ करने, भोजन करने सोने आदि के वर्णन मिलते हैं।

कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता, और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में हुआ है। इसके साथ राधावल्लभी भक्त अनन्य अली का 'स्वप्न प्रसंग' ध्रुवदास का 'सिद्धांत विचार' तथा प्रियादास का 'राधानेह' गद्य रचनाएं हैं।

12) **शैली :** कृष्ण काव्य में मुख्यत: गीति शैली पायी जाती है। इन काव्यों में गीति शैली के सभी तत्व भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता, भाषा की कोमलता आदि मिलते हैं। गोपियों की अनुभूतियों के वर्णन में वैयक्तिकता तत्व का समावेश हो जाता है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्तियों

का प्रयोग है। सरल शब्दों में मार्मिक व्यंजनाएं की गई हैं। कवि का भाषा पर अधिकार है। नेत्र आदि अंगों के न जान कितने नवीन उपमान जुटाए गए हैं। शब्दशक्ति, अलंकार, गुण सभी दृष्टि से कृष्ण काव्य श्रेष्ठ है। सूरदास के काव्य में भाव, भाषा, अलंकार, छंद योजना, उक्ति वैचित्र्य, संगीतात्मकता दिखाई देती है।

13) **छन्द :** कृष्ण काव्य भावाप्रधान काव्य है। इसकी रचना गीति पदों में हुई है। छंदों में चौपाई, चौबोला सार तथा सरसी छंदों का प्रयोग है। नंददास के रुप-मंजरी तथा रासमंजरी आदि ग्रंथों में दोहो और चौपाई दोनों का प्रयोग है। इस काव्य में दोहा-रोला, और रोला-दोहा का मिश्रित रुप का प्रयोग भी हुआ है। कृष्ण भक्ति काव्य में कवित, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग मिलता है।

- **भाषा :**

कृष्ण भक्ति साहित्य में ब्रज की लोकप्रचलित भाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा के शब्दों की तोड मरोड, लिंग, संबंधी गडबड, अर्थभेद, ग्राम्य प्रयोग कृष्ण काव्य में मिलते हैं। भाषा के परिमार्जन, रुप निर्धारण, स्थिरीकरण और व्याकरण व्यवस्था की ओर कृष्ण भक्त कवियों ने ध्यान नहीं दिया। इस तरह से कलात्मकता की दृष्टि से कृष्ण भक्ति साहित्य श्रेष्ठ है।

- **स्वयं अध्ययन के प्रश्न :**

I) **निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।**

1) दक्षिण भारत में .... भक्तों द्वारा भक्तिआंदोलन प्रारंभ हुआ।

अ) आलवार ब) राम क) कृष्ण ड) सूफी

2) .... भक्ति की स्थापना महाभारत, गीता, पुराण ग्रंथों में हुई है।

अ) राम ब) वैष्णव क) शिव ड) शंकर

3) तमिल प्रदेश में आलवारों की संख्या .... थी।

अ) 9 ब) 10 क) 11 ड) 12

4) सगुण भक्ति काव्यधारा .... का विरोध करती है।

अ) विशिष्टाद्वैतवाद ब) पुष्टिमार्ग क) अद्‌वैतवाद ड) एकेश्वरवाद

5) सगुण भक्त कवियों ने .... का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

अ) शिष्य ब) भक्त क) गुरु ड) प्रकृति

II) **ऊचित मिलान कीजिए ।**

1) सख्य भाव की भक्ति i)तमिल

2)	आलवार	ii)	अवधी
3)	तुलसीदास	ii)	सूरदास
4)	सूरदास	iv)	पुष्टिमार्ग
5)	आचार्य वल्लभ	v)	ब्रजभाषा

3.2.3 **रामभक्ति काव्य की विशेषताएँ , रामभक्ति काव्यधारा के कवि तुलसीदास**

1) **राम का स्वरूप :** राम भक्त कवियों के ईश्वर राम, विष्णु के अवतार हैं। वे परम ब्रह्म स्वरूप हैं। वे धर्मोद्धार तथा पाप का विनाश करने के लिए युग युग में अवतार लेते हैं। भक्त कवि मानव रुप में ईश्वर राम का साधक है।

राम में शील, शक्ति, सौदर्य का समन्वय है। राम का सौंदर्य अप्रतिम है। वे शक्ति से दुष्टों का नाश करते हैं। भक्तों को संकट से मुक्त करते हैं। अपने शील गुण से वे समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वे भीतर भी करुणा से पतितों का उद्धार करते हैं। लोगों को आचार व्यवहार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं, और आदर्श के संस्थापक हैं। यही कारण है परवर्ती साहित्य में राम सीता के नाम पर स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण नहीं हुआ जैसा राधा कृष्ण के नाम पर है। पर आगे राम भक्ति परंपरा में कृष्ण भक्ति साहित्य के अनुकरण पर सखी संप्रदाय का उदय हुआ, जिसमें रसिकता का समावेश हुआ।

2) **समन्वयात्मकता :** राम भक्तिकाव्य का दृष्टिकोण उदार है। राम भक्ति काव्य में कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति है। तुलसीदास सेतुबन्ध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करवाते हैं। इस काव्य में समन्वय की भावना दिखाई देती है। राम भक्ति से सबकुछ प्राप्त हो सकता है। फिर भी उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म के बीच समन्वय स्थापित किया है। रामकाव्य में सगुणवाद निर्गुणवाद में समन्वय बताया है। रामभक्तों का ईश्वर सगुण भी है, और निर्गुण भी है। पर भगवान का सगुण रुप भक्तिसुलभ है।

3) **लोकसंग्रह की भावना :** रामकाव्य में जीवन की सभी अवस्थाओं का व्यापक चित्रण है। लोक कल्याण की भावना इस काव्य में है। भक्ति करते हुए इन्होंने गृहस्थ धर्म का आदर्श प्रस्तुत किया है। राम सीता को आदर्श गृहस्थ के रुप में प्रस्तुत करके जीवन स्तर को ऊँचाई पर पहुँचाने की कोशिश की है। समाज के सामने उच्च आदर्श रखकर लोकसेवा की है। राम आदर्श पुत्र, आदर्श राजा हैं। सीता आदर्श पत्नी है, कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, हनुमान आदर्श सेवक हैं, सुग्रीव आदर्श सखा है। इस काव्य में जीवन का मूल्यांकन आदर्श के बल पर है। राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामी-सेवक, पडौसी-पडौसी के आपस में अच्छे संबंधों पर आधारित समाज आदर्श पर ही जी सकता है। राम मर्यादापुरुषोत्तम है और आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं।

4) **भक्ति का स्वरुप :** राम भक्त कवि अपने और राम के बीच सेवक-सेव्य भाव को स्वीकार करते हैं। वे राम के शील, शक्ति, सौंदर्य पर मुग्ध हैं।

‘सेवक सेव्य भाव बिनु, भव ने तरिय उरगारि।’

ईश्वर से सेवक सेव्य भाव रखे बिना इस संसार में उद्धार नहीं होगा। राम काव्य में राम की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है, पर अन्य देवी देवताओं की भक्ति भी दिखाई देती है। राम भक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण उदार है। वे ज्ञान और कर्म का अलग अलग महत्त्व स्वीकार करते हुए भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। इनके लिए जीव भी सत्य है, क्योंकि वह ब्रह्म का अंश है। ईश्वर ब्रह्म है और मानव ब्रह्म का अंश है। राम भक्ति काव्य में नवधा भक्ति के प्राय: सभी अंगों का विधान है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद, सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन। भक्ति की ये नव विधाएँ इंद्रिय, मन और हृदय को भगवान के प्रति निवेदन करती हैं। भक्त विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित हैं।

5) **रस :** राम कथा व्यापक है। उसमें जीवन की विविधताओं का सहज समावेश है। सभी रसों का समावेश इस साहित्य में है पर मुख्यत: शांत रस पाया जाता है। राम को मर्यादापुरुषोत्तम दिखाने की वजह से श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष का विस्तार से वर्णन नहीं है। युद्ध वर्णन में वीर और रौद्र रस है। नारद मोह में हास्य रस की निर्मिती हुई है। राम के विलाप में, लक्ष्मण की बेहोशी के प्रसंगों में करुण रस का वर्णन है। राम के ब्रह्म स्वरूप के चित्रण में अद्‌भूत रस और भक्ति रस दिखाई देता है। तुलसीदास के रामचरितमानस में सभी रसों का वर्णन है। राम भक्ति काव्य के परवर्ती साहित्य में जब सखी संप्रदाय का उद्‌भव होता है, तब श्रृंगार रस का परिपूर्ण वर्णन दिखाई देता है। सखी संप्रदाय में नखशिख, अष्टयाम, आदि रतिउत्तेजक विषयों का वर्णन होने लगा।

6) **पात्र तथा चरित्र चित्रण :** राम भक्ति काव्य के पात्र लोक मर्यादा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इन पात्रों का चरित्र महान तथा अनुकरण करने योग्य होता है। जीवन की सभी अवस्थाओं का चित्रण काव्य में है। रजोगुणी, तमोगुणी तथा सतोगुणी सभी पात्रों की अभिव्यक्ति काव्य में है। राम कई रुपों में लीला करते हुए पूर्ण ब्रह्म हैं। अंत में सत्य की असत्य पर विजय होती हैं। तुलसीदास काव्य में हर जगह राम के ब्रह्मत्व की याद दिलाते हैं। राम मानव रुप में जीवीन के व्यवहार कर रहे हैं। निर्गुण संतो के राम ऐतिहासिक न होकर ब्रह्म हैं।

‘दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम को मरम है आना।’ सगुण काव्य में राम ऐतिहासिक तथा कालातीत हैं।

7) **राम भक्ति में मधुर रस का समावेश :** तुलसीदास के समय रामभक्ति में मधुर रस का समावेश हुआ था। पर वह परिपूर्ण नहीं हो सका क्योंकि तुलसीदास की भक्ति दास्यभाव की थी। तुलसीदास के राम मर्यादावादी थे। मधुर रस की प्रकृति सहज गोपनीयता में रही है। तुलसीदास ने राम के जिस दुष्टों का दमन करनेवाले रुप की कल्पना की थी। उसकी जगह छबीले राम ने ले ली। छबीले राम लीला करने लगे। 16 वी शतीं के बाद साहित्य में कृष्ण की प्रेम लीला के अनुसार पर राम की रसिकता पूर्ण लीलाओं ने स्थान ले लिया। राम जानकी के प्रणय-विलास, हास, वन और जल विहारों तथा काम क्रीडाओं का चित्रण किया

जाने लगा। तुलसीदास ने जितनी दृढता से मर्यादावाद का पालन किया, उनके परवर्ती साहित्यकारों ने प्रतिक्रिया रुप में मर्यादा को कोई महत्त्व न देकर राम भक्ति साहित्य में रसिकता का समावेश किया।

8) **काव्य शैली :** सगुन भक्ति परंपरा के कवि स्वयं विद्वान थे या विद्वानों की संगति में रहकर साहित्य के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। उनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। राम काव्य में सभी शैलियों की रचनाएँ मिलती है। रामचरितमानस और अष्टयाम में वीरगाथाओं की प्रबन्ध पद्धति है। राम गीतावली और राम ध्यान मंजरी में विद्यापति की गीत पद्धति, रामायण, महानाटक और हनुमन्नाटक में संस्कृत के राम कवियों की संवाद पद्धति है। और रामचन्द्रिका में रीति-पद्धति दिखाई देती है। तुलसीदास के काव्य में दोहा चौपाई वाले चरित्र काव्य, कवित सवैया, दोहों में अध्यात्म, धर्म नीति के उपदेश, बरवै छंद, विनय के पद, लीला के पद, वीर काव्य के लिए उपयोगी छप्पय, तोमर आदि की पद्धति, दोहों में सगुण विचार और मंगल काव्य आदि का समावेश है।

9) **छंद :** रामभक्तिकाव्य में कवियों ने छंदों का प्रयोग कुशलता से किया है। तुलसीदास के काव्य में दोहा, चौपाई का प्रमुखत: से प्रयोग किया है। वीरगाथाओं के छप्पय, सन्त काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई, आदि का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। केशव ने अनेक छंदों में कला का प्रदर्शन किया है, परंतु उनमें भावानुकूलता नहीं है।

10) **अलंकार :** राम भक्त कवि पंडित है। तुलसीदास के काव्य में सभी प्रकार के अलंकार मिल जाते हैं। परंतु वे उपमा और रुपक के लिए लोकप्रिय हैं। केशव के काव्य में शब्दालंकार पाए जाते हैं। अन्य कवियों ने अलंकारों के प्रयोग बहुत कम किए हैं।

11) **भाषा :** राम काव्य की भाषा अवधी है। राम-चन्द्रिका में केशव ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। राम भक्ति के रसिक संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की है। तुलसीदास ने अवधी और ब्रज भाषा में काव्य लिखा है। राम काव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग हैं। तुलसीदास की भाषा में स्वाभाविकता, भावात्मकता, रसानुकूलता है। उनका शब्द चयन पांडित्यपूर्ण है। तुलसीदास की भाषा स्वाभाविक, सरस है।

रामभक्ति काव्यधारा के कवि तुलसीदास

- **तुलसीदास :**

तुलसीदास के जीवनवृत्त के बारे में अंत:साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य के आधार पर विद्वानों ने विविध मत प्रस्तुत किए हैं। बेनीमाधवदास-प्रणित 'मूल गोसाईं-चरित' तथा महात्मा रघुबरदास-रचित 'तुलसीचरित' में गोस्वामी जी का जन्म संवत् 1554 दिया हुआ है। बेनीमाधवदास जी की रचना में गोस्वामी जी की जन्मतिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी का भी उल्लेख है। इस संवत के अनुसार इनकी आयु 126-127 वर्ष की ठहरती है। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म संवत 1583 स्वीकार किया गया है। मिरजापुर के प्रसिद्ध रामभक्त

पं रामगुलाम द्विवेदी ने जनश्रुति के आधार पर इनका जन्म संवत् 1589 स्वीकार किया गया है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने भी इसी जन्म संवत को मान्यता दी है। अंत:साक्ष्य के आधार पर भी इनकी जन्मतिथि सं. १५८९ (सन् 1532) अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है। इसी प्रकार इनके जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों में भारी मतभेद हैं। 'मूल गोसाईचरित' और 'तुलसीचरित' में इनका जन्मस्थन राजापुर बताया गया है। शिवसिंह सेंगर और रामगुलाम द्विवेदी भी राजापुर को गोस्वामी का जन्मस्थान मानते हैं। लाला सीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा डॉ. रामदत्त भारद्वाज सोरों को तुलसीदास जी का जन्मस्थान मानते हैं। ''मैं पुनि निज गुरू सन सुनी, कथा सो सूकर खेत''- गोस्वामी जी की इस उक्ति को ये विद्वान प्रमाणिक मानते हुए सूकरखेत का अभिप्राय 'सोरों'मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अभिमत है कि 'सूकरखेत' को भ्रम से सोरों समझ लिय गया। 'सूकरछेत्र' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ के आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'सोरों' के पक्ष में दिए जानेवाले प्रमाणों को बहुत महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी काफी वजनदार माना है। वे इन प्रमाणों को यों ही टाल देने के पक्ष में नहीं है।

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था और वे पत्यौजा के दूबे थे : ''तुलसी परासर गोत दूबे पति औजा के।'' मिश्रबंधुओं ने इन्हें कान्यकुब्ज माना है। ''मूल गोसाईंचरित'' और 'तुलसीचरित' के आधार पर आचार्य शुक्ल आदि ने इन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण माना है। ''मातु पिता जग जाइ तज्यो जनामि, करम बिनु विधिहु सृज्यो अवडेरे'' (विनयपत्रिका) आदि अंत:साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि तुलसीदास जी का बाल्यकाल अत्यंत विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। माता-पिता के द्वारा छोड़ दिए जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया और जान-भक्ति की शिक्षा-दीक्षा भी दी। गोस्वामी जी का विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। अत्यधिक आसक्ति के कारण जब एक बार इन्हें अपनी पत्नी में मधुर भर्त्सना ''लाज न आई आपको दौरे आएहुं साथ'' मिली तब इनकी भावधारा सहसा लौकिक विषयों से विमुख हो कर प्रभु-प्रेम की ओर उन्मुख हो गई।

इनके द्वारा विरचित अनेक ग्रंथ विविध सूत्रों से उपलब्ध हुए हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में इनके छोटे-बड़े बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है। दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरित मानस, रामाज्ञा प्रश्नावली और विनयपत्रिका बड़े ग्रंथ हैं तथा रामललानहलु, पार्वतीमंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण, वैराग्यसंदीपनी और कृष्णगीतावली छोटे ग्रंथ हैं। 'शिवसिंह सरोज' में दस और ग्रंथों के नाम भी गिनाये गये हैं- ''रामसतसई, संकटमोचन, हनुमद्बाहुक, रामशलाका, छंदावली, छप्पयरामायण, कड़खारामायण, रोलारामायण, झूलनारामायण, और कुंडलियारामायण।''

इन सभी रचनाओं में भाव-वैविध्य तुलसीदास जी सबसे बड़ी विशेषता है। एक ओर तो उन्होंने नाथपंथियों के प्रभाव से नष्ट होती हुई जनमानस की विश्वासमयी रागात्मिका वृत्तियों को रामभक्ति के माध्यम से पुन: पल्लवित किया और दूसरी ओर रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विश्रृंखलित हिंदू समाज को केंद्रित किया।

उनकी भक्तिभावना कबीर आदि निर्गुण भक्तों की ज्ञानयोगमयी भावना का भांति रहस्यमयी नहीं है। वह सीधी, सरल एवं सहजसाध्य है। उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं, वे सभी के लिए उसी प्रकार सुलभ है, जिस प्रकार अन्न और जल :

निमग अगम, सहाब सुगम राम सांचिली चाह।

अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबहि जग मांह।।

तुलसीदास जी की यह भक्तिभावना मूलत: लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित है। जिस समय समसामायिक निर्गुण भक्त संसार की असारता का आख्यान कर रहे थे और कृष्णभक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूपक का आलंबन ग्रहण कर जीवन और जगत में व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयास कर रहे थे, उस समय गोस्वामी तुलसीदास जी ने मर्यादापुरूषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संचलित अद्भूत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया। तुलसी का समन्वयवाद उनकी भक्तिभावना में भी दिखाई देता है। 'रामचरितमानस' में उन्होंने राम और शिव दोनों को एक-दूसरे का भक्त अंकित करके वैष्णव एवं शैव संप्रदायों को एक ही सामान्य भावभूमि प्रदान की है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंता का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जानेवाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।''

भाव-वैविध्य के अनुरूप शैली-वैविध्य भी गोस्वामी जी की विशेषता है। अपने समय में प्रचलित वीरगाथा की छप्पय-पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति-पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया पद्धति, नीतिकाव्यों की सूक्ति पद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई की प्रबंध-पद्धति आदि सभी काव्य-शैलियों का सफल प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। प्रबंध सौठव, चरित्र-चित्रण, प्रकृति वर्णन, अलंकार विधान, भाषा और छंद प्रयोग की दृष्टि से भी वे अद्वितीय कलाकार हैं। उक्ति-वैचित्र्य उनकी प्रमुख विशेषता है। वनगमन के समय राम विविध युक्तियों के द्वारा सीता को साथ न चलने के लिए समझाते हैं, किंतु सीता अपनी एक उक्ति के द्वारा ही राम को निरूत्तर कर देती है : ''मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू, तुमहि उचित तप मो कहं भोगू।'' अवधी और ब्रज दोनों ही भाषाओं का प्रयोग गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं में किया है, किंतु अधिकांश रचनाओं की भाषा अवधी ही है, जिसमें प्रसंगानुकूल संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

इस तरह से राम भक्ति काव्य धारा का सैद्धांतिक अध्ययन हमने किया, अब हम कृष्ण भक्ति काव्य धारा का सैद्धांतिक अध्ययन करेंगे ।

3.2.4 रामकृष्ण काव्येत्तर काव्य, भक्तितेर कवि एवं रचनाएँ ।

भक्तिकाल में निर्गुण-सगुण भक्ति की प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य-प्रवृत्तियां भी लक्षित होती हैं, जिनका उल्लेख साहित्य के इतिहास में आवश्यक है। ये हैं : वीरकाव्य, प्रबंधात्मक चरितकाव्य नीतिकाव्य, अकबरी दरबार का काव्य और रीतिकाव्य।

वीरकाव्य

धार्मिक काव्य की प्रमुखता के कारण भक्तिकाल में वीरकाव्य-धारा अपेक्षाकृत कृश हो गयी, फिर भी उसका नैरंतर्य चलता रहा। वैसे तो 'रामचरितमानस', 'रामचंद्रिका' प्रभृति रचनाओं में भी वीर रसक का प्रसंगवश समावेश हुआ है, किंतु आदिकाल की भांति इस युग में वीरकाव्यों की स्वतंत्र रचना भी हुई । यहां उन्हीं का अध्ययन अपेक्षित है। ऐसे काव्य प्राय : राजाश्रय में लिखे गये। इनमें प्रमुखतया आश्रयदाताओं की यशोगाथा, युध्द-सज्जा, अतिशयोक्तिपूर्ण विरुदावली, दान एवं शौर्य संबंधी स्तुति, शत्रु के उपहास, युध्दों की भयानकता आदि को स्थान प्राप्त हुआ है। इंस काल में वीरकाव्य की रचना करने वाले प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं : श्रीधर, नल्हसिंह, राउ जैतसी रासोकार, दुरसा जी आढा, दयाराम (दयाल), कुंभकर्ण, न्यामत खां जान।

कवि श्रीधर ने ईडर के राजा रणमल्ल राठौर के आश्रय में रह कर 1400 ई. के लगभग 'रणमल्लछंद'की रचना की थी। संप्रति, इस काव्य के 70 छंद उपलब्ध है, जो डॉ. दशरथ शर्मा व्दारा संपादित 'रास और रासान्वयी काव्य' में संकलित हैं। रणमल्ल ने 1390 ई. में पाटण के सूबेदार जफ़र खां को युध्द में पराजित किया था। 'रणमल्लछंद' की भाषाशैली ओजपूर्ण है और इसमें वीर रस का सुंदर परिपाक मिलता है। नल्हसिंह व्दारा रचित विजयपालरासो प्रसिध्द तो है, किंतु इसका रचनाकाल संदिग्ध है। मिश्रबंधुओं के अनुसार इसकी रचना 1298 ई. में हुई थी, किंतु परवर्ती विव्दान इसका रचना काल 1543 ई. मानते हैं। इस काव्य के केवल 42 छंद ही उपलब्ध हैं। इसमें विजयगढ (करौली राज्य) के राजा विजयपाल और पंग राजा के युध्द का वर्णन है। इसकी भाषा पर उत्तरकालीन भाषाप्रभाव पड़ते रहे हैं, अत: जब तक इनकी पूर्ण और प्रामाणिक प्रति न मिल जाये, तब तक इसके संबंध में कछ भी नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत संदर्भ में तीसरी उल्लेखनीय कृति 'राउ जैतसी रासो' है, जिसके रचयिता और रचनाकाल के विषयम में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। इसमें बीकानेर नरेश राव जैतसी तथासम्राट हुमायूं के भाई कामरान के युध्द का वर्णन है, जिसमें राव जैतसी की विजय हुई थी। यह घटना 1543 ई. के लगभग की है, अत: इस ग्रंथ का रचना-काल भी इसी के आसपास माना जाता है। डिंगल भाषा में उचित प्रस्तृत कृति में सानुप्रासिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसमें दोहा, मोतियदाम और छप्पय नामक छंद प्रयुक्त है और कुल छंद-संख्या 90 है। इस धारा के चौथे उल्लेखनीय कवि हैं दुरसा जी आढा। इनका जन्म मारवाड के धूंदला गांव में एक निर्धन चारणकुल में 1535 ई. में हुआ था। ये डिंगल भाषा के बडे प्रतिभावन कवि थे। अकबर के अतिरिक्त बीकानेर, जयपुर तथा सिरोही के राजवंशो की ओर से भी इनका सम्मान हुआ था। इनकी रचनाओं में 'विरुद छिहत्तरी' सर्वप्रसिध्द

है। इसमें महाराणा प्रताप का यशोगान हुआ है । इसकी रचना दोहा छंद में हुई है और शैलीगत उद्बोधन की दृष्टि से यह रचना अप्रतिम है ।

भक्तिकाल के एक अन्य वीरगाथाकार दयाराम 'अथवा दयाल कवि' ने सीसोदिया वंश के राणा कर्णसिंह के आश्रम में रह कर 1618 ई. के लगभग 'राणारासो' नामक ग्रंथ की रचना की थी । इसमें सीसोदिया कुल के प्रमुख राजाओं : कुंभा, उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह के युध्दों और वीरतापूर्ण क्रियाकलापों का वर्णन है। डिंगल भाषा में रचित इस कृति में 875 छंद है और भाषा प्रवाह के साथ छंद-वैविध्य की ओर भी कवि का ध्यान रहा है। कुंभकर्ण-कृत 'रतनरासो' मे रतलाम के महाराज रतनसिंह का प्रशस्ति वर्णन है। इसकी रचना अनुमानत: 1618-1624 ई. के मध्य हुई थी। इसकी रचना प्रवाहपूर्ण डिंगल भाषा में हुई है। इस धारा की अंतिम उल्लेखनीय कृति 'क्याम खां रासो' (1634) है, जिसके रचयिता न्यामत खा जान फतेहपुर (शेखावटी) के शासक अलिफ खां के पुत्र थे। इस ग्रंथ में क्याम खां चौहान तथा उनके वंशजों के युध्दादि का वर्णन है। क्याम खां के वंश में अलिफ खां अधिक प्रसिध्द हुए थे। इन्हीं का प्रमुख वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। इस वंश के पूर्वजों ने धर्म-परिवर्तन करने पर भी अपनी 'चौहान' पदवी नहीं बदली। इसी प्रकार इस वंश के राजाओं में क्षत्रियों की संस्कृति भी अक्षुण्ण बनी रही। यह ग्रंथ ऐतहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्णन-शैली की दृष्टि से यह ग्रंथ इतिवृत्तात्मक है और ब्रजभाषा का सरल स्वरुप इसकी अन्य उल्लेखनीय विशेषता है।

प्रबंधात्मक चरितकाव्य

भक्तिकाल में सधारु अग्रवाल, शालिभद्द सूरि, गौतमरासकार, जाखू मणियार, देवप्रभ और पद्मनाभ ने कुद ऐसे चरितमूलक प्रबंधकाव्योंकी रचना की थी, जो या तो आदिकाल के जैन-काव्या की परंपरा में विरत हैं या पौराणिक संदर्भ विशेष पर आधिारित हैं अथवा जैन-काव्य प्रवृत्तियों एवं रासोकाव्य-शैली की मध्यवर्ती कडी के रुप में ध्यान आकृष्ट करते हैं। प्रथम वर्ग की रचनाओं में सधारु अग्रवाल का (पद्युम्नचरित) (1354) ब्रजभाषा के अद्यावधि प्राप्त ग्रंथों में सबसे प्राचीन माना गया है। इसमें चौबीस तीर्थंकरों की वंदना के पश्चात प्रद्युम्न की कथा का वर्णन किया गया है। नारद का सत्यभामा पर क्रोध, कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह, प्रद्युम्न का दैत्य व्दारा अपहरण, शिला के निचे कालासंवर को उसकी प्राप्ति, प्रद्युम्न के लिए रुक्मिनी का विलाप, जिनेन्द्र पद्मनाभ के पास नारद का गमन, प्रद्युम्न व्दारा कालासंवर के शत्रुओं का विनाश, व्दारका-आगमन, विवाह आदि घटनाएं इस काव्य की विषय वस्तु का निर्माण करती हैं। अंत में प्रद्युम्न जिनेन्द्र से दीक्षा लेता है और कठिन तपस्या करके मोक्ष पाता है। इस प्रकार यह काव्य जैन-कथाग्रंथो की श्रेणी में आता है। काव्यतत्व की दृष्टि से इसमें विभिन्न रसों के सरस चित्र मिलते हैं। प्रद्युम्न-वियोग का एक चित्र देखिए:

नित-नित सीजइ विलखी खरी, काहे दुखी विधाता करी।
इकु धाजइ अरु रोवई वयण, आँसू बहत न थाके नयण।
की मइ पुरिष बिछोह नारि, की दव घाली वणह मझारि।

की मड् लोग तेल ध्रृत हरउँ, पूत सन्ताप कवण गुण परउँ।।

शालिभद्र सुरि कृत (पंचपांडवचरितरास) पांडवों की पौराणिक कथा पर आधारित जैन-काव्य हैं। इसका प्रणयन ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अंत में किया गया था। पंद्रह सर्गो में विभाजित इस काव्य में पांडवों की कथा को अहिंसा पर आधारित रखा गया है। युध्द और अहिंसा में से अहिंसा का चयन ही कथा का मुख्य लक्ष्य है। इस काव्य की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है । चौदहवीं शताब्दी के अंत में किसी अज्ञात जैन-कवि ने (गौतमरास) की रचना की थी। इसके रचयिता का नाम कुद विध्दानों ने भूल से उदयवंत या विजयभद्र समझ लिया, किंतु श्री अगरचंद नाहटा इस मत से सहमत नहीं है। जैन तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर गौतम इस काव्य के चरितनायक हैं। घटना और भाव के समन्वय से युक्त यह एक सरस खंडकाव्य है, जिसकी भाषा अपभ्रंश प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

जैन-काव्य परंपरा से भिन्न रचनाओं में जाखू मणियार-कृत 'हरिचंद पुराण' (1396) ब्रजभाषा की महत्वपूर्ण काव्यकृति है। इसमें राजा हरिश्चंद्र की पौराणिक कथा का चित्रण है। घटनाओं का नियोजन प्रबंधकाव्य की शैली में किया गया है तथा समस्त वर्णनों में भावों की मार्मिकता मिलती है। इसकी भाषा पर अपभ्रंश के प्रभाव की एक हलकी झलक श्षो है। कथ्य, अभिव्यंजना तथा भाव-गांभीर्य की दृष्टि से यह काव्य भक्तिकाल में रचित ब्रजभाषा-काव्य का आंरभिक निर्दशन कराता है।

चौदहवीं शताब्दी के अंत में देवप्रभ व्दारा रचित 'कुमारपालरासो' भिन्न शैली की रचना है। यह कृति जैन-रासकाव्यों तथा वीर प्रशस्तिपरक 'रासो' काव्यों की प्रवृत्तियों का समन्वय प्रस्तुत करती है। इसमें राजा कुमारपाल की वीरता, उदारता, अहिंसा-प्रेम तथा नैतिकता-प्रचार का वर्णन है। एक और तो यह काव्य जैन-धर्म की प्रवृत्तियों का काव्य कीसरस भावभूमि पर अप्रत्यक्ष रुप में प्रसार करता है, और दूसरी ओर राजा के व्यक्तित्व तथा लोकमंगलकारी प्रभाव को भी व्यापक बनाता है। समस्त रचना में धार्मिकता कहीं पर भी उभर कर काव्य की सरसता में बाधक नहीं बनी। कुमारपाल के राज्य का तपोवनानुकूल प्रभाव काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसकी भाषा सरल राजस्थानी हिंदी है । इसी प्रकार की एक रचना 'कान्हड दे प्रबंध' है, जिसे पद्यनाभ ने ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभ में लिखा था। इसकी रचना-पध्दति रासो-काव्यों की शैली से भिन्न है। इसमें महाराजा कान्हड दे का चरित्र वर्णित है। कवि ने आलंकारिक शैली में घटनाओं का सुनियोजित चित्रण किया है। सभी वर्णनों में काव्य-कला का पूर्ण विकास पाया जाता है। पद्य के साथ इसमें गद्य का प्रयोग भी मिलता है।

नीतिकाव्य

आदिकाल से ही भारतीय चिंताधारा ऐहिकता की अपेक्षा पारमार्थिक तत्वों को महत्व देती रही है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अहंकार आदि से बचने तथा उपकार, दान, दया और ईश्वर-चिंतन की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति प्राचीनतम ग्रंथ से ही प्राप्त होने लगती है। समस्त वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में नीति के तथ्य और उपदेश प्राप्त होते हैं। संस्कृत काव्य और नाटकों में प्रसंगानुसार यत्रतत्र नीति-पदावली मिलती हैं। संस्कृत में अनेक नीतिग्रंथ भी मिलते हैं, जैसे : चाणक्यनीति, विदुरनीति तथा

भर्तृहरिनीतिशतक। अनेक सुभाषितों के जो संग्रह मिलते हैं, उनमें नीति-वचनावली का आधिक्य मिलता है। पालि-साहित्य में नीतिकाव्या का बाहुल्य है, क्योंकि उसमें उपदेश अधिक हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में बौध्द-सिध्दों तथा जैन-संतों की रचनाओं में परलोक, मोक्ष आत्मसाक्षात्कार आदि पर बल देने के साथ ही त्याग, संयम, दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि को विशेष महत्व दिया गया है। नाथपंथियों और वज्रयानी सिध्दों की रचनाओं में भी उपदेशों की ही प्राथमिकता है। तात्पर्य यह कि नीतिकाव्य की एक पुष्ट परंपरा पहले से विद्यमान थी, अत: भक्तिकाल में इसका विकसित होना स्वाभाविक था।

भक्तिकाल में नीतकाव्य के तीन रुप प्राप्त होते है : (अ) कबीर, नानक, दादू आदि संतों की रचनाओं में नीति संबंधी पद धर्मोपदेशों के अंग-रुप कहे गये थे, (आ) 'रामचरितमानस', 'पद्मावत' प्रभृति प्रबंधकाव्यों में यत्र-तत्र नीति संबंधी उपदेश कथा-क्रम में आनुषंगिक रुप में मिलते हैं, (इ) कुछ कवि ऐसे भी हैं, जिन्हांने नीतिकाव्य की ही रचना की है। यहां इनमें से तृतीय वर्ग के कवियों का विवेचन अभीष्ट है। इस वर्ग के प्रमुख कवि जैन-मतावलंबी है; यद्यपि छीहल, रत्नावली, जमाल प्रभृति अनेक अन्य कवियों ने भी नीतिकाव्य की रचना की है। इस धारा की प्रथम उल्लेखनीय रचना जैन-कवि पद्मनाभ की 'डूंगर-बावनी' (1486) है, जिसका नामकरण कवि ने अपने आश्रयदाता डूंगर सेठ के नाम पर किया है । इसमें 53 छप्पय हैं, जिनमें दया, दान, कर्म-फल, नम्रता आदि में ही जीवन-साफल्य माना गया है तथा सप्त व्यसन (जुआ, मांस-भक्षण, सुरापान, वेश्यागमन, आखेट, चोरी, परनारी-रमण) से बचने का परामर्श दिया गया है। जैन-कवि ठाकुर सी (रचनाकाल=1523-1526) की रचनाओं-कृपण-चरित्र और पंचेद्रीवेलि की हस्तलिखित प्रतियां बंबई के दिगंबर मंदिर और जयपूर के वधीचंद मंदिर में सुरक्षित हैं । 'कृपण-चरित्र' में एक कृपण सेठ और उसकी उदार पत्नी की कथा है तथा 'पंचेद्रीवेलि' में इंद्रिय-निग्रह संबंधी छप्पय हैं, जिनमें गज, मीन, भ्रमर, पतंग, मृग आदि के माध्यम से स्पर्श, रस, रुप, गंध आदि से बचने के सुझाव हैं। कवित्व की दुष्टि से ये दोनों कृतियां साधारण स्तर की हैं।

अग्रवाल कुल में समुत्पन्न छीहल कवि की 'छीहल बावनी' (1527) भक्तकालीन नीतिकाव्यों में विशेष प्रसिध्द है। इसमें 53 छप्पय हैं, जिनमें अनेक व्यावहारिक विषयों पर सुंदर कथन मिलते हैं। वैसे इन्होंने 'पंच सहेली की बात', 'पंथी गीत' आदि कुछ अन्य कृतियों की भी रचना की है। इनमे समकालीनों में गोस्वामी तुलसीदाम की पत्नी रत्नावली ने भी उद्बोधनात्मक नीतिकाव्य की रचना की है। इन्हीं के प्रभाव से गोस्वामी तुलसीदास विरक्त हो कर चले गये थे। 'रत्नावली-दोहा-संग्रह' में 111 दोहे हैं। जिनमें विविध विषयों का प्रतिपादन हुआ है। एक उदाहारण द्रष्टव्य है :

घी को घट है कामिनी, पुरुष तप्त अंगार।
रत्नवलि घी अगिन को, उचित न संग विचार।।

सोलहवों शती के मध्य में विद्यमान कवि देवीदास-कृत 'राजनीति के कवित्त' की हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। ये शेखावटी के राव लूणकरण के मंची थे और जाति के वैश्य थे। इनके कवितों की भाषा शुध्द ब्रजभाषा है। विषय-प्रतिपाादन की दृष्टि से भी इनके कवित्त सुंदर बन पड़े

है, उनमें राजनीति के अतिरिक्त अन्य सामान्य विषयों का भी प्रभावशाली निरुपन मिलता है। इनके समकालिक कवि जमाल की गणना भी राजस्थान के लोकप्रिय नीतिकारों में की जाती है। 1570 ई.के लगभग रचित 'जमाल-दोहावली' के कुछ दोहे पठनीय है :

रंग ज चोल मजीठ का, सन्त बचन प्रतिपाल।
पाहण रेख रु करम गत, ए किमि मिटे जमाल।।
पूनम चाँद कुसुम्भ रंग, नदी तीर द्रुम डाल।
रेत भीत भुस लीपणो, ए थिर नहीं जमाल।।

बीकानेर-नरेश महाराज राजसिंह के राजकवि उदैराज की 'उदैराज को दूहा' (1603) और ङ्गगुणबावनीफ शीर्षक रचनाएं बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित हैं। इनकी भाषा राजस्थानी है तथा इन्होंने नीति संबंधी विविध विषयों का अनूठा कथन किया है। इनके समसामयिक कवि बांन का कलिचरित्रफ अनूप पुस्तकालय, बीकानेर में हस्तलिखित रुप में उपलब्ध है। ये मथुरा-निवासी रमई पाठक के पुत्र थे और महाराज महासिंह के यहां प्रतिष्ठित थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में जहांगीर की प्रशंसा भी की है। 'कलिचरित्र' मे ४५ पद्य है, जिनमें प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा तथा हास्यरसपूर्ण व्यंग्यात्मक शैली में कलिकाल की विडंबनाओं का वर्णन किया गया है। इस अवधि के अन्य कवियों में दादूदयाल के शिष्य वाजिद भी प्रसिध्द नीतिकार हुए हैं। एक बार ये शिकार के लिए गये थे। वहीं पर हिणी का शिकार करते हुए इनमें विराग-भाव जगा और ये साध्ु हो गये। इनकी पूरी 'वाणी' प्राप्त नहीं होती, केवल 14 ग्रंथो का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं-ग्रंथ गुण उत्पत्तिनामा, ग्रंथ प्रेमनामा, ग्रंथ गरजनामा, साखी वाजिद। इन्होंने दोहा, चौपाई और अरिल्ल छंदों का प्रयेग किया है तथा इनकी रचनाओं में दया, दान, साध्ु-संगति, इंद्रिय-निग्रह, मनोयोग आदि विषयों की प्रधानता मिलती है।

भक्तिकालीन नीतिकवियोंमें जैन कवि बनारसीदास का मुख्य स्थान है। इनका जन्म 1586 ई. में जौनपूर में हुआ था। ये सम्राट अकबर के प्रशंसक थे, जहांगीर के दरबार में भी गये थे और शाहजहां के दरबार में तो इन्हें विशेष मान प्राप्त था। 'नवरस पद्यावली', 'समयसार नाटक', 'बनारलीविलास', 'अर्ध्द कथानक', 'भाषा सूक्तिमुक्तावली' आदि इनकी प्रसिध्द रचनाएँ हैं। इनमें कंचन और कामिनी के त्याग तथा सत्य, क्षमा, शील, अपरिग्रह, नम्रता, निर्लोभ, अहिंसा आदि गुणों के निर्वाह पर बल दिया गया है। नीतिकाव्य के साथ ही इन्होंने अध्यात्मपरक काव्य की भी रचना की है। ये समस्त प्राणियों में एक ही परमेश्वर का अंश मानते थे, अत: हिंदू-मुसलमान, हिंदू-जैन, ब्राम्हण-शूद्र आदि में भेद इन्हे स्वीकार नहीं था। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

माया छाया एक है, घटै बढे छिन मांहिं।
इनकी संगत जे लगें, तिनहिं कहीं सुख नाहिं।।
एक रुप हिंन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की व्दिविधा मान कर, भए एक सौं दोय।।

जैन नीतिकारों में राजसमुद्र और कुशलबीर भी उल्लेखनीय हैं। राजसमुद्र का जन्म 1590 ई. में बीकानेर में हुआ था। इनका बचपन का नाम खेतसी था, 1599 ई. में जिनसिंह सूरि से दीक्षा लेने पर इनका नाम राजसमुद्र हो गया। इनकी रचनाओं का मुख्य विषय नीति है और भाषा राजस्थानी है। 'शालिभद्र चौपाई', 'गजसुकमाल चौपाई', 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला', 'कर्मबत्तीसी', 'शीलबत्तीसी' और 'बालवबोध' इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। कुशलबीर सोजत नगर के निवासी थे। ये कल्याणलाभ के शिष्य थे और इनका रचनाकाल 1637 से 1672 ई. है। इनके नीतिग्रंथ हैं-भोज चौपाई, सीलवती रास, कर्म चौपाई, वर्णन संपुट तथा उद्दिम-कर्म-संवाद। इनकी भाषा राजस्थानी है और शैली उपदेशात्मक है।

अकबरी दरबार का काव्य

सम्राट अकबर को हिंदी भाषा से अनुराग था। राजभाषा यद्यपि फारसी थी, तथापि नित्य के व्यवहार में हिंदी ही प्रयुक्त होती थी। वे न केवल हिंदी कवियों का अपने दरबार में सम्मान करते थे, वरन स्वयं भी हिंदी और फारसी में काव्यरचना करते थे। अकबर दरबार में जिन हिंदी कवियों को विशेष सम्मान प्राप्त था, वे हैं : चतुर्भुजदास, आसकरण, पृथ्वीराज, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, बीरबल 'ब्रम्ह', गंग, तानसेन और रहीम। चतुर्भुजदास विव्दान और विद्यानुरागी थे तथा बीरबल के माध्यम से अकबरी दरबार में सम्मानित हुए थे। बाद में ये राधावल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हुए और जीवनपर्यंत वृंदावन में रहे। 'व्दादश यश' (1503) इनकी कृष्ण-भक्ति संबंधी प्रसिध्द रचना है। राजा आसकरण नरवरगढ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे। 'आईने अकबरी' में इनका उल्लेख हुआ है। कालांतर में ये गुसाईं विठ्ठलनाथ जी के सेवक हो गये और सेवाविधि सीख कर कृष्णलीला-गान में निरत रहने लगे। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और 'कीर्तन-संग्रह' में इनके पद मिलते हैं। कवि पृथ्वीराज बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीका जी के वंशज थे। इनका जन्म 1549 ई. में हुआ था। ये दर्शन, ज्योतिष और संगीत के ज्ञाता तथा अच्छे कवि थे। 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी रीफ भक्ति-श्रृंगार का अनुपम ग्रंथ है। इसकी भाषा सरस और अलंकृत डिंगल है। कवि पृथ्वीराज जी वल्लभसंप्रदाय में दीक्षित थे। इनके ह्रदय में भगवान कृष्ण और ब्रजभूमि के प्रति बडी आस्था थी। राजभक्ति, देशभक्ति और ईश्वरभक्ति तीनों इनमें विद्यमान थीं। ये कृष्णभक्त तो थे ही, अकबर के प्रति इनमें राजभक्ति भी थी और देशभक्ति के कारण ये महाराणा प्रतापसिंह के प्रति अपार श्रध्दा-भाव रखते थे। अकबर के दरबारी कवि होते हुए भी इन्होंने महाराणा प्रताप का यशोगान किया है। यथा :

अकबर समद अथह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाडो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी।।
बाही राण प्रतापसी, बगतर में बच्छीह।
जावण भीतर जाल में मुँह काढयो मच्छीह।।

मनोहर कवि फारसी, संस्कृत और हिंदी में काव्यरचना करते थे। मिश्रबंधुओं ने इनका रचनाकाल 1563 ई. माना है। ये युवावस्था में अकबरी दरबार में थे और वृधवस्था में जहांगीरी दरबार में। अकबर ने इन्हें 'राय' की उपाधि दी थी। इनके व्दारा रचित 'शत प्रश्नोत्तरी' ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। इसमें नीति और श्रृंगार के दोहे थे। इनके काव्यगुणों की प्रंशसा शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की है। फारसी के कवि होने के कारण इनकी भाषा और काव्यकला में फारसी का पुट हुआ करता था। अकबरी दरबार में भूमिकर-विभाग के मंत्री राजा टोडरमल भी काव्यानुरागी थे। नीति संबंधी उपदेशों के अतिरिक्त इन्होंने कुछ छंदो में आत्माभिव्यक्ति भी की है। हुंडी, व्यापारी, आढतिया, साहूकार, सराफा और बहीखाता जैसे विषयों पर भी इन्होंने दोहे लिखे थे।

महापात्र नरहरि (1505-1607) अकबर के राजकवि थे। ये संस्कृत, फारसी और हिंदी के विव्दान थे। 'मिश्रबंधु विनोद' में इनके तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है-रुक्मिणीमंगल, छप्पय-नीति और कवित्त-संग्रह। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन्होंने भक्ति, नीति और राजप्रशास्तिपरक रचनाएं लिखी हैं। इन्होंने वैष्णव और शैव संप्रदायों के भेदभाव से विरत रह कर दोनों के प्रति समान श्रध्दा रखी है। साथ ही इन्होंने कृष्णभक्ति संबंधी पद भी लिखे हैं। नीति संबंधी तथ्यों का प्रतिपादन भी इनकी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। हुमायूं, अकबर, रीवा-नरेश वीरभान, उनके पुत्र रामचंद्र, शेरशाह और जगन्नाथपुरी के राजा मुकुंददेव की प्रशस्ति में भी इन्होंने कवित्त-रचना की है। इन कविताओं में ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन तो है, किंतु अन्य गुणों की दृष्टि से ये साधारण हैं।

बीरबल 'ब्रम्ह' (1528-1583) सम्राट अकबर के दरबार में विनोदी और कवि के रुप में समादृत थे। इनका मूल नाम महेशदास भट्ट था और ये तिकवांपुर, जिला कानपुर में उत्पन्न हुए थे। 'राजा बीरबल'उपधि इन्हें अकबर से प्राप्त हुई थी। अकबरी दरबार में आने से पूर्व ये कालपी, कालिंजर और रीवा के राजाओं के यहां रह चुके थे। अकबर ने इनको नगरकोट (जिला कांगडा) की तहसील दी थी और न्यायाधीश भी बनाया था। कविताओं से अधिक इनके चुटकुले लोकप्रिय हैं, किंतु ये इनके व्दारा रचित नहीं हैं। इनके लगभग दो सौ स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं, जिनमें श्रृंगारप्रधान-कृष्ण लीलाओं, भक्ति और नीति का समावेश है। इनकी भाषा सरस और अनुप्रासयुक्त है।

अकबरी दरबार के कवियों में गंग (1538-1617) का विशेष सम्मान था। इनका पूरा नाम गंगाप्रसाद था। इनके छंदो में जिस कोटि का काव्य-चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य और भाषा-सौष्ठव मिलता है, उसके फलस्वरुप इनके विषय में यह कथन प्रसिध्द हैं : ''तुलसी गंग दुऔ भये सुकविन के सरदार।'' ये बीरबल के बालसखा थे। आगे चल कर ये मानसिंह, टोडरमल और अब्दुल रहीम खानखाना के संपर्क में आये। अकबर के दरबार में कविगण समस्यापूर्ति करते थे। गंग की रचनाएं विशेष सम्मानित होती थीं। कहा जाता है कि रहीम ने इनके पर छप्पय पर छत्तीस लाख रुपये पारितोषिक में दिये थे। गंग स्वयं भी दानी थे। दैववश वृध्दावस्था में जहांगीर के शासनकाल में इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी। उन दिनों शासन नूरजहां के हाथ में था। गंग ने शहजादा खुर्रम (भावी शाहजहां) की प्रशंसा में छंद लिखा। यह जान कर नूरजहां इनकी

जानी दुश्मन बन गयी और अवसर पा कर उसने इन्हें हाथी से कुचलवा डाला। मरने से पूर्व गंग ने यह दोहा कहा :

कबहुं न भहुंआ रन चढै, कबहुं न बाजी बंब।
सरस सभाहि प्रनाम करि, विदा होत कवि गंग।।

गंग की तीन रचनाएं प्रसिध्द हैं : गंग-पदावली, गंग-पच्चीसी और गंग-रत्नावली। ये कृतियां संपूर्ण रुप में उपलब्ध नहीं हैं। अभी तक इनके प्राय: 400 छंद उपलब्ध हुए हैं, जो 'गंग-कवित्त' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इनमें मुख्य रुप से श्रृगांर और भक्ति को तथा गौण रुप से नीति और राजप्रशस्ति को स्थान प्राप्त हुआ है।

अकबरी दरबार के कवियों में संगीतज्ञ तानसेन (1531-1563) विशेष गणनीय हैं। इनका जन्म ग्वालियर निवासी मकरंद पांडे के यहां हुआ था और इनका बचपन का नाम 'तन्नू' था। पहले ये रीवा-नरेश रामचंद्र के दरबार में थे। मुसलमान होने पर ये प्रसिध्द सूफी गौस मुहम्मद के शिष्य हुए। किंवदंती के अनुसार इन्होंने किसी शहजादी के प्रेम के कारण धर्म-परिवर्तन किया था। मुसलमान होने के उपरांत भी ये गोसाईं विठ्ठलनाथ, सुरदास, हरिदास और गोविंदस्वामी के प्रभव में रह कर वैष्णव भक्त बने रहे। 'मिश्रबंधुविनोद' के अनुसार इन्हानें 'संगीतसार', 'रागमाला' और 'गणेशस्त्रोत' की रचना की थी। इनके स्फुट पद भी प्राप्त हैं। आरंभ में इन्होंने रीवा-नरेश रामचंद्र, अकबर और मानसिंह का यशोगान किया था, पर इनका परवर्ती काव्य भक्तह्रदय की अनुभूतियों से संपन्न है। ईश्वर की व्यापकता, अल्लाह और मुहम्मंद का गुणगान, सरस्वती, गणेश, महादेव और सूर्य की स्तुति तथा मन:प्रबोध इनके प्रमुख वर्ण्य विषय हैं। वल्लभसंप्रदाय के संपर्क में आने पर ये पूर्ण कृष्णभक्त हो गये। इन्होंने कृष्ण की बाललीला, मुरलीलाला, राधा के रुपसौंदर्य, गोपी विरह आदि का मार्मिक वर्णन किया है। इनकी ब्रजभाषा में फारसी शब्द भी प्रयुक्त हैं। भाषा आलंकारिक, सरस और संगीतमयी है। तानसेन ध्रुपद शैली के श्रेष्ठ गायक थे, फलस्वरुप इनके पदों में काव्य और संगीत की गंगा-यमुना का प्रवाह मिलता है।

अकबरी दरबार के कवियों में रहीम (1556-1638) का मूर्ध्दन्य स्थान है। ये बैरम खां खानखाना के पुत्र थे और इनकी मां हुमायूं की पत्नी की छोटी बहन थीं। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण अकबर ने ही इनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा अपनी देखरेख में करवायी थी। बडे होने पर पहले इन्हें पाटन की जागीर दी गयी फिर अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का किला दिया गया। अकबर ने इन्हें अपने नवरत्नों में स्थान दिया था। जहांगीर के शासनकाल में भी इनका सम्मान बना रहा, किंतु अंतिम दिनों में शहजादा खुर्रम का समर्थन करने के कारण इन्हें नूरजहां का कोपभाजन बनना पड़ा। वह अपने दामाद शहरयार को भावी शासक बनाने का स्वप्न देख रही थी। उसके आदेश से इन्हें कैद कर लिया गया। बाद में जहांगीर ने इन्हें क्षमा कर दिया। फिर भी, इनके जीवन के अंतिम दिन कुशलता के साथ व्यक्तीत नहीं हुए।

रहीम अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और हिंदी के सुकवि थे। इन्होंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी। इनकी रचनाओं में दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिकाभेद

और मदनाष्टक प्रमुख हैं । कहा जाता है कि इन्होंने सतसई की रचना की थी, किंतु संप्रति इनके नीति संबंधी प्राय: तीन सौ दोहे ही मिलते हैं । एक अनुमान के अनुसार कदाचित इन्होंने श्रृंगार रस के दोहे भी लिखे होंगे, जिनके योग से 'सतसई' बनती । जो भी हो, इनके नीति संबंधी दोहे सर्वप्रसिध्द हैं और उनमे जीवन की विविध अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ हैं। यथा :

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारे लगे, बढे अँधेरो होय।।
रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।

'नगरशोभा' में जौहरिन, रंगरेजिन, तुरकिन, कैथिन, गूजरी आदि विविध जातियों की स्त्रियों का चित्रण मिलता है। अकबरी दरबार की श्रृंगारिक भावनाओं और 'मीना बाजार' की झलक इस ग्रंथ में सुलभ है। 'बरवै नायिकाभेद' में काव्यशास्त्र में प्राप्त अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन हुआ है। इसमें नायिका के लक्षण नहीं दिये गये, किंतु उदाहरण इतने सरस हैं कि पाठक भाव विभोर हो जाता है। 'मदनाष्टक' में कृष्णलीला संबंधी आठ सुंदर पद हैं, जिनमें गोपियों की प्रेमविह्वलता, मुरलीलीला तथा गोपीविरह का श्रृंगार-रसात्मक वर्णन है। इनका एक ज्योतिषग्रंथ 'खेटकौतुक जातकम्' भी उपलब्ध है। इसकी रचना फारसी मिश्रित संस्कृत भाषा में हुई है और इसमें मनुष्य जीवन पर ग्रह-नक्षत्रों के प्रभाव का संक्षिप्त चित्रण है।

रीतिकाव्य

भक्तिकाल में तथा इससे पूर्व भी, यद्यपि हिंदी साहित्य गुण और परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त प्रतिष्ठित हो चुका था तथा इसे विरासत के रुप में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की अक्षुण्ण परंपरा भी प्राप्त थी तथापि इसमें काव्यांग-निरुपण की प्रवृति का आविर्भाव जिस कारण से नहीं हो सका, वह यही था कि तत्कालीन कवियों को इस दिशा में या तो सोचने का अवकाश नहीं मिला या फिर उन्होंने प्रयत्न ही नहीं किया। आदिकाल के चारण कवियों को यदि युध्दों से अशांत वातावरण में काव्यशास्त्र के लिए अपेक्षित एकांत चिंतन का अवसर नहीं मिला, तो संत और सूफी कवि एतव्दिषयक ज्ञान की तुलना में आध्यात्मिक ज्ञान को कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं श्रेय्यकर मान कर आत्मचिंतन में ही जानबूझ कर उलझे रहे। इन लोगों के लिए कविता अपनी बात को कहने का साधनमात्र रही, कला की वह सिध्दि नहीं रही, जिसमें अनुभूति के समान अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरणों का सौदर्य भी महत्व रखता है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने पुष्प या पुढ्य कवि व्दारा 713 ई. में रचित 'अलंकाररत्नाकर' नामक अलंकार-विवेचन संबंधी जिस हिंदी ग्रंथ का उल्लेख कर हिंदी भाषा के बहुत पहले आविर्भूत होने, आठवीं शताब्दी तक उसके स्वरुप और साहित्य के प्रौढ और प्रतिष्ठित हो जाने और उसमें रीति-निरुपण की परंपरा का आरंभ कई शताब्दी पूर्व होने आदि, जिन संभावनाओं के लिए स्थान छोडा है, उनसे उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना अधिक संगत प्रतीत होता हैं, कारण, एक तो वह आज किसी भी रुप में उपलब्ध नहीं है, दूसरे, इस समय के पर्याप्त बाद तक हिंदी इतने प्रौढ रुप को प्राप्त नहीं हो सकी थी कि उसमें इस प्रकार का प्रयत्न संभव हो पाता।

- **भक्तित्तेर कवि एवं रचनाएँ**

1. महाराज बीरबल – इनकी जन्मभूमि कुछ लोग नारनौल बतलाते हैं और इनका नाम महेशदास। प्रयाग के किले के भीतर जो अशोकस्तंभ है उस पर यहा खुदा है – 'संवत् 1632 शाके 1493 मार्ग बदी 5, सोमवार गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखित।' यह लेख महाराज बीरबल के संबंध में ही जान तिां है क्योंकि गंगादास और महेशदास नाम मिलते–जुलते हैं जैसे कि पिता–पुत्र के हुआ करते हैं। बीरबल का जो उल्लेख भूषण ने किया है उससे इनके निवास–स्थान का पता चलता है।

व्दिज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर।।
बीर बीरबल से जहाँ उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप।।

इनका जन्मस्थान तिकवाँपुर ही ठहरता है; पर कुल का निश्चय नहीं होता। यह तो प्रसिध्द ही है कि ये अकबर के मंत्रियों में थे और बडे ही वाक्‌चतुर और प्रत्युत्पन्नमति थे। इनके और अकबर के बीच होने वाले विनोद और चुटकुले उत्तर भारत के गाँवो में प्रसिध्द हैं। महाराज बीरबल ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और कवियों का बडी उदारता के साथ सम्मान करते थे। कहते हैं, केशवदास जी को इन्होंने एक बार छह लाख रुपये दिये थे और केशवदास की पैरवी से ओरछा नरेश पर एक करोड का जुरमाना मुआफ कर दिया था।

इनके मरने पर अकबर ने यह सोरठा कहा था –

दीन देखि सब दीन, एक न दीन्हों दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन, कछु नहिं राख्या बीरबल।।

इनकी कोई पुस्तक नहीं मिलती है, पर कई सौ कवित्तों का यह एक संग्रह भरतपुर में है। इनकी, रचना अलंकार आदि काव्यांगो से पूर्ण और सरस होती थी। कविता में ये अपना नाम ब्रम्ह रखते थे। दो उदाहरण दिये जाते हैं –

उछरि–उछरि केकी झपटै उरग पर,
उरगहू केकिन पै लपटै लहकि हैं।
केकिन केसूरति हिए की न कछू है, भए,
एकी करि केहरि, न बोलत बहकि है।
कहै कवि ब्रम्ह वारि हेरत हरिन फिरै,
बैहर बहुत बडे जोर सों जहकि हैं।
तरनि कै तावन तवा सी भई भूमि रही,
दसहू दिसान में दवारि सी बहकि है।।

x x x

पूत कपूत, कुलच्छनि नारि, लराक परोसि, लजायन सारो।
बंध कुबुध्दि, पुरोहित लंपट, चाकर चोर, अतीय धुतारौ।।
साहब सूम, अडाक तुरंग, किसान कठोर, दीवान नकारो।
ब्रम्ह भनै सुनु साह अकब्बर बारहौं बाँधि समुद्र में डारौ।।

2. रहीम (अब्दर्रहीम खानखाना) - ये अकबर बादशाह के अभिभावक प्रसिध्द मुगल सरदार बैरम खाँ खानखाना के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् 1610 में हुआ। ये संस्कृत, अरबी और फारसी के पूर्ण विव्दान और हिंदी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ कवि थे। ये दानी और परोपकारी ऐसे थे कि अपने समय के कर्ण माने जाते थे; इनकी दानशीलता ह्रदय की सच्ची प्रेरणा के रुप में थी, कीर्ति की कामना से उसका कोई संपर्क न था। इनकी सभा विव्दानों और कवियों से सदा भरी रहती थी। गंग कवि को इन्होंने एक बार छत्तीस लाख रुपये दे डाले थे। अकबर के समय में ये प्रधान सेनानायक और मंत्री थे और अनेक बडे-बडे युध्दों में भेजे गये थे।

ये जहाँगीर के समय तक वर्तमान रहे। लडाई में धोखा देने के अपराध में एक बार जहाँगीर के समय इनकी सारी जागीर जब्त हो गयी और कैद कर लिये गये। कैद से छूटने पर इनकी आर्थिक अवस्था कुछ दिनों तक बडी हीन रही। पर जिस मनुष्य ने करोडों रुपये दान कर दिये, जिसके यहाँ से कोई विमुख न लौटा उसका पीछा याचकों से कैसे छूट सकता था? अपनी दरिद्रता का दुख वास्तव में इन्हें उसी समय होता था जिस समय इनके पास कोई याचक जा पहुँचता और ये उसकी यशेष्ट सहायता नहीं कर सकते थे। अपनी अवस्था के अनुभव की व्यंजना इन्होंने इस दोहे में की है -

तबही लौं जीबो भलो देबौ होय न धीम।
जग में रहिबो कुँचित गति उचित न होय रहीम।।

संपत्ति के समय में जो लोग सदा घेरे रहते हैं विपद के आने पर उनमें अधिकांश किनारा खीचते हैं, इस बात को द्योतक यह दोहा है -

ये रहीम दर-दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छाँडिए, अब रहीम वे नाहिं।।

कहते हैं कि इसी दीन दशा में इन्हें एक याचक ने आ घेरा। इन्होंने यह दोहा लिखकर उसे रीवाँ नरेश के पास भेजा -

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परति है सो आवत यहि देस।।

रीवाँ नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपये दिये।

गोस्वामी तुलसीदास जी से भी इनका बडा स्नेह था। ऐसी जनश्रुति है कि एक बार एक ब्राम्हण अपनी कन्या के विवाह के लिए धन न होने से घबराया हुआ गोस्वामी जी के पास आया। गोस्वामी जी ने उसे रहीम के पास भेजा और दोहे की यह पंक्ति लिखकर दे दी –

'सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय।'

रहीम ने उस ब्राम्हण को बहु–सा द्रव्य देकर विदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी करके दे दी–

'गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।'

रहीम ने बडी–बडी चढाइयाँ की थीं और मुगल साम्राज्य के लिए न जाने कितने प्रदेश जीते थे। इन्हें जागीर में बहुत बडे–बडे सूबे और गढ मिले थे। संसार का इन्हें बडा गहारा अनुभव था। ऐसे अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण करने की भावुकता इनमें अव्दितीय थी। अपने उदार और ऊँचे ह्रदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की है उसी की व्यंजना अपने दोहे में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदी भाषी भूभाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रुप को ग्रहन करने की क्षमता जिस कवि में होगी वही जनता का प्यारा कवि होगा। रहीम का ह्रदय, द्रवीभूत होने के लिए, कल्पना की उडान की अपेक्षा नहीं रखता था। वह संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिए पर्याप्त स्वरुप पा जाता था। 'बरवै नायिकाभेद' में भी जो मनोहर और छलकते हुए चित्र है वे भी सच्चे हैं– कल्पना के झूठे खेल नहीं हैं। उनमें भारतीय प्रेमजीवन की सच्ची झलक है।

भाषा पर तुलसी का–सी ही अधिकार हम रहीम का भी पाते हैं। ये ब्रज और अवधी–पश्चिमी और पूरबी–दोनों काव्य भाषाओं में समान कुशल थे। 'बरवै नायिकाभेद' बडी सुंदर अवधी भाषा में है। इनकी उक्तियाँ ऐसी लुभावनी हुईं कि बिहारी आदि परवर्ती कवि भी बहुतों का अपहरण करने का लोभ न रोक सके। यद्यपि रहीम सर्वसाधारण में अपने दोहों के लिए ही प्रसिध्द हैं, पर इन्होंने बरवै, कवित्त, सवैया, सोरठा, पद सब में थोडी–बहुत रचना की है।

रहीम का देहावसान संवत् 1683 में हुआ। अब तक इनके निम्मलिखित ग्रंथ ही सुने जाते थे– रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नाकिया–भेद, श्रृंगारसोरठा, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी। पर भरतपुर के श्रीयुत् पं. मायाशंकर जी याज्ञिक ने इनकी और भी रचनाओं का पता लगाया हैं–जैसे नगरशोभा, फुटकल बरवै, फुटकल कवित्त–सवैये और रहीम का एक पूरा संग्रह 'रहीम रत्नावली' क नाम से निकाला है।

गुन को न पूछै कोऊ, औगुन की बात पूछै,
कहा भयो दई! कलिकाल यों खरानो है।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन में डारि देत,
चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है।।

कादिर कहत यासों कछु कहिबे को नाहिं,
जगत की रीत देखि चुप मन मानो है।
खोलि देखौ हियौ सब ओरन सों भाँति भाँति,
गुन ना हिरानो, गुनगाहक हिरानो है।।

3. मुबारक – सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म संवत् 1640 में हुआ था, अत: इनका कविताकाल संवत् 1670 के पीछे मानना चाहिए।

ये संस्कृत फारसी और अरबी के अच्छे पंडित और हिंदी के सह्रदय कवि थे। जान तिंा है कि ये केवल श्रृंगार की ही कविता करते थे। इन्होंने नायिका के अंगों का वर्णन बडे विस्तार से किया है। कहा जाता है कि दस अंगों को लेकर इन्हांने एक-एक अंग पर सौ-सौ दोहे बनाये थे। इनका प्राप्त ग्रंथ ङ्गअलकशतकफ और ङ्गतिलशतकफ उन्हीं के अंतर्गत है। इन दोहें के अतिरिक्त इनके बहुत-से कवित्त-सवैये ग्रंथो में पाये जाते और लोगों के मुँह से सुने जाते हैं। इनकी उत्पेक्षा बहुत बढी-चढी होती थी और वर्णन के उत्कर्ष के लिए कभी-कभी ये बहुत दूर तक बढ जाते थे। कुछ नमूने देखिए -

(अलकशतक और तिलशतक से)

परी मुबारक तिय बदन, अलक ओप अति होय।
मनो चंद की गोद में, रही निसा-सी सोय।।
चिबुक कूप में मन पर्‌यो, छबिजल तृषा विचारि।
कढति मुबारक ताहि तिय, अलक डोरि-सी डारि।।
चिबुक कूप रसरी अलक, तिल सु चरस, दृग बैल।
बारी बैस सिंगार को, सींचत मनमथ छैल।।

x x x

(फुटकल से)

कनक बरन बाल, नगन लसत भाल,
मोतिन के माल उर सोळें भलीभाँति हौ।
चंदन चढाय चारु चंदमुखी मोहनी-सी,
प्राय ही अन्हाय पग धारे मुसकाति है।
चूनरी विचित्र स्याम, सजि कै मुबारकजू,
ढाँकि नखसिख तें निपट सकुचाति है।
चंद्रमैं लमेटि कै समोटि कै नखत मानो,
दिन को प्रनाम किए राति चली जाति है।।

4. बनारसीदास – ये जौनपूर के रहने वाले एक जैन जौहरी थे जो आमेर में भी रहा करते थे। इनके पिता का नाम खड्गसेन था। ये संवत् 1643 में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने संवत् 1698 तक का अपना जीवनवृत्त अर्ध्दकथानक नामक ग्रंथ मे दिया हैं। पुराने हिंदी साहित्य में यही एक आत्मचरित्र मिलता है, इससे इसका महत्व बहु अधिक है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि युवावस्था में इनका आचरण अच्छा न था और इन्हें कुष्ट रोग भी हो गया था। पर पीछे ये सँभल गये। ये पहले श्रुंगार रसकी कविता किया करते थे, पर पीछे ज्ञान हो जाने पर इन्होंने वे सब कविताएँ गोमती नदी में फेंक दीं और ज्ञानोपदेशपर्ण कविताएँ करने लगे। कुछ उपदेश इनके ब्रज भाषा गद्य में भी हैं। इन्होंने जैनधर्म संबंधी अनेक पुस्तकों के सारांश हिंदी में कहे हैं। अब तक इनकी बनायी इतनी पुस्तकों का पता चला है –

बनारसी बिलास (फुटकल कविता का संग्रह), नाटक समयसार (कुंदकुंदाचार्य कृत ग्रंथ का सार), नाममाला (कोश), अर्ध्दकनाथक, बनारसी पध्दति मोक्षपदी, ध्रुववंदना, कल्याणमंदिर भाषा, वेदनिर्णय पंचाशिका, मारगन विद्या ।

इनकी रचना शैली पुष्ट है और इनकी कविता दादूपंथी सुंदरदास जी की कविता से मिलती–जुलती है। कुछ उदाहरण लीजिए –

भोदू! ते हिदय की आँखें।
जे सरबैं अपनी सुख संपति भ्रम की संपति भाखैं।
जिन आँखिन सों निरखि भेद गुन ज्ञानी ज्ञान विचारैं।।
जिन आँखिन सों लखि सरुप मुनि ध्यान धारना धारैं।

x x x

काया सों विचार प्रीति, माया ही में हार–जीत,
लिये हठ रीति जैसे हारिल की लकरी।
चंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यौं ही पयँ गाडै पै न छाँडै टेक पकरी।
मोह की मरार सों मरम को न ठौर पावैं,
धावैं चहुँ ओर ज्यौं बढावें जालमकरी।
ऐसी दुरबुध्दि भूलि, झूठ के झरोखे झूलि,
फुली फिरैं ममता जॅजीरन सों जकरी।

5. सेनापति – ये अनूपशहर के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। इनका जन्मकाल संवत् 1646 के आसपास माना जाता है। ये बडे ही सह्रदय कवि थे। ऋतुवर्णन तो इनके जैसा और किसी श्रृंगारी कवि ने नहीं किया है। इनके ऋतुवर्णन में प्रकृति निरीक्षण पाया जाता है। पद-विन्यास भी इनका ललित है। कहीं-कहीं विरामों पर अनुप्रास का निर्वाह और यमक का चमत्कार भी अच्छा है। सारांश यह कि अपने समय के ये बडे भावुक और निपुण कवि थे । अपना परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया है ।

दीक्षित परशुराम दादा हैं विदित नाम,
जिन कीन्हें जज्ञ, जाकी विपुल बडाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके,
गंगातीर बसति ङ्गअनूपफ जिनपाई है।।
महा. जानमनि, विद्यादान हू में चिंतामनि,
हीरामनि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ,
दरकी सुहागिन की छोहभरी छतियाँ।।
आई सुधि बर की, हिय में आनि खरकी,
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ।।

x x x

बालि को सपूत कपिकुल पुरहूत,
रघुवीर जू को दूत भरि रुप विकराल को।
युध्दमद गाढो पाँव रोपि भयो ठाढो, सेना-
पति बल बाढो रामचंद्र भुवपाल को ।।
कच्छप कहलि रहयो, कुंडली टहलि रहयो,
दिग्गज दहलि त्रास परो चकचाल को।
पाँव के धरत अति भार के परत भयो -
एक ही परत मिलि सपत पताल को।।

x x x

रावन को बीर, सेनापति रघुबीर जू की
आयो है सरन, छाँडि ताहि मदअंध को।
मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप,
नाम जोय दुर्जनदलन दीनबंध को।
देखो दानवीरता निदान एक हान ही में,
दीन्हें दोऊ दान, को बखानै सत्यसंघ को।
लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन को,
संका विभीषण की सो दीनी दसकंध ।।

सेनापति जी के भक्तिप्रेरित उद्गार बहुत अनूठे और चमत्कारपूर्ण हैं। 'आपने करम करि हौं ही निबहौगे तौ हौं ही करतार-करतान तुम काहे के?' वाला प्रसिध्द कवित्त इन्ही का है।

6. पुहकर कवि – ये परतापपुर (जिला-मैनपुरी) के रहने वाले थे, पर पीछे गुजरात में सोमनाथ जी के पास भूमिगांव में रहते थे। ये जाति के कायस्थ थे और जहाँगीर के समय में वर्तमान थे। कहते हैं कि जहाँगीर ने किसी बात पर इन्हें आगरे में कैद कर लिया था। वहीं कारागार में इन्होंने 'रसरतन' नामक ग्रंथ संवत् 1673 में लिखा जिस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हे कारागार से मुक्त कर दिया। इस ग्रंथ मे रंभावती और सूरसेन की प्रेमकथा कई छंदो में, जिनमें मुख्य दोहा और चौपाई है, प्रबंधकाव्य की साहित्यिक पध्दति पर लिखी गयी। कल्पित कथा लेकर प्रबंधकाव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदी कवियों में बहुत कम पायी जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी है, पर उनकी परिपाटी बिल्कुल भारतीय नहीं थी। इस दृष्टि से 'रसरतन' को हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान देना चाहिए ।

इसमें संयोग और वियोग की विविध दशाओं का साहित्य की रीति पर वर्णन है। वर्णन उसी ढंग के है जिस ढग के श्रृंगार के मुक्तक कवियों ने किये हैं। पूर्वराग, सखी, मंडन, नखशिख ऋतुवर्णन आदि श्रृंगार की सब सामग्री एकत्र की गयी है! कविता सरस और भाषा प्रौढ है। इस कवि के और ग्रंथ नही मिले हैं। पर प्राप्त ग्रंथ को देखने से ये एक अच्छे कवि जान र्ते है। इनकी रचना की शैली दिखाने के लिए उद्धत पद्य पर्याप्त होंगे –

चले मैमता हस्ति झूमंत मत्ता। मनो बद्दला स्याम साथै चलंता।।
बनी बागरी रुप राजंत दंता। मनौ बग्ग आसाढ पौंतें उदंता।।
लसैं पीत लालैं, सुढालैं ढलक्कैं। मनों चंचला चौंधि छाया छलक्कैं।।
चंद की उजारी प्यारी नैनन तिहारे, परे
चंद की कला में दुति दूनी दरसाति है।
ललित लतानि में लता-सी गहि सुकुमारि
मालती-सी फलैं जब मृदु मुसुकाति है।।

पुहकर कहै जित देखिए विराजै तित

परम विचित्र चारु चित्र मिलि जाति है।

आवै मन माहि तब रहै म नही में गडि,

नैननि बिलोके बाल नैननि समाति है।।

7. सुंदर – ये ग्वालियर के ब्राम्हण थे और शाहजहाँ के दरबार में कविता सुनाया करते थे। इन्हें बादशाह ने पहले कविराय की और फिर महाकविराय की पदवी दी थी। इन्होंने संवत् 1688 में 'सुंदरश्रृंगार' नामक नायिकाभेद का एक ग्रंथ लिखा। कवि ने रचना की तिथि इस प्रकार दी है–

संवत् सोरह सै बरस, बीते अठतर सीति।

कातिक सुदि सतमी गुरौ, रचे ग्रंथ करि प्रीति।।

इसके अतिरिक्त 'सिंहासनबत्तीसी' और 'बारहमासा' नाम की इनकी दो पुस्तकें और कही जाती हैं। यमक और अनुप्रास की ओर इनकी कुछ विशेष प्रवृत्ति जान पड़ती है। इनकी रचना शब्दचमत्कारपूर्ण हैं। एक उदाहरण दिया जाता है –

काके गये बसन? पलटि आए बसन सु,

मेरा कछु बस न रसन उर लागे हौं।

भौंहें तरछौहैं कवि सुंदर सुजान सोहें,

कछू अलसौहैं गौं हैं, जाके रस पागे हौ।।

परसौं में पाय हुते परसौं मैं पाय गहि,

परसौं वे पाय निसि जाके अनुरागे हो।

कौन बनिता के हौ जू कौन बनिता के हौ सु,

कौन बनिता के बनि, ताके संग जागे हौ?

● स्वयं अध्ययन के प्रश्न :

iii) **निम्नलिखित वाकयें के नीचे दिए गए विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।**

1) सूरसागर रचना .... की है।

अ) तुलसीदास ब) सूरदास क) नंददास ड) कुंभनदास

2) सूरदास का जन्म दिल्ली के पास .... गाँव में हुआ था।

अ) सिही ब) दूही क) रीति ड) सोनी

3) भंवरगीत रचना .... की है।

अ) तुलसीदास ब) सूरदास क) नंददास ड) कुंभनदास

4) मीराबाई के जन्म मेडता के निकट .... गाँव में हुआ था।

अ) रुकडी ब) सुडकी क) गुडकी ड) कुडकी

5) अष्टछाप की स्थापना .... ने की थी।

अ) विठ्ठलनाथ ब) वल्लभनाचार्य क) कृष्णदास ड) सूरदास

3.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ।

अपास्य - आराध्य

आलवार - वह वैष्णव भक्त जो ईश्वर में निरंतर प्रेमभाव में तन्मय रहता है।

अलौकिक - अपार्थिव। जो पृथ्वी लोक का न हो।

लौकिक - सांसारिक

स्वकीया - पत्नी

परकीया - दूसरी स्त्री

परवर्ती - बाद का काल

गेय मुक्तक - ऐसा मुक्तक काव्य जिसे गाया जा सके।

कलेऊ करना - नाश्ता करना।

चैतन्य मत - इस सांप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु वल्लभ के समकालीन है। चैतन्य का जन्म बंग प्रांत में हुआ। बंगाल में वैष्णव भक्ति के प्रचार का श्रेय चैतन्य को है। इस संप्रदाय ने कृष्ण के साथ साथ राधा की उपासना को महत्त्व दिया है।

विशिष्टाद्वैतवाद - एक उपरिमित ब्रह्म (अद्वैत) का स्वयं अपने स्पष्ट, भिन्न और परिमित (विशिष्ट) अंगों से एकाकार होना।

कालातीत - समय के परे, जिसपर समय का बंधन न हो।

जयदेव - कृष्णभक्त कवि

विद्यापति - कृष्णभक्त कवि

हितहरिवंश - राधावल्लभी संप्रदाय

रुपोपासना - रुप की उपासना

दैन्य - दीनता, विनय के भाव

सख्य भाव - सखा का भाव, मित्रता

माधुर्य – मधुरता

केलि – खेल, रति क्रीडा

छलिया – छल करनेवाला, झूठा

हरिदास – द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय सखी संप्रदाय है। इसमें भक्त अपने आपको भगवान की पत्नी या सखी मानकर भक्ति करते हैं।

3.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर -1

i) 1) - अ) आलवार

2) - ब) वैष्णव

3) - ड) 12

4) - क) अद्‌वैतवाद

5) - क) गुरु

ii) 1) – iii) सूरदास

2) – i) तमिल

3) – ii) अवधी

4) – v) ब्रजभाषा

5) – iv) पुष्टिमार्ग

iii) 1) - ब) सूरदास

2) - अ) सिही

3) - क) नंददास

4) - ड) कुडकी

5) - अ) विठ्‌ठलनाथ

3.5 सारांश :

दक्षिण से वैष्णव भक्ति का प्रचार हुआ। दक्षिण के आलवार भक्तों द्वारा भक्ति आंदोलन आरंभ हुआ। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ सगुण तथा निर्गुण मिलती हैं। सगुण धारा में रामभक्ति धारा एवं कृष्ण भक्ति धारा का समावेश है। विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के चरित्र और लीलाओं का सगुण भक्ति काव्य में महत्त्व है।

निर्गुण भक्ति निराकार ईश्वर को मानती है। तो सगुण भक्ति में ईश्वर का रंग, रुप, आकार होता है। सगुण भक्ति शंकर के अद्‌वैतवाद का विरोध करके अवतार भावना में विश्वास करती है। यह भक्ति गुरु की महानता सिद्‌ध करती है। रामानुज की शिष्य परंपरा में रामानंद हुए जिन्होंने उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामभक्ति शाखा के ईश्वर राम शील, शक्ति, सौंदर्य से युक्त हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। राम काव्य में आदर्श की स्थापना करते हैं। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' ग्रंथ रामभक्ति शाखा का श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। राम काव्य में सेवक-सेव्य भाव की भक्ति है। रामभक्ति काव्य में वीर रस, रौद्र रस, करुण रस का वर्णन है। इसमें दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा, कुण्डलिया, सवैया आदि छंदो का प्रयोग है। उपमा और रुपक अलंकार के लिए यह काव्य लोकप्रिय है। काव्य की भाषा अवधी है।

कृष्णभक्त कवियों ने भागवत के आधार पर कृष्ण लीला का चित्रण किया है। कृष्ण के बाल एवं युवा रुप में अवतारी पुरुष का वर्णन है। भागवत के कृष्ण गोपियों की प्रार्थना पर लीलाओं में भाग लेते हैं। हिंदी कवियों के कृष्ण स्वयं गोपियों के साथ लीला करते हैं। गोपियों को वे प्रभावित करते हैं। भागवत में कृष्ण का ब्रह्म स्वरूप और अलौकिक रुप शुरु से अंत तक बना रहता है। हिंदी कवियों के कृष्ण बाल रुप में बाललीलाएँ और युवा रुप में प्रणय लीला करते हैं। कृष्ण काव्य में वात्सल्य रस, शांत रस, श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। काव्य में वात्सल्य, सख्य, एवं कान्ता भाव की भक्ति दिखाई देती है। काव्य मुख्य रुप से गेय मुक्तक में लिखा गया है। इसमें गीति शैली पायी जाती है। शब्द शक्ति, अलंकार, काव्य गुण काव्य में पाए जाते हैं। छंदो में दोहा, रोला, कवित, सवैया, छप्पय, कुण्डलियां, गीतिका, हरिगीतिका आदि का प्रयोग है। इसमें लोकप्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

आचार्य वल्लभाचार्य द्‌वारा चलाए गए पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर अष्टछाप कवियों ने कृष्ण साहित्य की रचना की है। गोस्वामी विठ्‌ठलनाथ ने अपने पिता वल्लभ के 84 शिष्यों में से चार तथा अपने 252 शिष्यों में से चार को लेकर भक्त कवि तथा संगीतज्ञों की मंडली की स्थापना की। अष्टछाप में वल्लभाचार्य के चार शिष्य थे - कुम्भनदास, परमानन्ददास, सूरदास तथा कृष्णदास और गोस्वामी विठ्‌ठलनाथ के लोकप्रिय शिष्य थे - गोविन्दस्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नंददास।

अष्टछाप में ज्येष्ठ कवि कुम्भनदास थे तथा कनिष्ठ कवि नंददास थे। काव्य सौंर्य की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान सूरदास का है, दूसरा स्थान नंददास का है। पद रचना की दृष्टि से परमानंददास का नाम है। गोविन्दस्वामी संगीत के जानकार हैं। कृष्णदास का ऐतिहासिक महत्त्व है। ये आठ भक्त पुष्टिमार्ग के कलाकार, संगीतकार, कीर्तनकार थे। ये सभी समकालीन कवि पारी पारी से श्रीनाथ के मंदीर में कीर्तन, सेवा, प्रभुलीला संबंधी पदरचना करते थे। वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर सूरदास उनके शिष्य बन गये, उनके कहने पर उन्होंने सख्य वात्सल्य एवं माधुर्य भाव के पद लिखे। सूरदास ने कृष्ण की बाल लीला तथा गोपी प्रेम की लीलाओं का वर्णन किया है। उन्होंने कृष्ण संबंधी सवा लाख पद लिखे हैं। सूरदास की रचनाएँ हैं - सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसारावली और भ्रमरगीत।

रसखान ने भी संप्रदायनिरपेक्ष होकर कृष्णभक्ति काव्यधारा के अंतर्गत काव्यरचना की है। शुद्‌ध साहित्यिक ब्रजभाषा में रसखान ने सुजान सरखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम आदि ग्रंथ लिखे हैं।

3.6 स्वाध्याय :

स्वाध्याय के अंर्गत 'सगुण भक्ति काव्यधारा' पर विविध दीर्घोत्तरी प्रश्न तथा टिप्पणी के प्रश्न दिए गए हैं।

दीर्घोत्तरी प्रश्न।

1) कृष्णभक्ति काव्यधारा का सैद्धांतिक पक्ष लिखिए।

2) रामभक्ति काव्यधारा का सैद्धांतिक पक्ष लिखिए।

3) सगुण भक्ति काव्यधारा का सैद्धांतिक पक्ष लिखिए।

4) कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवियों का विवेचन कीजिए।

5) सूदास की कृष्णभक्ति का परिचय देते हुए उनके सूरसागर ग्रंथ का विवेचन कीजिए।

6) सूरदास के प्रमुख ग्रंथों का विवेचन कीजिए।

7) अष्टछाप के कवियों का विवेचन कीजिए।

8) 'सूरसागर' ग्रंथ का विवेचन कीजिए।

9) सूरदास की कृष्णभक्ति का परिचय देते हुए उनके प्रमुख ग्रंथों का वर्णन कीजिए।

10) कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख ग्रंथों का परिचय दीजिए।

11) संप्रदाय निरपेक्ष कृष्णभक्ति काव्यधारा का विवेचन कीजिए।

12) नंददास और मीराबाई का परिचय देते हुए उनके काव्य के बारे में लिखिए।

टिप्पणियाँ लिखिए।

1) सगुण भक्ति काव्यधारा

2) संप्रदाय निरपेक्ष कृष्णभक्ति काव्यधारा

3) सूरसागर

4) भ्रमरगीत

5) मीराबाई

6) रसखान

7) नंददास

8) सूरदास

9) अष्टछाप

10) भ्रमरगीत

3.7 क्षेत्रीय कार्य :

1. प्रमुख कृष्ण भक्त कवियों की सूची तैयार कीजिए।
2. मराठी राम भक्त कवियों की सूची बनाइए।
3. मध्यकालीन मराठी संतों की सूची तैयार कीजिए।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

छात्रों के अतिरित अध्ययन के लिए संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गयी है।

3.0 संदर्भ ग्रंथ :

1) सिंह योगेन्द्र प्रताप – हिंदी साहित्य का इतिहास और उसकी समस्याएँ वाणी, प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016

2) डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल – हिंदी साहित्य का इतिहास, मयुर पेपर बैक्स, दिल्ली पैंतीसवाँ पुनर्मुद्रण 2009.

3) सिंह बच्चन : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संशोधित परिवर्धित संस्करण, 2006.

4) शर्मा, डॉ. शिवकुमार : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 1990

5) शर्मा डॉ. रमेशचंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2002.

6) शर्मा राजनाथ : हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, द्वितीय संस्करण, 1970.

❑❑❑

इकाई–4
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

अनुक्रम :

4.0 उद्देश्य।

4.1 प्रस्तावना।

4.2 विषय-विवेचन।

4.2.1 रीतिकालीन पृष्ठभूमि - सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक।

4.2.2 रीतिकालीन काव्यधाराएँ - प्रवृत्तियाँ।

4.2.3 रीतिकालीन प्रमुख कवि एवं रचनाएँ।

4.2.4 रीतिकालीन गद्य साहित्य

4.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न ।

4.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ।

4.5 सारांश।

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर।

4.7 स्वाध्याय।

4.8 क्षेत्रीय कार्य।

4.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

4.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- रीतिकालीन संस्कृत और लक्षण-ग्रंथों की परम्परा से परिचित होंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं से परिचित होंगे।
- रीतिकालीन काव्य परम्पराएँ और संबंधित कवियोंसे परिचित होंगे।
- रीतिकालीन प्रमुख कवि-केशवदास, चिन्तामणी, देव, मतिराम, पद्माकर, बिहारी, घनानंद, भूषण आदि के जीवन और साहित्य की विस्तृत जानकारी से परिचित होंगे
- रीतिकालीन गद्य साहित्य से परिचित होंगे।

4.1 प्रस्तावना :

सं. 1700 वि तक आते-आते भक्तिकाव्य परंपरा क्षीण होती चली गई। सिर्फ गोपी-गोपाल लीला की काव्यधारा लौकिक रस में व्यक्त होती रही, और इस आधार पर लौकिक रस की कविताएँ भी तेजी से सिर उठाने लगी। प्रत्येक कविता में श्रीकृष्ण और गोपियों का नाम तो अवश्य आ जाता है; पर प्रधानता ऐहिकता परक श्रृंगार रस की ही रही और भक्ति साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति भक्ति का रुपांतर अलंकार, रस और नायिका भेद में होकर काव्य निर्माण होने लगे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है, ''यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर है, जिसे उस काल में 'रीति', कवित्त रीति' या 'सुकवि रीति' कहने लगे थे। संभवत: इन्हीं शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनओं को 'रीतिकालीन' काव्य कहा है। उन्होंने विक्रम संवत 1700 से 1900 (1643-1843 ई) तक के काव्य को रीतिकाल माना है।'' (डॉ. द्विवेदी हजारीप्रसाद : हिंदी साहित्य) इस तरह प्रेम और श्रृंगार भावना को आश्रय मिलकर कविता में भावुकता और कला का अद्‌भुत समन्वय हुआ। मुगल शासन के इस काल में हिंदु-मुसलमान संस्कृति के समन्वय के परिणाम स्वरूप तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य और कलाओं पर हुआ। इस युग के अधिकांश कवियों ने रीति पद्‌धति पर काव्य रचना की इसी कारण इस युग को 'रीतिकाल' कहा गया। रीतिकालीन काव्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है - रीतिबद्‌ध, रीतिसिद्‌ध और रीतिमुक्त। इन तीनों वर्गों के मूल में रीति परंपरा ही कार्य कर रही थी। परन्तु रीति काव्य के साथ-साथ मुगल दरबार के प्रभाव से हिंदी में भी उर्दू शैली का काव्य पनपने लगा और हिंदी की उर्दू शैली काव्यधारा भी प्रवाहीत हुई। साथ ही रीतितर अन्य काव्य प्रवाह में वीर काव्य, भक्ति काव्य और नीति काव्य धाराएँ दिखाई पडती है। इस इकाई के अंतर्गत क्रमश: रीतिकाल की एतिहासिक पृष्ठभूमि, नामकरण, काल-निर्धारण, संस्कृत और लक्षण ग्रंथों की परंपरा, रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ, रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ प्रतिनिधी प्रमुख रचना और रचनाकार, अन्य कवियों का अल्प परिचय को जानेंगे।

4.2 विषय-विवेचन :

4.2.1 रीतिकालीन पृष्ठभूमि- सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक

- **रीतिकालीन पृष्ठभूमि :**

संवत् 1700 से 1900 (सन् 1943 ई. से 1843 ई.) तक का हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य में से अनेक दृष्टियों से अलग प्रकार का रहा है। इस युग को सामान्यत: तत्कालीन प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर रीतिकाल के नाम से पहचाना जाता है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में अनेक साहित्यिक गतिविधियों का संमिश्र रूप दिखाई देता है, तो भक्तिकाल में परलौकिकता की प्रधानता उपलब्ध होती है। रीतिकाल का साहित्य इससे अलग प्रकार का साहित्य है। इस युग के साहित्य को परलोक तथा मोक्षादी की चिंता नहीं थी। अपितु इसका जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोन रहा है।

रीतिकालीन काव्य धार्मिक प्रचार, भक्ति का माध्यम या समाज सुधार का साधन नहीं था। वह ऐतिहासिकतामूलक नई दृष्टि का परिचायक था। यह जनपद से राजपद की ओर अग्रेसर होनेवाली काव्यधारा होने के कारण इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिवेश के प्रभाव के कारण विलासिता आ गई थी। अत: आलोच्य इकाई में हम रीतिकालीन सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करेंगे।

1. सामाजिक परिस्थितियाँ :

- **घोर अध:पतन का युग :**

सामाजिक दृष्टि से रीतिकाल को प्रारंभ से अंत तक घोर अध:पतन का युग कहा जाता है। इस काल में सामंतवाद का बोलबाला था। सामंतवादी व्यवस्था के होनेवाले सारे दुर्गुणों एवं दोषों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसाधारण के जीवन पर पड़ा रहा था। सामाजिक व्यवस्था का केंद्रबिंदु बादशाह था। बादशाह के अधीन मनसबदार, अमीर-उमराव थे। अमीर-उमराव एवं मनसबदारों के बाद ओहदों के अनुसार दूसरे कर्मचारी थे। सब अपने से उपरवाले को प्रसन्न एवं खुश रखने में मग्न एवं अपनी कर्तव्यपूर्ति समझते थे। उपरवाले नीचेवालों को मात्र अपनी सम्पति समझते थे। उनका अस्तित्व केवल अपने लिए मानते थे। उपर से नीचे तक यह शासकों का वर्ग था। यह वर्ग किसान-मजदूर एवं सेठ-साहुकार तथा व्यापारी वर्ग था। किसान-मजदूर एवं श्रमजीवियों की कमाई का शोषण सेठ-साहुकार तथा व्यापारी करते थे। किसान, मजदूर एवं श्रमजीवियों का शासक और सेठ-साहुकार एवं व्यापारी शोषण करते थे। किसान तथा श्रमजीवियों का निम्नवर्ग सभी ओर से शोषित एवं पीड़ित था। अकाल, अतिवृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ युद्धों, सेनाओं के प्रयाणों आदि के कारण इस वर्ग की आय के एकमात्र साधन कृषि की हानी ही होती थी। श्रमजीवी वर्ग को किसी न किसी की बेगार करनी पड़ती थी। बेगार करनेवाले श्रमजीवी मजदूर को पारिश्रमिक के नाम पर कोड़े की मार झेलनी पड़ती थी।

शासक सामंत और अमीर उमराव का वर्ग ऐश्वर्य और वैभव-विलास में डूबा हुआ था। सूरा और सुंदरी में डूबे हुए विलासी शासक-सामंत काम-कला की शिक्षा की ही बड़ी उपलब्धि मानते थे। शाहजहाँ की वैभवप्रियता, विलासलिप्सा और प्रदर्शन प्रवृत्ति का तत्कालीन सामंतीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। परिणास्वरूप पौरूष का हास होकर केवल विलास और प्रदर्शन की प्रवृत्ति शेष रह गई थी। समाज में मनोबल की कमी और बौद्धिकता का अभाव निर्माण हुआ था।

- **नारी की स्थिति :**

रीतिकाल में नारी केवल भोग तृप्ति बेजान यंत्र बन गई थी। बहु विवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह, रखैल प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी अनेकनिक कुप्रथाओं के बल पर नारी के व्यक्तित्व का संकोच किया गया था। अनेक छोटे-मोटे सामंतों के पास रखैलों की भरमार थी। मुगल सम्राटों की अनेक पत्नियाँ, रखैलियाँ और परिचारिकाएँ केवल भोगदासी के रूप में जीवनयापन करती थी। अनेक पत्नियाँ रखना और रखैलियों से घर

भरना प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। अनैतिक-नाजायज संबंध रखना और ऐसे संबंधों से बच्चे पैदा करना साधारण बात मानी जाती थी। नारी को सम्पत्ति मानकर उसपर अधिकार स्थापित करना, उसको भोगना, उसका अपहरण करना अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी।

अनेक बेगमों, रखैलों एवं रक्षिताओं के होते हुए भी शासक सामंत वेश्याओं के यहाँ पड़े रहते थे। उनके इशारों पर लोगों के भाग्य का निर्णय तक हो जाया करता था। इसप्रकार से विलास में डूबे हुए ये लोग अपनी संतान की देखभाल तक नही कर पाते थे। शासक सामंतों के शिक्षक भी घटिया व्यक्ति होते थे। वे काम कला की शिक्षा देकर अपने कर्म की इतिश्री समझते थे।

लड़कियों साथ छेड़छाड़, तीतर-बटेर पालना और उन्हें लड़ाना शहजादों और राजकुमारों की दिनचर्या बन गई थी। विलासिनी माताओं के देखरेख के अभाव में राजकुमारियाँ और शहजादियाँ अपने महलों और हरमों में काम करनेवाले सामान्य कर्मचारियों और नौकरों के साथ प्रेम-व्यापार करने लग जाती थी। अनेक सपत्नियों के कारण पति से पूर्ण प्रेम प्राप्त न करनेवाली औरतें अपनी प्रेम की भूख मिटाने और शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नाजायज संबंध रखती थी।

''यथा राजा तथा प्रजा'' की उक्ति इस काल पर पूर्णतया लागू होती है। नारी को केवल विलास और मनोरंजन का साधन मानना, उसके शारीरिक लावण्य और कोमलता को ही महत्तव देने की सामंतीय सोच का बुरा प्रभाव समाज पर हुआ था। समाज में नारी को केवल वस्तु के रूप में स्वीकारा जाता था। उसकी अनुपम शक्ति-संपन्न अंतरात्मा की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। रूढ़ी-परंपरा और अंधविश्वासों के कटघरों में उसे कैद कर उसपर अमानवीय अत्याचार किए जाते थे। नशापान-वेश्यावृत्ति समाज-जीवन का अभिन्न अंग था।

- **नैतिक मूल्यों में गिरावट :**

जनसाधारण की शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, सम्पत्ति की रक्षा आदि का इस काल में कोई प्रबंध नहीं था। किसान-मजदूर के श्रम-माल का शोषण करना, उनपर अत्याचार करना शोषक शासकों के लिए साधारण बात थी। नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई थी। जनसामान्यों में अंधविश्वास तथा रूढ़ियाँ घर कर गई थी। ज्योतिषियों की वाणी, शकुनशास्त्र पर अगाध विश्वास था। उस समय की जनता में विलास की प्रधानता के कारण भक्ति की भावना मंद पड़ गई थी। जनता प्राय: अशिक्षित थी। वह भाग्यवादी बन गई थी। जनता में नागरिकता का पूर्ण अभाव था। स्वार्थांध होकर विलास के उपकरण जुटाना उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया था। सुंदर लड़कियों का अपहरण करवा लेना, वेश्याओं को सम्मान देना, मनोरंजन के अनेक घटिया साधनों के लीन रहना तत्कालीन समाज की दशा को स्पष्ट करता है। कृषक समाज जीविका-निर्वाह के साधनों से रहित था। उसके श्रम का स्वामी बनकर शोषण करनेवाला सामंत वर्ग भोगविलास में अंधा बन गया था। प्रशासन क्षेत्र में जागीरदारों का दबदबा था। उसके अत्याचारों से श्रमिक एवं किसान वर्ग पीड़ित था।

कला-कौशल और व्यापार की ओर भी शासन का ध्यान नहीं था। शासकों की ओर से उपेक्षित होने के कारण कला, कौशल एवं व्यापार की हानि हो गई। सभ्यता और संस्कृति के ह्रास के कारण इस युग को आर्थिक संकटों को झेलना पड़ा।

सामाजिक विषमता, छुआछूत की भावना, जाति-व्यवस्था के कठोर बंधनों के कारण समाज में अनेक दरारें पड़ी थी। सामाजिक एकता के अभाव के कारण समाज विनाश की ओर बढ़ रहा था।

2. राजनीतिक परिस्थितियाँ :

रीतिकाल मुगलों की सत्ता का परम वैभव का काल है। इस युग में व्यक्तिवादी, निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला था। रीतिकाल के पूर्व सम्राट अकबर ने अपनी उदारवादी एवं सहिष्णुता की नीति से हिंदू तथा मुस्लिमों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित कर विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी। अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर के कार्यकाल में विशेष कुछ भी नहीं हुआ। उसके कार्यकाल में राज्यविस्तार या विशेष गतिविधियाँ न के बराबर रही। सुरा और सुंदरी को भोग-लालसा उसे विरासत में मिली थी। उसके कारण भावना को बल मिला।

शाहजहाँ के शासनकाल में रीतियुग का प्रारंभ हुआ। उसके राजदरबार में तथा समकालीन राजाओं और सामंतों के दरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। यह समय सुख-शांति तथा समृद्धि का काल था। राजा और सामंत अपने दरबारों में गुणीजनों, कवियों, कलाकारों को आश्रय देते थे। शासकों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण इस युग में हो चुका था। उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामंतों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर एवं गोवलकुण्डा तक फैल गया था।

शहाजहाँ में कलागत उदारता थी। उसमें सहिष्णुता थी। उसमें प्रदर्शन एवं वैभव-विलासिता की भावना प्रधान थी। उसका गहरा प्रभाव रीतिकालीन साहित्य पर पड़ा है।

सं. 1775 में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ। उसने सत्ता के लिए जंगली जानवरों की तरह लड़नेवाले पुत्रों को देखा। दारा की मृत्यु से मानो मानवता की हत्या हुई और प्रायः मुगल वंश में धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता समाप्त हो गई।

शहाजहाँ के उपरांत औरंगजेब मुगल-शासक बना जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए कुप्रसिद्ध रहा है। उसकी साम्राज्य विस्तार लिप्सा बढ़ती ही गयी, जिसने उसे आजीवन आराम से बैठने नहीं दिया। उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति तथा अमानुषिक व्यवहारों से अनेक देशी शासक-सामंत बौखला उठे तथा हिंदू जनता विक्षुब्ध हो उठी। औरंगजेब की नीति के फलस्वरूप उसे मराठों और सिक्खों के साथ दीर्घकाल तक लड़कर असफलता को झेलना पड़ा।

औरंगजेब का व्यक्तित्व रागालक तत्त्वों से रहित था। साहित्य, संगीत, कला, सौंदर्य, ऐश्वर्य तथा विलास के प्रति उसे घोर चिढ़ थी। उसने अपने कार्यकाल में संगीत की घोर उपेक्षा की। वेश्यावृत्ति तथा मद्यपान के पूर्ण निषेध के संबंध में उसने सरकारी फरमान भी जारी करवा दिए थे। परंतु उनका बंद हो जाना सरल नहीं था। उस समय अनेक सामंतों के अनेक हरम थे और उनमें अनेक रक्षिताएँ और नर्तकियाँ भी थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजनीतिक स्थिति अत्यंत बिकट तथा शोचनीय हो गई। राजनीति की दृष्टि से इस काल को घोर निराशा और अंधःकार का युग समझना चाहिए। औरंगजेब के उत्तराधिकारी एकदम अयोग्य, असमर्थ, विलासी, पंगु एवं नपुंसक सिद्ध हुए। केंद्रीय शासन के जीर्ण हो जाने से अनेक प्रदेशों के शासक स्वतंत्र हो जाए। आगरा में जाटों, राजस्थान में राजपूतों तथा पंजाब में बन्दा बैरागी एवं दक्षिण में मराठों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की।

स्थानिक शासकों की स्वतंत्रता की चेष्टाओं से मुस्लीम सत्ता दिन-ब-दिन कमजोर होने लगी थी। उसकी कमर तोड़ने का काम विदेशी आक्रमणकारी नादिरशाह और अब्दाली ने किया।

समस्त देश में फैली शत्रुता, अशांति और शासकों की कमजोरी का लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने बक्सर की लढ़ाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना दिया। जहाँदारशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में नैतिकता, शौर्य, पराक्रम, स्वाधीनता की भावना समाप्त हो गई थी। वेश्याओं, तबलचियों, सारंगी वादकों के इशारों पर शासक नाचने लगे थे। राजमहलों में वेश्याओं और हिजड़ों की मनमानी चलने लगी। उनके इशारों पर उच्च पदों पर नियुक्तियाँ होने लगी। उन्हें श्रेष्ठ प्रासाद एवं अधिकार दिए जाने लगे। ऐसे अधिकार प्राप्त अधिकारी एवं शासक जनता पर मनमाने अत्याचार करने लगे।

सम्राट मुहम्मदशाह की रंगीली लीलाओं के कारण उन्हें इतिहासकरों ने रंगीले की उपाधि दी है। वह अपना समय नाच-रंग तथा मदिरापान में व्यतीत करता था। शाह को वेश्या ऊधमबाई से अनन्य प्रेम था। उससे उत्पन्न पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी बना। वह कमजोर था। देशी राजाओं में भोग-विलास का अत्याधिक आकर्षण था। उसके दरबारों और महलों में वेश्याओं तथा रक्षिताओं की कमी नहीं थी। वास्तव में यह युग घोर नैतिक पतन की पराकाष्ठा का काल है। राजनीति की दृष्टि से यह काल मुगल साम्राज्य के वैभव एवं पतन का काल माना जाता है।

3. धार्मिक परिस्थितियाँ :

इस काल के पूर्वाध्य में हिंदू-मुस्लिम और उत्तरार्ध में इनके साथ ही इसाई धर्म प्रमुख रहा है। जहाँ तक हिंदू धर्म का प्रश्न है, उसके राम और कृष्ण धार्मिक भक्ति आंदोलन के मूल रूप को खो चुके थे। कृष्ण भक्तिधारा तो यहाँ आकर उद्दाम काम-वासना-उपासना में तब्दील हो गई। कृष्ण गोपियों तथा राधा का लीलागान 'कामलीला' में परिवर्तित हो गया। भक्तिकाल के उत्तरार्ध में ही इस प्रवृत्ति के दर्शन होने लगे थे। कृष्ण भक्ति धीरे-धीरे राधा में केंद्रीभूत होने लगी थी। मंदिरो-मठों में अब ऐश्वर्य और विलास की लीलाएँ होने लगी थी। 'रसिक संप्रदाय' के तथाकथित भक्तों ने राम-सीता को भी श्रृंगार लीलाओं का नायक-

नायिका बना दिया था। लेकिन 'महाराष्ट्र' में न तो पूर्वोल्लिखित सामाजिक-स्थिति आ पायी और न इस तरह की धार्मिक स्थिति। वहाँ उस समय भी शिवाजी-संभाजी के बाद कुछ पेशवों ने तुकाराम-रामदास जैसे संतों की उज्वल वाणी का प्रभाव बनाए रखा, लेकिन इस काल के उत्तरार्ध में सामाजिक स्थिति वहाँ भी इसी तरह की बन गई। हाँ, उत्तर भारत में इस काल में संतों की परंपरा कुछ विकृत रही है, लेकिन उसमें भी वह प्रभावात्मकता नहीं रही, जो कबीर के समय में थी। इसतरह सजग, सक्रिय आंदोलन भी विलासिता में खो गया और धर्म के नाम पर उन्हीं कर्मकांडों-पाखंडों का प्रचलन बढ़ने लगा, जिसका भक्ति आंदोलन ने डटकर मुकाबला किया था।

अकबर तक आते-आते मुस्लिम धर्म कुछ उदार हुआ था, लेकिन जहाँगीर, शहाजहाँ और औरंगजेब के समय में कट्टरपंथी बन गया था और तलवार के आतंक देशभर में फैलने लगा। धीरे-धीरे वह धर्म भी मुल्ला-मौलवी गिरफ्त में चला गया। उस समय के मुस्लिम धर्म में रूढ़ीवादिता के अत्याधिक बढ़ जाने से, वह धर्म भी जीवन की वास्तविकता से हट गया। कुलमिलाकर हिंदु और मुस्लिम दोनों धर्मों में बाह्याचरण ही धर्माचरण माना जाने लगा। इस सामंतवादी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश की बदौलत इस समय की सभी कलाओं पर भी सामंतवादी जीवनमूल्यों का असर हुआ है। चाहे वह चित्र, शिल्प, स्थापत्य, मूर्ति, संगीत हो या साहित्य।

4. साहित्यिक परिस्थितियाँ :

रीति या श्रृंगार काल में विपुल मात्रा में साहित्य लिखा गया है। इसमें एक ओर रीति-निरूपण की प्रवृत्ति का हिंदी साहित्य में व्यापक प्रवेश हुआ है तो दूसरी ओर श्रृंगार इसमें सर्वव्याप्त है। साथ ही इसमें पूर्ववर्ती प्रवृत्तियाँ भी कमोवेश मात्रा में विद्यमान हैं। विशेषत: वीर-प्रवृत्ति आदिकाल से लेकर भक्तिकालीन हिंदी साहित्य तक दिखाई देती है, लेकिन वह अपनी पूर्वस्थिति से अलग स्वरूप धारण किए हुए रही है। अत: कहा जा सकता है कि इस काल के साहित्य में कई धाराएँ प्रवाहित हैं। इन सबको समेटकर रीति या श्रृंगार काल के साहित्य का वर्गीकरण विविन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रीति-निरूपण' की प्रवृत्ति को प्रधानता देकर इसे- 1. 'रीति-ग्रंथकार कवि' और 2. 'रीतिकाल के अन्य कवि' इन दो वर्गों में विभाजित किया है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तुत बृहत इतिहास में इसे 1. लक्षणबद्ध काव्य 2. रीतिबद्ध काव्य और 3. रीतिमुक्त काव्य में वर्गीकृत किया है। ङ्गरीतिमुक्तफ के अंतर्गत इस काल की 'रीति' के अतिरिक्त अन्य सभी प्रवृत्तियों के साहित्य को समेटा है। डॉ. नगेंद्र के संपादकत्व में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में इस काल के साहित्य को पाँच प्रवृत्तियों के आधार पर 1. रीतिकाव्य 2. रीतिमुक्त काव्य 3. भक्ति काव्य 4. नीति काव्य 5. वीर-काव्य में विभाजित किया गया है, लेकिन रीति-निरूपण, श्रृंगार की प्रधान प्रवृत्तियाँ तथा शेष भक्ति, नीति और वीर को गौण घोषित कर साहित्य परिचय 1. रीतिकाव्य 2. रीति मुक्त काव्य 3. रीतिकाल की अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ इन तीन वर्गों में ही वर्गीकृत करके दिया गया है। आचार्य-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल के साहित्य में 'श्रृंगार-प्रवृत्ति' को प्रधान मानकर इस प्रकार वर्गीकृत किया है-

- श्रृंगार काल
  - रीतिबद्ध
    - लक्षणबद्ध
    - लक्ष्य मात्र काव्य
  - रीतिमुक्त काव्य या स्वच्छंद काव्य
    - रहस्योन्मुख काव्य
    - शुद्ध प्रेम काव्य

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने रीतिकाल और भक्तिकाल का विभाजन अस्वीकार कर दोनों को समन्वित 'मध्यकाल' कहा है। रीतिकालीन साहित्य को उन्होंने प्रमुखत: 1. शास्त्रीय मुक्तक काव्य परंपरा, 2. स्वच्छंद मुक्तक काव्य परंपरा इन दो वर्गों की काव्य-परंपरा में वर्गीकृत किया है। अत: कहा जा सकता है कि लगभग सभी विद्वानों ने रीति या श्रृंगारकालीन साहित्य को प्रमुखत: 1. रीति और 2. रीति मुक्त वर्गों में वर्गीकृत किया है। हम सभी इसी वर्गीकरण को अपना रहे हैं, लेकिन कुछ संशोधन के साथ। हमारी नम्र-मान्यता है कि इस साहित्य में निहित- 1. रीति-निरूपण 2. श्रृंगार 3. वीर 4. भक्ति और 5. नीति। इन प्रवृत्तियों में मात्र रीति और श्रृंगार ही नहीं बल्कि वीर-प्रवृत्ति भी प्रमुख रही है, गौण नहीं। 'हिंदी साहित्य के बृहत इतिहास' के सप्तम भाग में इस काल के 189 कवियों की वीर-रचनाओं की सूची दी गई है और 'वीरकाव्य खंड' के लेखक डॉ. भगवानदास तिवारी ने यह स्वीकार भी किया है कि- ''यह वीरकाव्य सारे देश में रचा गया है, अत: वीरकाव्य के कवियों और उनकी कृतियों की संख्या विपुल है, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रीतिमुक्त-काव्यधारा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धारा वीरकाव्य-धारा थी, जिसके परिष्कार, विकास और समृद्धि में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों प्रकार के कवियों ने अपनी प्रतिभा और विद्वता का समुचित प्रयोग किया है।''

इस धारा को गौण मानकर रीति या श्रृंगारकालीन साहित्य का वर्गीकरण करना इस धारा के प्रति अन्याय होगा। हमारी दृष्टि से इस काल के साहित्य को निम्न-रूप में वर्गीकृत करना अधिक समचीन होगा।

4.2.2 रीतिकालीन काव्यधाराएँ-प्रवृत्तियाँ (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त) :

रीतिबद्ध काव्यधारा : इस वर्ग में वे कवि आते है, जो रीति के बंधन में बंधे हुए है। अर्थात जिन्होंने काव्यगत नियमों के आधार पर जो काव्य लिखा है वह रीतिबद्ध काव्य है। इसप्रकार काव्य लिखनेवाले कवियों ने संस्कृत साहित्य में रस और अलंकार संप्रदाय के अंतर्गत नायक-नायिका भेद तथा अलंकार वर्णन की परंपरा पर आधारीत अपना काव्य सृजन किया। इनका प्रमुख उद्देश्य या तो काव्य की शिक्षा देना था, किसी काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन करना। डॉ. नगेंद्र की दृष्टि में रीतिबद्ध कवि वे है, ''जिन्होंने रीतिग्रंथों की रचना न करके काव्य सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य रचना की है।'' (डॉ. नगेंद्र हिंदी साहित्य का इतिहास) इसप्रकार जिन्होंने रीतिग्रंथों की रचना न करके काव्य सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य सृजन किया और इन आचार्य कवियों ने अपने आप को कवि शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। तत्कालीन राजा, कवियों और रसिक जनों के लिए लिखे इस काव्य पर अलंकार, रस और ध्वनि

संप्रदाय का प्रभाव रहा। परंतु किसी काव्य सिद्धांत की स्थापना नहीं की। इस कारण इन कवियों को शास्त्र कवि भी कहा जाता है।

रीतिकाल के अंतर्गत उपलब्ध ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रीतिबद्ध कवियों में और संस्कृत कवियों में अंतर है। रीतिकालीन कवियों में आचार्य और कवि का अद्भूत एकीकरण दिखाई देता है। इन्होंने रीति निरुपण की प्रवृत्ति से भिन्न रुप में काव्य सृजन किया जिसमें विभिन्न काव्यांगों के लक्षणों और उनके अनुसार सरस उदाहरणों की रचना की। साथ ही लक्षणों के भार से मुक्त श्रृंगार रस से परिपूर्ण सुंदर काव्य रचना भी की। रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख शैली अलंकारीकता रही जिसका उद्देश्य पंडित्य और काव्य-कौशल का प्रदर्शन रहा है। रीतिकालीन कवियों ने स्वतंत्र होकर काव्य नहीं लिखा बल्कि किसी के अधिन रहकर अपने काव्य का निर्माण किया है।

रीतिबद्ध कवियों की परंपरा में दो प्रकार के कवि आते हैं। एक वे कवि है, जिन्होंने अलंकारादि विशिष्ट काव्यांगों पर संक्षिप्त लक्षण, उदाहरण देकर या स्वरचित लक्षण और दूसरे कवियों का उदाहरण देकर विषय को समझाने भर लक्षणों, रचनाओं का निर्माण किया। जिन्होंने रीति निरुपण की प्रवृत्ति का पहले से भिन्न रुप विभिन्न काव्यांगों के लक्षणों और उनके अनुसार सरस उदाहरणों की रचना में लक्षित कर लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया। देव, मतिराम, चिंतामणि, केशवदास, पद्माकर आदि लक्षण ग्रंथकार है और लक्षण ग्रंथ के प्रमुख कवि श्रीपति को लिया जा सकता है। इन कवियों का मुख्य उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन ही था। निष्कर्षत: लक्षण बद्ध काव्य कृतियों को रीतिबद्ध काव्य कहा जा सकता है।

- **रीतिसिद्ध काव्यधारा :**

इस वर्ग में वे कवि आते है जिन्होंने रीति ग्रंथ नहीं लिखे किन्तु 'रीति' की उन्हें भलीभाँति जानकारी थी। इन्होंने लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत करने की क्षमता जरुर थी। इस वर्ग के कवि काव्यशास्त्र के किसी भी संप्रदाय या लक्षण की चर्चा नहीं करते। बल्कि, काव्यशास्त्र का अनुकरण अवश्य करते है। रीतिसिद्ध कवियों ने सैद्धांतिक चर्चा नहीं की बल्कि, स्वतंत्र ग्रंथों के माध्यम से अपनी काव्य प्रतिभा का प्रमाण दिया। वह कवित्व के आकर्षण के कारण चमत्कार पूर्ण उक्तियों का प्रयोग करने लगे जिसमें स्वअनुभूति ने काव्य में अधिक स्थान दिया। इन कवियों ने अपने काव्य में कलापक्ष और भावपक्ष को समान महत्त्व दिया है। इनकी कविता में रीति परंपरा आवश्यक कार्यरत रही। परंतु, उन्होंने किसी सक्षम ग्रंथों का निर्माण नहीं किया। किंतु, अलंकारिक शैली का अवलंबन करके रीतिकालीन परंपरा के अनुरूप अपने काव्य को व्यक्त किया।

अलंकरण शैली के अवलंबन के कारण कुछ आलोचक रीतिबद्ध काव्य और रीतिसिद्ध काव्य में अंतर नहीं मानते, 'अलंकार, रस, नायिका भेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो रहे है, परंतु उनका प्रत्यक्षत: निरुपण इन कवियो ने नहीं किया। वरन, उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया है। ऐसी दशा में मूलत: वे कवि है, आचार्य नहीं इसीलिए उन्हें रीतिबद्ध कवि मानना चाहिए। आचार्य विश्वनाथप्रसाद 'मिश्र' ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि कहते है।'' (डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास) परंतु, रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में स्पष्ट रुप से विभाजन रेखा खिंची जा सकी है। रीतिबद्ध कवियों ने रीति का निरुपण

किया और रीतिसिद्ध कवियों ने अलंकारिक शैली का प्रयोग कर स्वानुभूति काव्य को व्यक्त किया। बिहारी का काव्य ग्रंथ 'बिहारी सतसई' रीतिसिद्ध काव्य प्रकार का ग्रंथ है। आचार्य शुक्ल जी ने बिहारी को रीतिबद्ध कवि कहा है। लेकिन बिहारी मूलत: रीतिसिद्ध कवि ही है। नायक-नायिका भेद, अलंकार, रस, ध्वनि आदि काव्यशास्त्रीय गुण रीतिकालीन सभी कवियों में दिखाई देते हैं। किन्तु इनमें आचार्यत्व के प्रदर्शन का भाव नहीं है। इस तरह अलंकारिक की प्रवृत्ति को लेकर लिखे काव्य को रीतिसिद्ध काव्य के अंतर्गत रखा गया है। इस वर्ग के कवियों के हर छंद पर कोई-न-कोई काव्य लक्षण उद्घाटित किया जा सकता है। इनकी काव्य चेतना में नई कल्पना तथा मौलिक उद्भावनाएँ उद्घटित करने में समर्थ है।

● रीतिमुक्त काव्यधारा :

इस वर्ग में वे कवि आते है जो 'रीति' के बंधन से पूर्णत: मुक्त है। ये कवि न आचार्यत्व के मोह से काव्य रचना में प्रवृत्त हुए और न तो लक्ष्य स्वरूप कविता-निर्माण में उस काल की परंपरागत काव्य रचना के विरोध में विद्रोह की भावना प्रकट कर स्वच्छन्द भाव से अपनी वैयक्तिक भावनाओं को व्यक्त किया। जिनमें न केवल काव्य अपितु, जीवन भी स्वच्छंद प्रेम की अनुभूतियोंसे ओत-प्रोत था। इस कारण कुछ विद्वान इसे 'स्वच्छंद' कविता अथवा 'स्वच्छंद' काव्यधारा के नाम से अभिहित करते है। लक्षण ग्रंथों के माध्यम से आश्रयदाताओं की प्रशंसा, मनोरंजन और धनलालसा के मोह से दूर रहकर रुढिबद्ध परंपरा से मुक्त होकर काव्य लिखने का कठिण कार्य इस काल के 'स्वच्छंदधारा' के कवियों ने किया है। डॉ. नगेन्द्र कहते है, ''स्वच्छंद प्रवृत्ति का कवि अंतर्मुखी होता है। उसे अपनी अनुभूति पर अधिक विश्वास रहता है - अनुभूति की इन्द्रियानुभूति नहीं, हृदयानुभूति। संसार का अनुभव करनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा अपना अनुभव करनेवाला व्यक्ति उसकी दृष्टि में अधिक सच्चा और प्रामाणिक है। स्वच्छंदतावादी साहित्य में अभिनवत्व (ताजगी) रहता है, क्योंकि उसकी प्रेरणा जीवन से मिलती है।'' (डॉ. नगेन्द्र हिंदी साहित्य का इतिहास) इन कवियोंने रुढियों से मुक्त होकर आत्मप्रधान और व्यक्तिपरक होकर बाह्यजगत से मुक्त अभिनवत्व और अद्भुता से युक्त तत्वों से काव्य लिखना इनकी विशेषता रही है। इस तरह इन कवियों का काव्य लेखन साध्य नहीं बल्कि साधन था। इसलिए वे भाव प्रधान और सहज काव्य लिख सके।

रीतिमुक्त काव्य व्यक्तिप्रधान काव्य है। जिसमें भावनात्मकता अधिक दिखाई देती है। इसीकारण इन कवियों का काव्य मन को छू लेनेवाला काव्य सिद्ध हुआ है। रीतिमुक्त काव्य प्रेम और सौंदर्य का समन्वय है। इन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों का अत्यंत सुंदर चित्रण किया है। किन्तु, प्रबलता वियोग श्रृंगार की रही है। व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद प्रेम की अन्य प्रवृत्तियाँ, सौंदर्यानुभूति, साहसिकता, विरह-वेदना आदि की प्राधानता लक्षित होती है। फारसी काव्य के प्रभाव के कारण विरह में सुख का अनुभव करनेवाले इन कवियों के प्रेम भावना में एकोन्मुखता एवं गंभीरता विद्यमान है। इन्जहोंने अपने काव्य की भाषा समाज की भाषा रखने के कारण इनके काव्य जन सामान्य में लोकप्रिय रहे। इन्होंने तत्कालीन समाज भाषा में प्रचलित मुहावरें, कहावतें, लोकोक्तियों का बखूबी से प्रयोग किया है। ये प्रेम कवि रहने के कारण नायिका के वर्णन में कल्पना का सहारा न लेते हुए रुप वर्णन में यथार्थता और मौलिकता है। नायिका के वास्तविक दशा का तथा मनेवृत्ति का सूक्ष्म चित्रण असाधारण होने से कही-कही रहस्यात्मकता का पुट भी आ जाता है। घनानंद

द्‌वारा हुआ अपनी प्रेमिका सुजान का चित्रण उसका सुंदर उदाहरण है। अर्थात, रीतिमुक्त काव्य स्वच्छन्द प्रेम की अनुभूति है। जिसमें प्रेम-भावना सूक्ष्म, भावूक उदात्त और पीडा प्रधान है।

इस तरह रीतिमुक्त कवियों ने परंपरागत परिपाठी से हटकर काव्य सृजन करते हुए अपने काव्य में वैयक्तिकता को, सामाजिकता से अधिक महत्त्व देते हुए अपेन आपको समाज विरोधी रुप में प्रस्तुत करते हुए स्वानुभूति का काव्य लेखन किया है। रीतिमुक्त काव्य लेखन कवियों की संख्या लगभग पचास के करीब है। परंतु, इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और रसखान महत्त्वूपर्ण कवि है।

- **हिंदी की उर्दू शैली का काव्य :**

रीतिकाल में रीतिबद्‌ध, रीतिसिद्‌ध तथा रीतिमुक्त काव्यधारा संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव ग्रहण कर प्रवाहीत हुई। मुगल शासन के प्रभाव स्वरूप उर्दू भाषा और भारतीय भक्तिकालीन साहित्य के प्रभाव स्वरूप, ब्रज भाषा में भी कविता लिखी जा रही थी। ब्रजभाषा की कविता दिल्ली और लखनऊ दरबार से दूर थी। तो उर्दू कविता खडी बोली के नजदीक थी। परन्तु, उर्दू कविता दोनों दरबारों की जर्जता में अतिम सास ले रही थी। मुगल सत्तापर लगातार आक्रमण और विलासी राज्यकर्ताओं के परिणाम स्वरूप; जन-साधारण का जीवन समस्याओं से घिरा हुआ था। इन कवियों की वाणी उनके अंर्तविरोध में उजागर हो उठी। जिंदगी की समस्याओं मानवीय मुल्यों की अभिव्यक्ती हिंदी की उर्दू काव्य-शैली में व्यक्त होने लगी। हिंदी के उर्दू शैली के कवियों में मीर नजीर, अकबराबादी और मिर्जा गालिब महत्त्वपूर्ण है। इन कवियों ने क्लासिक (अभिजात) भाषा से देशीभाषा को स्थान दिया था। मुगल शासक के पतन काल के समय की यह किविता अत्यंत संवेदनशील रही है।

- **रीतितर काव्य :**

रीतिकाल में राज्यकर्ताओं के विलासी वृत्ति को चित्रीत करनेवाला रीतिकाव्य निर्माण हुआ, उसी प्रकार जन-साधारण की सच्ची-सीधिसादी जीवनधारा के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक वृत्तिसे बद्‌ध समाज जीवन से प्रभावित होकर विभिन्न वर्गों, अंचलों, विचारों, भावो से युक्त काव्य रचना भी होती है। जैसे-- पूर्ववर्ती भक्तिकाल के प्रभाव स्वरूप भक्तिकाव्य, देशी राजे-महाराजाओं का युद्‌धरत रहना। और उन्हें प्रोत्साहित करने हेतू वीरकाव्य का सृजन हुआ। रीतिमुक्त कवियों ने मानवीय मूल्यों को बनाए रखने के लिए नीतिकाव्यों का भी निर्माण किया। इसतरह रीतिकाल में रीति साहित्य के साथ-साथ भक्तिकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में निर्माण हुई, जिनका तत्कालीन परिवेश में विशेष महत्त्व है। इसलिए रीतिकाल काव्य के भक्तिकाव्य, वीरकाव्य और नीतिकाव्य का परिचय जानेंगे।

- **भक्तिकाव्य :**

मध्यकाल के पूर्वार्ध में भक्ति की धारा प्रबल थी। किंतु, रीतिकाल में भक्तिकाव्य का प्रवाह धीमी गती से प्रवाहित रहा। इस काव्य में संतकाव्य, सूफीकाव्य, रामकाव्य और कृष्ण काव्य की रचनाएँ होती रही।

संतकाव्य धारा : रीतिकाल में संतकाव्य धारा सबसे निर्मल काव्य धारा रही है। जनसाधारण के जीवन से संबंधित काव्य संतकाव्यधारा की विशेषत: रही है। जाति-पाँति, मतवाद, पंथ-भेद की अवहेलना की है। बाह्यांडबर का विरोध इन संतो ने अपने काव्य से किया। परंतु भक्तिकाल के संत कवियों की तरह इनकी वाणी प्रखर नहीं थी। पूर्ववर्ती संतों के विचारों का ही पिष्टपेषण इनकी वाणी में दिखाई देता है। रीतिकाल के संत कवियों में यारी साहब, दरिया साहब, जग जीवनदास, पलटू साहब, दरियादास, चरणदास, शिवनारायण, तुलसी साहब, गुरुगोविन्द सिंह, आनंदघन, प्राणनाथ, धरणीदास, सहजोबाई, दयाबाई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सूफी काव्य : सूफी काव्यधारा का पूर्ण उत्कर्ष भक्तिकाल में हुआ था। किन्तु यह काव्यधारा उन्नीसवीं शती के अन्त तक प्रवाहित रही। रीतिकाल में सूफी काव्य के दो प्रकार है- आध्यात्मिक सिद्धांतपरख तथा लौकिक प्रेमपरख, इन कवियों में कुछ मुसलमान कवि थे और कुछ हिंदु संत कवि थे। आध्यात्मिक सिद्धांतपरक कवियों में कासिमशाह, नूर महम्मद, और शेख निसार यह मुसलमान कवि विशेष उल्लेखनीय हैं। हिंदु कवियों में सूरदास और दुखहरनदास अधिक प्रसिद्ध है। सूफी कवियों ने लिखे आध्यात्मिक प्रेमाख्यानों में उभयांगी प्रेम की अभिव्यक्ति स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। इनके मतानुसार सच्चे प्रेम भक्त की दृष्टि में यह दुनिया प्रेम का क्षेत्र है। लौकिक प्रेम और अलौकिकता को देखना इन कवियों की प्रवृत्ति रही है। इसलिए इनके काव्य में चित्रित 'काम' भावना प्रधान रही। किन्तु यह 'काम' परम पवित्र और समुज्ज्वल रहा है। लौकिक प्रेमाख्यानकारों में बोधा, चर्तुभुजदास, आदि महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

रामकाव्य : रीतिकाल के सतरहवीं शतींसे उन्नीसवीं शती तक का रामकाव्य रसिकता प्रधान रहा है। रामभक्ति में मधुरा भक्ति ने प्रवेश किया और रामभक्ति काव्य श्रृंगारिकता तथा विलासिता से बद्ध हुआ। भक्ति का मूल स्वर शुद्ध भक्तिमय न होकर अधिकांश में लौकिक श्रृंगार की ओर झाँकता हुआ सा दिखाई देता है। श्रृंगारिकता के परिणाम स्वरूप; भाषा भी अलंकृत हो गयी। इस तरह रीतिकालीन रामकाव्य में सहज अभिव्यक्ति का भक्तिभाव कम और अलंकृत अभिव्यंजना का कवित्व अधिक रहा है। इसकाल के रामकाव्य के कवियों में जानकी रसिक शरण, भगवंतराय खीची, जनकराज किशोरी शरण, रसिक अली, सरजूराम पंडित, बालअली जू, लल्लदास, युगनान्दशरण, मनियार सिंह आदि प्रमुख है।

कृष्णकाव्य : कृष्णकाव्य के श्रृंगारिक भावनाओं तथा काव्यशास्त्रीय भाव भक्तिकाल में ही दिखाई पडते है, किन्तु यह तत्व रितिकाल में प्रबल हो उठा। राधा और कृष्ण का चित्रण लौकिक धरातल पर होकर प्रेममयी रस भक्ति भावनाओं के साथ बाह्य मांसल श्रृंगारिकता की ओर प्रवाहित होकर श्रृंगारिकता और अलंकारिकता के इस युग में कृष्णभक्ति साहित्य भी सच्चे माधुर्य भाव के स्थान पर कम-वासना की भावना को उद्दीप करने में सहायक सिद्ध हुआ। इस तरह इस युग का कृष्णकाव्य श्रृंगारिक काव्य के लिए प्रेरक बना। डॉ. नागेंद्र कहते है, 'जीवन की अतिशय रसिकता से घबरानेवाले धर्मभीरू रीतिकवियों को राधा-कृष्ण का अनुराग आश्वासन देता था।'' (डॉ. नागेंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास) इस काल के कृष्णभक्त कवियों ने दो प्रकार के काव्य लिखे- 1) प्रबधनात्मक, 2) मुक्तक। प्रबधनात्मक काव्य के रचयिताओं में

गुमानमिश्र, ब्रजवासीदास, मंचित आदि नाम महत्त्वपूर्ण है। मुक्तक कवियों में रुप रसिक देव, नागरीदास, अलबेली अलि, चाचाहित, वृन्दावनदास और भगवत रसिक आदि महत्त्वपूर्ण है।

नीतिकाव्य : हिंदी साहित्य के रीतिकाल में नीतिकाव्य धारा अचानक अवतरित नहीं हुई है। संस्कृत भाषा में भी नितीकाव्य की रचना भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' (650) नाम से की थी। मध्यकाल में कबीर, तुलसी, रहीम, जमाल आदि के काव्य में नीति विषयक दोहे प्राप्त होते है। रीतिकाल में भी नीतिकाव्य लिखा गया। वृंद ने 'वृंद सतसई' में विशुद्‌ध नीति परख दोहों की रचना की। नीतिकाव्य के कवियों में वृंद, गिरीधर, कविराय, दीन दयालगिरी अदि के नाम उल्लेखनीय है। 18 वीं शती से 19 वीं शती तक नीतिकाव्य कारों ने अपनी रचनाओं का सृजन करते रहे है। जिसमें सामान्य जनता के लिए सद्‌व्यवहार और चरित्र निर्माण का मार्ग दिखाते रहे। रीतिकालीन नीतिकाव्य शुद्‌धनीति की व्याख्या के लिए ही लिखा। उसमें समाज के कल्याण तथा सांसारिक व्यावहारिकता की ज्ञान-प्राप्ति के दृष्टिकोन से परमोत्तम सिद्ध हुआ।

वीरकाव्य : हिंदी साहित्य के आदिकाल के रासों काव्यों में वीर और श्रृंगार की समन्वित अभिव्यक्ति मिलती है। किन्तु वे आश्रयदाताओं के बखान मात्र है। उसमें धर्म तथा राष्ट्र की भावनाओं से कोई विशेष महत्त्व नहीं था। रीतिकालीन वीर काव्य के कविंयों ने स्वराष्ट्र तथा स्वधर्म की रक्षा करनेवाले वीर पुरुषों की वीर भावनाओं को चित्रण किया। वीरकाव्य के रचयिता वीर भावनाओं के साथ प्रेरित राजे महाराजे भी वीरता से ओत-प्रोत हो उठते हैं। जैसे भूषण के काव्य में जो देशभक्ति का जाज्वल्य है वही राजा शिवाजी महाराज के कर्म में जाज्वल्यता क्रातिकारिणी सिद्‌ध हुई है। नि:संदेह रीतिकालीन वीर कवियों में सच्ची वीरता और देशभक्ति के स्पष्ट दर्शन होते है। काव्य की कलापक्ष की दृष्टि से काव्य वीर रस से युक्त होकर अप्रतिम बने है। भावों की उत्तम भूमिका निभाने के लिए पद्‌-संघटना का प्रयोग किया गया है। रीतिकाल में वीरकाव्य में प्रबंधनात्मक और मुक्तक काव्य लिखा गया । प्रबंधनात्मक काव्य में गोरेलाल के 'छत्रप्रकाश' में चम्पतराय तथा छात्रसाल की वीरतापूर्ण गाथा प्राप्त होती है। पद्‌माकर की 'हिम्मत बहादुर बिरुदावली' में शौर्य पूर्ण भावों की कलापूर्ण अभिव्यंजना दृष्टव्य है। सुजान के 'सुजान चरित' में भरतपूर के राजा सुजानसिंह के वीरता का गान है। जोधराज के 'हम्मीद रासों' में हम्मीरदेव की यशोगाथा है। केशव की 'वीरसिंह देव चरित' और मान कवि की 'राज-विलास' आदी रचनाएँ प्रबंधनात्मक रचनाएँ है। मुक्तक रचनाओं में भूषण, बाँकीदास, सूर्यमाल आदि कवियों का वीरकाव्य महत्त्वपूर्ण है।

इसप्रकार रीतिकाल में रीति और शृगार के अतिरिक्त वीरकाव्य, भक्तिकाव्य, नीतिकाव्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। रीतिकाल के कवियों ने रीती निरुपण के साथ-साथ रस, श्रृंगार और अलंकारिकता के प्रयोग से रीतिबद्‌ध, रीतिसिद्‌ध और रीतिकाव्य की रचना की । साथ ही दरबारी प्रशंसा से दूर रहे रीतिकालीन कवियों ने जनसाधारण की भावनाओं को वाणी देते हुए अपने आर्चायत्व और कवित्व को सिद्‌ध किया। इसतरह हिंदी साहित्य का रीतिकाल विविध काव्य धाराओं के कारण साहित्य के क्षेत्र में संपन्न और बहुमुखी विकास का कारण सिद्‌ध होता है।

● **रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ :**

रीतिकालीन साहित्य दरबारी संस्कृति का प्रतिक है। रीतिकालीन कवियों की कविता उनके जीविकोपार्जन से जुडी थी, इस कारण रीतिकाल के अधिकतर कवि राज्याश्रय में रहकर अपने आश्रयदाताओं के दान, पराक्रम और रसिकता को संतुष्ट करने हेतु राजाश्रय में पली इस कविता में रीति और अलंकार का ही प्राधान्य प्राप्त हुआ। परिणाम स्वरूप; जनसामान्य का चित्रण इस काव्य में न के बराबर ही रहा है। परंतु, जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहे उनकी कविता से जनसाधारण की समस्याओं, मानवीय मूल्यों, भक्ति नीति और समय की माँग नुसार वीर काव्य की धारा भी गौण रुप से प्रवाहित रही। लेकिन श्रृंगारिकता ही इस काल की साहित्य की प्रमुख विशेषता रही। साथ ही अलंकारिकता, लक्षण ग्रंथ काव्य के विविध रुप इस काल के परिवेश में पनपते रहे। अत: रीतिकाव्य की प्रमुखता रहे इस काल की प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार से है -

श्रृंगार रस का प्राधान्य : रीतिकाल की सबसे बडी प्रवृत्ति श्रृंगार रस ही है। इसमें तीन प्रकार के कवि मिलते है - रीतिबद्ध रीतिसिद्ध, और रीतिमुक्त। इन कवियों का श्रृंगार वर्णन एक ओर तो शास्त्र के बंधनों से युक्त है, तो दूसरी ओर आश्रयदाताओं की विलासी प्रवृत्ति ने श्रृंगार वर्णन को उस सीमा तक पहुँचा दिया जहाँ अश्लीलता और वासनात्मकता परमकोटी पर दिखाई देती है। शास्त्रीय बंधनों से युक्त कवियों ने श्रृंगार रस के संयोग पक्ष को विशेष महत्त्व दिया और शास्त्र बंधनों से मुक्त कवियों ने वियोग पक्ष को महत्त्व दिया। इस कवियोंके बारे में बच्चन सिंह कहते है - ''इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं के भोग परख जीवन को देखकर और उस प्रकार के जीवन को यश और सम्मान का कारण समझकर उसे कल्पना और वाग्वैद्य के बल पर अपनी चरम सीमा तक घसीट ले जाने के लिए उत्साहित होना था।'' (डॉ. सिंह बच्चन : हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास) परिणाम स्वरूप; कवियों की दृष्टि विकास के समस्त उपकरणों के संग्रह की ओर ही गई। विलासवृत्ति की प्रधानता के कारण इनकी सौंदर्य दृष्टि भी नारी के अंग सौष्टव, शारीरिक बनावट एवं बाह्यरुपाकार तक सीमित रही और नारी को केवल भोग और विलास का उपकरण समझकर चित्रित किया गया। प्रेम के आंतरिक रुप अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या के वर्णन को त्यागकर उन्होंने इंद्रिय सुख की प्रधानता, रुपलिप्सा, भोगेच्छा एवं बाह्य सौंदर्य चित्रण को प्रमुखता दी है। इन कवियों का श्रृंगार साधन नहीं बल्कि; साध्य है। इनका श्रृंगार वर्णन विलासी सामंतों की भोगवृत्ति को पुष्ट करने के लिए अधिक कारण संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर काव्य निर्माण करते समय नायिका भेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु वर्णन, अलंकार निरुपण को महत्त्व दिया। परिणाम स्वरूप; नारी के इंद्रियोत्तेजक रुप का वर्णन ही अधिक है, जो अश्लिलता के उच्चकोटि तक पहुँच गया। श्रृंगारिकता को प्रधानता देनेवाले कवियो का मूलाधार रसिकता है, प्रेम नहीं। इस कारण उनके काव्य में संयोग श्रृंगार के अंतर्गत कल्पना, संभोग की स्मृतियाँ, हास-परिहास, व्यंग्य आदि का चित्रण प्रमुख रहा है। डॉ. रामचन्द्र शुक्ल कहते है, ''उनका श्रृंगार वर्णन विलासी सामंतों की भोग-भूमिका को पुष्ट करने के लिए अधिक है, अत: उनमें वासना की दुर्गन्ध है एवं सच्ची सौंदर्योपासना का अभाव है। उनकी श्रृंगार भावना रुग्ण है।'' इस काल श्रृंगारिकता की प्रमुखता के कारण ही आचार्य विश्‍वनाथ प्राद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' नाम दिया था। अत: इस काल वर्ग की प्रमुख विशेषता श्रृंगारिकता ही रही।

आलंकारिकता : रीतिकालीन कवियों में कलापक्ष की प्रधानता है। वह कलात्मकता अलंकरण की प्रवृत्ति में मुखर उठी और अलंकार, चमत्कार के माध्यम से पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करना इन कवियों का लक्ष्य था। आश्रयदाताओं को रिझाने के लिए कविता सुन्दरी को अलंकार से सजाने में वे कवि कर्म की सार्थकता समझते थें, इसीकारण अलंकार साधक से साध्य बना। रीतिकाल की पूरी भाषा ही विविध अलंकारों से युक्त है। यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया गया तो दूसरी ओर उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, उतिशयोक्ति जैसे भाव निरुपक अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया। रीतिमुक्त कवि भी इससे भी अछुते नहीं रहें उन्होंने भी सहजता से अलंकारों का प्रयोग किया है प्रयत्नपूर्वक नहीं। आचार्यत्व का दावा करनेवाले रचनाकारों ने ग्रंथों में प्रमुख विषय श्रृंगार रस संयोग और वियोग दशाओं का भी अलंकृत वर्णन मिलता है। परंतु अलंकारिकता के अधिकता के कारण काव्य का आंतरिक पक्ष कमजोर होकर बाह्य पक्ष प्रबल बना दिया था क्योंकि इसके बिना उसे सम्मान मिलना कठिण था। इसलिए अलंकारिकता ही साध्य मानते थे। केवल कविता में अलंकारिकता के महत्त्व के बारे में कहते हैं –

''जदपि सुजाति सुलच्छानी सुबरन सरस सुवृत्त।

भूषण बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त।।''

अत: कलात्मकता और रसिकता के इस युग में अलंकारिक कविता का स्वाभाविक गुण बना दिखाई देता है।

लक्षण ग्रंथों की प्रचुरता–मौलिकता का अभाव : रीतिकाल के कवियों में लक्षण ग्रंथों के निर्माण द्वारा अपने कवित्व और आचार्यत्व को प्रस्तुत करणे की प्रवृत्ति थी इनमें तीन वर्ग थे– 1) काव्यांग परिचायक कवि, रीति निरुपक एवं काव्य रचना को समान महत्त्व देनेवाले और कवि कर्म को महत्त्व देनेवाले। संस्कृत के काव्यशास्त्र की समृद्ध भूमि साह्य रुप में प्राप्त हुई। काव्यांग परिचायक कवियोंने काव्यशास्त्र के लक्षणों को पद्य–बद्ध करके लक्ष्य रुप में अपनी रचना प्रस्तुत की, इन्होंने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे थे। रीति निरुपण एवं काव्य रचना को समान महत्त्व देनेवाले कवियों ने लक्षण और उदाहरण दोनों ही कवियों द्वारा रचित है। कवि कर्म को महत्त्व देनेवाले रीति ग्रंथकार काव्यांगों का लक्षण देना आवश्यक नहीं समझा परन्तु इनके काव्य पर रीतित्व का प्रभाव है। उन्होंने काव्य ग्रंथों में रीति की जानकारी का प्रयोग किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते है – ''इन ग्रंथों में रीतिबद्ध कवियों ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं की है, वरण संस्कृत के काव्यशास्त्र के विवेचन को भाषा में पद्य–बद्ध कर दिया है। केवल लक्ष्य ग्रंथ लिखनेवाले कवियों ने रीति का कसाव कुछ ढिला कर दिया है। किन्तु फिर भी रीति की परिपाठी का ज्ञान हुए बिना इनकी कविता को अच्छी तरह समझा नहीं जा सकता है।'' निष्कर्षता इस काल के काव्यों पर लक्षण ग्रंथों का प्रभाव था।

भक्ति और नीति : रीतिकाल में श्रृंगारिकता और अलंकारिकता की प्रमुखता होते हुए भी भक्ति और नीति का काव्य निर्माण होता रहा। भक्तिकाल की अलौकिक भक्ति को लौकिक के धरातल पर उतारकर राधा–कृष्ण का वर्णन नायक–नायिका के रुप में अलंकारिकता का चोला पहनाकर करनेवाले कवियों में

भक्ति और नीति भी विद्यमान थी। इन कवियों ने भक्ति और नीति काव्य भी लिखा। परंतु अपने आश्रयदाताओं को रीझाना यही प्रमुख उद्देश्य रखे। अश्रित कवियों की भक्ति में एकाग्रता, उदातत्ता एवं नैतिकता का अभाव रहा। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, 'यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठतें होंगे तो राधा कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है- हो भी नहीं सकता था। क्योंकि; भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी।'' तात्पर्य रीतिकाल के भक्ति को श्रृंगारिकता का पुट था। शुद्ध एवं सहज भक्ति का इन कवियों में अभाव था। तल्लीनता, एकाग्रता और उदारता रीतिकालीन भक्तिकाव्य मे दिखाई नहीं देती है। इस कारण रीतिकालीन कवि या तो कवि थे या आचार्य। परन्तु, कुछ हद तक भक्तिकाव्य का प्रभाव इन कवियों पर निरंतर रहा और इस काल में भी भक्तिकाल समृद्ध रहा है।

भक्तिकाव्य की तरह रीतिकालीन कवियों ने नीति काव्य भी लिखा। इन कवियों के नीति परक दोहों में व्यक्तिगत अनुभव सामान्यकृत होकर अभिव्यक्त हुआ। इसी कारण रीतिकाव्य के साथ-साथ भक्ति और नीति काव्य भी प्रमुख रहा है।

प्रकृति चित्रण : रीतिकाल में श्रृंगारिकता का प्रचुर वर्णन करते समय कवियों ने प्रकृति का अलंकारिकता तथा उद्दीपन के लिए अधिक प्रयोग किया है। प्रकृति चित्रण इन कवियों ने संयोग और वियोग पक्षों के दोनों पक्षों में किया है। इन्होंने प्रकृति का चित्रण नायक और नायिका के मानसिक दशा के अनुकूल किया है। संयोग में प्रकृतिका खिला हुआ उन्माददायी रुप है तो वियोग में वह दग्ध करनेवाला है। षट्ऋतु और बारहमासा का चित्रण भी परंपरा के अनुकूल उद्दीपन के रुप में हुआ है। संयोग श्रृंगार में वसंत ऋतु की विविध अवस्थाओं का एवं चित्रों का मार्मिक चित्रण हुआ है। वियोग श्रृंगार में वर्षाऋतु का सुंदर वर्णन उद्दीपक रुप में हुआ है। रितीमुक्त कवियों का प्रकृति चित्रण अधिक सशक्त बन पडा है। पद्माकर, देव, बिहारी, मतिराम, घनानंद, बोधा, ठाकुर इनके काव्य में प्रकृति के विविध रुपों का चित्रण प्राप्त होता है। इसतरह रीतिकालीन कवियों के काव्य में प्रकृति चित्रण एक प्रमुख विशेषता है।

नारी चित्रण : श्रृंगार की व्यंजना में नायक-नायिका दोनों आलंबन होते है। रीतिकालीन काव्य की विशेषता ही श्रृंगारिकता होने के कारण 'चित्रण' काव्य का केंद्र बिंदु रहा है। परंतु नारी चित्रण में कोई उदात्त दृष्टिकोण नहीं है। बल्कि नारी का भोग वस्तु के रुप में चित्रण हुआ है। नायिका के नख-शिख चित्रण में इन कवियों ने धन्यता मानी है। नारी के कमनीय अंगों का स्थुल एवं मांसल चित्रण करते हुए काव्य रसिकों को नारी के मनमोहक स्वरूप, विलासीनी प्रेमिका के रुप में चित्रित करते हुए नारी के सामाजिक रुप को अनदेखा किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते है, ''यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संघटन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार के बंधनों से यथा समय मुक्त विलास का एक उपकरण मत्र है।'' इस तरह रीतिकाल में नारी को केवल श्रृंगार तक सीमित रखा था। नारी की विभिन्न दशाओं, विभिन्न विशेषताएँ, विभिन्न भंगिमाओ का चित्रण नायिका के रुप में सरसता से करने में इस काल के कवि सफल हुए। इस तरह रीतिकाल में नारी का चित्रण एक भोग्या के रुप में किया गया था।

जीवन दर्शन : रीतिकालीन युग सामंती युग रहा है। सामंतों की खुश रखना ही काव्य का उद्देश्य रखनेवाले कवियों का ध्यान तत्कालीन समाज जीवन और जनसाधारण की समस्याओं की ओर नहीं गया। अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए जीवन और यौवन का चित्रण करनेवाले इन कवियों पर आपत्ति उठाई जाती है। परन्तु दरबार से बाहर रहे कवियों के काव्य में जनसाधारण की समस्याओं का चित्रण प्राप्त होता है। इनमें बिहारी, कविरायु, घाघ, रहीम इन्होंने समाज की मनोवृत्ति पर तिखा व्यंग किया है। निष्कर्षत: रीतिकालीन काव्य जीवन और यौवन तक सीमित जीवन रहे साहित्य में जीवन के अन्य अंगों का चित्रण गौण रुप में परिलक्षित होता है।

मनोविज्ञान के ज्ञाता : रीतिकालीन कवि मन के अच्छे ज्ञाता थे। यौवनावस्था में स्त्री-पुरुष के मनोदशा का चित्रण इसकाल से बढ़कर अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है। विलासी वृत्ति के कारण इस काल के समाज में कामोत्तेजना की प्रवृत्ति अधिक थी। अत: इन काल के साहित्य में कामुकता और ऐन्द्रियता का समावेश होकर नायक-नायिका के अंग-प्रत्यांग का चित्रण सुक्ष्मता के साथ हुआ है। स्पष्ट है कि रीतिकालीन काव्य के विविध रुप दिखाई देते है। प्रबंध शैली में अनेक काव्य लिखे किन्तु वे विशिष्ट न बन सके। आश्रयदाताओं की वृत्ति को संतुष्टि प्राप्त कराने हेतु या मनोरंजन, चमत्कार प्रवृत्ति के कारण रीतिकालीन कवियों ने मुक्तक शैली में अपना चातुर्य प्रकट किया है। इसकारण रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य में अधिकतर कवित्त, सवैय्या, दोहा जैसे छंदो को प्राधान्यता दी है। साथ ही कवित्त-सवैय्या शैली को भी अपनाया। कवित्तों का प्रयोग वीर रस, श्रृंगार रस दोनों में बड़ी कुशलता से किया गया है। सवैय्य का श्रृंगार और करूण में प्रयोग सफल मात्रा में किया गया है।

साथ ही छप्पय, बरवै, हरिपद छंदों का भी प्रयोग होता रहा। ये छंद ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल थे। लोकभाषा ब्रज का उपयोग करने के कारण छंदों में खुलकर मुक्तक काव्य लिखा गया। इस तरह रीतिकाल में काव्य के अनेक रुप दिखाई देते हैं।

वीर रस की कविता : श्रृगांर के साथ-साथ इस काल में वीर रस की उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन हुआ था। विदेशी मुघल शासक, अकबर, जहाँगीर और शहाजहाँ के उदारता काल में देश का वातावरण शांतीपूर्ण रहा। किन्तु औरंगजेब के गद्दी पर आने से उसकी धार्मिक कट्टरता से देश की एकता विच्छिन्न हुई। अत्याचारी शासक के विरुद्ध यहाँ के देशी राजाओं को प्रेरित करने के लिए वीर काव्य का सृजन हुआ। मरहठे, जाटों, सिख आदि औरंगजेब के विरुद्ध खडे हो गये थे। इन राजाओं को प्रेरणा देने का कार्य तत्कालीन वीर कवियों ने किया। इनमें भूषण, सूरदन, पद्माकर, जैसे कवियों ने अपनी ओनखी भाषा में वीरकाव्य लिखकर समाज में राष्ट्रीयता का स्वर भर दिया। इस तरह रीतिकाल में श्रृंगार, भक्ति और रीति के साथ-साथ वीर काव्य भी लिखा गया।

ब्रजभाषा का प्राधान्य : भक्तिकाल में भक्ति कवियों ने ब्रज और अवधि दोनों भाषाओं में काव्य लिखा। किंन्तु रीतिकाल में ब्रजभाषा के माधुर्य के कारण कवियों ने ब्रजभाषा को प्रधानता दी हुई दिखाई देती है। रीतिकालीन कवियों ने ब्रज, मागधी, संस्कृत, अपभ्रंश, खडी बोली, फारसी, तथा अन्य देशज

शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। परंतु अपनी मधुरता के कारण ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा बनकर प्रसारीत हो रही थी। बुन्देल, राजस्थान तक वह काव्यभाषाके रूप में प्रयोग में लाई जा रही थी। इसी कारण ब्रजभाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रौढता आती गई। इस काल के काव्य की प्रमुख भाषा ब्रज भाषा ही रही।

फारसी भाषा का प्रभाव : रीतिकाल में मुगल शासन की दरबारी भाषा रही फारसी का प्रभाव तत्कालीन कवियों के भाषा और काव्यशैली पर दिखाई देता है। क्योंकि मुगल दरबार में कई हिंदु कवि कार्यरत थे। मुक्तक काव्य का सर्वव्यापी प्रसार, उपमानो और बिंबों में परिवर्तन, श्रृंगार में खण्डित के वचनों को बहुलता आदि फारसी भाषा का ही प्रभाव रीतिकालीन काव्य में दिखाई पडता है। दरबार में फारसी के लच्छेदार शब्द सुनने के कारण इन कवियों की भाषा भी सुकुमार एवं लचिली दिखाई देती है। घनानंद बोधा फारसी भाषा से प्रभावित रहे हैं। घनानंद की रचना 'इश्कलता' में फारसी शब्दों की भरमार है। इस तरह मुगल दरबार में रहे भारतीय कवियों के काव्य पर फारसी भाषा का प्रभाव रहा है।

प्रतियोगिता की भावना : रीतिकाल में मुगल शासन के एकाधिकार में अनेक छोटे-मोटे राजे-महाराजे विलासी जीवन जी रहे थे। सुरा और सुंदरी इनका भावविश्व रहा था। परिणाम स्वरूप दरबारी कवियो में द्रव लोलुपता, पद-प्रतिष्ठा के लिए प्रशंसा काव्य लिखने की होड सी लगी रहती थी। मुगल दरबार में तो अनेक भाषा के राज दरबारी कवि थे। अपनेआप को श्रेष्ठ पद एवं अधिक द्रव पाने हेतु इन कवियों में प्रतियोगिता लगी रहती थी। इसकारण तत्कालीन काव्य में प्रशंसा, उन्मादकता, मनोरंजन और चमत्कार के उपकरणों से भरा अलंकृत काव्य निर्माण करने की प्रवृत्ति को बढ़ाव मिला। इस तरह तत्कालीन कवि प्रतियोगिता की भावना से ग्रस्त थे।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा : रीतिकालीन युग सामंती युग रहा है। अधिकांश कवि राज्याश्रित थे। अत: अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करना उनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति रही। अपनी इस प्रवृत्ति का प्रकटीकरण उन्होंने दो रुपों में किया - 1) अपने ग्रंथों का नामकरण आश्रयदाता के नामकरण पर करना और 2) आश्रयदाता के जीवन-चरित को लेकर प्रबन्ध काव्यों की रचना करना। इस तरह आश्रयदाताओं की प्रशंसा इसकाल के कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

हिंदी गद्य का निर्माण : भक्तिकाल की अपेक्षा रीतिकाल में गद्य अधिक निर्माण हुआ। इस काल में ब्रज और राजस्थानी गद्य निश्चित ही समृद्ध था। साथ ही खडी बोली, दक्खिनी, मैथिली आदि अन्य भाषाओं में भी गद्य लेखन होता रहा। इस काल के गद्य में धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, शकुनशास्त्र, प्रशासनशास्त्र, सामुद्रिक, गमिन और व्याकरण आदि अनेक विषयों पर लेखन हुआ है। साथ ही संस्कृत, प्राकृत और फारसी की कथात्मक कृतियों का अनुवाद भी प्राप्त होता है। धार्मिक और काव्य ग्रंथों की टिकाएँ प्रचुर मात्रा में की गई। उन्नीसवी शती के प्रथम चरण में पुस्तको और समाचार पत्रों का प्रारंभ हुआ इस तरह आधुनिक काल के गद्य साहित्य को प्रेरणा रीतिकालीन गद्य से प्राप्त होकर उसकी वाहिनी खडी-बोली रही दिखाई देती है।

- **रीतिकालीन काव्य की विशेषताएँ :**

श्रृंगारी कविता में दरबारी जीवन का तत्कालीन विलासी जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ। फलतः ऐन्द्रियकता और रसिकता का प्राधान्य रहा।

रीति ग्रंथो की रचना की गई। वर्ण विषय की दृष्टि से रस, अलंकार और नायिका भेद को प्रमुखता प्राप्त होकर विस्तार से वर्णन हुआ है। काव्य के गुण, दोष, रीति आदि अंगों का गौण रुप में वर्णन दखाई देता है।

रीतिग्रंथो के विवेचन में प्रमुख विषय रस, अलंकार और नायिका भेद निरुपण को देखकर यह स्पष्ट होता है। तत्कालीन कवियों ने रीति-निरुपण किया है, सक्षम ग्रंथोंका निर्माण नहीं। इसलिए वे कवि थे आचार्य नहीं।

* काव्य रुप की दृष्टि से इस काल में मुक्तक शैली प्रधान रुप से दिखाई देती है।
* छन्द विधानपर ध्यान देकर अधिकतर कविता और सवैये लिख गये है।
* प्रकृति चित्रण के परंपरागत रुप के उद्दीपन रुप के अतिरिक्त आलंबन को प्रमुखता दी है।
* काव्य के दो पक्ष भावपक्ष का सम्यक निर्वाह होते हुए भी कलापक्ष सशक्त बन पड़ा है।
* कलापक्ष की प्रधानता के कारण भाषा, छश्द, अलंकार, शब्द-शक्ति और नवीन प्रसंगों की सशक्त अभिव्यंजना प्रदान की है।
* वीर काव्य की धाव भी प्रवाहित हुई है।
* श्रृंगार और वीररस पूर्ण काव्यों से आश्रयदाताओं को मनोरंजन किया गया है।
* भक्तिकाव्य में रामभक्ति धारा का रुप गौण रहा है, परंतु कृष्णभक्ति लौकिक बनकर सशक्त रुप में प्रवाहित हुई है।

उपर्युक्त प्रमुख विशेषता रीतिकालीन काव्य की रही है। इसतरह रीतिकालीन काव्य तत्कालीन परिवेश में पनपते हुए आपनी प्रवृत्तियों और विशेषता के साथ हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान निर्माण कर चुका है।

- **स्वयं अध्ययन के प्रश्न :**

अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल की समय-सीमा कब से कब तक मानी है।

अ) 1375-1700 वि ब) 1700-1900 वि. क) 1700-1900 ई. ड) कोई नहीं

2) रीतिकाल को आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने क्या नाम दिया है।

अ) अलंकृत काल ब) रीतिबद्ध काल क) मध्यकाल ड) श्रृंगार काल

3) लक्षण ग्रंथों का निर्माण करनेवाले कवियों को क्या कहा जाता है।

अ) कवि ब) शिक्षक क) आचार्य ड) पण्डित

4) इनमें से कौन सा कवि रीतिबद्ध कवि है।

अ) देव ब) बिहारी क) घनानंद ड) ठाकुर

5) रीतिकाल में वीर रस की कविता करनेवाले प्रमुख कवि इनमें से कौन है।

अ) भूषण ब) मतिराम क) चिंतामणी ड) बिहारी

6) रीतिकालीन मुक्तक काव्य पर किस दरबारी भाषा का प्रभाव था।

अ) ब्रजभाषा ब) हिंदी क) फारसी ड) राजस्थानी

7) रीति निरुपण का अर्थ क्या है?

अ) श्रृंगार वर्णन ब) शैली चित्रण क) काव्यंग निरुपण ड) विधी-विधान

आ) टीप्पणियाँ :

1) रीतिकाल का नामकरण

2) रीतिकाल का काल निर्धारण

3) हिंदी की उर्दू शैली का काव्य

4) रीतिकालीन भक्ति काव्य

ई) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) रीतकालीन साहित्य की विविध धाराओं का परिचय दीजिए।

2) रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ विषद कीजिए।

- **शब्दावली :**

1) लक्षण-ग्रंथ : काव्य के विविध लक्षणों की व्याख्या करनेवाला ग्रंथ।

2) रीतिबद्ध : रीति-पद्धत, शैली अथवा परिपाठी पर चलकर काव्य की रचना करनेवाला काव्य.

3) रीतिमुक्त : 'रीति' पद्धति, शैली अथवा परिपाटी को छोडकर लिखी मुक्त काव्य रचना।

4) रीतिसिद्ध : 'रीति' पद्धति शैली अथवा परिपाटी से बंधकर की हुई काव्य रचना।

5) आचर्यत्व : विद्वान, लक्षण ग्रंथो का निर्माण करनेवाला कवि।

6) कवित्व : कवि का कलात्मक पक्ष।

● **स्वयं अध्ययन प्रश्नो के उत्तर**

अ) 1) ब – 1700 - 1900 वि

2) ड – श्रृंगार काल

3) क – आचार्यत्व

4) अ – देव

5) अ – भूषण

6) क – फारसी

7) क – काव्यांग निरुपक

● **सारांश :**

हिंदी साहित्य में सं. 1700 - 1900 वि तक के काल को सामान्यत: रीतिकाल नाम से जाना जाता है। इसे उत्तर मध्यकाल भी कहा जाता है। यह काल मुगल शासन का काल था। अकबर, जहाँगिर और शहाजहाँ के काल–खण्ड में यह युग भारत का 'स्वर्णयुग' रहा। मुगल शासन के अधिपत्य में यहाँ के राजे–महाराजे विलासी जीवन जी रहे थें। उनके दरबार में रहे राज–दरबारी कवियों ने विलासिता का चित्रण करते हुए त्कालीन राजाओं के सुरा और सुंदरी लिप्त जीवन को प्रेरित करने के लिए 'रीति' काव्यों का निर्माण किया। संस्कृत के काव्यशास्त्र से प्रेरणा कर इस काव्य में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य प्रचुट मात्रा में लिखा गया। यह काव्य तत्कालीन परिवेश की प्रवृत्तियों से भरा पडा है। साथ ही इस काल में भक्ति, नीति और वीर काय के साथ हिंदी की शैली पर उर्दू काव्य शैली का प्रभाव दिखाई देता है। इस काल के कवियों ने आचार्यत्व के साथ–साथ कवित्व को भी निभाया है। इन तीनों धाराओं में श्रृंगारिकता, अलंकारिकता, लक्षण ग्रंथो का निर्माण, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण, विविध काव्य रुप, जीवन दर्शन आदि को प्रमुखता से स्थान प्राप्त हो चुका है। रीतिकाल का परिवेश तत्कालन काव्य परंपरा के विकास के लिए साहाय करता दिखाई पड़ना है। परिणाम स्वरूप रीतिकालीन साहित्य हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

4.2.3 रीतिकालीन प्रमुख कवि एवं रचनाएँ :

● **रीतिबद्ध कवि :**

केशवदास : केशवदास भक्तिकाल के समय के कवि है, किन्तु काव्य–प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें रीतिकालीन कवियों में रखा जाता है। डॉ. नगेन्द्र जी ने केशवदास जी को रीति परंपरा का प्रवर्तक माना है। केशवदास जी ने अपने काव्य में काव्यशास्त्र के लगभग सभी अंगो पर प्रकाश डाला है।

केशवदास का जन्म ओरछा नगर के टेहरी में सं. 1612 में हुआ था। 'शीघ्रबोध' के रचयिता पं. काशीनाथ इनके पिता और 'नखशिख' के रचयिता बलभद्र इनके बड़े भाई थे। परंपरा से कविता का वरदान प्राप्त इस कुल को ओरछा राजवंश में अत्याधिक मान था। ये तुलसीदास के समकालीन थे। केशवदास संस्कृत के आचार्य थे। राजा इंद्रजीत ने आचार्य केशवदास को अपना गुरु माना था और उन्हें भेट में 22 गाँव दिए थे। केशवदास संस्कृत के अद्‌वितीय विद्‌वान थे। परंतु समय की माँग पहचानकर उन्होंने ब्रज को अपनाया था। संस्कृत के काव्य शब्दों के प्रयोग के कारण उन्हें कठिण काव्य का प्रेत भी कहा जाता है। केशवदास अनेक राजाओं के आश्रित रहे ऐसा दिखाई देता है। वे राजा विरसिंह देव के भी राजकवि रहे थे। वीरसिंह देव की प्रशंसा में उन्होंने 'वीरसिंह देव चरित' तथा जहाँगीर के गौरव में 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' की रचना की। इनका देहावसान सं 1667 मं हुआ।

● **केशवदास की रचनाएँ :**

1) **रसिकप्रिया** (सं. 1648) : यह रस प्रधान ग्रंथ है, इसमें जो रसों के वर्णन के पश्चात श्रृंगार रस की प्रधानता दिखाई देती है। साथ ही नायिका भेद पर भी विचार किया गया है। और हाव-भाव के भी उदाहरण दिए गए है।

2) **कविप्रिया** (सं. 1658) : यह लक्षण ग्रंथ मुक्तक में लिखी रचना है। इसमें कविता के गुण-दोष, अलंकार तथा चित्रकाव्य का विशद विवेचन किया गया है।

3) **रामचन्द्रिका** (सं. 1658) : 'रामचन्द्रिका' यह राम-कथा पर आधारित महाकाव्य है। इस महाकाव्य पर 'वाल्मीकि रामायण', 'प्रसन्न राघव', 'हनुमन्नाटक' आदि ग्रंथों का प्रभाव है। इस रचना में 39 प्रकाश है। 'रामचंद्रिका' में लंबे-लंबे संवादों की श्रृंखला है। अलंकार कौशल या वाग्विलास के प्रयोग के निरुपण में कवि की वृत्ति अधिक रमी है। अलंकारों की बहुलता के कारण रसोद्रेक होकर छंदों का अजायबघर बनकर काव्य में भाव संपदा की न्यूनता दिखाई देती है।

4) **रतन-बावनी** (सं. 1660) : यह 52 छप्पय छंदों का वीर-रस प्रधान मुलक काव्य है। इसमें राजा इंद्रजीत सिंह के भाई रत्नसिंह के वीरता का अत्यंत ओजपुर्ण वर्णन है।

5) **जहाँगीर रस-चंद्रिका** (सं. 1663) : इसमें मुगल सम्राट जहाँगीर के यश वर्णन का गान किया है।

6) **वीरसिंह देव चरित** (सं. 1664) : इसमें दोहा-चौपाईयों में ओरछा के महाराज वीरसिंह देव का चरित्र-चित्रण किया गया है। अकबर दरबार के प्रसिद्‌ध विद्‌वान अब्दूल फजल की हत्या उन्ही के हाथों हुई थी।

7) **विज्ञान-गीता** (सं. 1667) : वह दर्शन संबंधी ग्रंथ है। इस पर 'गीता' और 'योगवशिष्ठ' की स्पष्ट छाप है।

● **केशवदास का आचार्यात्व :**

केशवदास जी शुद्‌ध रुप से न तो रामभक्ति शाखा के कवियों के बीच प्रतिष्ठित किए जा सकते है, और न उन श्रृंगारी कवियों के बीच उनकी ही भॉति राज दरबारों में रहकर कविता कामिनी का श्रृंगार किया करते थे। संस्कृत की काव्यात्मकता को उन्होंने हिंदी में उतार दिया है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली और शब्दों के प्रयोग ने हिंदी भाषा ओजमयी बना दी है। केशवदास के समय में चंदबरदाई से तुलसी तक अनेक कवियों ने रचनाएँ लिखकर हिंदी का गौरव बढ़ाया। उन्होंने 'रसिक प्रिया' लिखकर रसों की मीमांसा की, 'कवि-प्रिया' लिखकर कवि कर्म की विवेचना की और 'रामचन्द्रिका' लिखकर अनेक प्रकार के छन्दों में रस और अलंकार का कलापूर्ण समन्वय किया। इसलिए इन्हें अलंकारवादी कहना न्याय संगत नहीं है। अपनी रचनाओं के कारण केवदास आचार्य पद के अधिकारी है। केशव ने काव्य के नियमों की विशद व्याख्या की है। उन नियमों के अनुसार काव्य निर्मिती करके अपने परावर्ति कवियों के सामने कवि कर्म की एक नई दिशा निर्धारित करके रखी थी। केशव समय के आचार्य के प्रधान लक्षण श्रृंगार और अलंकार पर निर्भर रहे हैं। फिर भी उन्होंने काव्य के लगभग सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। 'रसिक प्रिया' में रस संबंधी विभिन्न विषयों का प्रतिपादन स्वरचित उदाहरणों के साथ दिया है। यह रस विवेचन करनेवाला हिंदी का पहला ग्रंथ है। इसमें रस के अवयव, रस संख्या, श्रृंगार रस भेद, नायक-भेद, भाव-विवेचन, अन्य रसों का विवेचन, रस विरोध परिहार, काव्य की वृत्तियाँ उल्लेखित है। 'कवि-प्रिया' ग्रंथ में कवि शिक्षा प्रकटण में कवियों के कर्तव्यों और कवि के उत्तम, मध्यम आदि भेदों का चित्रण किया है। केशवदास जी पर अलंकार के संबंध में भामह, दण्डी आदि संस्कृत आचार्यों का प्रभाव था। केशवदास जी ने अलंकार को भी महत्त्व दिया है। साथ ही छंदों संबंधी अपने विचार 'छंदमाला' में विवेचित किए है। केशवदास जी ने काव्यशासीय ग्रंथों में काव्यों का कोई गंभीर विवेचन नहीं किया। परंतु, संस्कृत काव्यशास्त्र का हिंदी में अनुवाद किया है। यह अनुवाद इतना सही नहीं परंतु, परवर्ति कवियों के लिए यह ग्रंथ सहाय्यभूत रहा। इसलिए केशवदास जी ने जो कुछ काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं उनसे उनका आचार्यत्व सिद्‌ध हो जाता है। नगेन्द्र लिखते है, ''यदि हम अपनी परंपरा में केशव के आचार्यत्व का विचार करते तो केशव का महत्त्व असंदिग्ध है। अपने काव्य में काव्यशास्त्र के सभी पक्षों का समाहार करनेवाले परंपरा को परवर्ती आचार्यों ने केशव के अनेक विषयों को उपेक्षित रखते हुए हिंदी काव्यशास्त्र का क्षेत्र सीमित किया, फिर भी केशव ने लक्षण ग्रंथ लिखकर अपने आचार्यत्व का प्रमाण दिया और लक्ष्य ग्रंथ लिखकर अपने कवित्व की धाक जमाई।''

केशवदास का कवित्व : केशवदास की रचनाओं को शैली की दृष्टि से दो भागों में रखा जाता है-

1) **प्रबंध काव्य :** रतन बावनी, वीरसिंह देव चरित, जहाँगीर जस-चन्दिका, विज्ञानगीता और रामचंद्रिका।

2) **मुक्तक काव्य :** कविप्रिया, रसिक प्रिया और नखशिख।

प्रबन्ध काव्यों में प्रथम तीन ग्रंथों में 'राजा रत्नसेन' महाराज वीरसिंह देव और मुगल सम्राट जहाँगीर का गुनगान किया है। विज्ञान गीता में मोहपर विवेक की विजय दिखाई है। केशवदास जी के ख्याति का

प्रमुख आधार 'रामचन्द्रिका' ग्रंथ रहा है। उनके प्रबंध काव्यों में घटना, प्रसंग अत्यंत चमत्कारपूर्ण आते है, तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा मनोदशाओं का चित्रांकन भी सहज रुप से हुआ है। युद्धों का वर्णन, सेना की तैयारी, उपवन राज-दरबार। के ठाट-बॉट के वर्णन में काफी सफलता मिली है। नीति एवं उपदेशों की दृष्टि से केशवदास जी का काव्य उत्कृष्ठ है। उनकी कलापक्ष की प्रधानता को स्वीकारते हुए आचार्यत्व को नकारा नहीं जा सकता है। कला की बारिकियों की जितनी गहराई तक उतरे हैं, उतनी गहराई तक वे भावों की सूक्ष्मता में नहीं पैठ सके है। काव्य में रागात्मकता की कमी के कारण उनका काव्य ह्दय को नहीं छूता बल्कि मस्तिष्क को मथ डालता है उनकी कविता में भावपक्ष की कमी को देखते हुए उन्हें ह्दय हीन और 'कठिण काव्य का प्रेत' कहा जाता है। परंतु लोकभाषा मे काव्य लिखने के कारण हीन भावनाग्रस्त कवि पंडित्य दर्शन के लोभ में पड़कर कलात्मक स्थलों पर अधिक रमता है। जिससे भावपक्ष कमजोर पड गया है। फिर भी केशवदास जी के कवित्व को नकारा नहीं जा सकता है। 'ओजपूर्ण भाषा' केशवदास जी की शैली का प्रशंसनीय गुण है, जिससे उनके काव्य में विविध वीर रसात्मक स्थल एवं संवादात्मक प्रसंग मार्मिक बन पडे हैं। संवादों में रोचकता लाने के कारण व्यंग्यात्मकता का प्रयोग किया गया है। केशवदास अपनी शैली के स्वयं निर्माता है। वस्तु वर्णन में उन्होंने वर्णतामक शैली का भी प्रयोग किया है। संवादों में व्यंग्यात्मक शैली तो कहीं-कहीं व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। इतना अवश्य है कि संवादों की सफलता रही। परन्तु, अनुभूति की तरलता और भावों की गंभीरता उनमें नहीं मिलती। अलंकारों की प्रचुरता के कारण उनकी शैली क्लिष्ट जरूर हुई, लेकिन कलात्मकता के कारण उनका कवित्व भी छिप नहीं सकता।

अत: केशवदास जी को कविता के अपेक्षा आचार्यत्व में अधिक सफलता मिली है। एक कुशल कवि न होकर भी केशव ने युगीन कवियों का नेतृत्व अवश्य किया है, उनकी प्रवृत्ति अधिकतर मुक्तधर्मी रही है।

चिंतामणी : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने केशदवास जी को नहीं बल्कि चिंतामणी को रीतिकाल के प्रथम आचार्य माना है। चिंतामणी रीतिकाल के सर्व प्रथम आचार्य है, उनका रसवादी आचार्य के रुप में अनन्य साधारण महत्त्व है।

इनका जन्म कानपुर के तिकवाँपुर नामक स्थान में लगभग 1600 ई. में हुआ था। रीति आचार्यों में इनका स्थान अग्रगण्य रहा है। इनके भाई भूषण, मतिराम, और जयशंकर भी उच्चकोटि के कवि थे। चिंतामणी नागपुर के भोसला राजा मकरंदशाह के दरबारी कवि थे। उनके आदेश से उन्होंने 'पिंगल' ग्रंथ लिखा था। किशोरीलाल गुप्त ने खोज के उत्साह में कहा है कि ये नागपुर के मकरन्द शाह नहीं है जिनका उल्लेख 'शिवराज भूषण' में आया है। मकरंद शाह शिवाजी के पितामह थे। बच्चन सिंह ने इस पर आपत्ति उठाते हुए कहा है - यदि एक पीढ़ी के बीच में कम-से-कम 20 वर्षां का अंतर माना जाए तो मकरंदशाह शिवाजी से 40 वर्ष पहले हुए एक भाई मकरंदशाह का और दुसरा शिवाजी का आश्रित हो, यह संभव नहीं कहा जा सकता। चिंतामणी और भूषण की जन्मतिथियों में 4-5 वर्षां का ही अंतर है। चिंतामणि शाहजी भोसला, शाहजहाँ और दारशिकोह के आश्रय में थे। इनका मृत्युकाल 1680-85 इ. के आस-पास माना गया है।

ग्रंथ : चिंतामणी के द्वारा रचित नौ ग्रंथ माने जाते हैं - रसविलास, छन्दविचार पिंगल, श्रृंगार मंजरी, कवि कुलकल्पतरु, कृष्ण चरित, काव्य विवेक, काव्य प्रकाश, कवित्त विचार और रामायण। इनमें से आज पाँच ही प्रामाणिक माने जाते है। 1) काव्य-विवेक, 2) कवि कुल कल्पतरु, 3) काव्य प्रकाश, 4) पिंगल, 5) रामायण। 'रसविलास' में रस का विवेचन किया गया है। इसमें भानुदत्त की 'रस मंजरी' और 'रस तरंगिणी के अतिरिक्त धनंजय के 'दशरुपक' तथा विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' की असहायता से लिखा गया है। आंध्र के राजा संत अकबर शाह रचित 'श्रृंगार मंजरी' संस्कृत काव्य का अनुवाद इन्होंने किया है। यह नायक-नायिका भेद किया गया है। 'कविकुल कल्पतरु' में मम्मट के 'काव्य प्रकाश' विश्वनाथ के 'प्रतावरुद्र यशोभूषण', धनंजय के 'दशरुपक' अकबरशाह की 'श्रृंगार मंजरी' तथा भानुदत्त की 'रस मंजरी' और 'रस तरंगिणी' के आधार पर काव्य के दशाओं का वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ काव्यशास्त्र का आदर्श पर लिखकर सुंदर उदाहरणों के चित्रण से चिंतामणि के भावूक ह्रदय की झलक दिखाई देती है। काव्य-गुण, अलंकार रिति-वृत्ति, काव्य-दोष, नायिका भेद, हाव-भाव, श्रृंगार रस तथा श्रृंगारोत्तर रसों का चित्रण मिलता है। 'पिंगल' ग्रंथ छंदशास्त्र से संबंधित ग्रंथ है। जिसमें विविध छंदों के लक्षण, उदाहरण सरल सुंदर ब्रजभाषा में प्रस्तुत किए गए है। चितामणी संस्कृत के काव्यशास्त्र के साथ थे जो इनके ग्रंथ अत्यंत उच्च कोटि के बने है। जिसके माध्यम से उनका आचार्यत्व सिद्ध होता है। चिंतामणी के अधिकतर ग्रंथ 'साहित्य दर्पण' और 'काव्य प्रकाश' का सहारा लेकर लिखे है।

चिंतामणि का आचार्यत्व : रीतिकाल के सर्व प्रथम आचार्य रहे चिंतामणीने रीति निरुपण को अत्यंत गंभिरता एवं निष्ठा के साथ ग्रहण किया है। इनके विवेचन की विशेषता यह है कि लक्षण देणे से पूर्व ही सभी आधार ग्रंथों में दिये गये लक्षणों को तो तोलकर देखते है, और उस में से सही चुनकर ग्रहण करते है। सामान्यत: इन्होंने संस्कृत लक्षण ग्रंथों के ब्रजभाषा में अनुवाद किऐ है। इनके ग्रंथों पर संस्कृत आचार्य मम्मट का प्रभाव रहा है। मम्मट की दृष्टि लेकर चलनेवाले चिंतामणि हिंदी के प्रथम आचार्य है। इन्होंने भाषा को नियमानुसार उपयोगित किया है। इनकी पदावली मे सामान्य रुप से लालित्य और अनुप्रास योजना मिलती है। ये रसवादी आचार्य होने के कारण अलंकारों का प्रयोग रसोत्कर्ष के लिया किया है। इनकी छन्द योजना भी सुंदर है। कवित्त और सवैय्या का सर्वाधिक प्रयोग किया। इसतरह संस्कृत काव्यशास्त्र के जटिल शास्त्रीय ग्रंथों में करनेवाले एक सफल आचार्य के रुप में चितामणी को मान्यता मिली है।

चिंतामणी का कवित्व : चिंतामणि का आचार्यत्व के साथ-साथ कवित्व के रुप में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये रसवादी आचार्य होने के कारण कविता में श्रृंगार, वीर, वात्सल्य एवं भक्ति रसों का सम्यक परिपाक देखने को मिलता है। भावों के आवेग तथा कल्पना की उँची उड़ान की जगह सरल-सहज शब्दावली का प्रयोग करते हुए सच्ची अनुभूति को अभिव्यक्त करनेमें उनकी कविता सक्षम बन पडी है, जिससे उनका कवित्व दृष्टिगोचर होता है। काव्य-गुण, अलंकार, रीति-वृत्ति, नायिका-भेद, हाव-भाव आदि का सुंदर समन्वय उनके काव्य में हुआ है। ब्रजभाषा का स्वच्छ प्रयोग इनकी विशेषता है। चिंतामणी अलंकार में अपना स्वतंत्र महत्त्व रखते है। ब्रजभाषिक होने के कारण भाषा में लालित्य और परिमार्जन दिखाई देता है। दोहो-सोरठा छंदों का प्रयोग सहजता से सर्वाधिक हुआ है, जिससे काव्य सुंदर बन पड़ा है।

अत: स्पष्ट है कि आचार्य चिंतामणी रीतिकाव्य के आचार्य पद पर विराजमान है, परंतु साथ में उनका कवित्व भी सिद्‌ध होता है। कविता में बड़ी बड़ी कल्पना की उड़ान न करते हुए सहज-सरल भाषा में अभिव्यक्ति को स्थान दिया है। जिससे चिंतामणी का रीतिकालीन काव्य में आचार्य और कवि के रुप में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

- **देव :**

देव का पुरा नाम देवदत्त द्‌विवेदी था। इनके जन्मस्थान के बारें में मत भेद है। 'द्‌योसरिया' अर्थात देव रसिया काव्यकुब्ज बिहारीलाल के पुत्र थे। वे इटावा नगर के पंसारी टोला लालपुरा में रहते थे। ठाकुर शिवसिंग सेंगर ने इनका जन्मस्थान समीना गांव माना है। परंतु आधुनिक खोज के मुताविक देव के वंशज मैनपुरी का कसुमरा गांव माना है। 29 वर्ष की अवस्था में वह इस गांव में आकर बसे थे। उनके पुत्र भवानी प्रसाद इटावा में और पुरुषोत्तम कुसमरा में रहते है। देव की जन्मतिथि, निश्चित नहीं है। उन्होंने 16 वर्ष की आयु में 'भाव विलास' की रचना की थी जिसका समय 1689 इ. बताया जाता है। इसके आधार पर देव की जन्मतिथि 1673 इ. मानी गई है। इनकी मृत्यू 1767-68 के लगभग बताई गई है। देव ने कविता में 'देव' शब्द का प्रयोग किया है। स्वाभिमान सम्पन्न होने के कारण अनेक राजाओं एवं धन पतियों का आश्रय समय-समय पर ग्रहण किया था। सबसे पहले मुगल सम्राट औरंगजेब के तृतीय पुत्र आजमशाह के आश्रित थे। उन्हें 'अष्टयाम' और 'भावविलास' सुनाकर प्रशंसा पाई थी। भवानीदत्त वैश्य के आश्रय में 'भवानी-विलास' लिखा। शुभकर्म सिंह के पुत्र कुशल सिंह के आश्रय में 'कुशल-विलास-ग्रंथ' लिखा। फिर राजा उदयोतसिंह के आश्रय में 'प्रेम-चन्द्रिका' रचना की। संवत 1783 में देव भोगीलाल के आश्रय में आये, उनके नाम पर 'रस-विलास' को रचना की। बाद में दरबारी जीवन से वैराग्य पाकर पिहाणी निवासी अकबरअली का आश्रय लिया था। वहाँ अपनी सारी रचना का संग्रह 'सुख सागर तरंग संग्रह' नाम से करके उन्हें समर्पित कर दिया था।

देव की रचनाएँ : देव की ग्रंथों की संख्या मिश्रबन्धुओं ने 72 या 52 बताये जाने का अनुमान दिया है। शुक्ल जी के मतानुसार पच्चीस ग्रंथ माने है। डॉ. नगेन्द्र जी को प्राप्त ग्रंथ अठारह है, तो 'हिंदी नवरत्न' में 28 ग्रंथों के नाम है। उनकी समस्त रचनाओं में 'भाव-विलास', 'भवानी-विलास', 'अष्ट्याम', 'प्रेमतरंग', 'कुशल विलास', 'जातिविलास', 'रसविलास', 'प्रेमचंद्रिका', 'सुजान विनोद', 'शब्द रसायन', 'देवमाया-प्रपंच नाटक, सुखसागर तरंग, आदि अधिक उत्कृष्ट एवं प्रसिद्‌ध ग्रंथ है।

देव का काव्य सौंदर्य : ब्रजभाषा के श्रृंगारी कवियों में देव की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है। क्योंकि उनकी रचनाओं का संदेश प्रेम संदेश है। उनमें पेचिला मज्नूम झलकता है। आचार्यत्व का प्रभाव कम है। काव्य की रचनात्मकता मुक्त होते हुए भी रीतिबाधित है। किन्तु आवेग का बाँध स्थान-स्थान तुटकर उनका प्रेमी व्यक्त होता है। इनके काव्य का मूल विषय श्रृंगार रहा है। इनकी रचनाओं में कल्पना की चारुता और अर्थ वैभव का सुंदर सामंजस्य हुआ है। विषयानुरुप चयन, आनुप्रासिकता के कारण इनकी अभिव्यंजना शैली भी प्रशंसनीय है। शब्दों की अनावश्यक तोडमरोड एवं व्याकरणिक अव्यवस्था के बावजूद उनकी कविता

सरस, भावपूर्ण एवं इंद्रियग्राही बन पडी है। वस्तुत: देव मादकता सौंदर्य के कवि रहने के कारण सौंदर्य वर्णन में कलात्मक उडान, अनुभूति की गहराई और विस्मय का रासायनिक मिश्रण करते हुए अपने काल के कवियों से अपने को भिन्न ठहराया है।

देव का काव्य क्षेत्र विस्तृत है। उनकी रचनाओं में संसार ज्ञान का परिचय मिलता है। प्रकृति में ऋतु वर्णन काव्य परंपरा के अनुकूल अत्यंत उत्कृष्ठ हुआ है। श्रृंगारिक चमत्कार के साथ-साथ ज्ञान और वैराग्य के गीत अंतिम समय में गाये है। इनकी कविता में ईश्वर संबंधी ज्ञान और मत-मतांतरो का स्पष्टीकरण मिलता है।

शैली : देव की शैली रीति शैली है । उन्होंने दोहा, कवित्त और सवैयो में अपने भावों को व्यक्त किया है। उनके काव्य में एक ही छंद में विविध काव्यांगो का सुंदर संमिश्रण मिलता है। जो अत्यंत दुर्लभ है। देव के छंदो की विशेषता उनकी ना योजना और लय पर निर्भर है। अनुप्रास, आन्तरिक तुक आदि उस समय की काव्य विशेषता थी। परंतु लय देव की अपनी विशेषता है। प्रत्येक छंद में कई प्रकार के अलंकार, गुण, व्यंजना, ध्वनि, भाव; वृत्ति और रस पाये जाते है। उनकी रचनाओं में ओज है, जोश है। प्रसाद, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ गौरवोक्ति आदि विशेष गुण है। देव ने भाषा पर बल न देते हुए भाव पर बल दिया है। भाव में लम्बे-लम्बे विशेषताओं का विपुल प्रयोग है। 'नुपूर-संजुन', 'मंजू मनोहर', 'जावक रंजित कंज से पायन' आदि अशिष्ट एवं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग अपेक्षा कृत कम है।

भाषा : देव की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। उनके काव्य में पद-मैत्री तथा यमक और अनुप्रास का चमत्कार अच्छा दिखाई देता है। पदों के बीच अनुप्रास लाने के लिए एक से शब्दो का प्रयोग करना उनकी विशेषता है। अत: हम कह सकते है, अपनी काव्य कौशल से देव ने ब्रजभाषा का स्वरूप निखारा है।

मतिराम : रीतिकाल (सं. 1700-1900) के प्रवर्तक और उन्नायक कवियों में मतिराम का स्थान प्रमुख है। आधुनिक शोधकर्ताओं ने इनकी जन्मतिथी सं. 1661 में फतेहुर के बनपुर नामक गाँव में मानी है। परंतु 'मिश्रबन्धुओं' 'हिंदी नवरत्न' में उनका जीवन काल सन 1639 से 1716 ठहराया है। किन्तु विनोद में 1617 को महत्त्वपूर्ण मानकर आचार्य शुक्ल जी ने भी वही मान्य किया है। मतिराम आरंभ में बुंदी नरेश रावभाऊ सिंह (सं. 1617-1745) के दरबार में आश्रित कवि थे। रावभाऊ सिंह के आश्रय में उन्होंने 'ललित ललाम' रचना 1661-1664 के आस-पास की किसी योगनाथ के प्रीत्यार्थ इन्होंने 'बिहारी सतसई' के देखा-देखी में मतिराम-सतसई लिखी रचना 1668-1678 के बीच संकलित की गई है। अलंकार पंचशिका, छंदसार, पिंगल और वृत्ति कौमुदी भी इनकी रचना मानी जाती है। बच्चन सिंह के मतानुसार मतिराम की तीन ही प्रामाणिक रचनाएँ है। 'ललित ललाम', 'रसराज' और 'सतसई'।

1) **ललित ललाम :** यह अलंकार प्रधान ग्रंथ बुंदी नरेश रावभाऊ सिंह को समर्पित है। उसकी रचना संभवत: सं. 1731 में हुई थी। इसमें कुल 444 पद है। दुसरे बुंदी नरेश की आज्ञा से गुलाब कवि ने इसकी टीका की है। भावसिंह की प्रशंसा विविध अलंकारों के अंतर्गत की गयी है।

2) **रसराज :** यह भावप्रधान ग्रंथ है। बच्चन सिंह ने मतिराम की पहली रचना 'रसराज' को स्विकारा है। 'रसराज' का आरंभ नायिका भेद से किया गया है। और भाव-भेद में वह अलंबक विभाव के अंतर्गत रखा गया है। इसमें रसों का वर्णन नहीं है। यह प्रसाद गुण से संपन्न अत्यंत उत्कृष्ठ ग्रंथ माना जाता है। नायिका भेद में इस ग्रंथ का सर्वोच्च स्थान है। इसमें कुल 426 पद्य है। इसका रचना काल संभवत: सं. 1737 माना है। यह किसी को समर्पित रचना नहीं है। इसलिए इसमें सहजता और सरसता, मध्यवर्ती गृहस्थी जीवन का चित्रण मनोहर बन पडा है। भाव और भाषा का जिनका सुंदर समन्वय इस ग्रंथ के पद्यों में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भावों की सहज रमणियता और मर्म स्पर्शिता 'रसराज' के प्रत्येक पद्य में विराजमान है।

3) **मतिराम सतसई :** 'मतिराम सतसई' दो हों का संग्रह है। 'बिहारी सतसई' के दोहों की तुलना में 'मतराम सतसई' के दोहे साधारण जरूर है, किन्तु उनके काव्य प्रतिभा के परिचायक है। 'मतिराम सतसई' भावाभिव्यंजना, सरलता और स्वच्छता की दृष्टिकोण से श्रेष्ठ रचना है।

मतिराम की काव्य साधना : हिंदी काव्य प्रेमियों में 'ललित ललाम' और 'रसराज' अधिक लोकप्रिय रहे है। उन्होंने जिन विषय और जिस भावों को अपने काव्य का विषय बनाया है उससे काव्य की आकर्षित हुआ है। बच्चन सिंह कहते है - 'रीति की दृष्टि से रसराजत्व के प्रतिपादन के बिना उसमें नायिका भेद का वर्णन शुरु हो गया है। कवि नायक-नायिका दोनों का लक्षण लिखना चाहता था। किन्तु सिर्फ नायिका का लक्षण लिखा है, जो शास्त्रीय पक्ष के विरोध में है।

'ललित ललाम' आश्रयदाता महाराज भाऊसिंह के प्रशस्तिपर लिखे छंदों का संग्रह है, इसमें 60 छंद है। यह छंद रीतिकालीन काव्यधारा के सर्वथा अनुकूल है और उनमें भाव-रस, भाषा तथा अलंकार का समुचित विधान है। उनका वीरता का वर्णन सशक्त नहीं हुआ है सिर्फ प्रशंसा के लिए की रचना दिखाई पड़ती है। परन्तु 'ललित-ललाम' के अध्ययन से अलंकारों संबंध में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

'रसराज' ग्रंथ में श्रृंगार रस की प्रधानता है। श्रृंगार रस का विवेचन न करते हुए मतिराम ने नायिका भेद विस्तार को महत्त्व दिया है।, जिसमें भाव-भेद के आलंबन विभाग महत्त्वपूर्ण है। अत्यन्त सुगम एवं स्पष्ट रीति में नायिका भेद का वर्णन सर्वोच्च बना है। हाव-भाव तथा नायक-नायिका भेदोपभेदों का श्रृंगार रस के माध्यम से अत्यल्प हृदयग्राही निरूपण हुआ है। भाव और भाषा का जितना सुंदर समन्वय इस ग्रंथ के पद्य में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भावो की सहज रमणीयता और मर्मास्पर्शिता 'रसराज' की परम विशेषता है।

मतिराम की भाषा : उनके सभी ग्रंथ लक्षण ग्रंथ है। उदाहरणों में रस की रमणीयता के कारण प्रतिपाद्य रस और अलंकार पाठकों को अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है। बिहारी की भाँति उनकी वृत्ति, वस्तु व्यंजना, व्यापरों और चेष्टओं' के वैचित्र्य में नहीं रमी है। उन्होंने भारतीय जीवन का चित्रण मर्मस्पर्शी, सहज, सरल एवं मधुर भाषा के सहज प्रवाह और आडंबर रहित भाव प्रकाशन में मतिराम बेजोड है। ब्रजभाषा काव्य में मतिराम जैसी अकृत्रिम सरसता दुर्लभ है।

मतिराम भाव तथा भाषा के भी धनी है। भावों को जिस ललित और मधुर भाषा में व्यक्त किया है, वह उनकी कवित्व शक्ति का परिचायक है।

● **पद्माकर :** (1753-1833 ई.)

रीतिकाल के अंतिम कवियों में पद्माकर का स्थान सर्वोच्च है। पद्माकर का जन्म सागर में 1753 ई. में हुआ। ये तेलंग ब्राह्मण थे। इनके दादा जनार्दन तथा पिता मोहनलाल दोनों संस्कृत के विद्वान थे और ब्रजभाषा में कविता करते थे। पद्माकर साहित्यिक वातारण में पले-बढ़े थे। परिणाम स्वरूप; वे संस्कृत और हिंदी के अच्छे ज्ञाता थे। तत्कालीन समय में भारत वर्ष के कई प्रदेशों पर अंग्रेजी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। और मरहठे सिक्खो और नवाब अपने अस्तित्व के लिए लढ़ रहे थे तो दुसरी ओर बंगाल में राजाराम मोहन रॉय के ब्रह्म समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज के माध्यम से परंपरागत रूढियों का विरोध करते हुए नये मूल्यों की स्थापना हो रही थी। बंगाल और महाराष्ट्र से अखबार निकाल रहे थे। तो साहित्य में आधुनिकता ने प्रवेश किया था। साहित्य में से समाज की समस्याओं पर विचार विमर्श शुरु होकर रीति पद्धति पिछे पड़ ही थी। परंतु उस समय में पद्माकर एक ही ऐसे कवि रहे है जिन्होंने 'रीति' का अपने साहित्य में स्थान दिया। बच्चन सिंह कहते है, ''इस संदर्भ में पद्माकर पर विचार करते समय अजीब हैराणी है। रीतिकालीन विषय वस्तु बुरी तरह पिट चुकी थी। पद्माकर ने अपनी प्रतिभा के बल-पर उसमें नयी चमक पैदा करने की कोशिश की। पर नये परिवेश ने उनका ध्यान मेलों-ठेलों, तीज, त्यौहारों, होली-दीवाली आदि की ओर खींचा। एकाद जगह उनमें फिरंगी-विरोधी स्वर भी सुनाई पड़ेगा। कहने का अभिप्रय यह है कि जब देश के अन्य भागों में आधुनिक चेतना अविभूति हो चुकी थी, हिंदी भाषा में परंपारिक रीतिकाव्य लिखा जा रहा था।

पद्माकर किसी एक स्थान पर टिके नहीं। उन्होंने तत्कालीन अनेक राजा-महाराजओं के दरबार में आश्रित रहे अंत में गंगातट पर 1833 ई. में उनका देहावसन हुआ। बच्चनजी सिंह ने पद्माकर की ग्यारह रचनाएँ स्वीकार की है - अनुपगिरी, हिम्मद बहादूर की विरुदावली, ईश्वर पचीसी, गंगालहरी, जगद्विनोद, जमुना लहरी, पद्माभरण, प्रबोध पंचशिका, राजनीति, रामरसायन, लिलाहारी लीला और विरुदावली। परंतु लिलाहारी लीला और प्रबोध पंचशिका उनकी रचना नहीं मानते। बच्चन सिंह ने जगद्विनोद और 'पद्माभरण' पद्माकर के कीर्ति स्तंभ माने है।

पद्माकर के काव्य को तीन भागों में देखा जा सकता - 1) रीतिकाव्य, 2) भक्तिकाव्य, 3) प्रशस्तिकाव्य 'जगद्विनोद' में रस और नायिका भेद का तथा 'पद्माभरण' में अलंकारों का परंपरागत शैली में निरुपण किया है। 'आलीजाह प्रकाश' में भी शास्त्रीय विवेचन है। 'हितोपदेश', प्रबोध पचासा, और 'गंगालहरी' भक्तिरस संबंधी रचनाएँ है। 'हिम्मद बहादूर विरुदावली और 'प्रतापसिंह विरुदावली' प्रशस्तिकाव्य (वीरकाव्य) है।

पद्माकर की काव्य साधना : पद्माकर की लेखनी उस युग में प्रचलित सभी विषयों पर चली। आरंभ में वीर रस, यौवनावस्था में श्रृंगार रस और जीवन के अंतिम समय में भक्ति रस का काव्य लिखा। उनकी

काव्य शक्ति का सर्वोत्कृष्ठ ग्रंथ 'जगद्‌विनोद' है। इन्होंने नायिका के विभिन्न मुद्राओं, चेष्टाओं का निरुपण करते हुए ऋतुओं और त्यौहारों से जोडकर कवित्व का पूर्ण विकास किया है। मधुर और स्वाभाविक कल्पना, सजीव मूर्ती विदान एवं उपयुक्त शब्द चयन के कारण इनकी कविता का भावपक्ष एवं काव्यपक्ष दोनों सशक्त बने है। ब्रजभाषा के कोमल, मधुर और स्निग्ध रुप का उनके श्रृंगार और शांत रस के लिए प्रयोग करना पद्‌माकर के काव्य कुशलता का परिचायक है। भाषा की प्रवाहमयता एवं विषय की सरसता के कारण पद्‌माकर रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाते है।

● **रीतिसिद्‌ध कवि :**

बिहारी : बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि है। इनका पूरा नाम 'बिहारीदास' था। इनके जन्म स्थान को लेकर विवाद है। उनके लगभग एक शताब्दी बाद बूंदी में बिहारीलाल नामक एक और कवि हुए थे। बाळू जगन्नाथ दास रत्नाकर को प्राप्त सतसई में प्राप्त वहीं दोहा है जिसके आधार पर कुलपति ने 'बिहारी' का नाम 'बिहारीदास' सिद्‌ध किया था।

''भाँति-भाँति रचना सरस देवगिर ज्यों व्यास।

त्यौ भाषा सब कवितु मैं विमल बिहारीदास।।''

अत: बिहारी का जन्म संवत 1652 को ग्वालियर में हुआ ऐसा माना जाता है। लेकिन उनके जन्मस्थान को लेकर मतभिन्नता है, कुछ विद्‌वान उनका जन्म स्थान गोविंदपुर तो कुछ विद्‌वान मथुरा में मानते हैं। किन्तु उनके एक दोहे के आधार पर कहा जाता है कि इनका जन्म ग्वालियर में, बाल्यकाल बुन्देल खण्ड और प्रौढावस्था मथुरा (ससुराल) में बीता था। इनके पिता प्रसिद्‌ध कवि केशवदास थे ऐसा माना जाता है। बिहारी अनेक राजाओं के आश्रय में रहे। मिर्जा राजा जयसिंग अपनी पत्नी के प्रेम में पूरी तरह दीवाने होकर राजपाट भूल गये थे तो बिहारी ने अपने दोहे से उन्हें कर्तव्य की याद दिला थी और राजा मिर्जा, राजा जयसिंग कर्तव्य याद स्विकार कर बिहारी से प्रभावित होकर उन्हें राजदरबारी कवि का स्थान देकर बिहारी के एक-एक दोहे पर एक-एक अशरफी देते थे। बिहारी का वह प्रसिद्‌ध दोहा इस प्रकार है।

'नहिं पराग नहिं' मधुर-मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अलि कलि हि सो बंध्यो आगे कौन हवाल।।''

अपने पत्नी के मृत्यु के बाद बिहारी संसार से विरक्त हो गए और वृंदावन में रहने लगे। इनका मृत्यू सं. 1720 में वृंदावन में हुई।

बिहारी का ग्रंथ : बिहारी की कीर्ति का आधार उनकी एकमात्र कलाकृति 'बिहारी सतसई' है। इसका रचना काल अनुमानत: 1721 ई. माना जाता है। इसकी रचना की प्रेरणा उन्हें जयपुर के राजा मिर्जा, राजा जयसिंग से मिली थी। इस ग्रंथ का निर्माण 'गाथा सप्तशती', 'अमरुक शतक', 'आर्या सप्तशती' की प्रेरणा से हुआ है। जिसकी श्रेष्ठता के सामने आज भी कोई मुक्तक काव्य का निर्माण नहीं हुआ है। बिहारी सतसई में कुल मिलकर 713 दोहें है। इतनी कम मात्रा में काव्य लिखकर भी बिहारी हिंदी साहित्य में अमर हुए।

बिहारी ने अपने समय के मुगलों के विलासी जीवन तथा राजदरबारों के ऐश्वर्य को नजदीकता से देखा था। जो इनके 'सतसई' के दोहो में श्रृंगारिकता की प्रमुखता है। किन्तु साथ में भक्ति, नीति और ज्योतिष का भी विवेचन है। बिहारी ने दोहे लिखे उन्होंने काव्यशास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया पर दोहों में नायिका भेद, नख-शिख, षट-ऋतु, एवं अलंकारों के प्राय: सभी उदाहरण मिलते है। बहुत से दोहे लक्षण पूर्ति के माध्यम दिखाई पड़ते है। उनके साहित्य पर तत्कालीन जीवन का प्रतिबिंब पड़ा है। इस काल की राजनीतिक, सामाजिक स्थिति का अत्यंत व्यंग्यात्मक चित्रण उनके साहित्य में मिलता है। बिहारी के एक-एक दोहों में गागर में सागर भरने की क्षमता थी। इस ग्रंथ की लोकप्रियता इतनी थी की उस पर पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गई। उसमें से प्रसिद्ध है- कृष्ण कवि की टीका जो कवित्तों में है, हरिप्रकाश टिका, लाल्लुजी लाल की 'लाल चंद्रिका', सरदार कवि की टीका, सुरति मिश्र की टीका आदि। बिहारी के एक ही दोहे में श्रृंगार-परक, नीतिपरक और भक्तिपरक अर्थ छिपा रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बिहारी के दोहों के बारे में कहते है - 'श्रृंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ है उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिंदी साहित्य का रत्न माना जाता है।'' भले ही बिहारी के दोहों में भक्तिपरक अर्थ निकाले गए है, लेकिन बिहारी मुलत: भक्त कवि नहीं थे। उन्हें भक्त कवि कहना खुद उनके प्रति अन्याय करना होगा। प्रबंध काव्य की तुलना में मुक्तक काव्य लिखना कठीण होता है।, परंतु उन्होंने बहुत कम शब्दों में अधिक कह देने की मलाा में वह सिद्ध हस्त रहे हैं। 'बिहारी सतसई' की भाषा ब्रज रही है। भाषा पर उनका पूरा अधिकार रहा है। समास शैली के कारण कहीं-कहीं भावों मे अस्पष्टता दुरुहता, एवं अस्वाभाविकता लक्षित होती है। इन्होंने ब्रजभाषा को अपनाया है। परंतु उस पर बुन्देली का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। तत्कालीन दरबार के प्रभाव के कारण अरबी, फारसी शब्दों का भी प्रयोग प्राप्त होता है। संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी और अवधी के शब्द भी उनकी भाषा में प्राप्त होते है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी सार्थक प्रयोग किया गया है। माधुर्य यह उनकी भाषा का महत्त्वपूर्ण गुण रहा है। तुलसी का अवधी में जो स्थान रहा वह ब्रजभाषा में बिहारी का रहा है। इतनी सहजता, कोमलता, सरसता और सौंदर्य पूर्णता से बिहारी ने ब्रजभाषा को अपनाया है। जिसमें गागर में सागर भरने की क्षमता है।

अलंकार : बिहारी ने अपने दोहों में अलंकारों का प्रयोग स्वच्छन्द रुप से किया तो कही मस्तिष्क पर बल देकर। अलंकार विधान में अत्यंत संयम से काम लिया है। कहीं अलंकार एक स्थान न उलझे और न उनमें भद्दापन आए, इसपर ध्यान दिया गया है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, असंगति, विरोधाभास, अन्योक्ति, तद्गुण आदि अलंकारों के प्रयोग से उन्होंने अपने भावों को उत्कर्षता प्रदान की है।

रस : रस योजना में श्रृंगार रस बेजोड़ बना है। दोनों पक्षों का सजीव वर्णन किया है। भाव, अनुभाव, विभाव, संचारी भाव से श्रृंगार रस सरस बना है, भक्ति और विनय के दोहों में शांत रस का परिपाक हुआ है। कुछ दोहे वीर और अदभूत इस के भी प्राप्त होते है।

छंद : बिहारी ने केवल दोहा और सोरठा इन दो छंदों का ही प्रयोग अपने सतसई में किया है। दोहा छंद में कम शब्दों मे अधिक अर्थ देने की शक्ति है। जिसके माध्यम से बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है। दोहा छंद उन्हें अधिक प्रिय था जिसका सर्वाधिक प्रयोग दिखाई देता है।

बिहारी सतसई का स्थान : 'सतसई' का अर्थ सातसो। संस्कृत में सतसई का अर्थ-सप्तशती है। बिहारी को 'आर्या-सप्तशती', 'गाथा सप्तशती' और 'सातवाहन-सप्तशती' से प्रेरणा मिलती थी। भक्तिकाल में सूरदास और तुलसीदास के पश्चात सतसई लिखनेवालों में बिहारी ही ख्यातनाम रहे है। रहीम-सतसई, वृंद सतसई, विक्रम सतसई, श्रृंगार सतसई आदि अनेक सतसईयों के सामने बिहारी की सतसई अधिक लोकप्रिय हुई। बिहारी की सतसई परखने पर पता चलता है कि-वह काव्य चातुरी की आत्मा तो है ही, कला की भी आत्मा है। इसका प्रत्येक दोहा अपनी काव्यात्मकता और कलात्मक संक्षिप्तता के कारण महान है। काव्य का कोई गुण ऐसा नहीं है जो बिहारी के सतसई में विद्यमान नहीं है। उनकी सतसई सौंदर्यानुभूति, रसिकता एवं व्यंग्यात्मकता का सुंदर समन्वय है। इस ग्रंथ का हिंदी साहित्य में अनन्य महत्त्व है। शब्दों में रस उत्पन्न किया है। मुक्तक कविता में जो गुण होने चाहिए वे सभी गुण बिहारी सतसई में उपलब्ध होते है। बिहारी के दोहों की प्रशंसा के लिए किसी ने सार्थक उक्ति की है -

''सतसैया के दोहरे, ज्यौ नैनन के तीर।

देखन में छोटेलगे, बंधे सकल शरीर।।''

उपर्युक्त उक्ति से स्पष्ट होता है कि 'बिहारी सतसई' का स्थान सतसई में ही नहीं अपितु संपूर्ण हिंदी साहित्य में बजोड़ रहा है।

भाव पक्ष : बिहारी के अधिकांश दोहे रस-परक है, उसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है। अेन युग की मांग नुसार सभी विषयों के दोहे उनके काव्य में मिलते है। श्रृंगारिकता की प्रमुखता होने पर भी बिहारी नृंगारी कवि नहं है। उनके दोहों का मूल विषय श्रृंगार और प्रेम ही है। बिहारी ने राधाकृष्ण के माध्यम से श्रृंगार वर्णन करते समय राधाकृष्ण को सामान्य नायिका और नायक के रुप में प्रस्तुत किया है। बिहारी ने श्रृंगार का सुक्ष्म एवं तरल वर्णन किया है। वह मन के चितेरे रहे है। सतराई में नख-शिख, नायिका भेद, बह-ऋतु वर्णन अलंकारों के प्राय: सभी उदाहरण आ गये है। बिहारी प्रेम रहने के कारण उन्होंने प्रेम और वियोग दोनों पक्षों का सशक्त वर्णन किया है। परंतु उनका मन ज्यादा संयोग पक्ष में ही रमा है। बिहारी ने संयोग पक्ष का वर्णन भी शास्त्रीय पद्धति से किया है। कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन जरूर किया है, परंतु कल्पना और भाव सौष्ठव की दृष्टि से संयोग वर्णन अत्यन्त सजीव बना है। जैसे-

''मिल परछाहीं जोन्ह सों, रहे हहुनि के गात।

हरि राधा एक संग ही, चली गली में जात ।।''

राधा कृष्ण के रुप सौंदर्य तथा नख-शिख वर्णन भी जीवंत हो उठा हैं -

''बढी मंदिर पै लखे, मोहन-दुति, सुकुमारि।

तन थाकेहू ना थके चख चित्त चतुर निहारि।।''

उनका संयोग श्रृंगार में जितना मन रमा उतना वियोग श्रृंगार में नहीं। वियोग श्रृंगार में केई मार्मिकता नहीं है, बल्कि अतिशोक्ति झलकति है। बिहार का श्रृंगारिक वर्णन उन्मादक बना हैं। उसमें उच्चकोटि की वासना

दिखाई पड़ती है। अश्लीलता और शरिर के बाह्याकर्षण के प्रेम की सृष्टि प्रमुखता रही है। यौवनावस्था की चंचलता का वर्णन कर बिहारी ने अपना मनोज्ञाता रुप स्पष्ट किया है। उनका निम्न दोहा प्रसिद्ध है –

''बतरस लालच लाल की मुरली घरी लुकाय।

सौंह करैं भौंहनु हसै दैन कहै नहि जाइ।''

इस तरह नीड़र प्रेमिका का वर्णन करते हुए तत्कालीन परिवेश का चित्रण किया है, जो उस समय नैतिकता, पवित्रता एवं आदर्शवादिता का लवलेश उस युग में दिखाई नहीं देता है। प्रेमानुभूतियों के अंतर्गत इन्होंने रुप–लिप्सा, प्रेमजल औत्सुक्य आदि का चित्रण मार्मिक दंग से किया है। बिहारी की दृष्टि विरहिणी की दशा का ऊहात्मकता तथा अतिरंजितापूर्ण चित्रण कक्षंचने में अदिख रजी है। बिहारी ने भक्ति और नीति के दोहे भी लिखे परंतु उनकी मूल प्रवृत्ति श्रृंगारिकता एवं रसिकता ही रही है।

कलापक्ष : बिहारी केकुछ दोहों में कलापक्ष अत्यंत समृद्ध है। ऐसे दोहे भाव कला के आश्रित है। जिसमें शाब्दिक चमत्कारिकता की अधिकता दिखाई देती है। भाषा, अलंकार, छंद की दृष्टि से बिहारी बेजोड कवि है। मुक्तक काव्य के सभी गुण उनके काव्य में पाए जाते हैं।

शैली : शैली की दृष्टि से बिहारी में कल्पना का पुट अधिक बलवत्तर है। थोडे में

● **रीतिमुक्त कवि :**

घनानंद : घनानंद हिंदी के एक विरले कवियों मे से है। किसी एक लीक पर न चलते हुए अपने लिए एक नई लिक निर्माण करनेवाले रीतिमुक्त धारा के स्वच्छंद कवि है। उनके काव्य का प्रमुख पक्ष विरह है। इनके जीवन संबंधी अनेक किंवदंतियाँ है। घनानंद भटनागर कायस्थ जाति के थे। उनका जन्म दिल्ली में सं. 1746 के लगभग हुआ था। बादशाह मोहम्मद शाह 'रंगीले' (1776-1805) के दरबार में मीर–मुंशी थे। बचपन से इन्हें 'रासलिला' देखने का शौक था। जो घनानंद कृष्ण भक्त बन गये। बादशाह और घनानंद के बीच कटुता उत्पन्न करते हेतु दरबारी षड्यंत्रियों ने घनानंद को गाने के लिए कहा तब घनानंद अपनी प्रेमिका राजनर्तकी सुजान की ओर मुख और बादशाह की ओर पीठ करके गाए। बादशाह ने अपनी बेअदबी के कारण रुष्ट होकर घनानंद को दरबार से निकाल दिया। प्रेमिका सुजान ने भी साथ–चलने से इन्कार करने से घणानंद को जीवन से ही विरक्ति हो गई। परिणामस्वरूप; घनानंद कृष्णभक्ति निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होकर वृंदावन में रहकर विरह का गीत गाने लगे। कहा जाता है, कि वृंदावन पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय (सं. 1813) में उनका वध कर दिया गया।

रचनाएँ : कवि घनानंद की लगभग 41 कृतियाँ प्रमाणित मानी गई है। विविध कृतियों में 752 कवित्त–सवैय्ये, 2354 दोहे चौपाईयों और 'सुजान हित और पदावली में 1057 पद संकलित है। आ. शुक्ल जी के मतानुसार 1) सुजान सागर, 2) विरह लिला, 3) कोकसागर, 4) रस केलि वल्ली, 5) कृपानंद यह उनकी ग्रंथ संपदा है। उसके सिवा कृष्ण संबंधी कवित्त – सवैय्यों का डेढ़ सौ से लेकर चार सौ तक का संग्रह ग्रंथ छत्रपुर के राजा राजपुस्तकालय में है। जिसमें 'प्रेमसरोवर', 'प्रीतिप्रवास', 'प्रिया प्रसाद', 'वियोगावली,

कृपाकंद निबंध, गिरिगाथा, भावना प्रकाश, गोकुळ विनोद, धाम चमत्कार, कृष्ण कौमुदी, नाम माधुरी, वृंदावन मुद्रा, छंदाष्टक, प्रीतीप्रवास आदि सुंदर रचनाएँ है। स्वयं प्रेम की चोट खाये घनानंद के प्रेमानुभूति से वर्णित काव्य 'भगवत् प्रेम' कहो या 'सुजान प्रेम' उनकी कविता 'स्वान्त: सुखाय' थी। वह स्वयं कहते है –

''लोग है लागि कवित्त बनावत,

मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत।''

घनानंद की कविता साध्य नहीं बल्कि साधन थी।

घनानंद ने श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का चित्रण किया है। परंतु, उनका काव्य विरह प्रधान होने के कारण उनके काव्य में विरह की प्रधानता दिखाई देती है। विरही हृदय की विभिन्न दशाओं एवं अनभूतियों का उदात्त एवं गंभीर चित्रण करते हुए प्रणय विभोर मन की हर एक दशा को उद्घाटित किया है। नायिका का नख-शिख वर्णन करते समय उसमें उन्नतता की जगह तरल सौंदर्य चित्रित हुआ है। 'सुजान हित' काव्य में विरह की सहजता और स्वाभाविकता ने कवि की भावना के सर्वत्र कामुक्त एवं रसिकता के स्तर से उँचा उठाकर उदात्त प्रेम की अभिव्यक्ति की है। घनानंद के संयोग में भी वियोग की पीड़ा परिलक्षित होती है।

घनानंद की कविता के दो पक्ष है – 1) भावपक्ष और 2) कला पक्ष। भावपक्ष को घनानंद के काव्य में प्रधानता मिली है। परंतु कला पक्ष की उपेक्षा नहीं की है। कला पक्ष के भाषा, शैली, अलंकार योजना की दृष्टि से उनका काव्य सबल और स्वाभाविक जान पडता है। 'लाक्षणिक पद्धति' उनके काव्य की आत्मा है। जिसके माध्यम से चमत्कार और सौंदर्य उत्पन्न किया है। जो अन्यत्र दुर्लभ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक, विभावना, अनुप्रास यथासंख्य, असंगति आदि आलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग के साथ-साथ विरोधाभास की छटा उनके काव्य में मिलती है। विरोधाभास का चमत्कारपूर्ण उदाहरण –

1) पौन सौ. जागत आग सुनी ही, पै पानी ते लागति आँखिन देखी।

2) दरसौ, परसौ, बरसौ, सरसौ जन लेहू गये पै बसौ मन ही।

भावपक्ष की दृष्टि से घनानंद की रचनाएँ श्रृंगार रस प्रधान है। घनानंद श्रृंगार रस के वियोग पक्ष के अमर कवि है। साथ ही पदावली में शांत रस, वात्सल्य रस पाया जाता है।

भाषा : घनानंद की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जो अपने साहित्य के लिए प्रसिद्ध है। ब्रजभाषा की माधुर्य और कोमलता से घनानंद भली भाँति परिचित थे। जैसे ब्रजभाषा ही उनकी अनुगमन करती दिखाई देती है। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों को ब्रजभाषा के साँचे में डालकर ब्रजभाषा का माधुर्य बढाया है। विरह वर्णन में उनकी भाषा का मन्थर प्रवाह है, पर उल्लास वर्णन मे उनकी भाषा का प्रवाह तीव्र हो जाता है। इस विशेषता के साथ-साथ उनकी भाषा प्रसाद और माधुर्य गुणो से युक्त व्यंजना और लक्षणों से सम्पन्न मुहावरों और कहावतों से समृद्ध अर्थ की संपत्ति से गौरवान्वित, व्याकरण परक और ध्वनि सौंदर्य से विभूषित है। ऐसे विरहयोगी घनानंद का मृत्यू सं. 1896 में हो गया।

आलम : आलम नाम के दो कवि हुए है या इस नाम पर जो उपलब्ध सामग्री हे वह एक ही आलम की है इसको लेकर विद्वानों में मतभिन्नता दिखाई देती है। शिवसिंह सरोज में केवल एक आलम का उल्लेख है। आलम को औरंगजेब का पुत्र मुअज्जमशाह (बहादुरशाह) का दरबारी कवि मान लिया गया है।

आलम का कविता काल 1740 से 1760 से माना जा सकता है। ये जाति से ब्राह्मन थे। इन्होंने शेख नाम की रंगरंजिन के प्यार में फँसकर उसके साथ विवाह कर लिया और मुसलमान हो गये। इनकी कविता संग्रह का नाम 'आलम केली' है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनके संबंध में लिखते है – 'ये प्रोमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से उनकी रचनाओं में हृदय-तत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक वाक्य में पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी उन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक की है। शब्द वैचित्र्य, अनुप्रासादिक की प्रवृत्ति इसमें विशेष रुप से कहीं नहीं पायी जाती। श्रृंगार की एसी उन्नादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती है कि पढ़ने और सुनने वाले लीन हो जाते है।'' आलम में स्वच्छंद प्रेमधारा के सभी गुण मिल जाते है।

ठाकुर : ठाकुर का जन्म ओरछा (बुन्देलखण्ड) में 1823 में हुआ। इनका जोधपुर और बिजावर के राज्यों में बड़ा मान था। इनकी रचनाओं का एक संग्रह लाला भगवानदीन ने 'ठाकूर ठसक' नाम से प्रकाशित किया। इनकी रचनाओं में ऐकांतिक प्रेम का प्रवाह दिखाई देता है। फारसी काव्यधारा से ये काफी मात्रा में प्रभावित हुए। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनके संबंध में लिखते है। ठाकूर बहुत ही सच्चे उमंग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडंबर है, न कल्पना की झुठी उड़ान। और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। भावों को वह कवि स्वभाविक भाषा में उतार देता है। बोल-चाल की चलती भाषा में भावों का ज्यों को त्यों सामने सब देना इस कवि का लक्ष्य रहा है।'' भाषा में स्वच्छन्दता और सहज प्रवाह है।

ठाकुर ने प्रेम का सफल निरुपक किया है और साथ ही साथ अन्य लोकव्यापारों की छटा भी दिखाई देती है। इन्होंने अपने काव्य में फाग, बसंत, होली आदि उत्सवों का वर्णन किया है। इसके साथ लोगों में दिखाई देनेवाली कुटिलता, क्षुद्रता, कालगति पर खिन्नता और कवि कर्म के कठिणता का भी वर्णन किया है।

बोधा : बोधा राजापुर जिला के बांदा गांव के रहनेवाले थे। उनका जन्म संवत् 1804 माना जाता है। इनका असली नाम बुद्धिसेन था। महाराजा पन्ना के दरबार में ये रहा करते थे। इन्होंने संवत् 1830 से लेकर 1850 तक अपना साहित्य लेखन किया, ऐसा माना जाता है। बोधा दरबार के किसी 'सुभाना नाम की वेश्या पर आसक्त थे। एक बार वे सुभान के साथ प्रेमाचरण करते वक्त पकड़े गये, जिस कारण राजा ने उन्हें असंतुष्ट होकर 6 महिने के लिए देश से निकाल दिया। इसी वक्त उन्होंने 'विरह वारीश' की रचना की। उन्होंने 'इश्कनामा' नामक काव्य लिखा जिसपर फारसी का प्रभाव दिखाई देता है।

इनकी रचनाओं में प्रेम का उल्लास मिलता है। रीतिग्रंथ की रचना न करते हुए इन्होंने अपने अनुसार मर्मस्पर्शी, प्रेम के पद्यो की रचना की है। बोधा एक भावुक और रसज्ञ कवि थे। इनकी भाषा में व्याकरणिक

दोष होते हुए भी इनकी भाषा चलती और महावरेदार है। सूफियों की प्रेमपीर का प्रभाव इनके उपर दिखाई देता है।

रसखान (1558 - 1633 इ.) राजेंद्रसिंह गौड ने रसखान का पूरा नाम 'सैयद इब्राहिम रसखान' दिया है ये कविता में 'रसखानि' उपनाम का भी प्रयोग करते थे। इनका जन्म कब और कहाँ हुआ यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जात सकता है। परंतु उनके कथन से ज्ञात होता है, कि वे शाही वंश के थे, और दिल्ली में रहते थे। अपनी जवानी में वो एक सुंदरी की ओर आसक्त हुए, परंतु उसकी उपेक्षा से विरक्त हुए और गोवर्धन धाम चले गये। रसखान ने अपने साहित्य में सर्वत्र कृष्ण की तरूणावस्था का वर्णन किया है। जिससे उन्हें वैष्णव संप्रदाय से दीक्षित कहा जाता था। परंतु उनमें सूफी प्रेम भावना व्यक्ती हुई है। और वह मुसलमान रहने के कारण तत्कालीन परिस्थिति में वह वैष्णव संप्रदाय से दीक्षित नहीं हो सकते थे। यह उनके काव्य से स्पष्ट होता है, की उन पर सूफी मत का प्रभाव रहा होगा। जिसमें रसखान ने कृष्ण और गोपियों के स्वच्छन्द प्रेम का निरुपम किया है।

रसखान की रचनाएँ : रसखान प्रेमानुभूति के कवि थे। इनकी दो रचनाएँ प्राप्त है - 'सुजान रसखानि' और 'प्रेम-वाटिका', 'प्रेम वाटिका उनकी प्रथम रचना है। इसका रचनाकल संवत 1671 है। इसमें केवल 52 दोहे और सोरठे है। जिसमें प्रेम का बड़ा हृदयग्राही एवं शुद्‌ध चित्रण अंकित किया गया है। उनकी दूसरी रचना 'सुजान-रसखानि' है, जिसमें 129 छंद है, उनमें 10 दोहे-सोरठे है और शेष कवित्त, सवैये है। इसमें भी प्रेम का ही चित्रण हुआ है। जिससे स्पष्ट होता है कि रसखान विशुद्‌ध प्रेम के कवि थे।

रसखान फारसी और अरबी के अच्छे ज्ञाता थे। हिंदी कवियों के संपर्क से उन्होंने ब्रजभाषा और पिंगल का भी ज्ञान प्राप्त किया था। गोकुल में रहने के कारण उनकी ब्रजभाषा पर खराद-सा चढ़ गया था। उन्होंने श्रृंगार वर्णन में गोपीकृष्ण को ही आलंबन के रुप में चित्रित किया जिसमें गोपी-कृष्ण स्वच्छन्द प्रेम के प्रतीक है। वे तरूण है, सुंदर है। अनन्य प्रेम का चित्रण करते समय कृष्ण और गोपियों के बीच उत्पन्न होनेवाले स्वच्छन्द प्रेम की जैसी मोहक झाँकियाँ प्रस्तुत की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके प्रणय-चित्रण में कही भी शारीरिकता, नग्नता एवं अशलीलता की झलक नहीं मिलती, बल्कि भावना का उदात्त एवं गंभीर रूप ही प्रस्तुत हुआ है। प्रेम के दो रूप होते है - (1) कामना साहित प्रेम और (2) कामना रहित-प्रेम। इन्होंने दोनों प्रकार के प्रेम आनंद की प्राप्ति होती है। कामना सहित प्रेम विषयानन्द है और कामना रहित प्रेम ब्रह्मानंद है। रसखान कहते है -

> ''आनंद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
>
> कै वह विषयानन्द, कै ब्रह्मानन्द बखान।।''

रसखान ने सकाम की अपेक्षा निष्काम प्रेम को प्रधानता दी है, क्योंकि वह शुद्‌ध और स्थायी होता है।

> ''दम्पति-सुख अरु विषय रस पुजा, निष्ठा, ध्यान।
>
> इनसे परे बखनिये, शुद्‌ध प्रेम रसखान।।''

शुद्ध प्रेम की साधना सब साधनाओं से कठिण है। यह स्पष्ट करते हुए वह करते है,

'कमल-तंतु से छीन अरु, कठिन खड़ग की धारा।
अति सुधो, टेढो बहुरि, प्रेम-पन्थ अनिवार।।'

रसखान की काव्य शैली अत्यन्त सरल, स्वाभाविक और माधुर्य गुण युक्त है। उनके भाव अत्यन्त स्पष्ट और उनकी उक्तियाँ सरल है। उन्होंने चमत्कार प्रदर्शन को महत्त्व नहीं दिया है। बल्कि अलंकारों का विधान स्वाभाविक रुप में हुआ है । अलंकार विधान में अनुप्रास को प्रमुख स्थान दिया है। साथ ही रुपक, उपमा, श्लेष, पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकार भी मिलते है। अलंकारों के माध्यम से भाषा को सजाने-सवारने के साथ-साथ रसोद्रेक में भी सहायता मिली है। इन्होंने छंद योजना भी सरल और स्वाभाविकता से भावानुकुल की है। जिसमें दोहा, सवैया, और कवित्त लिखे है। इनके सवैये बेजोड़ है। अत: उनकी शैली, स्वाभाविक, सरस, मधुर, प्रसाद गुणयुक्त, श्रृंगारिक और प्रवाहपूर्ण है। जिसमें मस्ती, तन्मयता और तल्लीनता है।

रसखान की काव्यभाषा ब्रज भाषा है। जिसमे घनानंद और बिहारी की तरह माधुर्य भर पड़ा है। बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग करने के कारण भाषा मधुर और आकर्षक बन पड़ी है। साथ ही अवधी, राजस्थानी, भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। लोकप्रचलित मुहाँवरे तो उनकी भाषा के प्राप्त है।

द्विजदेव (1820-1861) : द्विजदेव की गणना रीतिबद्ध कवियों में भी कि जाती है, परंतु स्वच्छन्द प्रवृत्ति का अधिक प्रभाव उनके काव्य पर परिलक्षित होता है, जो उन्हें स्वच्छन्द कवि स्वीकार किया गया है। इनका असली नाम 'मानसिंह' था। वे अयोध्या के राजा थे। 'द्विजदेव' के नाम से वे काव्य लेखन करते थे। लाछिराम और रसिक बिहारी इनके आश्रित कवि थे। इनके काव्य में श्रृंगार के रीतिग्रस्त वर्णनों के साथ-साथ हृदय की अनेक अन्तर्दशाओं का मार्मिक चित्रण अंकित हुआ है। जिससे वे घनानंद की दिशा में अग्रसर होते दिखाई देते है। जिसमें वियोग के प्रसंग महत्त्वपूर्ण है। संयोग पक्ष को परंपरागत परिपाटी को स्वीकारा है। प्रकृति का आलंबन रुप में प्रयोग करते हुए स्वच्छन्द प्रेम में प्रकृति वर्णन विशेष बना है। इनकी एक भाग रचना 'श्रृंगार लतिका सौरभा है, जिसमें वसंत पर 33 पद्य है। जिसमें माधुर्य, प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और भाषिक सरसता और प्रवाहमयता दिखायी पडती है।

वसंत का एक दृश्य है जिसमें रुप, रस्, शब्द, गंध भार से सब कुछ मनोरम हो उठा है -

'सुर ही के भार सुधे सबद सुकीरन के
मंदिरन त्यागि करैं, अनंत कहूँ न गौन।
द्विजदेव त्यौही मधुभारण अपारण सौ
नेकु झुकि झूमि रहे मांगरे मरुअ दौन।।'

द्विजदेव की भाषा में रीतियुग के समस्त काव्य सौंदर्य परिलक्षित होते है, साथ ही लक्षणाओं, लोकोक्तियों और मुहावरों से उनकी अभिव्यंजना शक्ति द्विगुणित हो उठती है। जिससे वे घनानंद और ठाकुर के पथ पर अग्रेसर रहे दिखाई देते है। जो द्विजदेव मुक्तरीति काव्यधारा के अंतिम कवि रहे है।

4.2.4 रीतिकालीन गद्य साहित्य :

रीतिकाल में भक्तिकाल की अपेक्षा रीतिकाव्य अधिक निर्माण हुआ। परंतु काव्य साहित्य के साथ-साथ ब्रजभाषा में गद्य और राजस्थानी गद्य साहित्य भी प्राप्त होता है, जो निश्चित रुप से प्रौढ़ एवं समृद्ध है। खडीबोली, दख्यिणी, मैथिली आदि विभाषा में भी इस काल में गद्य रचना की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस युग में अनूदित कृतियों की संख्या है। पुस्तक परिचय निबंधात्मक रचनाएँ और जीवनकृत संबंधी कृतियाँ उपलब्ध है। 19 वीं शती में पाट्यपुस्तकों और समाचार पत्रों का प्रारंभ होकर गद्य साहित्य विकसित होने लगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार रीतिकाल का समय विक्रम संवत् 1700-1900 तक (164301843) ई. तक काल में लिखा गया गद्य साहित्य निम्न प्रकार से है।

ब्रजभाषा गद्य : रीतिकाल में धार्मिक और उपयोगी गद्य के साथ ललित गद्य ब्रजभाषा में पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। जिसमें हिंदी परिवार की भाषाओं में काव्य-ग्रंथों पर टीका टीप्पन ब्रजभाषा में सर्वाधिक हुआ। इस समय के ब्रजभाषा के गद्य के विषय धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, शकुनशास्त्र, सामुद्रिक, गणित, इतिहास, भूगोल, इतिहास, चित्रकारी, मल्लविद्या तथा काव्यशास्त्र आदि। परंतु तत्कालीन समय में वल्लभ संप्रदाय में 'वार्ता' नाम से प्रचुर गद्य साहित्य महत्त्वपूर्ण है। इस साहित्य में कालक्रम और महत्त्व की दृष्टि से 'चौरासी वैष्णवत की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवत की वार्ता' महत्त्वपूर्ण है। 'चौरासी वार्ता' की सन 1640 ई. की प्रति कांकशैली विद्या विभाग में सुरक्षित है।

इस काल की प्रामाणिक गद्य रचनाओं में ध्रुवदास कृत 'सिद्धांन्त विचार' (1595 ई.) नाथादास कृत 'अष्टयाम' (1603 ई) वैकुण्ड आदि शुक्ल कृत 'वैशाख महात्म्य' और 'अगहन महात्म्य' (1623 ई) गास्वामी विठ्ठलनाथ एवं शिष्योंद्वारा लिखित 'वचनामृत' तथा अज्ञात कवियोंद्वारा लिखित 'वचनामृत' तथा अज्ञात कवियोंद्वारा लिखित 'सिंगार सुतक' और 'शालिहोग' प्रसिद्ध रचनाएँ है।

गद्य के पुराणे नमुनों में सन् 1513 का एक विज्ञापन तथा सती-समाधि लेख भी महत्त्वपूर्ण है। साथ ही कविवर बनारीसीदास जैन प्रणीत 'परमार्थवचनिका', 'मिथ्यात्व निषेधन' तथा उपादान निमित्त' की चिट्ठी भी महत्त्वपूर्ण है।

इस काल की गद्य टिकाओं में 'भुवनदीपिका टीका' (1614 ई.) 'भागवत-एकादश-स्कन्ध' टीका (चतुरदास) 'हित संविर्धिनी टीका (रसिकलाल) और धरनीदास एवं लोकनाथ की टीकाएँ प्रसिद्ध है।

साथ ही सत्रहवीं, अठारहवी और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ब्रजभाषा में निम्न साहित्य लिखा गया है-

सत्रहवीं शताब्दी : मीनराज प्रधान कृत 'हरतालिका कथा' (1669) अक्षर अनन्यकृत 'अष्टांग योग' (1693 ई) कोक कथा और काके मंजरी, दामोदर दास लिखित 'मार्कण्डेय पुराण' (अनुवाद) मेघराज प्रधान कृत 'अध्यात्म रामायण' (अनुवाद)

अठारहवी शताब्दी : हरिराय कृत 'चौरासी वैष्णवन की भावना वार्ता 'दो सौ बावन वैष्णवन की भावना वार्ता; 'द्वादश निकुंज की भावना','भाव-भावना', 'सात स्वरूपन की भावना' आदि लगभग 15 ग्रंथ तथा ब्रजभूषण कृत 'श्री महाप्रभु जी' तथा 'गुसाई जी का चरित्र', 'नित्य विनोद' 'नीति विनोद', तथा श्री द्वारिकाधिश की प्राकाट्य वार्ता, राधावल्लभ संप्रदाय के अनन्य अली कृत 'स्वप्न-प्रसंग', 'प्रियादास जी कृत 'सेवकजू का चरित्र'। साथ ही अनुवाद में रामहरि का 'विद्ग्ध माधव नाटक' (1767 रुपगोस्वामी के संस्कृत नाटक का छायानुवाद) सुरति मिश्र कृत 'वैताल पच्चीसी' (संस्कृत की वैताल पंचशतिका का छायानुवाद) देवीचन्द कृत 'हितोपदेश ग्रंथ महाप्रबोधिनी' (हितोपदेश का अनुवाद) वंशीधर कृत 'मित्र मनोहर' (1717 हितोपदेश का अनुवाद) कथा विलास (हितोपदेश-मोजप्रबन्ध का अनुवाद) 'नासिके तो पाख्यान' (1707) 'नासिसकेत महापुराण (नासिकेत पुराण अनुवाद 1831) गुमानी राय कायस्थ 'आईने अकबरी' का भाष्य वचनिका, 'चाणक्य राजनीति', दादूपंथी अनाथदास विचारमाला (अनुवाद) आदि । साथ ही तत्कालीन कुछ पत्र भी गद्य में प्राप्त होते है।

उन्नसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध : मन्नू जी कृत 'सप्तस्वरूपोत्सव' वार्ता भट्ट जी कृत 'श्रीनाथ जी की सेवा विधि', 'सेवाराम मिश्रकृत 'भागवतानुवाद' सिवलाल कृत कर्म विपाक आदि महत्त्वपूर्ण है। साथ ही वल्लभ संप्रदाय के भक्तों का गद्य साहित्य भी महत्त्वपूर्ण है। जिसमें गद्य की प्रवृत्ति पर्याप्त परिष्कृत और पुष्ठ है। उसमें प्रवाह और भाव व्यंजना की शकित है।

रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों, धार्मिक रचनाओं अन्य विषयों के ग्रंथों और काव्य ग्रंथों में यन्त्र-तन्त्र वात, वचनिका चर्चा वार्ता, तिलक वार्तिका अथवा शीर्षकों से भी टिप्पणपरक गद्य का प्रयोग हुआ है। जैसे - चिंतामणि श्रृंगार मंजूरी, कविकुल कल्पतरु' रसिक गोविन्द कृत - 'रसिकगोविन्दानन्धन' (1801), सुखदेव मिश्र - 'पिंगल', रामसहायदास कृत 'कृत तरंगिणी' (1816), करणेस कृत 'बलभद्र प्रकाश (रसालंकार विवेचन - 1823) बक्शी समजसिंह 'पिंगल काव्य विभूषण' (1823), प्रतापसिंह, व्यंग्यार्थ कौमुदी (1825), काव्यविलास (1829) आदि महत्त्वपूर्ण है।

उन्नीसवीं शती में ब्रजभाषा में टीका साहित्य भी पर्याप्त लिखा गया। उनमें तुलसी बिहारी, केशव आदि कवियों के काव्य ग्रंथों पर टीका लिखी गई है।

राजस्थानी गद्य : रीतिकालीन राजस्थानी गद्य ब्रजभाषा गद्य से अधिक समृद्ध है। राजस्थानी विभाषाओं में मारवाडी का गद्य अधिक समद्ध है। राजस्थानी की विभाषाओं में मारवाडी का गद्य अधिक समृद्ध रहा है। जिसमें जयपूरी में से अभिन्न समझा जाता है। मेवाड़ी और मालवी में गद्य नाममात्र है।

राजस्थानी गद्य में वात-साहित्य प्रसिद्ध है। यह वात-साहित्य आधुनिक साहित्य से कहानी साहित्य के निकट की विधा है। विषय की दृष्टि से वाते स्थूलत: छह प्रकार की होती है - प्रेम-परक, वीरतापूर्ण,

हास्यमय, धार्मिक शान्तरस परक, स्त्री चातुर्य विषयक और अद्‌भुत तत्वपूर्ण। कुछ प्रसिद्‌ध वात साहित्य – 'रतनाहमीर री वात', 'राव अमरसिंहरी वात', 'गोराबादल री वात' 'दूधै जोधावत री वात', 'राजाभोज खापरा चोर री वात' 'बीरबील री वात'।

इस समय राजस्थान में गद्‌य साहित्य में 'बालावबोध' (कथामय व्याख्यान ग्रंथ) की रचना भी प्रचुर मात्रा में हुई। साथ ही टीका साहित्य और अनुवाद कार्य भी हुआ।

खडीबोली गद्‌य साहित्य : रीतिकालीन खडीबोली ब्रजभाषा मिश्रित है। शुद्‌ध खडीबोली गद्‌य साहित्य उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व नहीं लिखा गया। इस काल में ललित गद्‌य की अपेक्षा अललित गद्‌य लिखा गया। जिसमें धर्म, चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, सामुद्रिक, शकुण, गणित आदि विषयों का साहित्य है। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्व खडी बोली गद्‌य साहित्य पर ब्रजभाषा, पारसी, पंजाबी से प्रभावित है। इनमें महत्त्वपूर्ण रचनाएँ – 'एकादशी महिमा', 'सीधा रास्ता', (इस्लाम विषयक रचना) 'फर्सनामा', 'बाजनामा', 'सकुनावली', 'हकीकत' नरसिंहदास गौड की दवावैत, जिनसुख सुरि मजलस 'लखपत दवावैत', 'मंडोवर का वर्णन, विश्वातीत विलास नाटक, 'सुरासुर निर्णय', (मुंशी सदासुखराय), 'गोसर गुरु मिर्हारबानु (हरिजी) चकत्ता की पातस्याही की परंपरा', 'मोक्षमार्ग प्रकाश' (तोडरमल जैन) चंद्रविलास (दीपचंद्र जैन)

खडीबोली गद्‌य का प्रारंभ गंग कवि की 'चन्द छन्द बरून की महिमा' से माना जा सकता है। सन 1623 ई. में जटमल रचित – 'गोरा बादल की कथा', दूसरी उल्लेखनीय रचना है। अन्य कृतियों में भोगलु पुरान (प्रति 1705 ई) में भुगोल तथा पुरान का विषय है, 'गणेश गोसठ' (प्रति 1658 ई) में गोरख गणेश गोष्ठी के रूप गोरखपंथी रचना है। और तृतीय 'पोथी सचुण्ड' में गुरु नानकदेव जी की जीवनी है।

अठराहवीं शताब्दी में अनुवादित और टिका ग्रंथों की प्रचूरता है उसमें प्रमुख है – भाषा उपनिषद्' 'भाषा योग वशिष्ठ', 'भाषा पद्‌मपुराण', 'आदिपुराण वाचनिका', 'मल्लीनाथ चरित्र वाचनिका' आदि। इन ग्रंथों की भाषा संस्कृत निष्ठ है, जिसमें तत्सम शब्दों की बहलता है। धार्मिकेत्तर ग्रंथों में 'सूर्य सिद्‌धान्त' (1782) और सिंहासन बत्तीसी उल्लेखनीय है।

ब्रजमिश्रित खडी बोली में 'योगाभ्यास मुद्रा टिप्पण, 'बिहारी सतसई टीका' आदि विषयों पर तीन दर्जन ग्रंथ टिका। टिप्पण पर लिखे हुए है।

उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध : खडी बोली का अभ्युदय काल उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध (1800-1850) माना जाता है। यह समय अंग्रेजों के शासन का था। जो उन्होंने भारत में शिक्षा विस्तार हेतु 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना कलकत्ता में की है, वहाँ से खडी बोली गद्‌य में ग्रंथों के निर्माण का प्रारंभ हुआ। जिसमें यह ग्रंथ है – 'नासिकेतोपाख्यान', 'रामचरित्र', 'प्रेम सागर', लालचन्द्रिका टीका, 'भाषा कायदा', सिंहासन बत्तीसो' 'वैताल पच्चीसी', 'भक्तमाला टीका' और हातिमाई का अनुवाद आदि।

खडी बोली गद्‌य के उन्नयन के लिये इस काल में चार प्रमुख लेखकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है – 1) मुन्शी सदासुखलाल, 2) इंशा अल्ला खाँ, 3) लल्लू लाल और 4) सदल मिश्र। इनका खडीबोली के विकास में निम्न प्रकार से योगदान रहा है।

1) **मुन्शी सदासुखलाल 'नियाज'** (1726-1824) : मुन्शी सदासुखलाल 'नियाज' दिल्ली के रहनेवाले थे। ये उर्दू फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने विष्णुपुरान से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर 'सुख सागर' ग्रंथ की रचना की है। इस्ट इंडिया कंपनी में 'चुन्नाट' में अच्छे पद पर कार्यरत रहे हुए भी इन्होंने अंग्रेजी अधिकारी के आदेश से 'सुखसागर' की रचना नही की, बल्कि उर्दू और फारसी के अच्छे शायर और लेखक होने से इन्हेंदे हिंदी की कोई कठिनाई नहीं थी। जो उन्होंने हिंदी को चारो ओर पूरबी प्रान्तों में प्रचलित पाया और 'सुखसागर' हिंदी में लिखा। इन्होंने दिल्लीवासी होते हुए भी हिंदी गद्य में कथावाचकों, पण्डितों और साधु-संतों के बीच दूरतक प्रचलित बोली के रूप को स्विकारा जो संस्कृत मिश्रित हिंदी को उर्दू वाले भाषा के रुप में देख रहे थे। सदासुखलाल जी ने उसी संस्कृत मिश्रित खड़ीबोली को लेकर लेखन प्रारंभ किया।

2) **इंशा अल्ला खाँ :** ये उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। जो दिल्ली के उजडने पर लखनऊ चले आये थे। इनकी लिखी 'उदयभान चरित्र' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' हिंदी उर्दू की समान रुप से पहली कहानी मानी जाती है। इस कहानी में आधुनिक कहानी के तत्त्वों का अभाव है। परंतु प्रथम प्रयास होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसका रचनाकाल ई. 1800 और 1808 के मध्य का माना जाता है। इसे लेखक ने शुद्ध हिंदी में लिखने का प्रयास किया है। इस कहानी के माध्यम से खड़ी बोली गद्य में लौकिक श्रृंगारिक परंपरा का प्रारंभ हुआ। इसकी भाषा सबसे अधिक चटकिली, महावरेदार और चलती हुई है। भाषा में प्राचीन उर्दू गद्य के अनुसार कृदन्तों और 'क्रियाओं' में भी वचन सूचक चिह्नों का प्रयाग किया गया है। जिसमें इंशा की भाषा हल्के चलताऊ तथा मनोरंजन विषयों के अनुकूल बन पड़ी है।

3) **लल्लू लाल** (1763-1825) : ये आगरा के गुजराती ब्राह्मन थे। 'फोर्ट विलियम कॉलेज' कलकत्ता के हिंदी खडी बोली के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस में 18 अगस्त सन 1800 ई. में जान गिल काइस्ट को हिंदुस्तानी प्रोफेसर नियुक्त किया था। इन्होंने आगे चलकर सन 1802 में उस पद पर लल्लू लाल को नियुक्त किया। हिंदी उर्दू के अध्यापक जान गिलक्राइस्ट के आदेश से लल्लू लालजी ने खडीबोली गद्य में 'प्रेमसागर' की रचना की जिमें भागवत के दशम स्कंध की कथा वर्णित है।

लल्लू लाल जी की 11 कृतियाँ कही जाती है - 1) सिंहासन बत्तीसी, 2) बैताल पच्चीसी, 3) शकुन्तला नाटक, 4) मधोनल, 5) राजनीति, 6) प्रेम सागर, 7) लतायफ-इ-हिंदी, 8) ब्रजभाषा व्याकरण, 9) सभा विलास, 10) माधव विलास और 11) लाल चन्द्रिका

इसमें ब्रजभाषा व्याकरण के अतिरिक्त सभी रचनाएँ किसी न किसी कृति के आधार पर निर्माण की गई है। इसमें 'राजनीति', 'माधव विलास' और 'लाल चन्द्रिका' ब्रजभाषा गद्य में रची है। बाकी की रचनाएँ खडी बोली की है। फिर भी लल्लूकाल जी के कीर्ति का आधारस्तंभ 'प्रेमसागर' ही है। इसकी भाषा को हिंदवी, ठेठ हिंदी और खडी बोली भी कहा गया । भाषा में कवित्व की मात्रा अधिक होने से आलंकारिकता का प्रयोग करते समय उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का विशिष्ट प्रयोग किया गया है।

4) **सदल मिश्र** (1768-1848 ई) : ये बिहारी थे। फोर्ट विलियम कॉलेज में रहते हुए उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की - 1) 'चन्द्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' और 2) रामचरित्र । इनमें पहली

कठोपनिषद् में आई नचिकेता की कथा पर आधारित है। और 'रामचरित्र' अध्यात्म रामायण पर आधारित है। ब्रजभाषा के साथ-साथ कुछ पूरबीपन इनकी बिहारी भाषा में झलकती है। इनकी 'रामचरित्र' रचना सात काण्डों में विभक्त है जो लगभग 320 पृष्ठो की रचना है। यह रचना बिहारी राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा 'सदल मिश्र ग्रंथावली' नाम से प्रकाशित हुई है।

इस तरह खडीबोली गद्य का प्रयोग शिक्षा क्षेत्र में प्रारंभ होकर खडीबोली हिंदी भाषा की नींव डाली गई। जो आगे चलकर खडी बोली हिंदी में अनेक विधाओं में साहित्य निर्माण होने लगा साथ ही खड़ी बोली के विकास के लिए तत्कालीन समय में प्रारंभ हुए पत्र-पत्रिकाओं ने योगदान किया दिखाई देता है

● खडीबोली के अभ्युत्थान में समाचार पत्रों का योगदान :

खडी बोली के अभ्युत्थान में समाचार पत्रों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। कलकत्ता से 30 मई 1826 ई. को हिंदी का पहला समाचार पत्र साप्ताहिक 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन कानपुर से जुगल किशोर करते थे। यह पत्र अधिक दिन तक नहीं चल सका और 11 दिसंबर 1827 को यह बंद हो गया। इसके बाद दूसरा साप्ताहिक पत्र 'बंगदूत' 1829 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'प्रजामित्र' (कलकत्ता 1834 ई) 'बनारस अखबारे' (काशी 1845) मार्तण्ड (कलकत्ता 1850 ई) आदि पत्र महत्त्वपूर्ण रहे। भारतेन्दु तक आते-आते पचासों पत्र-पत्रिकाएँ निकाल चुके थे जिसके माध्यम से भारत में नवजागरण युग का प्रारंभ हो गया।

इस तरह रीतिकालीन गद्य साहित्य पर प्रारंभ में रीतिकाल का प्रभाव होने के कारण पद्य-गद्य में वार्ता, टीका-टिप्पणी, पत्रों, निबंध, अनुवाद, नाटक साहित्य लिखा गया। परंतु अंग्रेजों ने शिक्षा नीति के परिणाम स्वरूप; खड़ी बोली हिंदी में गद्य साहित्य की प्रचुरता ने हिंदी गद्य साहित्य को और हिंदी भाषा के विकास को सहाय मिलता रहा।

● स्वयं अध्ययन के प्रश्न :

1) इसमें से सतसई किस कवि ने नहीं लिखी

अ) बिहारी ब) मतिराम क) वृंद ड) घनानंद

2) कौन सा ग्रंथ कवि भूषण रचित नहीं है।

अ) छत्र प्रकाश ब) छत्रसाल दशक क) शिवाबावनी ड) शिवराज भूषण

3) 'ललित ललाम' के रचयिता का नाम बताइए।

अ) ग्वाल ब) सूदन क) मतिराम ड) पद्माकर

4) इनमें से कौनसा कथन असत्य है।

अ) बिहारी सतसई में 713 दोहे है। ब) भूषण रीतिबद्ध कवि है।

क) घनानंद की प्रेमिका का नाम 'सुजान' है। ड) केशव रीतिकाल के प्रवर्तक है।

5) लल्लू लाल जी की कीर्ति का विशेष स्तंभ कौन सी कृति है।

अ) सिंहासन बत्तीसी ब) लतायफ-इ-हिन्दी क) ब्रजभाषा व्याकरण ड) प्रेमसागर

6) सदल मिश्र जी की रचना 'रामचरित्र लगभग कितने पृष्ठों' की है।

अ) 420 ब) 250 क) 440 ड) 320

7) सदल मिश्र जी कहाँ के निवासी थे।

अ) दिल्ली ब) काशी क) अयोध्या ड) मधुरा

8) हिंदी का सर्वप्रथम समाचार पत्र कौन सा है।

अ) मार्तण्ड ब) उदन्त मार्तन्ड क) मालवा अखबार ड) सुधारक

● **टिप्पणियाँ लिखिए ।**

1) लल्लूलाल का परिचय दीजिए।
2) सदल मिश्र का परिचय दीजिए।
3) इंशा अल्ला खाँ।
4) खड़ी बोली गद्‌य।
5) भूषण वीर कवि है सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
6) घनानंद वियोग पक्ष के कवि है।
7) बिहारी सतसई का परिचय।
8) केशवदास रीतिकाल के आचार्य है।

दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) केशव के आचार्यत्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2) वीर कविभूषण के वीरकाव्य का परिचय सोदाहरण दीजिए।
3) 'बिहारी' रीतिसिद्‌ध कवि है उनके साहित्य के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4) रीतिकालीन कवियों का अल्प परिचय दीजिए।
5) रीतिकालीन गद्‌य भाषा की चर्चा कीजिए।

6) हिंदी खड़ी बोली के आधार स्तंभ सदासुखलाल, इंशा अल्ला खां, लल्लू लाल और सदल मिश्र का परिचय दीजिए।

स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर :

1) अ - घनानंद

2) अ - छत्रप्रकाश

3) क - मतिराम

4) ब - भूषण रीतिबद्ध कवि है।

5) ड - प्रेमसागर

6) ड - 320

7) अ - दिल्ली

8) ब - उदन्त मार्तन्ड

● सारांश :

सं. 1700 से सं. 1900 तक के काल को हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल कहा जाता है। अकबर, जहाँगीर, शहाँजहाँ को छोड़ने के पश्चात यह काल अत्यावस्था का था। रीतिकाल के कवियों को उनकी रचनाओं के अनुसार रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध इन तनों धारा की कविता में श्रृंगारिकता, अलंकारिकता, भक्ति, नीति, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण आदि विशेषताएँ दिखाई देती है।

केशवदास को रीति कालका प्रवर्तक का प्रवर्तक तथा आचार्य कवि माना जाता है। केशवदास के काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। बिहारी पूरे रीतिकाल में अत्यंत लोकप्रिय कवि उत्कृष्ठ काव्य-कला के शिल्पी माने जाते है। मतिराम ने अत्यंत सहज-सरल भाषा में अपनी काव्य रचना का निर्माण किया है। इसके साथ रीतिमुक्त धारा के अंतर्गत आनेवाले घनानंद आलम, ठाकुर, बोधा के काव्य में मौलिकता दिखाई देती है। इसके अंतर्गत उर्दू शैली का काव्य लिखा गया। रीतिकालीन गद्य साहित्य में वीर, भक्ति और नीतिपरक काव्य रचनाओं का निर्माण हुआ।

समग्र इकाई पर स्वयं अध्ययन के प्रश्न :

1) पं.विश्वनात प्रसाद मिश्र ने रीतिकालको .... नाम दिया है।

अ) अलंकृत काल ब) उत्तर मध्यकाल क) श्रृंगार काल ड) कला-काल

2) 'रीति' शब्द का अर्थ .... है।

अ) परंपरा ब) पद्धति क) रीति ड) श्रृंगार

3) रीतिबद्‌ध कवियों में .... की प्रधानता है।

अ) वीर रस ब) चमत्कार प्रदर्शन क) भावनाओं ड) हास्य रस

4) केशवदास .... काव्यधारा के कवि है।

अ) रीतिसिद्‌ध ब) रीतिमुक्त क) रीतियुक्त ड) रीतिबद्‌ध

5) रीतिकाल के प्रेरणास्त्रोत .... को माना जाता है

अ) सिद्‌ध तथा नाथ साहित्य ब) संस्कृत के लक्षण ग्रंथ

क) भक्ति साहित्य ड) आदिकाल का वीरकाव्य

6) संस्कृत भाषा में नीतिकाव्य की रचना भर्तृहरी ने .... नाम से की है।

अ) अमृतशतक ब) अमरकोष क) नीति निरुपण ड) नीतिशतक

7) पद्‌माकर की रचना में शौर्यभावों का चित्रण है।

अ) राज विलास ब) हम्मीर रासो क) हिम्मत बहादुर विरुदावली ड) सुजान चरित्र

8) केशवदास की .... रचना रस प्रधान है।

अ) कविप्रिया ब) रसिकप्रिया क) रामचन्द्रिका ड) रतन-बावनी

9) बिहारी ....काव्यधारा के कवि है।

अ) रीतिबद्‌ध ब) रीतिसिद्‌ध क) रीतिमुक्त ड) रीतियुक्त

10) मतिमराम की प्रथम रचना .... है ?

अ) ललित ललाम ब) रसराज क) मतिराम सतसई ड) बिहारी सतसई

11) सुजान सागर .... कवि की रचना है ?

अ) बिहारी ब) पद्‌माकर क) घनानंद ड) देव

12) नजीर अकबर बादी का जन्म सन् .... में हुआ।

अ) 1730 ई ब) 1735 ई. क) 1635 ई. ड) 1775 ई.

13) मिर्जा गालिब हिंदी साहित्य में .... के रुप में प्रसिद्‌ध है।

अ) कवि ब) कथाकार क) गज़्लकार ड) नाटककार

14) बॉकिदास रीतिकाल के .... धारा के कवि है।

अ) भक्तिकाव्य ब) वीरकाव्य क) नीतिकाव्य ड) श्रृंगार काव्य

15) मान कवि की रचना का नाम .... है।

अ) राज विलास   ब) केली विलास   क) विष्णु विला   ड) सुजान विलास

16) जोधराज की रचना का नाम .... है।

अ) हम्मीर रासो   ब) हम्मीर हठ   क) कुल्लियात   ड) सुख सागर

17) लल्लू लाल जी के कीर्ति का आधार स्तंभ उनकी .... रचना है।

अ) राजनीति   ब) माधोनल   क) प्रेमसागर   ड) सभा विलास

18) 'रानी केतकी की कहानी' .... की रचना है।

अ) लल्लू लाल   ब) इंशा अल्ला खां

क) सदल मिश्र   ड) मुन्शी सदासुबलाल 'नियाज'

स्वयं अध्ययनके प्रश्नो के उत्तर

1) क - श्रृंगार काल

2) ब - पद्धति

3) ब - चमत्कार प्रदर्शन

4) अ - रीतिकाल सिद्ध

5) ब - संस्कृत के लक्षण ग्रंथ

6) ड - नीतिशतक

7) क - हिम्मत बहादुर विरदावली

8) ब - रसिक प्रिया

9) अ - रीतिबद्ध

10) ब - रसराज

11) क - घनानंद

12) ब - 1735 ई

13) क - ग़ज़लकार

14) ब - वीरकाव्य

15) अ - राजविलास

16) अ - हम्मीर रासो

17) क - प्रेमसागर

18) ब - इंशा अल्ला खां

दीर्घोत्तरी प्रश्न।

1) रीतितर साहित्य की विविध धाराओं का परिचय दीजिए।

2) केशवदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।

3) रीतिमुक्त कवियों का परिचय दीजिए।

4) रीतितर भक्ति साहित्य पर चर्चा कीजिए।

5) रीतितर नीतिकाव्य पर चर्चा किजिए।

6) खडी बोली हिंदी के विकास पर चर्चा किजिए।

4.7 क्षेत्रीय कार्य :

1. घनानंद के विरह के दोहों का संग्रह कीजिए।
2. रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त अन्य कवियों का परिचय दीजिए।
3. रीतिकाल के समय से राजनीतिक वातावरण के एतिहासिक दस्तावेज के संकलन में से फारसी शब्दों को ढूँढ लिजिए।

4) भूषण ने राजा शिवाजी पर लिखे वीर काव्य मे से वीर रसात्मक दोहों को संकलित कीजिए।

5) वृंद के नीतिपरक दोहों का संकलन कीजिए।

6) बिहारी के श्रृंगार परक दोहों का संकलन कीजिए।

7) रीतिकालीन 19 वीं शती के पूर्वार्ध की पत्रिकाओं का संकलन कीजिए।

8) लल्लू लाल की भाषा में ब्रजभाषा के शब्दों का संग्रह कीजिए।

4.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) शुक्ल रामचंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, संस्करण 2045 संवत्.

2) गौड़ राजेंद्रसिंह, 'हमारे कवि' साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष, 1978.

3) डॉ. शीलईश्वरदत्त, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' गरिमा प्रकाशन, 132 शिवराम कृपा, मयुर पार्क, बसंत विहार, कानपुर - 12, प्रकाशन वर्ष - संस्करण 2007.

4) डॉ. नागेंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2/34, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण – 33, प्रकाशन वर्ष 2006.

5) डॉ. सिंह बच्चन, 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' नया संशोधित परिवर्धित संस्करण, 2006.

6) डॉ. मिश्रा सभापति – 'हिंदी साहित्य का प्रवृत्ति परक इतिहास', विनय प्रकाशन, कानपुर- 12, प्रकाशन वर्ष–1994 प्र.सं.

7) डॉ. खण्डेलवाल जयकिशन प्रसाद, 'हिंदी साहित्य की प्रकृतियाँ' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, संस्करण–12, प्रकाशन वर्ष 1985.

8) द्विवेदी हजारीप्रसाद, 'हिंदी साहित्य उद्भव और विकास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, मूल प्रकाशन 1952, प्रकाशन वर्ष – 1982.

❑❑❑

इकाई–1
आधुनिक हिंदी कविता : विकास प्रक्रिया के सोपान

अनुक्रम :

1.0 उद्देश्य।

1.1 प्रस्तावना।

1.2 विषय-विवरण।

1.2.1 भारतेंदु युगीन कविता-परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ।

1.2.2 महावीरप्रसाद द्विवेदी युगीन कविता-परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ।

1.2.3 छायावादी कविता-परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ

1.2.4 प्रगतिवादी कविता - परिवेश, प्रमुख कवि, तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ

1.3 सारांश

1.4 स्वाध्याय।

1.5 क्षेत्रीय कार्य।

1.6 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

1) आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य के युगीन परिवेश से परिचित होंगे।
2) आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य की (काव्य और गद्य) विभिन्न विधाओं तथा उनके विकास जान पाएँगे।
3) आधुनिक कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को बता पाएंगे।
4) प्रमुख (काव्य तथा गद्य) रचनाओं का अध्ययन कर पाएंगे।
5) आधुनिक हिंदी कविता के विकास प्रक्रिया के विविध सोपानों का आकलन कर पाएंगे।
6) आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ, वैचारिक पृष्ठभूमि, नवीन सोपानों का महत्त्व बता पाएँगे।

1.1 प्रस्तावना :

इस पुस्तक को पहली इकाई में हमें भारतेंदु युगीन, द्विवेदी युगीन, छायावादी, उत्तर छायावादी कविता का परिवेश, प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ आदि के बारे में अध्ययन करना है। इसके साथ ही आधुनिक हिंदी कविता के विकास प्रक्रिया के विविध सोपान, वैचारिक पृष्ठभूमि, नव सोपानों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

'आधुनिक' शब्द अपने आप में नवीनता का भाव लिए हुए है। 'आधुनिक' शब्द का अर्थ है नवीनता। जब हम हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक शब्द का प्रयोग करते हैं या आधुनिक काल की बात करने लग जाते हैं तब यही आधुनिक शब्द इस बात की गवाही देता है कि यह पूर्व कालों से भिन्नता लिए हुए हैं। इसमें प्रचलित और विकसित धारणाएँ रीतिकाल अथवा संपूर्ण मध्यकाल से अलग ही है। अंग्रेजी के (Modern) मॉडर्न शब्द का हिंदी में रुपांतर आधुनिक, अर्वाचीन, वर्तमान अथवा आधुनिक समय का तथा आज कल के रुप में होता है। अधिकांश लोग ऐसे हैं। जिन्होंने अपने-अपने ढंग से आधुनिकता का अर्थ ग्रहण किया है। चाहे कुछ भी हो परंपरा से अलग करके आधुनिकता को समझना कठिन है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के सृजन-काल से ही आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है। इस काल में पुनर्जागरण का मंत्र ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था। राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद जैसे सामज सुधारकों ने पुनर्जागति का शंख फूँका अत: भारतेंदू को केंद्रित मानकर इस युग को भारतेंदु काल या पुनर्जागरण काल कहा जा सकता है। भारतेंदु के बाद आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी भाषा, भाव छंद परिवर्तन को लेकर सामने आए। द्विवेदी काल के बाद छायावद और छायावाद के बाद का काल प्रगति-प्रयोगवाद का काल रहा। प्रयोगवाद का ही विकसित रुप है नई कविता। इसी बीच सन 1935 के आसपास हालावाद आया जिसके गायक कवि हरिवंशराय बच्चन हैं। हिंदी कविता ने अपने आधुनिक बोध को अनेक आयामों में आत्मसात किया। परिवर्तित युगीन मूल्यों के साथ उसमें परिवर्तन होता गया।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल गद्य की विधाओं का काल माना जाता है। इसके प्रमुख कारण हैं आधुनिक काल का आरंभ भावुकता के बजाए बौद्धिकता के वातावरण होना, व्यक्ति का भावना की अपेक्षा बौदिधकता की ओर बढना, आदर्श से यथार्थ की ओर आना, देशभक्ति के रंग में रंगकर स्वतंत्रता की कामना करना, विचारों की अभिव्यक्ति कविता की अपेक्षा गद्य में अधिक सरलता से होना आदि। मध्यकाल में कविता के काव्य रुपों का और आधुनिक काल में गद्य का विकास हुआ है। खडीबोली गय के विकास के कारण गद्य की अनेक विधाएँ सामने आई हैं जैसे निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण, फीचर, डायरी, यात्रा-साहित्य, पत्र-साहित्य, गद्य गीत आदि। इस दृष्टि से देखा जाए तो आधुनिक काल गद्य की विविध विधाओं का काल है। आये दिन गद्य के नित नये रुप हमारे सामने उजागर हो रहे हैं।

1.2 विषय विवेचन :

1.2.1 भारतेंदु युगीन कविता – परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ :

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आ. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ संवत् 1900 से माना है। वैसे देखा जाए तो आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से होता है। हिंदी साहित्य में नवयुग की चेतना का उदय और भारतेंदु हरिश्चंद्र का उदय दोनों ही घटनाएँ अन्योन्याश्रित हैं। सच बात तो यह है कि भारतेंदु जी से ही साहित्य में नवयुग की चेतना सबसे पहले दिखाई देती है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के आधुनिककाल का प्रारंभ 1925 से अर्थात् भारतेंदु हरिश्चंद्र जी से मानना उचित है। भारतेंदु जी ने श्रृंगारकालीन परंपराओं और रुढियों के बंधन से हटाकर हिंदी साहित्य की धारा को राष्ट्रीयता और समाजसुधार की नई दिशा की ओर मोडा। किसी भी युग के साहित्य में यकायक ही नवीन प्रवृत्तियाँ चमत्कारिक घटना बनकर उपस्थित नहीं होती। बल्कि उसका बीजवपन बहुत पहले होता है और फिर उपयुक्त परिस्थितियों में वे बीज पोषित होकर अंकुरित एवं पल्लवित हो जाते हैं। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। जिसे हम युगीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल अपने पूर्ववर्ती कालों से भिन्न है। हिंदी साहित्य के प्राचीन कालों में विशेष रुप से काव्य साहित्य था। जिसमें मुक्तक और प्रबंध इन दो शैलियों का विकास प्रमुखता दिखाई देता है। वैसे देखा जाए तो आधुनिक युग में हिंदी काव्य संबंधी अनेक शैलियों के विकास के साथ-साथ इस युग की सर्वप्रमुख विशेषता है गद्य साहित्य का अभूतपूर्व विकास। गद्य की अनेक विधाएँ जैसे उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना जैसे सभी रुपों का उद्भव और विकास इसीयुग में हुआ।

आदिकाल, रीतिकाल का अधिकांश साहित्य राजनीतिक मनोवृत्ति तथा आश्रयदाता की प्रशंसा को ध्यान में रखकर लिखा गया। जहाँ भक्तिकाल का साहित्य जनता का साहित्य है वहाँ रीतिकाल का साहित्य दरबारों का साहित्य है। आधुनिक हिंदी साहित्य भारतीय समाज के एक सर्वथा नये वर्ग को वाणी प्रदान करता है। वह वर्ग है मध्य वर्ग जो नवीन शासन-प्रणाली तथा नूतन अर्थ व्यवस्था के कारण पीडित और शोषित था। पूर्ववर्ती कालों के साहित्यकारों ने सामायिक समस्याओं, संघर्षों के प्रति उपेक्षा भाव अपनाया लेकिन आधुनिक काल में गद्य साहित्य जीवन के यथार्थ चित्रण का विषय बनकर उपस्थित हुआ। जिसमें जीवन का अधिक व्यापक चित्रण होने के कारण वह साहित्य हमारे जीवन के अधिक निकट आ सका। इसका श्रेय युगीन तथा विविध संपर्कों को दिया जा सकता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास हम इस युग की राजनीतिक चेतना, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक परिस्थितियाँ एवं साहित्यिक पृष्ठभिमि में देख सकते हैं।

अ) युगीन परिवेश :

- **राजनीतिक चेतना :**

सन 1957 के प्लासी युद्ध ने अंग्रेजों की नींव भारत में रख दी और धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन पूरे भारत में फैला गया। जैसे जैसे कंपनी ने अपने पैर जमाए वैसे वैसे उसके अधिकारियों के अत्याचार भी बढ़ते गए। जिससे देश की जनता में बड़ा असंतोष छा गया। इसके साथ ही कंपनी के अधिकारियों ने देशी राज्यों को मिलाने के अनेक साधन ढूँढ निकाले। सन 1854 में झाँसी को हथियाने से देश में प्रजा और देशी राजा दोनों ही कंपनी के अत्याचार पूर्ण शासन से घबराये। इन्ही दौरान नए कारतूसों के कारण सन 1857 में कंपनी सेना में भर्ती भारतीय सिपाहियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम स्वतंत्रता युद्ध छेडा। लेकिन इस विद्रोह को दबा दिया गया। ब्रिटेन की सरकारने ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया। कंपनी के अत्याचारपूर्ण शासन और डलहौजी की नीति की तुलना में विक्टोरिया का शासन भारतीय जनता के लिए संतोषप्रद रहा। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम चरण में जनता में अंग्रेजी राज्य के प्रति राजभक्ति एवं उनसे सुधार की प्रार्थना करने की प्रवृत्ति होने के बावजूद अंग्रेजी शासन द्वारा यांत्रिकीकरण, आर्थिक शोषण और टैक्सों की वसूली किए जाने के कारण जनता ने उनकी नीति पहचानी। इंडियन नेशनल काँग्रेस द्वारा भारतीयों की राजनीतिक चेतना विकसित करना, काँग्रेस की स्थापना, इटली के स्वतंत्रता युद्ध, होमरुल आंदोलन, फ्रान्स की राज्यक्रांति के फलस्वरूप जनता देश की स्वतंत्रता को लेकर सचेत हो गई और नवयुवक अंग्रेजी राज्य को हटाने के लिए उदयुक्त हो गए। नवयुग की इस राजनीतिक चेतना का प्रभाव हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के भारतेंदु युग में दिखाई देता है।

- **सामाजिक व्यवस्था का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :**

भारत में अंग्रेजो का आगमन, उनका शासन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। आंग्ल-भारतीय संपर्क के कारण आधुनिक काल में सामाजिक जीवन में एक नयी चेतना का आगमन हुआ। समाज में प्रचलित परंपराओं और रुढियों पर आंग्ल संपर्क ने आघात किया जिससे भारतीय दृष्टिकोण में एक नया बदलाव आया। मध्यकालीन हिंदु-धर्म का कट्टरपन दूर हुआ। वैसे देखा जाए तो मुगलों के पतन के साथ ही हिंदू धर्म की स्थिति दृढ एवं सुरक्षित हो गई थी। यह यह समय है जहाँ आर्य समाज की स्थापना करनेवाले स्वामी दयानंद सरस्वती जी का आगमन हुआ। स्वामी दयानंद जी के फलस्वरूप हिंदु समाज जाग्रत हुआ। इन्होंने हिंदु धर्म की अनुदारता एवं कट्टरपण दूर करने का प्रयत्न लिया । पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, विदेशी सरकार की कृपा प्राप्त करने हेतु ईसाई धर्म अपनाना, धार्मिक विवाद, बाल विवाह, विधवा विवाह, जाति-भेद, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा-निषेध, स्त्री शिक्षा निषेध, जाति बहिष्कार आदि के प्रति आर्य समाज ने स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाकर प्राचीन परंपराओं एवं रुढियों की कटू आलोचना की। समाज सुधार एवं देशोद्धार की सक्रिय योजना आर्य समाज के पक्षपतियोंने प्रस्तुत की। सच में यदि आर्य समाज के द्वारा क्रांति न की गई होती तो हिंदु समाज पिछडकर दुर्बल हो जाता। भारतेंदु युग के सामाजिक क्षेत्र में बडा परिवर्तन हुआ जिससे सामाजिक परिस्थिति में अशांति-सी छा गई।

- **आर्थिक स्थिति का हिंदु साहित्य पर प्रभाव :**

अब तक हमने आधुनिक काल की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन देखा। राजनीतिक चेतना और सामाजिक व्यवस्था के मूल में देश की जनता की आर्थिक स्थिति देखी जाती है। अत: यहाँ उसका विवेचन करना जरूरी हो जाता है। सन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता युद्‌ध के पश्चात सत्ता परिवर्तित हुई और ऐसा लगा कि अब देश की आर्थिक व्यवस्था में सुधार आ जायेगा। क्योंकि ईस्ट इंडिया कंपनी जैसी व्यापारी कंपनी से इसप्रकार की आशा नहीं की जा सकती। शुरु-शुरु में ब्रिटिश सरकारने भारतीय औद्‌योगिक विकास में कोई रुचि नहीं दिखलायी। भारत का धन विदेश की ओर जाने लगा। विचारकों के लिए यह चिंता का विषय बना। ब्रिटिश सरकारने अपने माल की खपत के लिए भारतीय कपडे पर कुछ कर लाद दिए। अपना स्वार्थ सिद्‌ध किया। इसप्रकार विदेशी वस्तुओं का प्रचार-प्रसार धीरे-धीरे बढता गया और देखते ही देखते भारतीय उद्‌योगधंदो की खस्ता हालत हो गई । उसी समय राष्ट्रीय भावना से प्रेरित महान विचारक विदेशी वस्तुओं को ही अपनी आर्थिक स्थिति की गिरावट का प्रमुख कारण मानकर उसका विरोध करने लगे। इसप्रकार मँहगाई, अकाल, टैक्स और दरिद्रता भारतेंदु युग की आर्थिक समस्याएँ थीं। इसे मद्‌देनजर रखते हुए राजनीतिक चेतना को जन्म देनेवाली इण्डियन नेनशनल काँग्रेस ने भी अपने आदर्शों के तहत आर्थिक स्वतंत्रता की माँग रखी थी।

- **धार्मिक स्थिति का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :**

मुगलों की पराजय के साथ ही हिंदु-जाति की कट्‌टरता क्षीण होने लगी। नवयुग की चेतना की सबसे महत्त्वपूर्ण बात धार्मिक दृष्यिकोण में आनेवाला परिवर्तन है। इस युग में मध्यकालीन धार्मिक भावना का बड़ा परिमार्जित रुप दिखाई देता है। जो अन्य धर्मों की सहिष्णुता है वही इस युग की धार्मिक परिस्थितियों की विशेषता है। इस युग में उपासना पद्‌धति में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

- **साहित्यिक पृष्ठभूमि और नवयुग की चेतना का प्रसार :**

अब तक हमने हिंदी साहित्य के भारतेंदु काल की राजनीतिक चेतना, सामाजिक व्यवस्था एवं धार्मिक स्थिति का विवेचन किया। सच बात तो यह है की साहित्य पर युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रभावों के अलावा साहित्यिक पृष्ठभूमि तथा अन्य साहित्यों का प्रभाव भी युगीन साहित्यपर दिखाई देता है। आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्य का श्रृंगारकाल है। श्रृंगारकाल में साहित्य का विकास राज्याश्रय में हुआ। कलाकारों को अपनी जीविकोपार्जन के लिए राजाओं का, उच्चवर्ग के लोगों का आश्रय लेना पड़ा। जिससे श्रृंगारकाल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक माना जाता है। राज्याश्रय में पली इस श्रृंगारी कविता में रीति और अलंकारो मुक्तक शैली का प्राधान्य हो गया था। साथ ही ब्रजभाषा का प्राधान्य, नारी का प्रेमिका रुप, लक्ष्मण ग्रंथों की प्रधानता, उद्दीपन रुप में प्रकृति-चित्रण, वीररस की कविता आदि श्रृंगारकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, श्रृंगारकाल की कविता रुढिग्रस्त, श्रृंगार की बहुलता, जीवन के प्रति उदार दृष्टि का अभाव आदि विशेषताओं युक्त होने के कारण आधुनिक काल की नवयुग की चेतना का मार्ग अवरुद्ध हो गया। भाषा, भाव, वृत्त, सबकुछ रुढिग्रस्त हो जाने के कारण श्रृंगार कालीन काव्य की परंपरा के प्रति एक जबरदस्त प्रतिक्रिया उभरी। जिसमें आधुनिक नवयुगीन युग-चेतना को जन्म देनेवाली विविध परिस्थितियों ने योग दिया। इस नवयुगीन चेतना का आरंभ सन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से ही होता है। इस महान ऐतिहासिक घटनाने देश के जीवन पर बड़ा व्यापक प्रभाव डाला, जिससे जीवन के सभी क्षेत्रों की परिस्थितियाँ परिवर्तित होत गई। जिन परिस्थितियों का विवेचन उपर हो चुका है।

- **विषय और प्रकाशन शैली में क्रांति :**

श्रृंगार काल की कविता का विषय और शैली दोनों ही नवयुग की चेतना के मार्ग में बाधा बनकर उपस्थित हुए। यही कारण है कि आधुनिक काल में श्रृंगारकाल के विषयों और उनके प्रकाशन शैली में क्रांति हो गई। साहित्य का प्रवाह रुढिबद्ध हो जाने से आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों में उससे सामंजस्य बिठाना कठिन हो गया था। फलस्वरुप श्रृंगारकाल के साहित्यिक मानदंडों में परिवर्तन होना आवश्क था। आधुनिक युग का उदय और देशी राज्यों के प्रभुत्व का क्षीण होना और सामंतकालीन सभ्यता का ऱ्हास ये दोनों घटनाएँ अन्योन्याश्रित हैं। इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार साहित्य पर भी नवयुग की चेतना का प्रभाव पडा। साहित्य का विषय सामंती संस्कृति से हटकर जनवादी संस्कृति होने के कारण साहित्य का रुप ही परिवर्तित हो गया। श्रृंगार काल की शैली भी आधुनिक काल की परिस्थितियों के अनुरूप नहीं थी। साथ ही साहित्य क्षेत्र में भाषा का परिवर्तन भी दिखाई देता है। इस प्रकार राजनीतिक चेतना, सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक स्थिति का विवेचन देखने के बाद हम यह सकहते हैं कि साहित्य के स्वरूप में भी जो परिवर्तन हुआ वह एक तरह से क्रातिकारी परिवर्तन ही है।

- **भारतेंदु युगीन प्रमुख कवि तथा रचनाएँ :**

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने गद्य के साथ-साथ कविता की धारा भी नये-नये क्षेत्रों की ओर मोड दी। इस नये मोड में पहला स्वर देशभक्ति की वाणी का था। इस नई धारा की कविता के भीतर नये-नये विषय, प्रतिबिंब, विधानों का अविर्भाव हुआ। प्राचीन धारा में 'मुक्तक' और 'प्रबंध' रचने जा रहे थे। पुरानी कविता में प्रबंध का रुप कथात्मक और वस्तु वर्णनात्मक ही था। छोटे-छोटे आख्यान रचे जाते थे। परंतु नवीन धारा के आरंभ में छोटे-छोटे पद्यात्मक निबंधो की रचना की जाने लगी। प्रथम उत्थान काल में यह परंपरा बहुत अधिक भावप्रधान रही, लेकिन आगे चलकर शुष्क पड गयी। इस काल के अंतर्गत आनेवाले कवि इसप्रकार हैं-

1) **भारतेंदु हरिश्चंद्र :**

नई काव्यधारा में भारतेंदु जी की वाणी का प्रमुख स्वर देशभक्ति का रहा। अलंकार और नायिक-भेद के पुरानी परिपाटी में फँसी कविता-कामिनी को मुक्त कर देशभक्ति और समाजसुधार का जामा पहना दिया। उनके 'नीलदेवी' और 'भारत-दुर्दशा' नाटकों में देश की करुण पुकार और दबी हुई भावनाओं की मार्मिक

अभिव्यंजना हुई है। कहीं देश की अतीत गौरव गाथा का वर्णन, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभभरी वेदना, कहीं भविष्य की चिंता इत्यादि पवित्र भावों को लेकर बहुत सी स्वतंत्र कविताएँ भी इन्होंने लिखी। 'विजयिनी-विजय वैजयंती' में देशभक्ति के भावों का उद्‌गार है। यह पुस्तक मिस्र में भारतीय सेना की विजय प्राप्ति पर लिखी गई है। नीलदेवी में अभिव्यक्त एक करुण पुकार इसप्रकार वर्णित हैं -

कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।।

अंग्रेजों के कारण जो भारत की दुर्दशा हुई है, उनसे देखी नही जाती इसलिए लिखते हैं -

''रोवहुँ सब मिली, आवहुॅ भारत-भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।'

इस प्रकार भारतेंदु जी ने हिंदी काव्य को नये-नये विषयों की ओर अग्रसर किया। भारतेंदुजी ने अपने नाटकों में दो जगह प्रकृति का वर्णन किया है। एक तो 'सत्य हरिश्चंद्र' में गंगा का वर्णन, दूसरा 'चंद्रावली' में यमुना का वर्णन। किंतु उसमें अलंकार का चमत्कार एवं कवि के कर्तव्य पालन की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। इन्होंने प्रकृति को मानवी दायरे में बंद रखा है। इनका ध्यान प्रकृति की ओर न जाकर ऊँची अट्‌टालिकाओं और घाटों आदि मानवी कृतियों की ओर अधिक गया है। इनके वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत अच्छे हुए हैं, जिनके मूल में देशभक्ति की भावना दिखायी देती है।

भारतेंदुजी गद्‌य में जो नये-नये प्रयोग, नये-नये विषय, मार्ग अंतर्भूत कर सके वद्‌य पद्य में नहीं। उनकी अधिकांश कविता तो कृष्णभक्त कवियों के अनुकरण पर गेय पदों के रुप में दिखायी देती है। जिनमें राधाकृष्ण की प्रेमलीला और विहार का वर्णन है। वास्तव में भारतेंदुजी को प्रेमकवि कह सकते हैं। जिनकी प्रेमभावना ही कृष्णभक्ति और देशभक्ति में परिवर्तित हो गई।

भारतेंदुजी में देशभक्ति के साथ राजभक्ति भी है। उन्होंने कुछ लावनियां और ख्याल में गाने भी लिखे जिनकी भाषा खड़ी बोली है। देश की दशा पर एक-दो होली के गीत भी उन्होंने लिखे हैं। भारतेंदुजी की कविता में भक्तिकाल और रीतिकाल की श्रृंगार-भावना के साथ-साथ नये युग की देशभक्ति और समाजुधार की भावनाओं का प्रत्यारोपण हो गया था। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि पुरानी प्रवृत्तियों का कभी समूल नाश नहीं होता। भारतेंदु जी का देशभक्तिपरक एक उदाहरण 'हाय भारत! की धुन' इस प्रकार है -

हाय! वहै भारत-भुव भारी। सब ही विधि सों भई दुखारी।
हाय! पंचदन, हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम घरनि बिराजत।
हाय! चित्तौर! निलज तू भारी। अजहूँ खरो भारत हि मँझारी।
तुम में जल नहिं जमुना गंगा। बढहु बेगि किन प्रबल तरंगा।
बोरहु किन झट मथुरा कासी? धोवहु यह कलंक की रासी।

2) **पं. प्रतापनारायण मिश्र :**

पं. प्रतापनारायण मिश्र जी का रुझान पद्यात्मक निबंधों की ओर अधिक रहा। उन्होंने केवल देश की दशा पर आधारित निबंध ही नहीं लिखे बल्कि 'बुढापा', 'गोरक्षा' आदि कविताएँ भी लिखी। इनके कुछ इतिवृत्तात्मक पद्य भी हैं। जिनमें शिक्षितों के बीच प्रचलित बातें साधारण भाषा में कही गयी हैं। उदाहरणार्थ 'क्रंदन' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

> तबहि लख्यौ जहँ रहयो एक दिन कंचन बरसत।
> तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहूँ को तरसत।
> जहाँ कृषि वाणिज्य शिल्पसेवा सब माहीं।
> देसिन के हित कछू तत्व कहूँ कैसहूँ नाहीं।।

मिश्रजी की विशेषता उनकी हास्य-विनोदपूर्ण रचनाओं में दिखाई देती है। उनके 'हरगंगा', 'तृप्यंताम', 'बुढापा' अदि कविताएँ बडी ही हास्य विनोदपूर्ण तथा मनोरंजक हैं। 'हिंदी, हिंदू, हिंदूस्तान' में हिंदू की वकालत खूब जमकर की है। ये स्वभाव से मूलत: विनोदी होते हुए भी इन्होंने अपने काव्य में प्रणय-व्यंजना, समाज-सुधार, देशभक्ति आदि प्रवृत्तियों को उजागर किया है। उनकी 'मन की लहर', 'श्रृंगार-विलास', 'दंगल खंड', 'संगीत की लहर' आदि में सामाजिक स्थितियों का तथ्यपरक अंकन किया गया है। अपने काव्य संदेश को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए इन्होंने लोकगीतों की शैली एवं लय को अपनाया। पद्य के साथ गद्य में भी अपनी लेखनी का चमत्कार उजागर किया है।

3) **पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' :**

पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' उपनाम से जाने पहचाने जाते है। इन्होंने अधिकांश विशेष-अवसरों पर कविताएँ लिखी है। ये 'यतिभंग' को कोई दोष नहीं मानते। इसलिए इनके छंदों में प्राय: यतिभंग मिलता है। देश की राजनीतिक परिस्थिति का इन्होंने अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने लेखों और कविताओं द्वारा देश की दशा सुधारने का प्रयत्न किया है। महारानी विक्टोरिया की 'हीरक जुबली' में इन्होंने देश की दशा को मार्मिकता के साथ अंकित किया है। इनका हृदय देशभक्ति से ओतप्रोत था। विलायत में अंग्रेजों द्वारा दादाभाई नौरोजी को 'काले' कहे जाने पर इन्होंने 'कारे' शब्द को लेकर बडी सरल और क्षोभपूर्ण कविता लिखी -

> अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे।
> तासों कारे 'कारे' शब्दहु पर हैं वारे।
> कारे श्याम, राम, जलधर जल बरसने वारे।
> कारे लागत नाहीं सों कारन को प्यारे।
> यातें नीको हैं तुम 'कारे' जाहु पुकारे।
> यहै असीस देत तुमको मिली हम सब कारे।
> सफल होहिं मन के सबही संकल्प तुम्हारे।

प्रेमघन ने 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता हीरक जुबली के अवसर पर लिखी। जिसमें देश की दशा का ही वर्णन हैं। इन्होंने कई प्रांजल और सरल कविताएँ लिखी जो उनके नाटकों में है। 'भारत सौभाग्य' नाटक के प्रारंभ में 'सरस्वती', लक्ष्मी और दुर्गा' इन तीनों देवियों के मुख से मार्मिक, कविताएँ कहलायी गयी है। उनकी कुछ कविताओं में 'मयंक', 'आनंद अरुणोदय' आदि में सफल उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की भरमार है। इसके साथ ही साप्ताहिक 'नागरी नीरद' और मासिक 'आनंदकांदबिनी' के संपादन द्वारा इन्होंने तत्कालीन पत्रकारिता को भी एक नया दिशा देने का काम किया। 'अभ्र' नाम से उर्दू में कुछ कविताएँ भी इन्होंने लिखी है। 'जीर्ण जनपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', 'मयंक-महिमा', 'अलौकिक लीला', 'वर्षा बिंदू' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। भारतेंदु के काव्य में प्राप्त होनेवाली सभी प्रवृत्तियों को प्रेमघन की रचनाओं में देखा जा सकता है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं, कि प्रेमघन ने मुख्यत: ब्रजभाषा में काव्यरचना की है लेकिन खडीबोली के लिए उन के मन में विरक्ति नहीं थी। वे छंदोबद्ध रचनाओं के आलावा इन्होंने लोकसंगीत की कजली और लावनी शैलियों में भी सरस कविताएँ लिखी है।

4) **जगन्मोहन सिंह :**

ठाकुर जगन्मोहन सिंह मध्यप्रदेश की विजय राघवगढ रियासत के राजकुमार थे। जब वे काशी में संस्कृत और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उसी समय उनका भारतेंदु हरिश्चंद्र से संपर्क हुआ। लेकिन भारतेंदु जी जैसी रचना-शैली की छाप जो प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र के कृतित्व में नजर आती है, वैसी इनमें नहीं मिलती। इनके काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं, श्रृंगार वर्णन और प्रकृति-सौंदर्य तथा इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'प्रेम संपत्तिलता', 'श्यामालता', 'श्याम-सरोजिनी' और 'देवयानी'। 'श्याम-स्वप्न' उपन्यास में भी इन्होंने प्रसंगवश कुछ कविताओं को अंतर्भूत किया है। इन्होंने अनुवाद भी किए हैं। 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' ब्रजभाषा की सरस कृतियाँ हैं। इनकी काव्य रचना में उनकी स्वाभाविक प्रतिभा तथा भावुक मनोवृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। साथ ही कल्पना-लालित्य, भावुकता, चित्रशैली और सरस-मधुर ब्रजभाषा उनकी रचनाओं की अनान्य विशेषताएँ हैं।

5) **अम्बिकादत्त व्यास :**

कविवर दुर्गादत्त व्यास के पुत्र अम्बिकादत्त व्यास काशी के कवि थे। इन्होंने संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं में साहित्य-रचना की है, साथ ही 'पीयूष-प्रवाह' का संपादन कार्य भी लिया है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं - 'पावस पचासा', 'सुकवि सतसई', 'हो हो होरी' आदि। इनकी रचना ललित ब्रजभाषा में हुई है। इन्होंने खडीबोली में 'कंस-वध' शीर्षक प्रबंधकाव्य की रचना आरंभ की लेकिन इनके केवल तीन सर्ग ही लिखे जा सके। इसलिए यह अधूरी रचना है। इसके अलावा 'बिहारी विहार' में इन्होंने बिहारी के दोहों का कुंडलिया छंद में भाव विस्तार किया है। इनके नाटक 'भारत सौभाग्य' तथा 'गोसंकट नाटक' में कुछ गेय पदों का भी अंतर्भाव हुआ है। इनकी भारतीय संस्कृति में गहन आस्था होने के कारण इन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की कमियों पर व्यंग्य प्रहार किया है। इन्होंने सरल और कोमलकांत पदावली के प्रयोग को

सर्वप्रमुखता दी है। 'सुकवि सतसई' निम्नलिखित दोहों में सरस ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण के प्रति भाव निवेदन प्रस्तुत किया है -

सुमिरत छवि नँदनन्द की, बिरसत सब दुखदन्द।
होत अमन्द अनन्द हिय, मिलन मनहुँ सुख कन्द।।
रसना हू बस ना रहत, बरनि उठत करि जोर।
नन्दनन्द मुख चन्द पै, चितहू होत चकोर।।

6) **राधाकृष्णदास :**

राधाकृष्णदास भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफरे भाई और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने कविता के साथ-साथ नाटक, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्रों में उल्लेखनीय साहित्य-रचना की है। इनकी कविताओं में भक्ति, श्रृंगार और समकालीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना को देखा जा सकता है। 'भारत बारहमासा' और 'देशदशा' समसामयिक भारत के विषय में उनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। इनकी कुछ कविताओं में प्रकृति के सुंदर चित्र भी पाये जाते हैं राधाकृष्ण प्रेम के निरुपण में भक्तिकाल और रीतिकाल की वर्णन परंपराओं का उनपर समान प्रभाव पड़ा है। उदाहरणस्वरूप एक सवैया -

मोहन की यह मोहिनी मूरत, जीय सों भूलत नाहिं भुलाये।
छोरन चाहत नेह को नातो, कोऊ विधि छुटत नाहिं छुराये।।
'दास जू' छोरि कै प्यारे हहा हमैं और के रुप पै जाइ लुभाये।
भूलि सकै अब कौन जिया उन तो हँसि कै पहिले ही चुराये।।

'राधाकृष्ण-ग्रंथावली' में इनकी कुछ कविताएँ संकलित हैं, किंतु इनकी अनेक रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। अम्बिकादत्त व्यास जैसी इन्होंने भी रहीम के दोहों पर कुंडलिया रची है। मधुरता और प्रासादिकता इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

- **अन्य कवि :**

भारतेंदु-युग में समसामायक-राजनितिक परिवेश के प्रति जो जागरुकता दिखाई देती है, उसका निर्वाह उस काल के अन्य कवियों में नहीं मिलता। उनकी रचनाओं में प्रमुखत: भक्ति भावना और श्रृंगार वर्णन दिखाई देता है। इस संदर्भ में नवनीत चतुर्वेदी का नाम सर्वप्रथम आता है। इनकी प्रसिद्ध कृति 'कुब्जा पचीसी' रीति पद्धति की सरस रचना है। इनके शिष्य जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने विशेष ख्याति प्राप्त की। गोविंद गिल्लाभाई कृत 'श्रृंगार सरोजिनी', 'पावस पयोनिधि', 'राधामुख षोडसी' और 'षडऋतु' आदि रचनाओं में राधाकृष्ण प्रेम, सौंदर्य और भक्ति और प्रेम का चित्रण किया गया है। दिवाकर भट्ट कृत 'नखशिख', 'नवोढारत्न' रीतिपद्धति परक रचनाएँ हैं। श्रृंगार रस की कृतियों में रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर' कृत 'बलवीर पचासा', सूर्यपुराधीश राजेश्वरीप्रसाद सिंह 'प्यारे' कृत 'प्यारे प्रमोद', गुलाबसिंह की 'प्रेम सतसई' और रावकृष्ण देवशरण सिंह 'गोप' का 'प्रेम संदेसा' प्रमुख हैं। जिसमें नायक-नायिका की मनोदशाओं का

सरस चित्रण हुआ है। इनके अलावा बेनी द्विज, हनुमान, ब्रजचंद्र वल्लभीय और नकछेदी त्रिपाठी आदि कवियों के नाम भी आते हैं। श्रृंगारेतर विषयों पर स्फुट छंद-रचना भी सभी कवियों ने की है। इस संदर्भ में राधाचरण गोस्वामी के 'नव भक्तमाल', गोविंद गिल्लाभाई कृत 'नीति-विनोद' और दुर्गादत्त व्यास के 'अधमोद्धार शतक' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ये कवि भक्तिकाल और रीतिकाल के परिवेश में जी रहे थे। इसलिए उनका भाव-विन्यास और अभिव्यंजना शैली उसी परिवेश के अनुसार थी। कभी समस्यापूर्ति में दो चार स्फूट छंदो में नवीन विषयों को ग्रहण करने के बावजूद ये ब्रजभाषा के परंपरागत काव्य-वृत्त से संतुष्ट रहे। सच बात तो यह है कि विषय, भाषा के संबंध में इस कोटि के कवियों के पूर्वाग्रह का ही परिणाम यह हुआ कि कुछ दिनों के बाद काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा के स्थानपर खडीबोली का प्रयोग किया जाने लगा।

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि रीतिकाल में जिस वैयक्तिक श्रृंगारमयी काव्यधारा पर बल रहा, उसके स्थान पर कविगण समाज और राष्ट्र को उद्बोधन देनेवाली लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर उन्मुख होने लगे जिसकी पूर्ण परिणति हमें द्विवेदी युग में दिखाई देती है। भारतेंदु युग पुरातन और नवीन संधिकाल में स्थित होने के कारण इस युग में प्रवृत्तिमूलक प्रेम काव्य, दास्यभक्ति, माधुर्य भक्ति से ओतप्रोत रचनाएँ, सुधारवादी जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करनेवाली कविताएँ दिखाई देती हैं। गद्य के लिए खडीबोली और कविता के लिए ब्रजभाषा को अपनाया गया।

- **भारतेंदु युगीन काव्य-प्रवृत्तियाँ :**

भारतेंदु युग में जन-चेतना पुनर्जागरण की भावना से ओतप्रोत थी। जिसका प्रभाव भारतेंदु युगीन कवियोंपर पडा। रीतिकालीन प्रवृत्तियों का महत्त्व कम हो जाने के कारण जनता को उद्बोधन करने के उद्देश्य से लोकगीत की शैली पर सामाजिक कवितायें लिखने पर अधिक बल दिया गया। मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गोरक्षा, बालविवाह-निषेध, मद्य-निषेध, भ्रूण हत्या की निंदा, शिक्षा प्रसार का महत्त्व अदि विषयों को लेकर कविगण काव्य सृजन करने लगे। ब्राह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण परमहंस, विवेकांद के विचार, थियॉसिफिकल सोसाइटी के सिद्धांतों का प्रभाव जनजीवन पर पडा जिससे आर्थिक, औद्योगिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुनर्जागरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई। इसी जनजागरण में मुद्रण यंत्रों के विस्तार और समाचारपत्रों के प्रकाशन ने अपना योगदान दे दिया। जिससे साहित्य चेतना नवीन दिशाओं की ओर अग्रसर होने लगी। भारतेंदु युगीन कवियों का काव्य फलक भक्तिकाल और रीतिकाल से सम्बद्ध तथा समकालीन परिवेश के प्रति जागरुक होने के कारण विस्तृत है। भारतेंदु युगीन काव्यप्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्ति भावना, श्रृंगारिकता, प्रकृति-चित्रण, हास्य-व्यंग्य, रीति-निरुपण, समस्यापूर्ती, काव्यानुवाद और कलापक्ष आदि को देखा जा सकता है।

1) **राष्ट्रीयता :**

चितौड, बुंदेलखंड और महाराष्ट्र की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप, राजा छत्रसाल और शिवाजी महाराजा जैसे वीरोंने अपनी तत्परता और वीरता का परिचय दिया। इन वीरों की गुणों की महिमा गानेवाले

भूषण जैसे कवि क्षेत्रीय भावना अर्थात संकीर्ण राष्ट्रीयता से उपर नहीं उठ सके थे। लेकिन भारतेंदु युगीन कवियों ने केवल भारत के गौरवशाली इतिहास का केवल गान ही नहीं किया बल्कि अंग्रेजों की विचारधारा और उनकी देशभक्तिपूर्ण कविताओं से प्रेरणा ली और क्षेत्रीयता से उपर उठ कर राष्ट्रीय भावना के बीज-वपन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। राधाचरण गोस्वामी की 'हमारो उत्तम भारत देस' और प्रेमघन की 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' आदि काव्य-पंक्तियाँ इसी तथ्य को उजागर करती है। देश का जो विलास हुआ या देश पिछड गया इन सबके लिए जो भी परिस्थितियाँ जिम्मेदार रहीं उनपर प्रकाश डालकर इस युग के कवियोंने जनता में राष्ट्रीय भावना के बीज बो देने का महनीय कार्य किया।

कवि मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत-भारती' में देशभक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है। उसकी प्रेरणा-भूमि भारतेंदु, प्रेमघन, प्रतायनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि कवियों की कविताएँ ही है। भारतेंदु 'विजयिनी विजय वैजयंती' प्रेमघन की 'आनंद अरुणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नया संवत' तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताएँ देशभक्ति की प्रेरणा से ओतप्रोत हैं। इस संदर्भ में कही व्यंग्य का सहारा लेकर, कही अतीत का गौरव गान, प्रेरणादायी प्रसंगो द्वारा नवयुवकों को देशभक्ति की प्रेरणा दी है। अंग्रेजों की शोषण-नीति का उल्लेख करते हुए भारतेंदु लिखते हैं-

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन, नहिं अँगरेज।।

प्रेमघन ने 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में एक ओर स्वार्थपूर्ण शासन प्रक्रिया के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को दोषी ठहराया है, तो दूसरी ओर उससे शासनाधिकार लेनेवाली रानी विक्टोरिया के बारे में 'किय सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन' कहकर रानी की प्रशंसा की है। भारतेंदु युग की राष्ट्रीय चिंतन धारा के अंतर्गत देशभक्ति और राजभक्ति ये दो पक्ष आ जाते हैं। देशप्रेम के अंतर्गत उन्होंने हिंदी, हिंदु हिंदुस्तान का गुणगान किया। साथ ही राजभक्ति के अंतर्गत जजिया जैसे कर न लगानेवाले अंग्रेजों के शासन काल में प्रजा मात्र की सुख समृद्धि की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की। इन सुविधाओं से लाभ उठाने हेतु उन्होंने जनता को रुढिगत प्रभावों से मुक्त होकर शासन के प्रति सहयोगी रुख अपनाने की प्रेरणा दी। इस विचारधारा से प्रेरित कविताओं में भारतेंदु की 'भारतभिक्षा', 'विजयवल्लरी' और 'रिपनाष्टक', प्रेमघन की 'हार्दिक हर्षादर्श', 'स्वागत' तथा राधा कृष्णदास की 'मेक्डानल पुष्पांजलि', 'जुबिली' और 'विजयनी विलाप' उल्लेखनीय है। प्रेमघन ने 'राजभक्ति भारत सरिस और ठौर कहुँ नाहिं' कहकर विदेशी शासकों को आश्वस्त किया, तो अम्बिकादत्त व्यास ने 'जयति राजराजेश्वरी जय जय जय परमेश' द्वारा रानी विक्टोरिया के सुशासन के प्रति आभार प्रकट किया। ड्यूक ऑफ एडिनबरा के स्वागत, रानी विक्टोरिया के सुशासन-काल की प्रशंसा, उनकी मृत्यु पर शोक-संवेदना, लॉर्ड रिपन के प्रति श्रद्धांजलि आदि विषयों पर लिखित इन कविताओं को राष्ट्रद्रोही स्वर से युक्त न मानकर उन्हें नवीन राजनीतिक चेतना प्रतीक माना जाना चाहिए।

2) **सामाजिक चेतना :**

भारतेंदु युग के काव्य का प्रधान स्वर सामाजिक चेतना उत्पन्न करके समाज को नए मूल्यों और दायित्वों को वहन के योग्य बनानेवाला है। पहली बार कवियों ने समाज की समस्याओं का निरुपण करके समाज से जुड जाने का प्रयास किया है। इससे पहले रीतिकालीन कवियोंने आश्रयदाताओं का गुणगान कर केवल अपने लिए सुविधाएँ जुटाने का कार्य किया था। जनता की समस्याएँ, जनता के दु:खद समाज की विकृतियाँ उनके लिए कोई मायने नहीं रखती थी। भारतेंदु युग में समाज के विभिन्न पक्षों पर ध्यान देकर विकृतियों की बुराई की गई साथ ही उनका उपहास भी किया गया। नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के स्पष्ट मानदंडों की घोषणा भी की गई।

सामाजिक चेतना की दृष्टि से इस युग के कवियों ने स्त्री शिक्षा, विधवाओं की पीडा, छुआ-छूत की अमानवीय स्थिति पर सहानुभूतिपूर्वक कविताएँ लिखी। सहृदय समाज की चेतना की झंकृत करनेवाले विषयों का प्रतपादन इस युग के कवियोंने अत्यंत सहजता से लिया। इन विषयों को व्यावहारिक स्तर पर लाने के लिए इन कवियोंने मध्यवर्ग की सामाजिक स्थिति का अंकन किया। इसके पीछे इनका एकमात्र उद्देश्य था, रुढियों का विरोध करते हुए नए समाज की स्थापना की आकांक्षा जगाने का प्रयास करना। इसके पूर्व आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि ने जिस सामाजिक चेतना को जगाना चाहा उसी के अनुरुप भारतेंदु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र अदि कवियों ने काव्य में सामाजिक सुधारों का चित्रण करना आरंभ कर दिया। लेकिन सभी कवियों का दृष्टिकोण उदारवादी नहीं था। अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी कविता 'भारत-धर्म' में वर्णाश्रम धर्म का अनुसरन करने के लिए कहा तो राधाचरण गोस्वामी ने विधवा-विवाह को शास्त्र-विरुद्ध बतलाया। किंतु भारतेंदु मंडल के कवियों ने सामाजिक सुधारों के मामले में धर्मशास्त्र विधि-विधानों की चिंता नहीं की। स्वयं भारतेंदु ने 'भारत-दुर्दशा' नाटक में वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता का विरोध करते हुए लिखा है-

बहुत हमने फैलाये धर्म।
बढाया छुआछूत का कर्म।।

इसीप्रकार 'मन की लहर' में प्रतापनारायण मिश्र ने बाल-विधवाओं की करुण दशा की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया -

कौन करे जो नहिं कसकत।
सुनि विपत्ति बाल विधवन की।।

भारतेंदु युग ने कवियों की दृष्टि बड़ी व्यापक थी। वे आर्थिक विपन्नता के कारणों को खोज कर समाज में चेतना लाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने स्वदेशी उद्योगों को प्रेरणा देनेवाली कविताओं का सृजन किया। स्वयं भारतेंदु विदेशी वस्तुओं को इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति को समझते थे, अत: उन्होंने अपमानजनक विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा भी कर दी। अपनी 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

'जीवत बिदस की वस्तु लै ता बिन कछु नहिं करि सकत।'

भारतेंदु के अलावा प्रेमघन ने 'आर्याभिनंदन' प्रतापनारायण मिश्र ने 'होली है' अम्बिकादत्त व्यास ने 'भारत धर्म' कविताओं में विदेशी वस्त्रों और वस्तुओं के बहिष्कार का प्रतिपादन किया है। कुछ कविताओं में इन कवियोंने एक ओर शिक्षा-प्रसार, यातायात के साधनों का विकास तथा जनता के लिए अन्य सुविधाएँ जुटाने के लिए ब्रिटिश शासन की प्रशंसा भी की है। तो दूसरी ओर सामान्य जनता और किसानों की बढ़ती हुई दरिद्रता कारण विदेशी शासन को बनाते हुए निंदा भी की है। प्रतापनारायण मिश्र एक गजल में देश की दुर्दशा पर गहरी चिंता प्रकट करते हुए लिखते हैं -

''अभी-अभी देखिये क्या दशा देश की हो,
बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे।

विदेशी शासन के कारण ही सामान्य जनता और किसानों की दुर्गति हो गयी है, ऐसा वे मानते हैं। देश की खस्ता हालत उन्हें कचोटती है। कहाँ प्राचीन भारत की संपन्नता, और कहाँ आज की विपन्नता। भारतेंदुजी से भारत की दुर्दशा देखी नहीं जाती तो प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं -

तबहि लाख्यों जहँ रहयो एक दिन कंचन बरसत।
जहँ चौथाई जन रुखी रोटिहुँ को तरसत।।

इस प्रकार भारतेंदु-युग के काव्य में समाज में प्रचलित कुरीतियों, जनता की दुर्दशा, विदेशी शासन के संत्रास के करुणापूर्ण चित्रण द्वारा समाज को जागृत करने का प्रयास किया गया है।

3) **भक्ति भावना :**

भक्तिकाल में भक्ति की गंगा जैसा प्रवाह दिखाई देता है। रीतिकाल में राधा-कृष्ण प्रेम के बहाने कवियों ने भक्ति का लाभ पाया लेकिन भारतेंदु युग में इस परंपरा का निर्वाह नहीं हो सका। इस युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतया गौण स्थान प्राप्त हुआ। फिर भी इस युग के कवियों ने भक्तिपूर्ण काव्य का सृजन किया है। निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति और देश-प्रेम पर आधारित ईश्वर भक्ति से संबंधित कविता की रचना में परंपरा और नवीनता का सुंदर संमिश्रण हुआ है। निर्गुण-सगुण भक्तिभाव तो परंपरा का निर्वाह था किंतु देशप्रेम के साथ भक्ति को मिला देने में पूर्णत: मौलिक दृष्टि दिखाई देती है।

निर्गुण भक्ति गौण-रुप से अभिव्यक्त हुई है, जिसमें संसार की नश्वरता, माया-मोह का फंदा, विषय-वासनाओं की निंदा आदि विषयोंपर भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्दास आदि कवियों द्वारा उपदेश दिए गए हैं -

''साँझ सवेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है।।'
- भारतेंदु हरिश्चंद्र

साधों मनुवाँ अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ढगिया, तितके रुप भुलाना।।'
- प्रतापनारायण मिश्र

भक्ति का दूसरा पक्ष अर्थात सगुण-भक्ति के अंतर्गत राम, कृष्ण, राधा तथा अन्य देवी देवताओं का निमग्न होकर काव्य के माध्यम से उनका स्मरण किया गया है। हरिनाथ पाठक का 'श्री ललित रामायण', अक्षय कुमार का 'रसिक विलास रामायण' आदि माधुर्य भक्ति की रचनाएँ हैं। इस दिशा में भारतेंदु जी का नाम सर्वप्रमुख हैं, जिनके द्वारा बनाए गए पद उन्हीं के जीवन काल में मंदिरों में गाये जाने लगे थे। स्वयं भारतेंदु जी राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे और वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। उनके कृष्णकाव्य में तन्मयता सरसता और माधुर्य भक्ति का रसाविष्कार है। उन्हें तो एक मात्र आधर 'नंदलाला' और 'वृषभानु दुलारी' ही था। इसलिए लिखते हैं - 'सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा-रानी के।'

इस युग के अन्य कवि भी भक्तिकाव्य की रचना-कर्म में पीछे नहीं थे। प्रेमघन की 'अलौकिक लीला', अम्बिका दत्त व्यास का 'कंस वध', राधाकृष्णदास के कृष्ण भक्ति के पद तथा ठाकुर जगमोहन सिंह की दुर्गा स्तुति, प्रेमघन की 'सूर्य-स्रोत्र', भारतेंदु कृत 'उत्तरार्ध भक्तमाल', प्रतापनारायण मिश्र के नवरात्र पद, राधाचरण गोस्वामी की 'नवभक्तमाल' आदि कृतियाँ इस युग की भक्ति रचनाओं में अंतभूर्त हो जाती है।

देश-प्रेम आधारित ईश्वर-भक्ति की रचनाएँ किसी संप्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं हैं। प्रेमघन का 'आनंद अरुणोदय', भारतेंदु का 'जैन कुतूहल' आदि ग्रंथ सभी धर्मों में निहित सत्य तथा समन्वय भाव को प्रकट करते हैं। भारत की समस्याओं का निवारण करने के लिए इस युग के कवि ईश्वर से प्रार्थना करते हुए लिखते हैं -

कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।
- भारतेंदु

हम आरन भारतवासिन पै
अब दीनदयाल दया करिये
- प्रतापनारायण मिश्र

अपने या भारत के पुनि दुःख दारिद हरिये
- राधाकृष्णदास

4) **श्रृंगार चित्रण :**

भारतेंदु युग के कवि रस को ही काव्य की आत्मा मानने के कारण रसोद्रक के लिए विभिन्न रसों का निरुपण किया। जिसमें श्रृंगार रस सर्वप्रमुख है। प्रताप नारायण मिश्र के अतिरिक्त अन्य कवियों ने श्रृंगारी काव्य को प्रमुखता दी। रीतिकाल के अनुकरण पर राधा-कृष्ण को आलंबन बनाकर प्रेम और सौंदर्य के सुंदर चित्र उपस्थित किए। राधाकृष्णदास ने 'राम जानकी' हरिनाथ पाठक ने 'श्री ललित रामायण' भारतेंदु ने 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम फुलवारी' आदि में भक्ति के साथ साथ श्रृंगार का भी चित्रण किया है। रीतिकालीन नखशिख, षडऋतु वर्णन, नायिका भेद पर आधारित श्रृंगार का चित्रण किया है। इन कवियोंने

उर्दू की प्रेम व्यथा और अंग्रेजी कविताओं से ग्रहण किए प्रेम का प्रभाव लेकर अपनी कृतियों का सृजन किया। भारतेंदु और प्रेमघन में सौंदर्य, प्रेम और विरह उर्दू काव्य से प्रभावित है। भारतेंदु के बाद श्रृंगार क्षेत्र में ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम आता हैं।

उदाहरणार्थ -

जो हरीचन्द भई सो भई अब, प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति, बिदा की समै सब कंठ लगावैं।।

- भारतेंदु

अब यों उर आवत है, सजनी, मिली जाऊँ गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ, मिलि की जिय री रस की बतियाँ।।
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे कटें दु:ख की रतियाँ।।

- ठाकुर जगमोहन सिंह.

5) **प्रकृति-चित्रण :**

भारतेंदु युग के कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद वर्णन करना आरंभ किया था लेकिन अधिकांश कवियों ने केवल परंपरा का निर्वाह किया है। भारतेंदु कृत 'बसंत होली', अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस पचासा' गोविंद गिल्लाभाई की 'षड्यऋतू' और 'पावस पयोनिधि' आदि कृतियों में तथा ठाकुर जगमोनह सिंह के काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण किया गया है। भारतेंदुने 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में गंगावर्णन और 'चंद्रावली' नाटिका में यमुना वर्णन किया है, लेकिन प्रकृति की स्वतंत्र रचनाएँ होने के बावजूद अलंकारों के बोझ से दबी हुई प्रतीत होती है। जिससे उनकी स्वतंत्र अनुभूति की क्षमता कुछ दब-सी गयी है। इसके अलावा भारतेंदु की 'प्रात समीरन', प्रेमघन की 'मयंक महिमा' और प्रतापनारायण मिश्र की 'प्रेम पुष्पांजलि' में प्रकृति को स्वतंत्र रुप से अंकित करने का प्रयास किया गया है। उसमें कवियों को उतनी सफलता नहीं मिली सकी क्योंकि प्रकृति को श्रृंगारिक मनोदशाओं, सामाजिक उद्‌भबोधन, नीति कथन आदि से सम्बद्ध करने की अनिवार्यता देने की प्रवृत्ति उनकी रही है। जगमोहन सिंह की प्रकृति संबधी कविताओं में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण है। जब कि रीतिकाल में प्रकृति का उद्‌दीपन रुप में चित्रण किया गया है। भारतेंदु युग के कवियों ने संस्कृत कवियों के आदर्श पर प्रकृति का आलंबनगत रुप प्रस्तुत किया। जगमोहन सिंह ने विन्ध्य प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का सजीव और वैविध्य पूर्ण चित्रण करते हुए पर्वत-श्रृंखला की शोभा का चित्र शैली में वर्णन प्रस्तुत किया है -

प्रकाश पतंग सों चोटिन के बिकसै अरविंद मलिन्द सुझूम।
लतै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम।।
तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये।

- भारतेंदु हरिश्चंद्र

6) **रीति–निरुपण :**

रीतिकाल की यह प्रवृत्ति भारतेंदु युग से क्षीणतर होती चली गई। केवल लछिराम भट्ट, बालगोविंद मिश्र, कवि राजा मुरारीदान आदि कुछ कवियोंने रीतिग्रंथों की रचना की। लछिराम भट्ट का 'महेश्वर विलास', मुरारीदान का 'जसवंत जसोभूषण', बालगोविंद मिश्र का 'भाषा छंद प्रकाश', प्रतापनारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर' कन्हैयालाल पोद्दार का 'अलंकार प्रकाश अदि कृतियाँ रीति–निरुपण करनेवाली है। प्रस्तुत ग्रंथों में काव्य का स्वरूप, शब्द–शक्ति, गुण, रीति और अलंकारों के लक्षण देकर उनकी व्याख्या गद्य में की गई है। लक्षण–निरुपण के लिए पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया गया। अत: भारतेंदु युग के आचार्य कवियों में इनकी गणना नहीं की जा सकती। इन्हें केवल यह गौरव प्राप्त है कि इन कवियों ने हिंदी काव्यशास्त्र को पद्य की सीमाओं से बाहर निकालकर नए गद्य–पथ पर चलना सिखा दिया। अर्थात हिंदी काव्यशास्त्र को नवीन आयाम प्रदान करने का श्रेय भारतेंदु युग को ही प्राप्त है।

7) **हास्य–व्यंग्य :** भारतेंदु युग के सभी कवि जिंदा–दिल होने के कारण उनके काव्य में हास्य–व्यंग्य की प्रवृत्ति प्रमुखत: से विद्यमान थी। इन कवियों ने हास्य और व्यंग्य के नये विषयों से लोगों को अवगत कराया। इनके व्यंग्यों के आलंबन पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, अंधविश्वास, कुरीतियाँ आदि बने। विषयों के साथ–साथ नयी शैली अपनाना इनकी विशेषता है। स्वयं भारतेंदु ने अपने नाटकों के गीतों में कहीं–कहीं शिष्ट हास्य और कहीं–कहीं व्यंग्योक्तियों तथा मुकरियों से तीखे व्यंग्यों की रचना की है। भारतेंदु की हास्य कविताएँ पैरोडी, स्यापा तथा गाली इन तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती है, 'बंदर सभा' और 'इंदर सभा' के गीत पैरोडी श्रेणी में आ जाते हैं। 'बंदर सभा' के गीतों की रचना उन्होंने उर्दू नाटक 'इंदर सभा' के पैरोडी के रुप में की है। 'उर्दू का स्यापा', उर्दू–फारसी के स्यापा नामक काव्य रुप की शैली में लिखित है। ''है–है उर्दू हाय–हाय, कहाँ सिधारी हाय–हाय'' आदि पंक्तियों में उन्होंने 'बनारस अखबार' के समाचार शीर्षक 'उर्दू मारी गयी' पर व्यंग्य किया है। 'समधिन मधुमास' की रचना 'गाली' नामक व्यंग्यगीति की शैली में की गई है। 'नये जमाने की मुकरी' शीर्षक से उन्होंने समकालीन सामाजिक राजनितिक विसंगतीयों को लेकर कुछ मुकरियों की रचना की, जिनपर अमीर खुसरो की शैली की स्पष्ट छाप दिखाई देती है, मद्यपान के विषय में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए–

'मुँह जब लागै तब नहिं छुटै, जाति मान धन सबकुछ लूटें।
पागल करि मोहिं करे खराब, क्यों सखि सज्जन नहीं सराब।।'

इस काल के अन्य हास्य–व्यंग्यकारों में प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख है। प्रेमधन के हास्य बिंदु प्रकरण में समसामायिक स्थितियों का विनोदपूर्ण चित्रण किया है। प्रतापनारायण मिश्र की 'तृप्यन्ताम', 'हरगंगा', 'बुढ़ापा' और 'ककाराष्टक' शीर्षक कविताएँ भी अपनी नयी तर्ज की, नये ढंग की हास्य कविताएँ हैं। अंग्रेजी–शिक्षाप्राप्त नवयवकों द्वारा भारतीय रीति–स्थिति को त्यागकर पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने पर उन्होंने अत्यंत मार्मिक व्यंग्य किया है–

जग जानैं इंगलिश, हमै वाणी वस्त्रहि जोय।

मिटै बदन कर श्याम रंग जन्म सुफल तब होय।।

8) **समस्या पूर्ति :**

रीतिकाल में राजदरबारों में समस्या-पूर्ति काव्य-दंगल का सुंदर दृश्य उपथित करती थी। समस्या-पूर्ति रीतिकाल की प्रमुख विशेषता थी। कवियों की प्रतिभा और रचना कौशल की परीक्षा लेने के लिए कवि-गोष्ठियों में समस्या-पूर्ति करायी जाती थी। भारतेंदु ने काशी में स्थापित कविता वर्द्धिनी सभा, कानपूर की रसिक समाज तथा अन्य काव्य प्रेमियों द्वारा निजामाबाद में कवि समाज नामक संस्थाओं की स्थापना की गई। जिनमें कविवगण नियमित रुप से दी गई समस्याओं की पूर्ति करते थे। बडे-बडे कवि नि:संकोच इनमें भाग लेते थे। भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन समस्या पूर्ति करने में सिद्धहस्त थे। कवि संमेलनों में समस्या-पूर्ति करने पर खूब वाहवाही होती थी। इन पूर्तियों में कवि की सुझबूझ उक्ति-वैचित्र्य और आशु कवित्व का परिचय प्राप्त होता था।

भारतेंदु की यह पूर्ति देखिए जिसमें 'पिय प्यारे तिहारे निहारे बना आंखियाँ दुखिया नहीं मानती है' की पूर्ति चार पक्षों में की गई है-

यह संग में लागिये डोले सदा बिन देखे न धीरज धारती है।
छिनहू जो विदेश परे हरिचंद तो चाल प्रलय की ठानती है।।
बरूनी में थिरै न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती है।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अंखियाँ दुखिया नहीं मानती हैं।।

प्रेमघन की वह समस्या पूर्ति तो उस युग की सुंदर याद बनी हुई है, जब एक कवि संमेलन में समस्या दी गई थी 'काफिर हैं वे जो बन्दे नहीं इसलाम के।' इसपर प्रेमघन ने इस प्रकार की पूर्ति प्रस्तुत कर वाहवाही लुटी।

लाभ के मानिंद है गेसू मेरे घनश्याम के।
काफिर हैं वे जो बन्दे नहीं इसलाम के।।

प्रस्तुत युग में सामान्यत: समस्या पूर्ति के लिए श्रृंगार परक या सामाजिक विषय लिए जाते थे। समस्या-पूर्ति करनेवालों में भारतेंदु के अलावा प्रेमघन, लछिराम, विजयानंद त्रिपाठी, गोविंद गिल्लाभाई, बलवीर, अम्बिकादत्त व्यास, गंगाधर आदि प्रमुख कवि थे।

9) **काव्यानुवाद :**

भारतेंदु युग के कुछ कवियों ने मौलिक काव्य रचना के कर्म के साथ-साथ संस्कृत और अंग्रेजी से काव्यानुवाद भी किया। इस दृष्टि से देखा जाए तो उल्लेखनीय कृतियाँ हैं- राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित 'रघुवंश' और 'मेघदूत'। सरस भावानुवाद, शैली लालित्य, शुद्ध स्वच्छ ब्रनभाषा, सवैया छंद का प्रयोग इन रचनाओं की विशेषताएँ हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'नारद-भक्ति-सूत्र' और शांडिल्य के 'भक्ति-सूत्र' को 'तदीय सर्वस्व' और 'भक्तिसूत्र वैजयंती' शीर्षकोंसे अनूदित किया परंतु इनमें भाषा लालित्य के बजाए प्रतिपाद्य की

प्रेषणीयतापर अधिक ध्यान दिया गया है। बाबू तोताराम द्‌वारा वाल्मिकी रामायण का 'राम-रामायण' भाषांतरण कल्पकला की दृष्टि से साधारण प्रयास है। ठाकूर जगन्मोहन सिंह द्‌वारा अनूदित 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' शब्दानुवाद के स्थानपर भावानुवाद, तत्सम पदावली, भाषा-लालित्य और कवित्त-सवैयों की रमणीय छटा आदि विशेषताएँ लिए हुए इस काल की विशिष्ट कृतियाँ हैं। पर यही बात लाला सीताराम भूप द्‌वारा अनूदित 'मेघदूत', 'कुमारसंभव', 'रघुवंश', 'ऋतुसंहार' के विषय में नहीं कही जा सकती क्योंकि इन कृतियों की भाषा में - काव्योचित सरसता, स्वच्छता के स्थानपर सामान्य स्तर ही दिखायी देता है। अंग्रेजी की ललित काव्यकृतियों के रुपांतरण का श्रेय श्रीधर पाठक को है। गोल्डस्मिथ कृत 'हरमिट' और 'डेजर्टेड विलेज' को उन्होंने 'एकांतवासी योगी' तथा 'ऊजड ग्राम' के रुप में अनूदित किया है। इनकी रचना क्रमश: खडीबोली और ब्रजभाषा में हुई है तथा मूल कृतियों के भाव सरसता को भाषांतरण में कहीं भी हानि नहीं पहुँचने दी गयी है। अत: काव्यानुवाद को व्यापक रूप में प्रोत्साहन देने, इस संदर्भ में ब्रजभाषा तथा खडीबोली दोनों को ललित रुप में प्रयोग करने और अंग्रेजी की काव्य-कृतियों के भाषांतरण का आरंभ करने का श्रेय पूरी तरह भारतेंदु युग को है।

10) **कला-पक्ष :**

भारतेंदु युग के विषय में एक धारणा इस प्रकार की रही है कि इस काल के कवियों ने शिल्प की अपेक्षा वर्ण्य-विषय पर अधिक ध्यान दिया है, जब कि सच बात तो यह है कि शिल्प पर बदलते परिवेश का अत्याधिक प्रभाव पडा है। जिससे इस युग की रचनाओं में काव्य-रुप, भाषिक चेतना, अलंकरण प्रवृत्ति और छंदविधान की दृष्टि से जो नये-नये प्रयोग किए गए उन्हें देखना आवश्यक है।

काव्यरुप दृष्टि से देखा जाए तो भारतेंदु युग में कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की है। कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गये जैसे, हरिनाथ पाठक की 'श्री ललित रामायण', प्रेमघन की 'जीर्ण जनपद' और 'मयंक-महिमा, अम्बिकादत्त व्यास की कृति 'कंस-वध', भारतेंदु की 'विजयनी विजय वैजयंती' और 'हिंदी भाषा' निबंध-काव्य रचनाएँ हैं। बाल मुकुंद गुप्त और राधाकृष्णदास ने इसी पद्‌धति का अनुसरण किया। सतसई परंपरा के अंतर्गत हरिऔंध कृत 'कृष्ण शतक' और अम्बिकादत्त व्यास कृत 'सुकवि सतसई' आदि रचनाएँ लिखी गई। इसी युग में प्रगीत-मुक्तक भी लिखे गये। ठुमरी, मलार, दादरा, ईमन जैसी राग-रागनियों में प्राचीन पद शैली की काव्य-रचनाओं का सृजन किया गया। लोक संगीत की शैली अपनाकर प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र ने कजलियाँ लिखी। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और जगमोहन सिंह ने लावनियाँ लिखी। 'उर्दू का स्यापा', 'बंदर सभा' जैसी व्यंग्य गीतियों से भारतेंदु द्‌वारा प्रवर्तित एक नवीन शैली का परिचय भी इसी युग में मिलता है। उनकी मुकरियों से भी लोकरुचि की झलक मिली जाती है। भारतेंदु ने 'रसा' उपनाम से तथा प्रेमघन ने 'अब्र' उपनाम से उर्दू में गझल लिखी। प्रतापनारायण मिश्र कसीदा, शेर, मगसिया लिखते रहे। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस युग में केवल परंपरागत छंदोबद्‌ध मुक्तक काव्य ही नहीं रच गये बल्कि काव्यक्षेत्र में भारतेंदु युग के कवि नवीन-नवीन प्रयोग करते रहे हैं।

भारतेंदुयुगीन काव्यादर्श में भाषायी चेतना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस समय उर्दू को राज्याश्रय प्राप्त था उस समय भारतेंदु ने हिंदी भाषा काव्य निबंध के माध्यम से हिंदी को उसका स्थान दिलाने का प्रयास किया था। इसका मतलब यह नहीं कि वे उर्दू के विरोधी थे। वे स्वयं और प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र ने उर्दू शब्दावली के समुचित प्रयोग लिए हैं। साथ ही मिर्जापुरी, कलौजी, भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का मिश्रण हिंदी में किया जाने लगा था। जिन शब्दों ने अपनी सार्थकता समाप्त कर दी थी, उनको त्यागकर नए शब्दों की खोज की जाने लगी थी।

भारतेंदु युग में प्रयुक्त ब्रजभाषा माना कि पद्‌माकर और घनानंद की ब्रजभाषा के समान परिष्कृत नहीं थी। किंतु केवल शब्द जाल में उलझी कला का नमूना भी नहीं था। इस युग की भाषा में रागात्मकता प्रभावक्षमता, मुहावरों और लोकोक्तियों की प्रासंगिकता आदि विशेषताएँ स्पष्ट रुप से दिखाई देती हैं। श्रृंगार और भक्ति संबंधी रचनाओं में कोमलकांत पदावली तो वीर रस में ओजपूर्ण शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है। वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली के साथ-साथ भाषा में चित्रात्मकता, उद्‌बोधन-विशिष्टता और रचना कौशल निहित है। भारतेंदु और प्रतापनारायण मिश्र के होली वर्णन में प्रतीक शैली के दर्शन होते हैं। अम्बिकादत्त व्यास, बालमुकुंद गुप्त, राधाकृष्णदास में व्याकरण-दोषों को दूर करने की प्रवृत्ति नजर आती है।

भारतेंदु युग में ही कुछ कवियों ने खडी बोली में भी काव्य-रचना प्रारंभ कर दी थी। भारतेंदु कृत ‘फूलों का गुच्छा’, प्रेमधन कृत ‘मयंक महिमा’, श्रीधर पाठक का ‘एकांतवासी योगी’, बालमुकुंद गुप्त का स्फूट कविता तथा प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्णदास की अनेक कविताँ, खडी बोली में ही लिखी गई हैं। यही कविताएँ आगे चलकर द्‌विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों के उत्कर्ष का आधार बनी। इस युग के काव्य में ब्रज और खडी बोली दोनों का ही प्रयोग चल पडा लेकिन अयोध्याप्रसाद खत्री ने खडी बोली आंदोलन में अवधी और ब्रज भाषा की रचनाओं को स्थान नहीं दिया। भारतेंदु की एक खडी बोली कविता का उदाहरण प्रस्तुत है -

श्री राधा माधव युगल चरण रस का अपने को मस्त बना।
पी प्याला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा।।

अलंकार योजना : भारतेंदु युग के कवियों में लछिराम जैसे अलंकारवादी कवि की रचनाएँ उपलब्ध है। फिर भी इस युग के कवियों ने रीतिकाल की अलंकरण-प्रवृत्ति का अनुकरण नहीं किया। इस युग की रीति-बद्‌ध श्रृंगारिक रचनाओं और भारतेंदु की ‘यमुना-छवि’ जैसी कुछ कविताओं में उत्प्रेक्षा, उपमा, संदेह आदि अर्थालंकारों के साथ अनुप्रास, यमक श्लेष आदि शब्दालंकारों का प्रयोग मिलता है। किंतु अधिकांश कवियों ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही किया है।

छंद योजना : भारतेंदु युग की रचनाएँ अधिकतर गेय पद-शैली में हैं। जिसमें परंपरागत दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया-रोला, हरिगीतिका आदि मात्रिक तथा सवैया, कवित्त, शिखरिणी, मंदाक्रांता, वंशस्थ, वसंततिलिका आदि वर्णिक छंदो का विशेष प्रयोग किया गया है। भारतेंदु और राधाकृष्णदास ने बिहारी और रहीम के कुछ दोहों को कुण्डलियों में विस्तार दिया है। भारतेंदुजी ने ‘प्रात समीरन’ कविता में बंगाल के

'पयार' तो अम्बिका दत्त व्यास ने 'कंस-वध' में बंगाल के 'दीर्घ कालीन' छंद का प्रयोग किया है। कुल मिलाकर हम कह सते हैं कि रीतिकाल की तुलना में इस युग के कवियों ने विविधतापूर्ण छंदों का प्रयोग किया है।

- **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न** 1

अ) उचित विकल्प चुनका वाक्य फिरसे लिखिए।

1) हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आ. रामचंद्र शुल्क ने हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ संवत .... से माना है।

(1850 / 1900 / 1950 / 1857)

2) नई काव्यधारा में भारतेंदुजी की वाणी का प्रमुख स्वर .... का रहा।

(श्रृंगार / देशभक्ति / मातृभक्ति / इनमें से कोई नहीं

3) पं. बद्रीनारायण चौधरी .... उपनाम से जाने-पहचाने जाते हैं।

(रस / निराला / प्रेमघन / आंनदघन)

4) भारतेंदु युगीन काव्यदर्श में .... का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(संचेतना / भाषायी चेतना / रंग चेतना / संवेदना)

5) भारतेंदु-युग में गृहीत रीतिकालीन काव्य-शैली में .... पर्याप्त लोकप्रिय काव्य पद्धति थी।

(समस्या-पूर्ति / आपूर्ति / रीति-निरुपण / इनमेंसे कोई नहीं)

अ) उचित मिलान कीजिए।

1) भारतेंदु हरिश्चंद्र	अ) अलंकारवादी कवि
2) पं. बद्रीनारायण चौधरी	ब) रसा
3) हरमिट	क) गोरक्षा
4) पं. प्रतापनारायण मिश्र	ड) एकांतवासी योगी
5) लछिराम	इ) प्रेमधन

- **महावीरप्रसाद द्विवेदी युगीन कविता-परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ :**

भारतेंदु युग में मुख्यत: श्रृंगार, भगवद्भक्ति एवं देशभक्ति की धाराँ प्रवाहित होती रही जिनमें समस्या-पूर्ति की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया। कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का ही एकछत्र साम्राज्य बना रहा। उन्नीसवी शतब्दी का अंत होते होते जनरुचि में परिवर्तन होने लगा। भक्ति, श्रृंगार, समस्यापूर्तियाँ, नीरस

तुकबंदियों से सहृदय उब गये, ब्रजभाषा का आकर्षण भी कम होने लगा। इसी समय पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का साहित्यजगत में आगमन हुआ। सन 1903 में वे सरस्वती पत्रिका के संपादन बने। उन्होंने नायिका भेद को छोडकर विविध विषयों पर कविता लिखने, विविधमुखी छंद प्रयोग, सभी काव्यरुपों को अपनाने और गद्य-पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए इसप्रकार के परामर्श दिए। उनकी इसी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचनप्रसाद पांडेय जैसे कवि आगे आये। साथ ही अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि कवि भी पुरानी परिपाटी को छोडकर नये विषयों पर कविता लिखने लगे। जिससे विषय की दृष्टि से इस युग की कविता में वैविधता एवं नवीनता आ गयी।

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के प्रयास के कारण काव्य की मुख्य भाषा खडी बोली बन गयी। गुप्त जी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, सनेही, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि कवि खडीबोली के कवियों के रुप में ही आगे आये। इसके साथ ही ब्रजभाषा में लिखनेवाले श्रीधर पाठक, हरिऔंध, 'शंकर' आदि कवि भी खडीबोली में लिखने लगे। द्विवेदी जी ने भाषा की शुद्धि तथा वर्तनी की एकरुपता का समर्थन किया। जिससे इस युग की काव्यभाषा व्याकरण की दृष्टि से सामान्यत: शुद्ध और वर्तनी की दृष्टि से भारतेंदु युग जैसी उसमें अस्थिरता नजर नहीं आती। जिसमें हिंदी के सभी छंदो के साथ संस्कृत-वृत्तों, उर्दू-बहरों का प्रयोग किया गया है।

1.2.2 युगीन परिवेश :

● राजनीतिक चेतना :

सन 1905 से राजनीतिक चेतना का दूसरा काल आरंभ होता है। अब प्रार्थना और आवेदन की नरम नीति को छोड़कर लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' की घोषणा कर दी। लॉर्ड कर्जन की बंगाल विभाजन की भारत विरोधी नीति से भारतीय जनता सचेत हो गई और वह अंग्रेजों को बडे संदेह की दृष्टि से देखने लगी। फलस्वरूप जनता में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति क्रोध की भावना उत्पन्न हो गई। नेतागण, विचारक, कवि परतंत्रता की जंजीरों में कैद जनता को अतीत के गौरव का स्मरण कराकर क्रांति का आवाहन करने के लिए उकसाने लगे। इन सब बातों के लिए उन्होंने देश की सामाजिक व्यवस्था में सुधार करना आवश्यक समझा जिससे उस युग के विचारकों ने कवियों के अछूत, किसान, तथा शोषित एवं पीडित वर्गों के लिए अपनी सहानुभूति प्रकट की है। इस युग में भारतीय राजनीति का आधार बना मानवतावाद। अंग्रेजी शासकोंने जनता के असंतोष को शांत करने के लिए समय-समय पर अपनी शासन प्रणाली में सुधार किए। 1909 में मार्ले-मिंटो सुधार कानून पास कर मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व दिए जाने के कारण हिंदु-मुस्लिम एकता को बडी ठेस पहुँची। 1916 में हिंदु-मुस्लिम समझौता हो सका और श्रीमती एनी बेसेंट के प्रयत्न से काँग्रेस के दोनों दल एक हो गए। किंतु इसी बीच युरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ा जिसमें भारतीयों द्वारा अंग्रेजों की मदद लिए जानेपर भी युद्ध समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने अपने वायदे पूरे नहीं किए। सन 1919 में रौलेट ऐक्ट द्वारा भारतीय जनता की

स्वतंत्रता के अधिकार छीन लिए। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इतिहास में राजनीतिक चेतना के द्वितीय उत्थान का यह समय द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है।

● **सामाजिक व्यवस्था का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :**

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इस द्वितीय उत्थान में (सन 1903 से सन 1916) सामाजिक क्षेत्र की अशांति दूर होकर एक नवीन व्यापक दृष्टिकोण जीवन के नवीन-मूल्य के रुप में स्थापित हुआ। जिससे इस युग में पूर्व युगीन वाद-विवाद, आलोचना-प्रत्यालोचना का प्राय: अभाव दिखाई देता है। इस युग में विचारकों ने समाज सुधार पर बल देकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के सुझाव दिए। स्त्री-शिक्षा कोई नई बात नहीं रह गई थी। बाल-विधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूति इस युग में दिखायी देती है। इस युग के समाजसुधारकों में अछूतों के प्रति सदव्यवहार, विशाल हृदय, दहेज की कुप्रथा दूर करने का प्रयत्न आदि विशेषताएँ दिखलायी देती हैं। इस युग में पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का विरोध दिखायी देता है। साथ ही मानवतावाद की प्रवृत्ति के दर्शन भी होते हैं।

इस युग में पूँजीवर के कारण उत्पन्न वर्ग-संघर्ष, जमींदार प्रथा का अभिशाप, स्त्रियों की दुर्दशा से उत्पन्न क्षोभ आदि के कारण जनवादी विचारों का महत्त्व मालूम हुआ। देशी राजाआं के पतन और सामंतशाही के नाश से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा था। दूसरी बात राजनीतिक क्षेत्र में मध्यवर्ग का सहयोग महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने के कारण इस युग के विचारकों में मानवता के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण दिखाई देता है। देश के महान विचारकों ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी की स्थिति के प्रति करुणा व्यक्त कर नारी की 'आँचल में दूध और आँखों में पानी वाली स्थिति का चित्रण किया। नारी के प्रति गंभीर सहानुभूति एवं उच्च भावना अभिव्यक्त की।

● **आर्थिक स्थिति का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :**

इस युग में आर्थिक युग में आर्थिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक राष्ट्रीयता का आदर्श राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण आधार बना। आर्थिक भावना ने काँग्रेस आंदोलन को प्रेरणा दी। आंदोलन के आर्थिक पक्ष को दृढ करने के प्रमुख कारण रहे हैं किसानों की दुरवस्था और जमींदारों के अत्याचार। भारत मुख्यतया कृषिप्रधान देश होने के कारण अंग्रेज सरकार ने किसान वर्ग पर मालगुजारी का बोझा लादकर तथा जमींदारों के अत्याचारों को हवा देकर किसानों को अत्यधिक दरिद्र बना दिया। उनके गृह उद्योग धंदों को नष्ट किया गया।

प्रथम महायुद्ध तक भारतीयों का यह विश्वास रहा कि अंग्रेज भारत का औद्योगिक विकास नहीं करेंगे जिससे काँग्रेस के उग्रपंथियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का अस्त्र अपनाया जिसमें भारत के पूँजीपतियों नें भी सहायता की। द्वितीय महायुद्ध के बाद अंग्रेजों की आर्थिक नीति में परिवर्तन आ गया। इसका प्रमुख कारण था कि अब अंग्रेजों को भी मालुम हो गया कि भारत के प्राकृतिक साधनों का विकास करने से उनके साम्राज्यवादी हितों को बढ़ावा मिलता है। जिसकी अनुभूति उन्हें युद्धकाल में हुई। इसलिए युद्धकाल और उसके पश्चात् भी भारत की औद्योगिक उन्नति की गई और साथ ही शोषण भी बढ़ता गया।

अंग्रेजों ने केवल उन उद्योग-धंदो को बढ़ावा दिया जिनमें उनके देश की पूँजी लगी थी। इस प्रकार धीरे-धीरे भारत का औद्योगिक-विकास हुआ और भारतीय पूँजीवाद के पैर जम गए।

● धार्मिक स्थिति का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :

इस युग में धार्मिक भावना का प्रमुख आधार मानवतावादी विचारधारा बनी। धीरे-धीरे इस मानवतावादी विचारधारा का विकास हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से पश्चिम के बुद्धिवाद की लहर लोगों के जीवन में छा गई जिससे प्राचीन धार्मिक रुढ़ियों का खंडन एवं नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई। मानवतावादी विचारधारा का प्रभाव पड़ने के कारण दुष्चरित्रों में भी मानवीय गुणों का उद्घाटन एवं दलित और शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति का प्रदर्शन दिखायी देता है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि : इस युग में आ. महावीर पसाद द्विवेदी जी ने खडीबोली को काव्य के रुप में स्थिर किया और भाषा की शुद्धता और सरलता का आग्रह किया। कविता के विषयों की दृष्टि से यह युग इतिवृत्तात्मक था तथा रीतिकाव्य के श्रृंगार रस की प्रतिक्रिया में प्रकट हुआ। इसलिए श्रृंगार को एकदम अश्लिल मानकर उसका बहिष्कार किए जाने के कारण सौंदर्यवादी भावना का स्रोत सूख-सा गया।

इस युग की कविता में राजनीतिक चेतना का गहरा प्रभाव है और कविता स्वतंत्रता आंदोलन से पूर्णतया सम्बद्ध है। इसलिए काव्य-विषयों में काँग्रेस की प्रशंसा साथ-साथ कृषक एवं दलित वर्ग की स्थिति की करूण व्यंजना भी है। मातृभूमि-प्रेम, स्वदेश-गौरव तो इस युग की कविता की सर्वप्रमुख विशेषता है। इस युग में विचार-स्वातंत्र्य के दर्शन होते हैं। बुद्धिवाद के निरंतर विकास के कारण प्राचीन मूल्यों और मर्यादाओं में क्रांति का आगमन हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से पश्चिम के बुदिधवाद की लहर हमारे जीवन में छा गई जिसका इस युग के साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप द्विवेदी युग के काव्य में हम प्राचीन धार्मिक रुढियों का खंडन एवं नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना देख पाते हैं। मानवतावादी विचारधारा का हिंदी साहित्यपर प्रभाव पडा।

आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' मासिका पत्रिका के माध्यम से भाषा परिमार्जन का कार्य किया। इस युग में कविता, निबंध, जीवन-चरित्र, नाटक आदि रचना-विधाओं का सम्यक विकास हुआ। द्विवेदी युग के लेखक-कवि हैं- आ. महावीर प्रसाद द्विदी, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, श्यामसुंदर दास, गुलाबराय, प्रेमचंद, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जयशंकर प्रसाद आदि। इस युग में रचना के विषयों में विविधता आई साथ ही भाषा का स्वरूप परिष्कृत हुआ।

● द्विवेदीयुग प्रमुख कवि तथा रचनाएँ :

उन्नीसवीं शताब्दी का अंत होते-होते जनरुच परिवर्तित होने लगी। जनता की इसी रुचि को पहचानकर आचार्य के रुप में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने विविध विषयोंपर कविता लिखने, विविधमुखी छंदो का प्रयोग, सभी काव्यरुपों को अपनाने, गद्य-पद्य भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया। उनकी इसी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के फलस्वरूप नाथुराम शर्मा 'शंकर', श्रीधर पाठक, महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरि औंध, राय

देवीप्रसाद 'पूर्ण', रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि इस युग में सामने आए।

1) **नाथुराम शर्मा 'शंकर'** (1859-1932) : इनका जन्म हरदुआगंज, जिला अलिगढ़ में हुआ था। ये हिंदी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। भारतेंदु मंडल के प्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आने से 'ब्राह्मण' में इनकी कविताएँ छपने लगी। इसके बाद 'सरस्वती' पत्रिका में मुख्य कवियों में इन्हें स्थान प्राप्त हुआ। उन्होंने ब्रजभाषा, खडीबोली और उर्दू में कविताएँ लिखी। इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं - देशप्रेम, स्वदेशी-प्रयोग, समाज-सुधार, हिंदी अनुराग तथा विधवाओं और अछूतों का दारुण दु:ख आदि। इनपर आर्य समाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों का गहरा प्रभाव पडने के कारण इन्होंने सामाजिक कुरीतियों, आडंबरों, अंधविश्वासों, बाल-विवाह आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं - 'अनुरागरत्न', 'शंकर-सरोज', 'गर्भरण्डा-रहस्य' तथा 'शंकर-सर्वस्व'।

2) **श्रीधर पाठक** (1859-1928) : इनका जन्म आगरा जिले के जोंधरी गाँव में हुआ। इन्होंने खडीबोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है। जीविकोपार्जन हेतु इन्होंने सरकारी नौकरी की। इनकी ब्रजभाषा सहज और आंडबरविहिन है। इन्होंने परंपरागत रूढ शब्दावली का प्रयोग नहीं किया है। खडीबोली के तो ये प्रथम समर्थ कवि कहलाते हैं। इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं - देशप्रेम, समाजसुधार तथा प्रकृति चित्रण आदि। इन्होंने बडे मनोयोग से देश का गौरवगान करते हुए देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति का भी परिचय दिया है। इनकी 'भारतोत्थान', 'भारत प्रशंसा' कविता में देशभक्ति छलकती है तो, 'जॉर्ज-वंदना' में राजभक्ति के दर्शन हो जाते हैं। 'बाल विधवा' कविता में इन्होंने विधवाओं की व्यथा का करूण चित्र व्यंजित किया है। इन्होंने प्रकृति का स्वतंत्र रुप में मनोहारी चित्रण किया है। इसके साथ ही मातृभाषा की उन्नति की कामना करते हुए ये कहते हैं -

निजभाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषैं निज भाषा उपजोग।।

श्रीधर पाठक कवि होने के साथ-साथ एक कुशल अनुवादक भी थे। कालिदास कृत 'ऋतुसंहार', गोल्डस्मिथ कृत 'हरमिट', 'डेजर्टेड विलेज' तथा 'द ट्रैवेलर' का इन्होंने बहुत पहले 'एकांतवासी योगी', 'ऊजड ग्राम और 'श्रान्त पथिक' शीर्षक से काव्यानुवाद किया। इनकी मौलिक कृतियों में प्रमुख कृतियाँ हैं- 'वनाष्टक', 'काश्मिर सुषमा', 'देहरादुन' और 'भारत गीत' आदि।

3) **आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी** (1864-1938) : इनका जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में हुई और फिर अंग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली चले गए। वहाँ से अपने पिता के पास मुंबई जाकर संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अध्ययन किया। इन्हें बँगला तथा फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। जीविकोपार्जन के लिए रेल्वे की नौकरी की किंतु वहाँ उच्चाधिकारी से कुछ बहस हो जाने के कारण त्यागपत्र दे दिया और फिर साहित्य-साधना में जुट गए। 1930 में 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन कार्य सँभाला। ये कवि, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक तथा संपादक थे। इनकी

उल्लेखनीय कृतियाँ हैं- 'काव्य-मंजूषा', 'सुमन', 'कान्यकुब्ज'-अबला-विलाप' (मौलिक पद्य), 'गंगालहरी', 'ऋतु-तरांगिणी', 'कुमारसंभव सार' (अनूदित) आदि। इन्होंने सहज, सरल और उपदेशपूर्ण कविताओं का सृजन किया।

4) **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध'** (1865-1947) : हरिऔंध जी द्विवेदी युग के प्रख्यात कवि होने के साथ-साथ उपन्यासकार, आलोचक एवं इतिहासकार भी थे। इनका जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद में हुआ था। इन्होंने घरपर ही उर्दू, फारसी और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1923 में सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद साहित्य-सेवा में जुट गए। इनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ हैं- 'पद्यप्रसून', 'प्रियप्रवास', 'चुभते चौपद', 'चौखे चौपदे', 'बोलचाल', 'रसकलश' तथा 'वैदेही वनवास' आदि। इनमें से 'प्रियप्रवास' खडीबोली में लिखा गया प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इसमें राधा-कृष्ण को सामान्य नायक-नायिका के रुप में चित्रित न कर विश्व-सेवी तथा 'विश्व-प्रेमी' के रुप में चित्रित कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। 'रस-कलश' रीतिग्रंथ हैं जिसमें रस के स्वरूप, रस-प्रकारों का सूक्ष्म विवेचन है। 'वैदेही वनवास' महाकाव्य संक्षिप्त कथानक के कारण राम के शक्ति, सौंदर्य और शील समन्वित चरित्र को उतार नहीं पाता फिर भी इसका महत्त्व अक्षुण्ण है।

कवि हरिऔंध जी ने ब्रज और खडीबोली दोनों भाषाओं में रचनाएँ की है। इन्होंने ब्रजभाषा में 'रसकलश' तो 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' खडीबोली में लिखा। छंदों और भावों के अनुरुप भाषा का प्रयोग करने का अद्भूत सामर्थ्य इनमें है। इनकी काव्यशैली बडी मार्मिक और भावपूर्ण है। 'प्रिय प्रवास' में यशोदा का विरह इस प्रकार चित्रित किया गया है -

प्रिय पति, वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।।
लखमुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह ह्रदय हमारा नैन-तारा कहाँ है।।

5) **राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'** (1868-1915) : इनका जन्म जबलपुर में हुआ था। बी.ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद इन्होंने वकालत की और फिर कानपुर चले आये। वेदांत में इनकी विशेष रुचि थी। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। अपने व्यवसाय तथा सामाजिक कार्य-कलाप में व्यस्त रहते हुए भी ये साहित्य-सृजन करते रहे। इनकी कविता बडी सरस एवं भावपूर्ण है। 'धाराधर धावन' शीर्षक से इन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' का अत्यंत सरस पद्यानुवाद किया है। इसके अलावा 'स्वदेशी कुंडल', 'मृत्युंजय','राम-रावण विरोध' तथा 'वसंत वियोग' आदि। इनकी काव्य-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

'चींटी, मक्खी शहद की, सभा खोजकर अन्न।
करते हैं लघु जन्तु तक, निज गृह को सम्पन्न।।
निज गृह को सम्पन्न करो स्वच्छन्द मनुष्यों!
तजो तजो आलस्य अरे मतिमन्द मनुष्यों!!

6) **रामचरित उपाध्याय** (1872-1938) : ये गाजीपुर के निवासी थे। इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई। इसके बाद इन्होंने ब्रज तथा खडीबोली पर अधिकार पा लिया। पहले पहल ये प्राचीन विषयोंपर कविताएँ लिखते रहें किंतु आ. द्विवेदी के संपर्क में आने पर खडीबोली को अपनाकर नूतन विषयों पर लिखने लगे। इनकी काव्य-कृतियाँ हैं 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत','देवसभा' तथा 'विचित्र विवाह' इसके अतिरिक्त इन्होंने नीति विषयक पद्य भी लिखे जो 'सूक्ति-मुक्तावली' में संग्रहीत है।

7) **गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'** (1883-1972) : इनका जन्म उन्नाव जिले के हडहा ग्राम में हुआ था। इन्होंने प्राचीन और नवीन दोनों शैलियों को अपनाकर हिंदी और उर्दू में कविताएँ लिखी हैं। ये 'सनेही' तथा 'त्रिशूल' उपनाम से लिखते थे। राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए अनेक प्रयाण-गीत और बलिदान-गीत इन्होंने लिखे हैं। इनके काव्य में प्रमुख विषय रहे हैं- पराधीन देश की दुर्दशा, आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि। इनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं- 'कृषक-कंद्रन', 'प्रेम पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'करुणा कादम्बिनी' आदि।

8) **मैथिलीशरण गुप्त** (1886-1964) : इनका जन्म चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ। ये द्विवेदीकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। ये रामभक्त कवि के रुप में भी जाने जाते हैं। 'साकेत' इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति है। 'मानस' के बाद रामकाव्य का दूसरा स्तंभ यही कृति मानी जाती है। मूलत: ये प्रबंधकार थे। इनकी प्राय: सभी रचनाएँ राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है जिनमें प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं- 'जयद्रथ-वध', 'भारत-भारती', 'पंचवटी', झंकार', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जयभारत', 'विष्णुप्रिया' आदि।

9) **रामनरेश त्रिपाठी** (1889-1962) : इनका जन्म जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में हुई बचपन से ही कविता के प्रति लगाव था। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभाव-स्वरूप में खडीबोली में लिखने लगे। इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं- 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' और 'स्वप्न'। इनमें से 'मिलन', पथिक' और 'स्वप्न' काल्पनिक कथाश्रित प्रेमाख्यानक खंडकाव्य हैं तो 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है। इसके अलावा इन्होंने 'कविता-कौमुदी' के आठ भागों में हिंदी, उर्दू, बँगला एवं संस्कृत की कविताओं का संकलन और संपादन किया है। बडी लगन एवं परिश्रम से लोकगीतों का संग्रह किया है।

अन्य कवि : द्विवेदी युग में उपर्युक्त कवियों के अलावा बालमुकुंद गुप्त, भगवानदीन, अमीर अली 'मीर', कामताप्रसाद गुरु, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', रुपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोपालशरण सिंह और मुकुटधर पाण्डेय आदि अन्य कवियों का योगदान भी उल्लेखनीय हैं। कवि, अनुवादक और संपादक बालकमुकुंद गुप्त ने राष्ट्रीयता और हिंदी प्रेम जैसा विषय लेकर कविताएँ लिखी जो 'स्फूट कविता' में संकलित हैं। काव्यशास्त्र के पंडित और मध्यकालीन काव्य के मर्मज्ञ कवि लाला भगवानदीन हिंदी, उर्दू, पारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक' तथा 'वीर पंचरत्न' और 'नवीन बीन' इनका अन्य कविता संग्रह है। सैयद अमीर अली 'मीर' ईश्वरभक्ति और देशप्रेम जैसे विषयों पर कविताएँ लिखी। इनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं- 'उलाहना-पंचक' और 'अन्योक्ति-शतक' आदि।

व्याकरणकार, कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता कामनाप्रसाद गुरु ने ब्रजभाषा में 'भौमासुर-वध' और 'विनय पचासा' नामक पद्य ग्रंथ लिखे। 'पद्म पुष्पावली' नाम से इनकी खडीबोली कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' की कविताओं का मुख्य विषय स्वदेश-प्रेम था। इनकी मौलिक काव्यरचना है 'मातृवंदना'। रुपनारायण पांडेय की मौलिक कविताओं के संकलन हैं 'पराग' और 'वनवैभव'। लोचन प्रसाद पाण्डेय ने प्रबंध तथा मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं। नीति-उपदेश तथा चरित्रोत्थान इनकी कविता का प्रमुख विषय है। इनकी मुख्य काव्य-रचनाएँ हैं- 'प्रवासी', 'मेवाड गाथा', 'महानदी' तथा 'पद्य-पुष्पांजलि' आदि। ठाकुर गोपालशरण सिंह ने अपनी कविता में जीवन की विविध दशाओं के भावपूर्ण चित्रों का अंकन लिया है। इनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं - 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता' तथा 'ज्योतिष्मती' आदि। सुकवि तथा प्रकृति के उपादक कवि मुकुटधर पाण्डेय के काव्य में छायावाद का पूर्वाभास मिलता है। इनके प्रकाशित काव्य संकलन हैं- 'पूजा-फूल' तथा 'कानन कुसुम' आदि।

उपर्युक्त कवियों के अलावा लोलमणि, सत्यशरण रतूडी, मन्नत द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शिवकुमार त्रिपाठी, पार्वतीदेवी, तोषकुमारी आदि के नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, पंत, निराला ने भी इस युग में लिखना आरंभ कर दिया था। लेकीन इनकी काव्य कला का विलास आगे चलकर हुआ।

- **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न** – 2

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिरसे लिखिए।

1) द्विवेदी-युग में धार्मिक भावना का प्रमुख आधार .... विचारधारा बनी।

अ) अहिंसावादी   ब) मानवतावादी   क) समतावादी   ड) इनमें से कोई नहीं

2) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने .... मासिक पत्रिका के माध्यम से भाषा परिमार्जन का कार्य किया।

अ) सरस्वती   ब) मतवाला   क) धर्मयुग   ड) कविवचन-सुधा

3) कालिदास कृत 'ऋतुसंहार' का अनुवाद .... ने किया।

अ) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी   ब) श्रीधर पाठक

क) नाथूराम शर्मा   ड) हरिऔंध

4) 'चुभते चौपद' .... कवि की कृति है।

अ) श्रीधर पाठक   ब) रामचरित उपाध्याय

क) अयोध्यासिंह उपाध्याय   ड) मैथिलीशरण गुप्त

5) .... द्विवेदी युग के हास्य व्यंग्यकार हैं।

अ) शरद जोशी ब) हरिशंकर परसाई क) नाथूराम शंकर शर्मा ड)भारतेंदु

ब) उचित मिलान कीजिए।

1) हरिऔंध	(अ) सनेही
2) गयाप्रसाद शुक्ल	(ब) प्रियप्रवास
3) रामनरेश त्रिपाठी	(क) देवसभा
4) रामचरित उपाध्याय	(ड) कान्यकुब्ज अबला-विलाप
5) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी	(इ) मानसी

1.2.2 द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ :

द्विवेदी-युग से पूर्व कविता के क्षेत्र में प्रमुखतः श्रृंगार, भगवद्-भक्ति एवं देशभक्ति की धाराएँ प्रवाहित थी। प्रमुख केंद्र में समस्यापूर्तियाँ रही हैं। जिसके लिए अनेक काव्य-गोष्ठियों की स्थापना हुई। खडीबोली को गद्य की एकमात्र भाषा स्वीकार किए जानेपर भी भारतेंदु काल में कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का ही साम्राज्य बना रहा। खडीबोली को काव्योपयुक्त न मानने के कारण छुटपुट रुप में खडीबोली में रचना हुई। 19 वीं शताब्दी के आते-आते हवा का रूख बदल गया। समस्यापूर्तियों एवं नीरस तुकबंदियों से पाठक उब गये। देखते देखते ब्रजभाषा का आकर्षण नि:शेष हो गया। संयोगवश इसी समय जनता की रुचि एवं आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा निदेशक आचार्य के रुप में महाकवि पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन हुआ। सन 1903 में इन्होंने अपनी 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से नायिका भेद को छोडकर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छंदो का व्यवहार करने सभी काव्यरुपों को अपनाने तथा गद्य-पद्य भाषा के एकीकरण के लिए कवियों को प्रोत्साहित किया। जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल, हरिऔंध, नाथाराम शर्मा, लोचन प्रसाद पांडेय आदि प्रमुख हैं।

प्रस्तुत युग की कविता में विषय की दृष्टि से विविधता एवं नवीनता दिखायी देती है। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी भाषा की शुद्धि तथा वर्तनी की एकरुपता के प्रबल समर्थक होने के कारण इस युग की काव्य-भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध तथा वर्तनी की दृष्टि से स्थिर है।

1) राष्ट्रीयता :

पुनर्जागरण के बाद देश में प्रत्येक क्षेत्र में जागृति की लहर उमडने लगी थी। राजनीतिक चेतना और संस्कृति के पुनरुत्थान के फलस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान प्रवृत्ति थी। अत: तत्कालीन कविता का मुख स्वर राष्ट्रीयता ही रहा। लोगों में अपना शासन स्वयं चलाने की इच्छा बलवती होती गई। इस युग के प्राय: सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का सृजन किया। वे पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताते हुए स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देते हैं। इस युग के कवियोंने देशभक्ति

की कविताएँ लिखकर मातृभूमि के चरणों में अपनी वंदना अर्पित की है। कविवर 'शंकर' अपने 'बलिदान-गान' में कहते हैं।

'देशभक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।
- शंकर सर्वस्व

मैथिलीशरण गुप्त की ओजस्वी हुंकार निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है -

'धरती हिलकर नींद भगा दे
वज्रनाथ से व्योम जगा दे
देव, और कुछ लाग लगा दे।'
- स्वदेश संगीत

दृविवेदी युग के कवियोंने अपनी ओजस्वी वाणी में प्राणोत्सर्ग करने का आवाहन किया। रामनरेश त्रिपाठी अपने खंडकाव्यों द्वारा पराधीनता को नष्ट करने संदेश देते हैं। अन्य कवियों ने भी देश के गौरव का श्रद्धा एवं भक्ति के साथ स्मरण किया है और वर्तमान दशा पर क्षोभ व्यक्त किया है। साथ ही इस काल के कवियों का आलस, फूट, खुदगर्जी, मिथ्या कुलीनता आदि अभिशापों की और भी ध्यान गया है। देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक, कुरीतियाँ रुढ प्रथायें, धार्मिक आडंबरों का स्पष्ट शब्दों में बयान किया है। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर विशेष बल दिया है।

इसप्रकार दृविवेदी युग के जागरुक कवियोंने देश की प्रत्येक हीन दशा का चित्रण कर प्राचीन गौरव के आदर्श को सामने लाकर राष्ट्रीयता जगाने का प्रयत्न किया है।

2) मानवतावाद :

पूर्ववर्ती काव्य में असामान्य अर्थात ईश्वर, ईश्वरावतार, राजा, सामंत, योद्धा, सुंदर नायक-नायिका आदि को प्रमुख स्थान मिला था। परंतु दृविवेदी युग में सामान्य मानव को यह गौरव प्राप्त हुआ। सामान्य मनुष्य की पीडा, उसकी आशा, आकांक्षाएँ, दुःख-सुख और परिस्थितियाँ जो अबतक उपेक्षित थी, इस युग में कवियों ने सहजभाव से इन्ही को अपने काव्य में स्थान दिया। महावीर प्रसाद दृविवेदी ने कल्लू अल्हैत को अपने काव्य का विषय बनाया। रसिक शंकर जी के व्यंग्य का लक्ष्य विदेशीपन बना और उन्होंने लिखा-

''छडी धार छैला छबीले बनो, रंगीले, रसीले, कबीले बनो।
न चूको भले भोग भोगी बनो, किसी बेडनी के वियोगी बनो।।'

इस युग के कवि गरीब किसान और करुणा पूर्ण विधवा का अत्यंत कारूणिक चित्र अंकित करने में आगे रहे हैं। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सन 1917 इ. में किसान, इसी वर्ष सियारामशरण गुप्त ने 'अनाथ' और सनेही ने 'कृषक-क्रंदन' रचनाओं में किसान की दीन-हीन दशा का चित्रण किया है। नाथूराम शर्मा ने 'गर्भ-रण्डा रहस्य' में विधवाओं को दी जानेवाली सामाजिक तथा पारिवारिक यातनाओं का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। अनपढ़ नारियों की दुर्दशा की ओर भी इस युग कवियों ने ध्यान आकर्षित किया है।

सामान्य मनुष्य के प्रति मानवीय सहानुभूति और संवेदना ही इस प्रकार की कविताओं की प्रेरक भावना है। इसीसे प्रेरित होकर हरिऔध जी ने छोटे लोगों के प्रति बड़ों के तिरस्कार भाव को वाणी प्रदान की है-

''आप आँखे खोल करके देखिये
आप जितनी जातियाँ सिर-धरी
पेट में उनके पडी दिखलायेंगी,
जातियां कितनी सिसकती या मरी।''

इस प्रकार द्विवेदी युगीन काव्य में जनसाधारण को काव्य विषय के रुप में स्थान मिला। इस युग के कवि भारतेंदु युग के कवियों की अपेक्षा सामान्य व्यक्ति के प्रति अधिक संवेदनशील होने के कारण उन्होंने सामान्य बात को कविता का विषय बनाकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की।

3) **नीति और आदर्श :**

द्विदी युग का काव्य आदर्शवादी और नीतिपरक है। कवि किसी आदर्श के लिए काव्य का सृजन करता है। कविता केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। बल्कि उसमें उचित उपदेश का होना जरूरी है। इस युग के कवियों ने इतिहास पुराण से प्रसंग लेकर तथा कल्पना पर आधारित आदर्श चरित्रों पर प्रबंध काव्यों का सृजन किया। इन काव्यों में असत्य पर सत्य की जय दिखाई गई है। स्वार्थ-त्याग, कर्तव्य-पालन, आत्म-गौरव और उच्चादर्शों की स्थापना करना इन काव्यों का प्रमुख उद्‌देश्य है। इस दृष्टि से हरिऔंध का 'प्रिय-प्रवास', 'मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग,' 'विकट भट', गोकुलचंद्र शर्मा का 'गाँधी गौरव', रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' आदि काव्य आदर्शवादी प्रेरणा से संपन्न है। इसी काल में लिखी गई अनेक पद्‌यबद्‌ध लघु कथाओं का ध्येय भी नैतिकता और आदर्श की स्थापना करना रहा है।

प्रस्तुत युग में कलात्मक काव्य-कृतियों के अतिरिक्त मुक्तक रुप में भी नीति और आदर्श से युक्त काव्य रचा गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध', मैथिलिशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय अदि इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इस युग में प्रेम को आदर्श उदात्त आसन पर प्रतिष्ठीत किया गया। 'प्रिय-प्रवास' की राधा संपूर्ण विश्व की सेवा का आदर्श उपस्थित करती है। वह संपूर्ण विश्व में कृष्ण की क्रांति के दर्शन कर विश्वप्रेमिका एवं विश्व सेविका बन जाती है। साकेत की उर्मिला अपने मन को 'प्रिय-पथ की बाधा बनने से रोकती है। रामनरेश त्रिपाठी प्रेम का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट करते हैं -

''गंध-विहिन फूल है जैसे चंद्र चंद्रिका-हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन।।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदय-आलोक।''

4) **काव्यभाषा में परिवर्तन :**

वैसे देखा जाए तो भारतेंदु युग में ही काव्यभाषा के रुप में ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का प्रयोग प्रारंभ हो गया था। किंतु इसकी स्थापना एवं निरंतरता द्विवेदी युग में ही प्रकट हुई। इस युग में ब्रजभाषा के स्थान पर खडीबोली का प्रयोग प्रारंभ हुआ। इस समय खडीबोली हिंदी समस्त हिंदी भाषी प्रांतो में लोक व्यवहार की भाषा के रुप में तेजी से विकसित हो रही थी। इसी वास्तविकता को स्वीकार कर भारतेंदु युग में गद्य साहित्य जैसे नाटक, उपन्यास, निबंध, जीवन चरित्र आदि खडीबोली में लिखे गए थे जिससे खडी बोली और अधिक लोकप्रिय हो गई थी। द्विवेदी युग में गद्य की भाषा खडीबोली और पद्य की ब्रजभाषा जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उचित तथा प्रासंगिक नहीं है, अत: पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कामता प्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण के आधार पर खडी बोली को शुद्ध और परिष्कृत करने के लिए प्रेरणा भी दी। इसलिए द्विवेदी युग को हिंदी पद्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। नाटककार जयशंकर प्रसाद कथाकार प्रेमचंद और गुलेरी, समालोचक-निबंधकार बाबू श्यामसुंदर दास, आ. रामचंद्र शुक्ल आदि इसी युग की देन है।

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खडीबोली में कविता लिखना शुरु किया। इस युग में काव्यभाषा का ब्रजभाषा से खडीबोली में परिवर्तन का इतिहास ही इस बात का साक्षी है कि खडीबोली में परिपक्वता, व्यवस्था और मधुरता है। जिसके दिशा निर्देशक आ. द्विवेदी ही थे जिनेंने सुबोध, शुद्ध और रसानुरुप भाषा का रुप संवारा।

5) **विषय-वस्तु का वैविध्य :**

द्विदी युग में नये विचार, नये नये विषयों तथा काव्य की नई भूमि का स्पर्श करने का प्रयास किया गया। इस युग के कवियों ने विषय की दृष्टि से नए-नए क्षितिजों को स्पर्श कर वर्ण्य विषय का गहरा और विविध युक्त विस्तार किया। प्रस्तुत काव्य में परंपरागत नायिका-भेद के साथ अन्य विषय पर लिखा गया साथ ही नये विषयों को भी स्थान मिला। जीवन और जगत का विस्तृत क्षेत्र कविता का वर्ण्य विषय बन सकता है। जैसे परोपकार, मुरली, कृषक, सत्य,लडकपन, बालक, ईर्ष्या, प्रणय, निद्रा, मूर्ख मानव, भारतीय आदि।

अब तक प्रकृति केवल उद्दीपन के घेरे में सिमटकर नायक-नायिका के भावों को अधिक उद्दीप्त करने में सहायक थी। वही प्रकृति कवियों के मनोहर भावों का आलंबन बन गई। मैथिलीशरण गुप्त हरिऔध, आ. रामचंद्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह, लोचन प्रसाद पाण्डेय, गिरिधर शर्मा, नवरत्न आदि ने प्रकृति को स्वतंत्र रुप से चित्रित किया। यद्यपि द्विवेदी युग के प्रकृतिचित्रण में इतिहासवृत्तात्मकता के कारण शुष्कता गई है, फिर भी उसमें नयापन और ताजगी है। 'प्रिय प्रवास' के प्रारंभ में ही संध्या का यह चित्र कितना मनोहर है -

''दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला,

तरू शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।''

सामान्य विषय का चयन कर इसी प्रवृत्ति को बढावा दिया। जिससे हिंदी कविता इसी युग में भक्ति श्रृंगार और देशभक्ति की सीमा से निकलकर सृष्टि में प्रसार पा गई।

6) **हास्य-व्यंग्य :**

भारतेंदु युग के कवि जिंदादिली, चुहल बाजी और फक्कडपन स्वभाव के थे। फलस्वरुप उस युग में प्रचुर मात्रा में हास्य-व्यंग्ययुक्त साहित्य की रचना हुई। आ. द्विवेदी का युग नियम, मर्यादा, संयम, नैतिकता और आदर्श का युग होने के कारण उनके व्यक्तित्व का प्रभाव काव्य पर पडा। जिससे पूर्व की अपेक्षा सयंत और मर्यादित रुप में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति इस युग में दिखाई देती है। हास्य-व्यंग्य के राजनीतिक शोषण, सामाजिक कुरीतियाँ, धर्मांडंबर, लकीर की फकीरी, विदेशीयता का अंधाकरण, फैशन परस्ती, व्यभिचार आदि विषय रह चुके हैं। द्विवेदी युग के बाबू बालमुकुंद गुप्त सशक्त व्यंग्यकार है। लॉर्ड कर्जन ने एक बार भारतीयों को झूठा कह दिया था, उसी पर व्यंग्य देखिए।

''हमसे सच की सुनो कहानी जिससे मरे झूँठ की नानी।
सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहाँ तमीज।
औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उडाना।
ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।

नाथूराम शंकर शर्मा द्विवेदी युग के हास्य-व्यंग्यकार है। जिनका 'गर्भ रण्डा रहस्य' ग्रंथ बालिका विधवा के माध्यम से समाज की पोल खोलने में सफल हुआ है। इस ग्रंथ में आर्य समाज की दृष्टि से अपनी सभ्यता, संस्कृति को छोडकर पश्चिम का अंधानुकरण करनेवालों की खिल्ली उडायी गई है। यहाँ तक की कृष्ण को भी पाश्चात्य फैशन में देखना चाहते हैं -

गौर वर्ण वृषभानसुता का काढ़ो काले तन पर तोप।
नाथ उतारो मोर मुकुट को, सिर पर सजो साहिबी टोप।।
पौडर चंदन पौंछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय।
अंजन आँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय।।

कृष्ण के माध्यम से विदेशियों की नकल करनेवाले भारतीयों का मजाक उडाया है।

7) **इतिवृत्तात्मकता :**

इस युग में सुधार, देश-प्रेम, सदाचार, इमानदारी, समाज की उन्नति के साधन, शिक्षा का स्वरूप, व्यापार-उद्योग आदि विषयोंपर पद्यात्मक निबंध लिखे गये। जिससे इस युग की कविता में इतिवृत्तात्मकता आ गई। फलस्वरूप इस युग के काव्य पर यह आरोप लगाया गया कि इसमें अत्यधिक नैतिकता-मर्यादा और उपदेशों को भरभार होने के कारण यह काव्य रसहीन होकर शुष्क विचार मात्र रह गया है। कवि

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने युग की हर समस्या को अपने काव्य में वाणी प्रदान की है। स्त्री-शिक्षा, अछूत-उद्धार, स्वदेशी, सादा-जीवन,श्रम का महत्त्व, गृहस्थ-जीवन, गुरुकुल प्रणाली आदि अनेक विषयों पर उन्होंने अपनी कलम चलाई है। साकेत के सीता द्वारा कहे गये गीत में गाँधीवाद का प्रचार है। जिसमें सीता स्वयं कहती है-

''मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।''

इसके साथ ही इसमें आदिवासियों के प्रति सहानुभूति, चर्खा उद्योग, वन्यजीव से प्रेम आदि समस्याओं का उन्होंने समाधान प्रस्तुत किया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विचारो की अभिव्यक्ति और उपदेशों की भरमार, सदाचार की बातों का वर्णन आदि के कारण इस युग का काव्य इतिवृत्तात्मक हो गया है। लेकिन इसमें इतिवृत्तामकता के साथ-साथ काव्यात्मकता भी है।

8) **काव्य रुप :**

द्विवेदी युग में कवियों ने सभी प्रचलित काव्य-रुपों का प्रयोग किया है। रीतिकाल और भारतेंदु काल में अधिकतर मुक्तक रुप में ही काव्य लिखा गया किंतु द्विवेदी युग में मुक्तक के साथ-साथ प्रगीत एवं प्रबंध काव्य भी रचे गए। हरिऔंध कृत 'प्रिय प्रवास', गुप्त के 'साकेत', 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'किसान', प्रसाद कृत 'प्रेम-पथिक', 'सियारामशरण गुप्त के 'मौर्य विजय', रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन', गोकुल चंद्र शर्मा कृत 'गांधी गौरव' इस युग की प्रबंध कृतियाँ हैं। इनके अलावा 'विकट भट', 'केशों की कथा', 'शकुंतला जन्म', 'सरगो नरक ठिकाना नहीं', 'रुक्मिणी संदेश', 'सती-सीता', 'वीर पंचरत्न' आदि अनेक पद्य-कथाओं की रचनाएँ प्राप्त होती है। मुक्तक काव्यों से अनेक विषयों में सम्बद्ध पद्य रचे गए। शंकर तथा हरिऔंध जी ने समस्यापूर्ति के रुप में सुंदर कविता का सृजन किया है। साथ ही मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय और माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने प्रगीतों की रचना कर उस क्षेत्र में प्रवेश किया।

9) **छंद-योजना :**

इस युग के काव्य में विषय-वस्तुको विविधता के समान ही धंदो का भी बहुमुखी प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, रोला, छप्पय, लावनी, कुण्डलियाँ आदि छंदों के साथ-साथ नए और पुराने छंदों को जोड दिया गया। इसके साथ ही संस्कृत के वर्णवृत्त, उर्दू की बहरों को भी अपनाया गया। हरिऔंध जी ने अपने 'प्रिय-प्रवास' में संस्कृत के सभी गण-वृत्तों का अत्यंत प्रवाहमय प्रयोग किया है। गुप्तजी, शंकर और हरिऔंध आदि ने वर्णित छंद, उर्दू छंद, चौपदे, कवित्त, कुण्डलियाँ, सवैया आदि का सुंदर प्रयोग किया है।

उपर्युक्त प्रवृत्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी युगीन काव्य असल में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का काव्य होने के साथ-साथ उसमें धर्म, प्रांत और संप्रदाय से परे राष्ट्र का चिंतन निहित है। देश के लिए मर-मिटने की भावना है। कुरीतियों, मिथ्या, आंडबरों से मुक्त समाज को देखने की कामना है। मानव-मात्र

के प्रति, उसके दुख दर्द के प्रति सार्वदेशिक संवेदना की अभिव्यक्ति इस काव्य के माध्यम से होती है। इस युग के काव्य की भूमि भी विस्तृत और व्यापक है। युगीन काव्य की एक सर्वप्रमुख विशेषता दिखाई देती है और वह है प्रत्येक विषय पर काव्य करने की संभवनायें। आ. द्विवेदी के सफल साहित्यिक नेतृत्व का ज्ञान भी इसी काव्य-परिचय से मिलता है जिससे सैकडों वर्षां से चली आई काव्य भाषा ब्रज को हटाकर 'खडीबोली' को गद्य-पद्य में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

1.2.3 छायावादी कविता-परिवेश, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य-प्रवृत्तियाँ :

हिंदी काव्य की छायावादी धारा हिंदी साहित्य की संपन्नता का प्रतीक मानी जाती है। इस काव्य आंदोलन का प्रवर्तन किस कवि की कौनसी कविता के साथ किस समय हुआ यह बडा विवादास्पद प्रश्न है। वैसे देखा जाए जो छायावाद मूलत: अपने आप में अस्पष्ट और विवादों के घेरे में हैं। अत: यह कहना कठिन है कि अमुक कवि ही छायावाद के प्रवर्तक कवि है। हिंदी के मूर्धन्य आलोचकों ने अपने अपने दृष्टिकोण से छायावाद के प्रवर्तक कवि और उसकी कविता पर विचार किया है। आ. शुक्ल मैथिलीशरण गुप्त मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट, तथा पदुमलाल बक्षी को छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं। श्रीपालसिंह क्षेत्र ने प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक माना है। कुछ लोग पंत और निराला को छायावाद का प्रवर्तक कवि मानते हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुकि काल का तृतीय उत्थान छायावाद युग के नाम से जाना जाता है। द्विवेदी युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का रुप-रंग परिवर्तित हुआ और उसके बाद जिन प्रमुख प्रवृत्तियों को प्राधान्य मिला वे छायावाद युग की थी। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूल दृष्टि एवं साहित्यिक मान रुढिग्रस्त हो गये और नवीन सूक्ष्म सौंदर्यशाली दृष्टि का विकास हुआ।

छायावादी रचनाएँ इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। कवित्व की दृष्टि से अनुभूति की तीव्रता, सूक्ष्मता और अभिव्यंजनाशिल्प के उत्कर्ष की दृष्टि से यह काव्य-संचय सर्वश्रेष्ठ है। छायावादी काव्य में अपने युग के जन-जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति मिलती है।

- **युगीन परिवेश :**

राजनीतिक चेतना :

राजनीतिक चेतना का तृतीय काल प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से प्रारंभ होता है। इस महायुद्ध के बाद अंग्रेजों के रोलेट-एक्ट-कानून की दमनपूर्ण नीति का भारत की सभी जातियों ने घोर विरोध किया था। सन 1920 में तिलक के देहावसान के बाद काँग्रेस का नेतृत्व पूर्ण रुप से गांधीजी के हाथ में आ गया। गांधीजी ने अहिंसात्मक उपायों से स्वतंत्रता प्राप्ति को लक्ष्य बनाया। महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम में मानवतावाद को प्रमुख स्थान दिया। महात्मा गांधी ने अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिंदु मस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारीका विरोध आदि बातों को बढ़ावा देते हुए रचनात्मक आंदोलन की नींव रख दी। राष्ट्रीय एकता एवं देशव्यापी राजनीतिक चेतना में हरिजन आंदोलन जमींदारी प्रथा का विरोध एवं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह कारगर सिद्ध हुए। इसी युग में बंगाल के

रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने साहित्य द्वारा मानवतावाद का प्रचार आरंभ किया। इस प्रकार राजनीतिक चेतना के इस तृतीय उत्थान में गांधी और रवींद्र दो महान व्यक्ति हुए जिन्होंने युग की विचारधारा को बडे व्यापक रुप से प्रभावित करते हुए मानवतावाद का प्रचार तथा प्रसार किया।

● सामाजिक व्यवस्था का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान (सन 1916 से 1936) में सामाजिक क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्त्व बढ़ा। वैसे देखा जाए तो राजनीति में मानवतावाद को आधार बनाया जाने के कारण उसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। इस समय तक अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हो चुका था। फलस्वरूप बडे-बडे विचारक व्यापक दृष्टिकोण को लेकर साामजिक व्यवस्थापर चिंतन-मनन करने लगे थे। गांधीजी की अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिंदु मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार जमींदारी का विरोध आदि क्रियात्मक योजनाएँ सामाजिक उत्थान के लिए कारगर सिद्ध हुई। इस युग में पश्चिमी संस्कृति के विरोध में और भारतीय संस्कृति के प्रतीक स्वरूप खादी उच्च साामजिक भावनाओं की प्रतीक बनी। इस वैदिक उत्थान-काल में आध्यात्मिक भावना का विकास हुआ। यह युग अरविंद, रवींद्र और गांधी का युग कहलाता है। महात्मा गांधी ने ग्रामोद्धार को महत्त्व देते हुए औद्योगिकता का विरोध किया। जातिभेद और अछूतों के प्रति अत्याचार से उनका हृदय व्यथित हो रहा था।

इस युग के दूसरे महान विचारक, समाज-सुधारक एवं मानवतावाद के समर्थक विश्वकवि रवींद्र हुए। इनकी कविता में मानवतावाद बडे व्यापक रुप में अभिव्यक्ति होने के कारण वे विश्वकवि कहलाए। इनकी मानवतावादी भावना के प्रमुख रुप हैं, विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता, अंतर्राष्ट्रीयता, मानव दुख निवारण और जातिभेद निर्मूलन आदि। इस युगकी सामाजिक विचारधारा को प्रभावित करनेवाला तीसरा महान व्यक्तित्व योगिराज अरविंद का है। श्री. अरविंद मानव जाति के विकास के लिए योगसाधना पर बल दिया।

इस युग में सामाजिक व्यवस्था में बडे ठोस परिवर्तन हो रहे थे और उनके प्रभाव समाज के साथ साहित्य पर भी पड रहा था। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान में सामाजिक अवस्था का मुख्य रुप मानवतावादी भावनाओं में केंद्रीत हो गया और सामाजिक कुरीतियों के निवारण के अंतर्गत सन 1929 में शारदा एक्ट द्वारा बलविवाह का निषेध हुआ। सन 1935 में 'गवर्नमेण्ड ऑफ इंण्डिया एक्ट' द्वारा अछूतों को मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अलावा विधवा विवाह इत्यादी के संबंध में भी कानून बने। नर-नारी की समानता, एक विवाह, विधवा विवाह इत्यादी का विकास पश्चिमी विचारधारा के फलस्वरूप हुआ ।

●आर्थिक स्थिति का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :

तृतीय उत्थान में हम देखते हैं कि अंग्रेजों की व्यापारी नीति से भारतीय पूँजीवाद ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग देना आरंभ किया। इसी युग में यंत्रों के विकास के कारण बेकारी बढ़ी। धीरे-धीरे वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा क्योंकि मध्यवर्ग और मजदूर वर्ग में राजनीतिक चेतना प्रवेश कर चुकी थी।

● धार्मिक स्थिति का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :

तृतीय उत्थान में गांधी, रवींद्र और अरविंद द्वारा मानवतावाद ही विश्वधर्म के रुप में स्थापित हुआ। यह मानवतावाद विश्व-मानवतावाद ही था। फलस्वरूप गांधीजी में धार्मिक समन्वय का रुप हम देख पाते है। धीरे-धीरे आर्थिक प्रगति और औद्योगिक विकास के कारण मानवतावादी विचारों में निम्न एवं शोषित वर्ग को महत्त्व दिया जाने लगा। गणतंत्र के आविर्भाव के साथ ही असांप्रदायिक जनवादी शासन की नींव पडी।

साहित्यिक परिवेश :

नवीन शिक्षा-पद्धति, अंग्रेजी प्रभाव और अंग्रेजी से प्रभावित बँगला साहित्य के संपर्क ने व्यक्तिवादी भावना को जाग्रत किया। इस युग के काव्य में द्विवेदीयुगीन नैतिकता और स्थूलता की प्रतिक्रिया दिखायी देती है, तो दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर भी सुनायी देता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवियों ने विदेशी शासन का विरोध किया और जनता में आत्मविश्वास की भावना जगायी। यह विद्रोह छायावादी कवियों में भी व्यापक रुप में दिखायी देता है। उन्होंने विषय, भाव, भाषा, छंद आदि सभी क्षेत्रों में नये मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। नयी शिक्षा ने असंख्य संभावनाओं को उजागर तो किया किंतु उन्हे मूर्तरुप देने के अवसर न मिलने के कारण व्यक्तिवादिता बढ़ी। इसलिए छायावादी कवियों की आरंभिक रचनाओं में निराशा और कुंठा का स्वर दिखाई देता है। छायावादी कवियों के क्षेत्र व्यापक होने के कारण उनके काव्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति व्यापक मानवीय स्तर पर हुई।

● छायावाद के प्रमुख कवि तथा रचनाएँ :

छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक विद्रोह की भावना अभिव्यक्त हुई है। छायावादी कवियों ने प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श एवं सूक्ष्म दृष्टिकोण अपनाया है। छायावादी काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति अपनायी जाने के कारण कल्पना की ऊँची उडान दिखायी देती है। इन कवियोंने द्विवेदी युगीन भाषा-परिष्कारसे बहुत आगे बढकर भाषा की लाक्षणिक और अभिव्यंजनात्मक क्षमता को उद्घाटित किया। छायावादी काव्य में रीति शैली के सभी प्रमुख तत्त्वों जैसे वैयक्तिकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, कोमलता आदि का समावेश हुआ है। प्रतीकों के प्रयोग, नूतन उपमाओं का प्रयोग, मुक्त छंदों का प्रयोग, अभिव्यंजना की सांकेतिकता और वक्रता छायावादी कवियों की अन्यतम विशेषताएँ हैं। काव्यरुपों की दृष्टि से देखा जाए तो यह काव्य परंपरा अत्यंत समृद्ध है। छायावाद के प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाओं का संक्षेप में परिचय इस प्रकार है-

1) **जयशंकर प्रसाद** (1890-1937) :

कवि प्रसाद जी का जन्म काशी के संपन्न घराने 'सुंघनी साहू' में हुआ था। इन्होंने आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की और फिर घर पर ही संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी का अध्ययन किया। प्रारंभ में इन्होंने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं, किंतु बाद में खडीबोली में कविता करने लगे। इनकी

प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'चित्राधार', 'कानन-कुसुम', 'महाराणा का महत्त्व','करुणालय', 'प्रेम प्रथिक', झरना, आँसू, लहर, कामायनी आदि।

'चित्राधार' में प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाएँ संकलित हैं। इसके प्रथम संस्करण में ब्रजभाषा और खडीबोली की कविताएँ तथा दूसरे संस्करण में केवल ब्रजभाषा की कविताएँ रखी गयी हैं। 'चित्ताधार' में पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों का इतिवृत्तात्मक वर्णन, प्रकृति का स्वतंत्र रुप में चित्रण, प्रेमानुभूतियों तथा भक्ति भावना का निरुपण मिलता है। 'महाराणा का महत्त्व' में महाराणा प्रताप के औदार्य एवं शौर्य का वर्णन मिलता है। 'कानन-कुसुम' में स्फूट कविताओं का संकलन है। अनेक कविताओं में ऐतिहासिक एवं पौराणिक विषय-चर्चा के साथ साथ प्रकृति-चित्रण एवं मानवीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

'झरना' प्रसाद जी की विभिन्न भावनाओं से सम्बद्ध काव्य-ग्रंथ है। जिसमें 24 कविताएँ संग्रहीत हैं। कवि प्रसाद जी ने प्रकृति की मंजुल मूर्ति, सुकोमल प्रणय-भावना और रहस्यात्मकता का निरुपण किया है। इसमें कविने अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। 'प्रेम पथिक' प्रसाद की आरंभिक रचनाओं में से है। जिसमें कविने प्रेम की महत्ता प्रतिपादित की है। श्रीधर पाठक कृत 'एकांतवासी योगी' से इसकी कथा मिलती-जुलती है। प्रारंभ में यह काव्य ब्रजभाषा में और फिर आगे चलकर खडीबोली में परिवर्तित कर दिया गया। यह लघु प्रबंध-काव्य प्रणय भावना से ओतप्रोत है। 'आँसू' प्रसाद जी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। वास्तव में यह विप्रलंभ-शृंगार की प्रस्तुति है। यह विरही हृदय का भावोच्छवास है। जिसमें अतीत को स्मृतियों के माध्यम से प्रथम दर्शन से लेकर वियोग तक की अनुभूतियों को अभिव्यंजित किया है। अतीत की स्मृतियों में खोलकर अज्ञात प्रियतम की याद में 'आँसू' बहाये गये है। जिस 'आँसू' को प्रसाद जी ने 'मस्तक की घनीभूत पीडा' कहा है-

'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी. छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।'

इसमें प्रसादजी ने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित करने का प्रयास किया है। कवि की वैयक्तिक पीड़ा विस्तृत तथा व्यापक होकर विश्व-पीडा में परिवर्तित हो जाती है। प्रसाद जी आँसूओं की वर्षा से मनुष्य के शुष्क जीवन को सिक्त कर एक नये आशामय प्रभात की झलक दिखलाते हुए कहते हैं-

सबका निचोड लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिमकण-सा,आँसू इस विश्व सदन में।।

'आँसू' के बाद इनकी दूसरी रचना 'लहर' है जिसमें कई कविताओं का संग्रह है। इसमें अनुभूति के साथ-साथ चिंतन की भी प्रधानता है। इसमें प्रेम, यौवन, सौंदर्य, मिलन, वियोग, प्रकृति आदि विभिन्न विषयों से सम्बद्ध कविताएँ हैं। 'लहर' में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है-

बीती विभावरी जाग री। अंबर पनघट में डुबो रही।
तारा घट ऊषा नागरी। खगकुल 'कुल कुल' सा बोल रहा।।

प्रसाद जी की अंतिम कृति 'कामायनी' उनकी श्रेष्ठतम रचना है। इस महाकाव्य में आदि पुरुष 'मनु' की जीवनगाथा चित्रित की गई है। 'कामायनी' मनु और श्रद्धा के मिलन-वियोग, पुनर्मिलन, पुनर्वियोग तथा मनु और इडा के मिलन की साधारण-सी घटनाओं में ही सिमटी हुई कहानी है। मनु मानव-मन के, श्रद्धा हृदय और इडा बुद्धि का प्रतीक है। मनु में पुरुष की मननशीलता, स्वार्थ परता और कामुकता विद्यमान है तो श्रद्धा नारीत्व की सजीव और साकार मूर्ति है। 'कामायनी' मानव मन की आंतरिक भावनाओं का द्वंद्वात्मक विस्तार है। जहाँ मन की यात्रा चिंता से प्रारंभ होकर आनंद पर समाप्त होती है। कवि प्रसाद जी ने प्रस्तुत काव्य में बुद्धि और हृदय का समन्वय किया है। श्रद्धा के कारण मनु को आनंद की उपलब्धि हो जाती है। छायावादी तत्त्वों की पूर्ण परिणति प्रस्तुत रचना में हुई है।

2) **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** (1897-1962) :

कवि निराला का जीवन अनेक अभावों तथा विपत्तियों से घिरा रहा लेकिन उन्होंने कभी किसी विपत्ति से सामने झुकना नहीं सीखा। अभावों की तीव्र एवं मर्मांतक व्यथा को कहते हुए एक से बढ़कर एक रचनाओं का सृजन करने में निमग्न रहें। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'अनामिका, 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'अपरा', 'नये पत्ते', 'अर्चना','आराधना', 'गीत गुंज' और 'सान्धकाली' आदि। 'सांध्यकाकली' में कवि की सन 1954 से 1958 तक की रचनाओं का संकलन है। इस सभी कृतियों में से 'अनामिका' 'परिमल', 'गीतिका' और 'तुलसीदास' तो प्रधान रुप से छायावादी रचनाएँ हैं। 'बेला' और 'नये पत्ते' की कुछ कविताएँ तथा 'कुकुरमुत्ता' प्रगतिवादी रचनाएँ हैं। 'अनामिका' और परिमल' कविता संग्रहों में प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य चित्रण, रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ दिखायी देती है। 'परिमल' की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। इसमें प्रेम, करुणा और वीरताप्रधान कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं में इनके वैयक्तिक संघर्ष की छाया है। प्रकृति-निरुपण से सम्बद्ध कविताओं में 'जुही की कली', 'संध्या सुंदरी', 'बादलराग' आदि प्रसिद्ध कविताएँ 'परिमल' में संकलित की गयी है। 'परिमल' में छायावाद के साथ-साथ प्रगतिशील तत्त्वों का समावेश भी है। 'विधवा', 'भिक्षुक' कविताओं में पीडित समाज के प्रति सच्ची सहानुभूति व्यक्त की गयी है। 'विधवा' का करूणाजनक चित्र प्रस्तुत किया है-

> वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
> वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन।
> वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
> वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन।
> दलित भारत की ही विधवा है।।

कवि निराला शब्द चित्र खींचने में कुशल है। भिक्षुक का चित्र इस प्रकार खींचा है-

> वह आता-
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
> पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को– भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।।

'अनामिका' में कथ्य और शिल्प का नया प्रयोग किया गया है। 'सरोज-स्मृति', 'सम्राट के प्रति', 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी लंबी कविताएँ इसमें संकलित की गई है। 'सरोज-स्मृति' शोक गीत एक भावुक पिता की मूक अभिव्यक्ति है। जिसमें निराला जी ने अपने बेटी सरोज का बचपन, यौवन, विवाह, विवाह के उपरांत आकस्मिक सरोज की मृत्यु आदि का वर्णन किया है। 'राम की शक्कित-पूजा' एक लघु प्रबंधात्मक कविता है। यह निराला जी की ही नहीं बल्कि संपूर्ण छायावादी काव्य की एक बहुत बडी उपलब्धि है। इसकी कथा संक्षिप्त है, भाषा ओजपूर्ण है। निराला जी ने राम की सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हें आधुनिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। इसमें कवि ने ऐतिहासिक प्रसंग के द्‌वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है।

'तुलसीदास' निराला जी की इस रचना को लंबी कविता या खंडकाव्य-सा माना जाता है। इस रचना की कथा का आधार लोकप्रचलित वह गाथा है। जो पत्नी-फटकार से तुलसी को रामोपासक भक्त तुलसीदास बना देती है। निराला जी ने कुछ प्रगतिशील कहलानेवाली कविताएँ भी लिखी जिसमें 'तोडती पत्थर' प्रमुख है। जिसमें एक मजदूरनी का करूणामय चित्र अंकित है-

वह तोडती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर।।

निराला जी की 'कुंकुरमुत्ता' कविता जिसमें वर्ग-संघर्ष की ध्वनि है। इस कविता में कुकुरमुत्ता के माध्यम से पूँजीवादियों पर तीखा व्यंग्य किया है। गुलाब शोषक और कुकुरमुत्ता शोषित सर्वहारावर्ग का प्रतीक है। निराला जी की अन्य रचनाओं में 'बेला', 'अणिमा', 'अर्चना', 'नये पत्ते' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'अणिमा' में भक्तिपरक गीत हैं। 'बेला और नये पत्ते' में काव्य चेतना का विकास दिखायी देता है। 'बेला' में राष्ट्रीयता तथा दार्शनिकता की व्यंजना है। 'नये पत्ते' में सात व्यंग्य-प्रधान कविताएँ संग्रहीत हैं।

निराला जी की भाषा संस्कृत-गर्भित है, भाषा में ओज है। प्राचीन उपमानों का प्रयोग किया गया है। निराला के काव्य में एक साथ छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के दर्शन एक साथ हो जाते हैं।

3) **श्रीमती महादेवी वर्मा :**

आधुनिक मीरा' तथा 'वेदना की रानी' कही जानेवाली महादेवी जी रहस्यवाद के भीतर ही रही हैं। बाल्यकाल से ही भगवान बुद्‌ध के प्रति भक्तिमय अनुराग उनके हृदय में था। इनके प्रमुख काव्यसंग्रह हैं – 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', दीपशिखा', 'यामा', 'सप्तपर्णा' अदि। इनकी कविता में दुःख की तीव्र अनुभूति है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक के कविता संग्रहों में लगभग सवा दौ सौ मौलिक गीतों

का संकलन मिलता है। महादेवी जी पर बौद्‌ध धर्म का प्रभाव है। आप स्वतंत्र व्यक्तित्व न चाहकर अमरता को ही जीवन का ह्रास समझती है-

अमरता है जीवन ह्रास, मृत्यु जीवन का चरम विकास।।

प्रणय वेदना की मधुर पीडा की अनुभूति महादेवी जी को है। उन्होंने अपने दुःख हेय नहीं माना है। दुःख मनुष्य का जन्मसिद्‌ध अधिकार है। मनुष्य की चिर-वेदना का आरंभ जन्म से होता है, इसलिए वे अपने मिटने के अधिकार के आगे अमरत्व को भी नहीं चाहती है-

क्या अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे, यह मेरा मिटने का अधिकार।।

महादेवी जी के काव्य में प्रणयी हृदय की विभिन्न दशाओं एवं अवस्थाओं तथा रहस्य साधना के विभिन्न स्तरों को निरुपित किया गया है। अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन दुख प्रधान है। कवयित्री महोदवी जी अपना व्यक्तित्व मिटाने को ही परम लक्ष्य मानती है। उनके लिए नीर भरी दुख की बदली तथा दीपाशिखा बन जाना आध्यात्मिक साधना का प्रतीक है। 'नीहार' और 'सांध्यगीत' में साहित्य और संगीत का सुंदर समन्वय दिखायी देता है। 'रश्मि' में अनुभूति के साथ चिंतन और प्रकाश है। 'सप्तपर्णा' में वैदिक संस्कृत के विभिन्न काव्यांश हैं। इनकी भाषा और भावों में छायावाद काल की सुकुमारता और कोमलता के दर्शन हो जाते हैं।

4) **सुमित्रानंदन पंत** (1900-1977) :

इनका जन्म प्रकृति से संपन्न अल्मोडा में हुआ। प्रकृति की गोद में जन्मे-पले-बडे पंत निराला जी के शब्दों में हिंदी के 'सुकुमार कवि' है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत' 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'कला और बूढा चाँद' 'वाणी', चिदंबरा', 'लोकायतन' आदि। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'वीणा' में संकलित हैं। प्रकृति के सुंदर रुपों का चित्रण इसमें हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ रहस्यवाद की झलक भी इसमें दिखाई देती है। 'ग्रंथि' एक असफल प्रेम प्रधान दुखान्त खंडकाव्य है। इसमें पंत जी ने प्रेमपूर्ण विरहजन्य करुणा के अलावा दुखवाद का वर्णन किया है। पंत जी दुःख को ही कविता का मूल मानते हैं -

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड कर आँखो से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।

'युगवाणी' में प्रकृति की साधारण-सी वस्तुओं को भी अपनेपण के साथ चितारा है। 'युगवाणी' में नारी-स्वतंत्रता का भी संदेश है-

'मुक्त करो नारी को मानव! चिर-बंदिनी नारी को।
युग-युग की बर्बर कारा से, जननि सखी प्यारी को।।

'ग्राम्या' में गाँव-देहात का जीवनधारा का बडा सुंदर चित्रण किया है। पंतजी के अनुसार देश की संस्कृति के बीज गाँवो में ही छिपे हुए हैं। 'युगांत' में जहाँ पिछले युग के अंत का संकेत है वहाँ नये युग का संदेश 'युगवाणी' द्वारा दिया है।

पंतजी की उत्तरकालीन कृतियाँ हैं, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अणिमा, कला और बूढा चाँद और लोकायतन। 'स्वर्ण-धूलि में प्राचीन संस्कृति की ओर झुकाव है तो 'कला और बूढा चाँद' में कवि की अनुभूतियों के विभिन्न क्षण अंकित हैं। 'स्वर्ण-किरण' में अरविंद दर्शन को व्यक्त किया है। 'लोकायतन' गांधी जीवन पर आधारित दो खंडो तथा सात अध्यायों में विभक्त एक बृहदकार काव्य-ग्रंथ है। जिसमें कवि ने भारत के वर्तमान समाज को, सामाजिक जीवन में प्रतिबिंबित जनमानस को अंकित किया है।

● अन्य कवि :

उपर्युक्त छायावादी कवियों के अलावा अन्य उल्लेखनीय कवि हैं- मोहनलाल महतो 'वियोगी', भगवतीचरण वर्मा, नरेंद्र शर्मा और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'। वियोगी की कविताएँ 'निर्माल्य', 'एक तारा' और 'कल्पना' में संकलित हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा की काव्य-कृतियाँ हैं- 'मधुगण', 'प्रेम संगीत' और 'मानव'। रामकुमार वर्मा की 'अंजलि', 'रुपराशि', 'चित्ररेखा' और 'चंद्रकिरण' संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। नरेंद्र शर्मा की कविताएँ 'कर्णफूल', शूलफूल', 'प्रभातफेरी' और 'प्रवासी के गीत' नामक संग्रहों में संकलित हैं। 'अंचल' की कविताएँ 'मधुलिका' और 'अपराजिता' में संकलित हैं।

छायावादी कवियों के अतिरिक्त वर्तमानकाल में अन्य कवि भी आते हैं, जिन्होंने रहस्यात्मक भाव अभिव्यक्त किया है। इनकी रचनाएँ छायावाद के अंतर्गत न आकर 'स्वच्छंद धारा' के अंतर्गत आती है। इन कवियों में प्रमुख हैं - पं. माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सियाराम शरण गुप्त, पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, हरिवंशराय बच्चन, रामधारी सिंह 'दिनकर', ठाकूर गुरुभक्त सिंह और पं. उदयशंकर भट्ट। माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ है - 'पुष्प की अभिलाषा', 'हिमतरंगिणी', 'हिमकिरीटनी', 'जवानी', 'गंगा माँग रही है मस्तक' आदि। सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्य विजय' खंडकाव्य लिखा। इनकी कविताओं के संग्रह हैं - 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय' और 'मृण्मयी' आदि। 'आत्मोसर्ग', 'अनाथ', 'बापू' इनकी अन्य रचनाएँ हैं। सुभद्राकुमारी चौहान की काव्य कृतियाँ है। 'त्रिधारा', 'मुकुल', 'नवीन' की कृति है- 'कुंकुम'। हरिवंशराय बच्चन की काव्य कृतियाँ है 'मधुबाला', 'मधुशाला', 'मधुकलश', एकांत संगीत, निशा-निमंत्रण आदि। दिनकर की प्रथम रचना है। 'प्रणभंग यह प्रबंध काव्य है। अन्य कृतियों में 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'रेणुका' 'हुंकार' प्रमुख हैं। ठाकुर गुरुभक्त सिंह की श्रेष्ठ कृति 'नूरजहाँ' प्रबंध काव्य है। इनके कविता संग्रह हैं- 'सरस सुमन', 'कुसुमकुंज', 'वंशीध्वनि' और 'वनश्री' आदि। पं. उदयशंकर भट्ट ने 'तक्षशिला' और 'मानसी' काव्य कृतियों के अलावा विविध कविताएँ लिखी जो 'रामा' तथा 'विसर्जन' नामक संग्रहों में संकलित हैं।

● **छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ :**

छायावादी कविता ने पुरानी काव्य-परंपरा में परिवर्तन कर नवीनता की प्रतिष्ठा की यह निश्चित ही महान उपलब्धि है। विषयवस्तु, भाव-सौंदर्य, भाषा-प्रवाह, अभिव्यक्ति सौष्ठव आदि सभी क्षेत्रों में छायावादी काव्य का विकास होता रहा। रीतिकालीन नायिका-भेद तथा नख-शिख वर्णन को जडता के विरुद्ध छायावादी काव्य में नवीनता, स्फूर्ति, आवेश और सौंदर्य को मूर्तरुप देने की अपूर्व क्षमता है। काव्य प्रवृत्तियाँ का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि छायावादी काव्य अपने पूर्व और बाद के काव्य में अपना अलग तथा विशिष्ट स्थान रखता है।

1) **सौंदर्य चेतना :**

छायावादी कविता की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है- सौंदयानुभूति। छायावाद से पूर्व रीतिकाल, भारतेंदु युग तथा द्विवेदी यग में सौंदर्य के प्रति स्थूल दृष्टिकोण अपनाया गया। फल स्वरूप वह केवल बाह्य शरीरगत रहा। केवल नख-शिख और नायिका-भेदों में उलझा स्थूल तथा मांसल सौंदर्य का चित्रण किया जाता रहा। द्विवेदी युग ने इस मांसल सौंदर्य और अश्लीलता को पाकर आँखे मूँद ली और नैतिकता की दुहाई दे दी। यहाँ सौंदर्य का अनुभूति से कोई संबंध न रहकर केवल वस्तुगत रह गया। लेकिन छायावादी काव्य में अमूर्त अशरीरी सौंदर्य-प्रियता दिखायी देती है।

छायावदी काव्य ने प्राकृतिक सौंदर्य के माध्यम से मानव के आंतरिक सौंदर्य के दर्शन कराये। प्रकृति के विविध रुपों में इन कवियों ने अंतर्रात्मा की खोज की। यहाँ प्रकृति पर चेतना का आरोप किया गया है। निराला की संध्या सुंदरी में चेतनामयी नारी के दर्शन हो जाते हैं -

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह संध्या सुंदरी, परी-सी
धीरे धीरे धीरे।

इन कवियों के प्राकृतिक सौंदर्य में विस्मय की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। इसके साथ ही जीवन की समस्त भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ये कवि प्रकृति के माध्यम से ही करते हैं। कवयित्री महादेवी वर्मा जी को प्रकृति में करुणा और वेदना की अनुभूति होती है।

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया-सी काया बीतराग।

2) **नारी–सौंदर्य :**

छायावादी कवि अपने मन की सौंदर्य पिपासा प्रकृति के विभिन्न सौंदर्य चित्रों के माध्यम से ही शांत करता रहा है। इसी सौंदर्य दृष्टि से उन्होंने नारी को विविध रुपों में देखा है। छायावादी काव्य में नारी के शरीर का स्थूल सौंदर्य के साथ–साथ आंतरिक सौंदर्य के भी दर्शन हो जाते हैं। कहीं प्रकृति के माध्यम से नारी के अंग–प्रत्यंग को तो कहीं उसकी आत्मानुराग को चित्रित किया गया है –

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा–स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणी, त्रिवेणी लहरों का गान।।

3) **पुरुष सौंदर्य :**

नारी सौंदर्य के साथ–साथ पुरुष के विभिन्न भावों से मुक्त चित्र, शिशु सौंदर्य को भी इन कवियों ने अत्यंत सरलता के साथ अंकित किया है। पुरुष की विभिन्न स्थितियों का सौंदर्य और बच्चों की भिन्न–भिन्न मुद्राएँ तथा प्रकृति के मनोरम सौंदर्य चित्र सौंदर्य भावना को तृप्त करने के साथ साथ स्वस्थ सौंदर्य चेतना उत्पन्न करते हैं। 'कामायनी' में मनु का चित्र इइ प्रकार अंकित किया है।

अवयव की दृढ माँस–पेशियाँ।
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।।
स्फीत शिराएँ स्वस्थ रक्त का।
होता था जिनमें संचार।।

4) **प्रेम भावना :**

छायावादी कवियों ने प्रेम भावना का उदात्तीकरण किया है। उन्होंने प्रेम को स्त्री–पुरुष की वासना के कीचड से निकालकर व्यापक धरातल प्रतिष्ठित किया है। उनकी यह प्रेमभावना प्रकृति प्रेम, नारी–प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम, मानवप्रित आदि में दिखायी देती है।

प्रकृति प्रेम –

छोड द्रुमों की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को।

नारी प्रेम – नारी प्रेम की मूर्ति हैं, उसके हृदय में प्रेम तरंगे उठा करती है। इसलिए छायावादी कवि नारी प्रेम में स्वयं को विसर्जित कर देता है–

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे।

जब सावन धन सधन बरसते, इन आँखो की छाया भर थे।

आध्यात्मिक प्रेम - इस प्रकार का प्रेमभाव महादेवी वर्मा की कविताओं में दिखायी देता है। कवयित्री प्रेम की उस उच्च दिशा में पहुँचती है जहाँ प्रेम और प्रिय का कोई अंतर नहीं रह जाता -

मैं कण-कण में ढाल रही हूँ
मैं पलकों में पाल रही हूँ,
वह सपना सुकुमार किसी का।

मानव-प्रेम: सुंदर है विहग सुमन सुंदर

मानव तुम सबसे सुंदरतम। - सुमित्रानंदन पंत

5) **मानवतावादी विचारधारा :**

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में अपनी सूक्ष्म और तीव्र मानवीय संवेदना अभिव्यक्त की है। इस काव्य में मनुष्य की संकुचित जाति, वर्णभेद पर आधारित विचारधारा में व्यापक परिवर्तन आया। जिससे मनुष्य को केवल मनुष्य के रुप में देखने का नया अंदाज कवियों ने अपनाया। यहाँ तक की नारी को भी मनुष्य मानकर उसके बंधनों तोडने का आग्रह किया गया। निराली की 'भिक्षुक' कविता में सहज मानवीय संवेदना के दर्शन हो जाते हैं। 'बादलराग में किसानों के दु:खो से व्यथित होकर वे कहते हैं -

ऐ विप्लव के वीर।
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
चूस लिया है उसका सार
हाड मात्र ही है आधार।

पंत को दु:खी मानवता क्षुब्ध करती है, जिसके आगे ताजमहल का सौंदर्य भी फिका पड जाता है-

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।
जब विषण्ण निर्जीव पडा हो मानव-जीवन।।

इसलिए वे मानवतावाद में ही स्वर्ग के दर्शन करते हैं-

मनुज प्रेम से जहाँ रह सके मानव-ईश्वर।
और कौन सा स्वर्ग चाहिए मुझे धरा पर।।

6) **वैयक्तिकता :**

द्विवेदी युग में वर्णन प्रधान कविता में स्थूल का वर्णन होता था। जब कि छायावादी कविता में सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति पायी जाती है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता और वस्तुनिष्ठता की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी कविता भावात्मक एवं आत्मगत हो गई। द्विवेदी युग की कविता का बाहरी सामाजिक जीवन था, कवि बहिर्मुख होकर कविता लिखता था। लेकिन छायावादी कवि अंतर्मुखी हो गया। वह आत्मगत

होकर कविता लिखने लगा। जिससे उसमें वैयक्तिकता के दर्शन हो जाते हैं। इसी वैयक्तिकता के कारण प्रसाद में आनंदवाद, निराला में अद्वैतवाद, पंत में आत्मरति और महादेवी में परोक्षरुप में अपने प्रिय को भाव सुमन अर्पित करने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। प्रथम महायुद्ध के बाद देश में उच्छृंखलता और निराशा के कारण कवि का हृदय तीव्र अंतर्द्वंद्व से भर उठा था। अतीत का छूटना और वर्तमान अस्तव्यस्त होने के कारण एक प्रकार की निराशा घर कर गई। ऐसी स्थिति में आंतरिक विक्षोभ कवि की निजता या वैयक्तिकता बनकर उपस्थित हुई है। कवि का अहं, निराशा, दर्शन, चिंतन, क्षोभ, हर्ष, विस्मय सबकुछ खुलकर ईमानदारी से अभिव्यक्त हुए हैं। इसलिए निराला को विश्वास हैं-

अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है मेरे वन में मृदुल बसंत।।

पंत की 'ग्रंथि' कविता में उनकी प्रेमानुभूति सघन हो गई है तो प्रसाद की 'कामायनी' उनके निजी चिंतन की आत्माभिव्यक्ति बन गई है।

7) **युग-चित्रण :**

छायावादी कवियों ने प्राचीन जीवन मूल्यों के प्रति अनास्था प्रकट करते हुए थोथी नैतिकता, सडी-गली मान्यताएँ और परंपराएँ तथा सामंती संस्कृति के मानदंडों का घोर विरोध किया है। ये कवि लोक कल्याण और विश्व मानव के मंगल की कामना करते हैं। छायावादी कविता में प्रेम, सौंदर्य, करुणा, मानवता, नारी भाव आदि को नए रुप में प्रस्तुत किया गया। नारी के प्रति समानता का नारा लगाया गया तथा उसे मध्यकाल की दासता से मुक्त करने की इच्छा प्रकट की गई इसलिए पंत करते हैं -

'योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।

इसप्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहे थे। प्रेम के संबंध में स्वच्छंदतावादी विचार पनप रहा था। व्यक्ति स्वातंत्र्य की माँग की जा रही थी। छायावाद में बुद्धि के विरुद्ध हृदय का और स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह चित्रित है।

8) **रहस्य भावना :**

छायावाद के मूल में रहस्यवाद के दर्शन हो जाते हैं। महादेवी वर्मा और प्रसाद जी का काव्य छायावाद रहस्यवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। पंत के प्रकृति चित्रण में भी रहस्य भावना छिपी हुई है। महादेवी जी भावना के क्षेत्र किसी प्रकार का अवरोध स्वीकार नहीं करती-

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।।

9) **वेदना की अभिव्यक्ति :**

छायावादी कवि प्रणय के साथ वेदना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। जिससे कवि का नाता पाठक से जुड जाता है। इस वेदना के कई रुप उपलब्ध होते हैं। यही वेदना कहीं अनंत वेदना, कहीं करुणा, कहीं निराशा के रुप में दिखायी देती है। प्रसाद और महादेवी में वेदना का दर्शन ही सेवावाद तथा अध्यात्मवाद है। प्रसाद और महादेवी की वेदानुभूति में निराशा का अंधकार और भौतिक दु:खों का संताप दिखायी नहीं देता। कभी वह वेदना शुद्ध आध्यात्म बनकर काव्य का विषय बन जाती है-

प्रिय, जिसने दुख पाला हो
वर दो, यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो
मैं दु:ख से श्रृंगार करुँगी।

कभी यही वेदना सृष्टिव्यापी विस्तार करती है -

मैं नीर भरी दु:ख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही, उमडी कल थी मिट आज चली।

पंत जीवन की नश्वरता के उपर दु:ख का भाव व्यक्त करते हैं तो निराला सामाजिक जीवन की कठोरता में निराशा और झुँझलाहट दर्शाते हैं-

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा जीवन वज्र कठोर।
देना जी भर कर झकझोर।।

प्रसाद और महोदवी की वेदनानुभूति के मूल में बौद्धों का दु:खवाद निहित है।

10) **श्रृंगारिकता और ऐंद्रिकता :**

छायावादी काव्य सौंदर्य और प्रेमानुभूति का काव्य है। इसीलिए कई विद्वान इसे स्वच्छंदतावादी के समकक्ष रखते हैं। लेकिन स्वच्छंदतावाद और छायावाद में अनेक स्तरों पर अंतर है। स्वच्छंदतावादी काव्य ने धार्मिक, नैतिक, और काव्यशास्त्रीय बंधनों का तिरस्कार किया था, जब की छायावादी काव्य में स्वच्छंदता कम और पुनरुत्थान अधिक है। इसमें रीतिकालीन श्रृंगारिकता और ऐंद्रियता कम और पुनरुत्थान अधिक है। इसलिए प्रसाद, पंत, निराला और महोदेवी की कविता में श्रृंगार का मांसल रुप भी मिलता है। यद्यपि उसपर दर्शन और संयम का आवरण चढा दिया गया है। प्रसाद लजीले सौंदर्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

तुम कनक-किरन के अंतराल में
लुक-छिप कर चलते हो क्यों?

अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
मधु सरिता-सी वह हँसी सरल
अपनी पीते रहते हो क्यों ?

11) **स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह :**

छायावाद के ूमल में स्थूल से अलगाव और सूक्ष्म से लगाव का भाव रहा है। छायावादी कवि काव्य में बहिर्मुखी अभिव्यक्ति से निराश हो चुके थे। उन्हें स्थूल और उपरी परत का चित्रण करना अच्छा नहीं लगता था। कविता के क्षेत्र में आत्मोन्मुखी अंतरंग की अभिव्यक्ति ही छायावाद का स्वरूप स्पष्ट करती है। छायावाद प्रारंभ से बाह्य स्थूल जीवन को उदासीन दृष्टि से देखता रहा है। छायावादी कवि स्वप्नजीवी होने के कारण उनकी दृष्टि स्थूल से विमुख होकर रहस्यानुभूति की ओर आकर्षित हो रही थी। प्रसाद, पंत, निराला और महोदवी के काव्य में सूक्ष्म को ही चित्रित किया गया है। पंत कहते हैं -

दृष्टि जब जाती हिमगिरी ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर।
धरा की यह सिकुडन भयभीत
आह कैसी है? क्या है पीर?

इसमें हिमालय की स्थूल भव्यता, महानता, विशालता, प्राचीनता आदि को न देखकर उसके अंतस की पीडा को कविने अपने भीतर महसूस किया। यही स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का चित्रण है।

12) **प्रकृति प्रेम :**

छायावादी कवि जीवन को अकृत्रिमता और सरलता की ओर ले जाना चाहता है। एक ओर वह पाश्चात्य विचारक, इमर्सन, वर्ड्सवर्थ कालरिज अदि के सरल जीवन आदर्शों से प्रेरित था तो दूसरी ओर जीवन को प्रकृति की ओर लौटा ले चलने के लिए प्रयत्नशील हो गया था। लेकिन उसका यह आग्रह स्थायी नहीं रह सका। कुछ विद्वान छायावाद का प्राणतत्व इस काव्य के प्रकृति-चित्रण को ही मानते हैं। पंत का 'पत्लव', प्रसाद का 'झरना', निराला की 'अनामिका', महादेवी की 'रश्मि' आदि रचनाएँ प्रकृति-प्रेम की परिचायक हैं। छायावादी कवि को प्रकृति का मानवीकरण करने में सफलता मिली है। छायावादी कवियोंने जीवन के कोलाहल से दूर विश्राम-भूमि के रुप में गोद की रुप में प्रकृति का अंकन किया है। इसलिए पंत कहते थे -

छोड द्रुमो की मृदु छाया, तोड प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।।

प्रसाद संसार में प्रणय से निराश होकर प्रकृति की गोद में लौट आना चाहते हैं-

ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी।
निश्छल प्रेम कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे।।

13) **राष्ट्रीय चेतना :**

छायावादी काव्य में देशप्रेम और राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति नवीन और मौलिक उद्‌भावनाओं के साथ हुई है। पराधीन देश को आजाद कराने के लिए अतीत गौरव और वर्तमान की विषम स्थितियों का चित्रण आवश्यक होता है। छायावादी कवि अपनी प्रकृति में भावुक है। फिर भी छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय चेतना के लिए काव्यमय अनुभूतियों को प्रेरक बनाकर प्रस्तुत किया है–

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।। – प्रसाद
मुझे तोड लेना बनमाली, उस पथ पर देना तू फैंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावे वीर अनेक।। – माखनलाल चतुर्वेदी

14) **भाषा और शैलीगत विशिष्टता :**

छायावादी काव्य का कला पक्ष नवीनता और ताजगी को लिए हुए है। छायावादी काव्य की भाषा में सूक्ष्म भावाभिव्यभिक्त की क्षमता, मानवीकरण, चित्रात्मकता, वक्रता, सूक्ष्मता आदि विशेषताओं से सजीव हो उठी है। इस काव्य की अभिव्यंजना पद्‌धति नई और मौलिक है। भाषा में चित्रात्मकता की शक्ति है –

शशि मुख पर घूँघट डाले,आँचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आये।। – प्रसाद

भाषा और शब्द शोधन की प्रवृत्ति प्रसाद, पंत, निवला और महादेवी वर्मा आदि में श्रेष्ठता के साथ मौजूद है। छायावादी कवियों की शैली में प्रतिकात्मकता और बिंबात्मकता देखते ही बनती है। इने प्रतीक भी प्रकृति से लिए गए हैं। जैसे सुख के अर्थ में फूल, दुःख के अर्थ में शूल, प्रफुल्लता के लिए उषा, उदासी के लिए संध्या, मानसिक द्वंद्व के लिए झंझा–झकोर आदि प्रतीकों के माध्यम से ये कवि भावाभिव्यक्ति करते हैं। इन्होंने प्राचीन अलंकारों के स्थान पर नये ढंग के अलंकारों का प्रयोग किया है। इस प्रकार छायावादी काव्य ने हिंदी साहित्य को नये भावों और नये शिल्पों से सुसज्जित किया फिर भी यह काव्य आंदोलन अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सका। इसके बावजूद मानवता, आदर्श, राष्ट्रयीता, नवीन सौंदर्य चेतना, नई अभिव्यंजना पद्धति आदि का छायावाद की उपलब्धियों में हमेशा मान रहेगा।

1.2.4 प्रगतिवादी कविता – परिवेश, प्रमुख कवि, तथा रवनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ

किसी भी साहित्य में कोई भी प्रवृत्ति अचानक अवतरित नहीं होती बल्कि प्रत्येक युग की नई विचारधारा अपनी–युगीन परिवेश की देन होती है।

● **राजनीतिक परिवेश :**

1857 ई.का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम व्यापक राष्ट्रीय भावना के अभाव में असफल होने से 1857 ई. में भारतीय संघ नामक एक संस्था का जन्म हुआ। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना जागृत करना था। 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना अखिल भारतीय स्तर पर राजनीतिक कार्य करने के उद्देश्य से हुई। कुछ समय बाद काँग्रेस द्वारा स्वराज्य की माँग शुरु करने के कारण अंग्रेजी शासन ने उनके विरुद्ध ऐसे आदेश जारी किए जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों की सद्भावना से भारतीय जनता का विश्वास उठता गया। 1905 में कर्जन ने बंगाल के दो तुकडे कर दिए जिसका काँग्रेस शासन ने कडा विरोध किया । छोटे-से जापान द्वारा रुस जैसे महान साम्राज्य को परास्त करने से भारतीयों के मन में भी आत्मविश्वास जगा।

काँग्रेस में नरमदल के साथ-साथ गल दल का भी उदय हुआ जो अंग्रेजों को प्रसन्न रखने के पक्ष में नहीं था। लाल-बाल-पाल नाम से प्रसिद्ध उग्रवादी नेता स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। सन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध हुआ और उसी समय महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति की बागडौर संभाली। युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेज स्वतंत्रता देने का वायदा भूल जाने से रोलट-एक्ट द्वारा दमन चक्र प्रारंभ हुआ। लगभग इसी समय 1917 में रुस में समाजवादी क्रांति के फलस्वरूप पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और शोषण के खिलाफ मानववाद तथा समानता का उदय हुआ। धीरे-धीरे किसान और मजदूर कांग्रेस के आंदोलन की ओर आकृष्ट होने लगे। 1931 के कराची अधिवेशन में काँग्रेस ने समाजवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने का संकल्प किया। 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा तथा श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए काँग्रेस पार्टी ने भारतीय ट्रेड युनियन काँग्रेस की स्थापना कर दी। 1935 तक आते-आते समाजवादी विचारधारा का प्रसार-प्रचार हुआ। भारत की इसी राजनीतिक परिवेश का तत्कालीन जीवन और साहित्य पर गहरा असर पडने के फलस्वरूप नए मार्ग का अनुसरण करने हेतु प्रगतिवादी साहित्य का जन्म हुआ।

● **सामाजिक परिवेश :**

मुस्लिम शासनकाल में समाज में जो भयावह स्थिति थी वह अंग्रेजी शासन में भी कायम रही। मुस्लिम काल धर्म परिवर्तन का भय था ही वही ईसाई धर्म का नया रुप लेकर इस काल में सामने आ गया। राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज ने समाज की जड़ता को तोड़ने के लिए सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह जैसी योजनाएँ बनायी। इसके पूर्व 1867 में प्रार्थना समाज द्वारा समाज को दोषमुक्त कर जगाने का प्रयास किया जा चुका था। वैसे सामाजिक जीवन में क्रांति करने का श्रेय स्वामी दयानंद जी को है।

रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंदजी ने रामकृष्ण मिशन द्वारा भारत और विदेशों में हिंदू धर्म और जीवन मूल्यों की रक्षा करने का प्रयास किया। जिससे भारतीय राष्ट्रीयता के अनुकूल वातावरण बना। 20 वीं सदी के प्रारंभ में स्वतंत्रता संग्रह और साामजिक सुधार का अभियान दोनों साथ-साथ चले। अंग्रेजी शिक्षा के बदौलत वैज्ञानिक आविष्कारों तथा यतायात के साधनों के कारण लोगों का आपस में संपर्क बढ गया और जातिप्रथा के बंधन शिथिल होने लगे। सन 1906 में भारतीय दलित समाज

की स्थापना हुई और फिर दलित वर्ग उत्थान, स्त्री शिक्षा, बाल-विवाह निषेध, जातिभेद निर्मूलन जैसे कार्य प्रारंभ हो गए। महात्मा गांधी द्वारा हरिजनों का उत्थान, समाज-सुधार जैसे रचनात्मक कार्य किए गए। अंततः इसी सामाजिक परिवेश के फलस्वरूप प्रगतिवादी साहित्य द्वारा मानव मात्र का जाति विहित और वर्ण भेद उत्थान करने का उद्घोष किया जाने लगा।

● साहित्यिक परिवेश :

युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा भारतेंदु हरिश्चंद्र से हिंदी के आधुनिक काल का प्रारंभ होता है। इन्होंने तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का गहरा अध्ययन कर प्रगतिवादी विचारधारा के कुछ तत्व अपने साहित्य में रोप दिए थे। इन्होंने अंग्रेजों की शोषक वाणिज्यवृत्ति पर कठोर प्रहार किया था -

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।

भारतेंदु के साथ साथ बालमुकुंद गुप्त, प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र आदि कवियों ने भी इस दिशा में पहल कर दी थी। समाज की बुराईयों को कवि सामने ला रहे थे। द्विवेदीयुग में भी समाज के प्रति लगाव का भाव बना रहा। महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये अभियान ने समाज, राजनीति और संस्कृति को समान रुप से प्रभावित किया। द्विवेदी युग के कवियों ने राजनीतिक पराधीनता, बिगडी हुई आर्थिक स्थिति, सामाजिक कुरीतियों तथा अशिक्षा पर अपनी लेखनी चलाई। इसीके प्रतिक्रियास्वरूप छायावाद का प्रारंभ हुआ। 1934 तक आते-आते हिंदी काव्य वर्ग संघर्ष से प्रभावित होने लगा। पूँजीवाद के अत्याचार, गांधीजी की हरिजन उद्धार योजना, श्रमिकों में चेतना आदि कारण प्रगतिवादी काव्य के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ।

● आर्थिक परिवेश :

अंग्रेज व्यापार बनकर भारत में आए और शासक बन बैठे। उन्होंने भारत के कुटीर उद्योगों को विनष्ट किया। जिससे भारतीय कुशल कारीगर और श्रमिक बेरोजगार हो गए। यातायात के साधनों के फलस्वरूप व्यापार बढ़ा पर किसान, मजदूर सामंतो के अत्याचारों में बुरीतरह पिस गए। साहुकार के कर्ज-भार से किसानों की कमर टुट गई। समाज में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग की स्थिति निर्माण हुई। इनमें से मध्य और निम्न वर्ग की खस्ता हालत हो गई। इस वर्ग का असंतोष दिखाने के लिए 1903 में और उसके बाद 1921 में महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन चलाया गया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेश प्रचार का नारा बुलंद हुआ। किसान और मजदूर संगठनों का जन्म हुआ जो उत्तम आर्थिक स्थिति के लिए संघर्ष करने लगे।

● प्रगतिशील लेखन आंदोलन :

सन 1917 की रुसी क्रांति ने सारे जगत को प्रभावित किया था। उस समय भारत में अंग्रेजी शासन का दमन-चक्र और श्रमिकों के शोषण पर आधारित पूँजीवाद अपनी चरमसीमा पर था। समाज का उच्च वर्ग निम्नवर्ग पर निर्मम अत्याचार कर रहा था। 1925 में यहाँ के युवकों ने साम्यवादी दल की स्थापना की। उस

वक्त हिंदी काव्यधारा छायावाद और रहस्यवाद की भावधारा में बह रही थी। 1930 में लाहौर काँग्रेस द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकार करने के फलस्वरूप व्यापक आंदोलन आरंभ हुआ। जिनमें देश के मजदूर, किसान अधिक मात्रा में शामिल हुए। महात्मा गांधी, सत्य अहिंसा के बलबुते पर जनजागृति कर रहे थे। इस समय देश के नेतृत्व में पूँजीपतियों का बडा सहयोग मिल रहा था। ऐसे साहित्यकारों ने भी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को पूर्ण स्वतंत्रता के साथ-साथ नया आयाम देने के लिए अपने संगठन बनाए।

1935 में डॉ. मुल्कराज आनंद, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य, जे. सी. घोष तथा एम्. सिन्हा जैसे नए लेखकों ने लंदन में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की। इस संघ ने अपने परिपत्र द्वारा सभी लोगों को अवगत कराया कि प्राचीन रुढिवादी विचार चरमरा रहे हैं, विश्वासों की जडें हिलती जा रही है और अब एक नये समाज का उदय होने जा रहा है। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय साहित्यकार जनजीवन में होनेवाले इस क्रांतिकारी परिवर्तन को शब्दबद्ध करें जिससे राष्ट्र की प्रगति में सहायक हों। हमें भारतीय सभ्यता की परंपरा की रक्षा करते हुए जीर्ण-शीर्ण प्रवृत्तियों की कडी आलोचना करनी है। अपनी आंदोलनात्मक एवं रचनात्मक कृतियों द्वारा वे साधन जुटाने है जो हमें लक्ष्य-पूर्ति में सहायक हो सकते हैं।

सन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में संपन्न हुआ जिसके अध्यक्ष थे मुन्शी प्रेमचंद। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में दुरावस्था की अनुभूति कर निर्जीवता और ऱ्हास की अवस्था दूर करने की बात उठायी। इसी समय नागपूर में भारतीय साहित्य परिषद का संमेलन भी हुआ। जिसमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, आ. नरेंद्र देव, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, अख्तर हुसैन रायपुरी आदि ने भाग किया। इन्होंने भारतीय लेखकों का आव्हान किया कि ''जीवित और शाश्वत साहित्य वही है जो जीवन को बदलना चाहता है और उसे उन्नति का मार्ग दिखाकर समूची मानवता की सेवा उसका मंतव्य है।''

1938 में रवींद्रनाथ टैगोर की अध्यक्षता में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन कलकत्ता में संपन्न हुआ। इस समय तक हिंदी के छायावादी कवियों का मोहभंग हो चुका था। कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने 1936 में अपनी रचनायें 'युगांत' और 'युगवाणी' में प्रगतिवार की पृष्ठभूमि स्वीकार कर ली थी। 1939 के द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप मानव मूल्यों को फासिज्म से बचाने की समस्या उपस्थित हो गई। इसलिए 1942 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का तृतीय संमेलन फासिज्म विरोधी संमेलन ही बन गया। 1943 में साम्यवादी नेता श्रीपाद अमृत डांगे की अध्यक्षता में संमेलन संपन्न हुआ। संघ के दिल्ली में संपन्न अंतिम अधिवेशन की अध्यक्षता डॉ. नीहाररंजन राय ने भूषित की। 1947 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन संपन्न हुआ। जिसके अध्यक्ष थे महापंडित राहुल सांकृत्यायन। अपने अध्यक्षीय मंतव्य में उन्होंने प्रगतिवाद का काम प्रगति के रास्ते खेलते हुए उनका पथ प्रशस्त करने की बात उठायी।

अखिल भारतीय हिंदी प्रगतिशील लेखक संघ का विस्तार प्रांतो और जिलों तक किया गया। इसके विभिन्न जिला और प्रांतीय संमेलनों की अध्यक्षता हिंदी के साहित्यकारों ने की। प्रगतिवादी, विचारधारा को प्रश्रय देनेवाली हिंदी में कुछ पत्रिकाएँ जैसे 'हंस', 'रुपाभ', 'जागरण' थी। इनमें प्रगतिवादी साहित्यकारों जैसे

रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, नरेंद्र शर्मा, शिवदास सिंह चौहान, अमृतराय आदि की रचनाएँ प्रकाशित होती थी।

● प्रमुख कवि तथा रचनाएँ :

प्रगतिवादी कवियों में निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल रामविलास शर्मा, शिवमंगलसिंह 'सुमन', त्रिलोचन, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र, शील आदि के नाम लिए जाते हैं। इनके अलावा दिनकर, पंत, अज्ञेय, रामनरेश मेहता, शमशेर बहादूर सिंह, धर्मवीर भारती, भारत भूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, अंचल आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। यहाँ प्रमुख एवं मौलिक रुप से प्रगतिवादी कवियों की चर्चा की जाएगी।

1) **निराला :** छायावादी काव्य के उद्‌भव-विकास के साथ ही निराला का उदय हुआ। लेकिन धरती से जुडे तथा संघर्षो, अभावों, संत्रासों से जुझने के फुलस्वरूप उनके काव्य में अनायास प्रगतिवादी तत्त्वों का समावेश हो गया है। इसलिए छायावाद से अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताएँ लिखी। इन कविताओं में छंद, भाषा और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त है। इनकी अधिकांश कविताएँ जैसे 'कुकुरमत्ता', 'गर्म पकौडी', 'प्रेम संगीत', 'रानी और कानी','खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नये पत्ते' इस प्रकार की कविताएँ है। इनमें प्रगतिशीलता लोकानुभूतियों के रुप में पाई जाती है। इन कविताओं की भाषा, मुहावरे, शैली लोक की है। इनमें लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, ये कविताएँ कवि को लोकजीवन से जोडती है। 'तुलसीदास' नामक रचना में भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प किया गया है। इसमें काव्य एवम् शिल्प के नए प्रयोग किए जाने के कारण यह रचना, प्रगतिशीलता को भी संस्पर्श करती है।

2) **नागार्जुन :** सन 1910 में तरौनी गाँव में जन्म हुआ। नागार्जुन की कविताएँ तीन प्रवृत्तियों से जुडी है। पहली प्रवृत्ति गंभीर कलात्मक संवेदनात्मक कविताओं को जन्म देती है। दूसरी प्रवृत्ति प्रगतिवादी कविताओं को जन्म देकर सामाजिक, विद्रुपता, राजनीतिक अव्यवस्था तथा धार्मिक अंधविश्वास पर प्रहार करती हैं। तीसरी प्रवृत्ति उपदेशात्मक कविताओं को जन्म देती है। शिक्षा पद्धति पर व्यंग्य करते हुए वे 'युगधारा' में लिखते हैं -

घुन खाये शहतीरों पर बारहखडी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

प्रगतिवादी कविताओं में प्रमुख है - 'बादल को घिरते देखा है, 'पाषाणी', 'चंदना', 'रवींद्र के प्रति', 'सिंदूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दंतुरित मुस्कान'।

3) **केदारनाथ अग्रवाल :** 9 जुलाई 1911 को कमासिन जिला बांदा में जन्मे कवि केदारनाथ अग्रवाल सशक्त प्रगतिवादी कवि है। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' कविता संग्रह की 'माझी न बजाओ वंशी', 'बसंती

हवा' जैसी कविताओं में प्रगतिवादी स्वर मुखर हो उठा है। सर्वहारा जनता का रेखाचित्र, प्रकृति चित्र, पीडित मानवता का चित्र इनकी कविताओं में द्रष्टव्य हैं।

उदा i) 'अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है।
संज्ञाहीन, अर्थहीन
बेकार, चिर-फटे टुकडों सा पड़ा है।'

ii) 'आज नदी बिलकुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पडा था।
मैने उसको नहीं जगाया।
दबे पाँव वापस घर आया।' (फूल नहीं रंग बोलते हैं)

iii) शर्म से आँखे न उठती,
शेष से छाती धधकती
और अपनी दासता का -
शूल उर को छेदता है,
बाप बेटा बेचता है।

4) **रामविलास शर्मा :** 1912 में झंसी में जन्मे अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। प्रगतिशील लेखन संघ के मंत्री तथा 'हंस' के संपादक का उत्तरदायित्व निभाया। कलम के धनी, धरती और संस्कृति से जुडे, गद्य-पद्य दोनों विधाओं में समान भाव से लेखनी चलायी है। सामाजिक संवेदना को अंतर्भूत कर सरस प्रवाहमयी भाषा में व्यक्त करने में अद्‌वितीय है। खेत में काम करनेवाले मजदूरों का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

छोटासा सूरज सिर पर बैसाख का
काले धब्बों से बिखरे वे खेत में,
फटे अंगरखे में, बच्चे भी साथ ले -
ध्यान लगा सीला चमार है बीनते,
खेत की कटाई की मजदूरी,
इन्होंने जोता, बोया, सींचा भी था खेत को।

5) **त्रिलोचन :** 1917 में जन्मे त्रिलोचन मुख्यत: आत्म-विश्लेषण के कवि है। इन्होंने किसानी जीवन और परिवेश का चित्रण किया है। 'मिट्टी की बारात' लेकर प्रगतिवादी कवियों के खेमे में शामिल हुए त्रिलोचन की कविताओं में धरती की गंध और सहजता है। इनकी कविताओं में किसान जीवन की रीति-नीति, आस्था विश्वास, आशा-निराशा, गरीबी, मुक्ति की कामना आदि के अनगिनत चित्र चित्रित किये

गये हैं। अपने बारे में उन्होंने कई कवितायें लिखी है– 'वहीं त्रिलोचन है', 'चीर भरा पाजामा', 'भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल' आदि। इस यथार्थ के भीतर उनका व्यक्तित्व छलकता है –

उठा हुआ सिर चौडी छाती, लंबी बाँहे
सधे कदम, तेजी, वे टेढी–मेढी राहें
जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है,
तप–तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।

6) **मुक्तिबोध :** निष्ठा और संवेदनाओं से जनवादी कवि मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रगतिवादी कविता के तत्त्व स्पष्ट रुप से दिखायी देते हैं। कवि मुक्तिबोध अपने परिवेशगत जीवन से गहरे जुडे हैं। अध्यापक, पत्रकार, विशिष्ट विचारक, कवि, कथाकार और समीक्षक के मिल–जुले रुपसे इनका व्यक्तित्व संपन्न बन चुका है। इसीलिए वे प्रगतिवादी और नई कविता के कवियों में मौलिक व्यक्तित्व के धनी है। इनकी रचनाएँ 'चाँद का मुँह टेढा है' तथा 'भूरी भूरी खाक धूल' में संकलित है। इनकी कविताओं में स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण एवं लोकहित की भावना के दर्शन हो जाते हैं। इनकी विचारधारा पर टालस्टॉय, बर्गसॉ और मार्क्सवाद का प्रभाव दिखायी देता है। कवि मुक्तिबोध जीवन की क्षणभंगुरता के स्थान पर उसकी गतिशीलता, नैराश्य के स्थान पर आस्था और वैयक्तिक चेतना के स्थान पर समष्टि चेतना के प्रति अधिक विश्वास होने के कारण प्रगतिवादी कवि के रुप में स्वीकार किये जाते हैं। 'अंधेरे में' इनकी महत्त्वपूर्ण कविता है।

7) **शिवमंगल सिंह 'सुमन' :** 1915 में जन्मे 'सुमन' उच्च शिक्षा प्राप्त देश विदेश में घूमे–फिरे, प्राध्यापक, कुलपति आदि के रुप में प्रसिद्ध रहे हैं। साथ ही अच्छे वक्ता, प्रवक्ता और रचनाकार भी है। छोटे गीत और छोटी कविताएँ अधिक प्रभावी बनी हैं। इनकी कविताओं में शक्ति और उत्साह की प्रेरणा निहित रहती है। लोक प्रचलित, मुहावरेदार भाषा इनकी विशेषता है। 'मास्को अब भी दूर है' – इनकी चर्चित रचना हैं। 'हिल्लोल', 'जीवन के गान', 'प्रलय–सृजन', 'पर आँखे नहीं भरी', 'विंध्याहिमांचल' इनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनमें रोमांस, करुणा, सहानुभूति, राष्ट्रप्रेम, क्रांति आदि भावों को चित्रित किया गया है। इन्होंने प्रगतिवादी विचारों को काव्य का सच्चा माध्यम प्रदान किया है–

यह हार एक विराम है, जीवन महासंग्राम है।
तिल–तिल मिटूँगा पर, दया की भीख माँगूंगा नहीं।।

8) **रांगेय राघव :** रांगेय राघव कवि, कथाकार, समीक्षक, प्रबंधकार, मुक्तककार हैं। अहिंदी भाषी परिवार में जन्मे रांगेय राघव का हिंदी में सशक्त लेखन करना वस्तुत: प्रेरणा का स्रोत है। 'राह के दीपक' इनका कविता संग्रह है। 'अजेय खंडहर', 'पांचाली', मेधावी' महाकाव्यात्मक कृतियाँ हैं। 'पिघलते पत्थर' इनकी अन्यतम रचना है। जिसमें प्रगतिवादी तत्त्वों का निरुपण देखा जा सकता है। 'राह के दीपक' में संध्या, दीपक, पावस, चाँदनी को माध्यम बनाकर युगीन विषमताओं का अंकन किया है। 'मेघावी' महाकाव्य में सभ्यता के विकास की कथा वैज्ञानिक और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से कही गयी है। इसमें दर्शन, इतिहास,

काव्य, समाजशास्त्र संबंधी विभिन्न समस्याओं पर नवीन दृष्टिकोण से विचार किया गया है। काव्य-कृतियों में इनका चिंतक रुप ही अधिक मुखरित हुआ है। इनकी कविताएँ ध्वन्यात्मक एवं चित्रात्मक न होकर इतिवृत्तात्मक रही हैं।

- **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न** – 3

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) छायावादी कवियों ने नैतिकता के बोझ से आक्रांत .... को मुक्त करने का प्रयास किया।
(देश / मानव / प्रणय / प्राणी)

2) .... में भारतीय संघ नामक एक संस्था का जन्म हुआ।
(1857 / 1858 / 1859 / 1860)

3) सन 1917 की .... ने सारे जगत को प्रभावित किया था।
(अगस्त क्रांति / रुस क्रांति / असहयोग आंदोलन / इनमेंसे कोई नहीं)

4) 1938 में .... अध्यक्षता में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन कलकत्ता में संपन्न हुआ।
(प्रेमचंद / राहुल सांकृत्यायन / महात्मा गांधी / रवींद्रनाथ टैगोर)

5) .... रचना में भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प किया गया है।
(कुकुरमुत्ता / सरोज स्मृति / राम की शक्तिपूजा / तुलसीदास

ब) उचित मिलान कीजिए।

i)	निराला	अ) चाँद का मुँह टेढ़ा है।
ii)	नागार्जुन	ब) चीर भरा पाजामा
iii)	केदारनाथ अग्रवाल	क) गर्म पकौडी
iv)	त्रिलोचन	ड) फूल नहीं रंग बोलते हैं
v)	मुक्तिबोध	इ) पाषाणी

- **प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ :**

प्रगतिवादी काव्य या साहित्य का मूल प्रयोजन है, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति। यह साहित्य भिन्न-भिन्न युगों के यथार्थ का मूल्यांकन कर काल्पनिक मान्यताओं को निर्जीव मानता है। इनकी प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नानुसार है –

1) **समाज-व्यवस्था के प्रति आक्रोश :** पहले पहल रुस में वर्ग-संघर्ष का आरंभ हुआ। कार्ल मार्क्स के विचारों को लेनिन ने मूर्त रुप दिया। रुसी जनता को उनकी वास्तविक स्थिति से परिचित कराया गया।

फलस्वरूप उनमें व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश और असंतोष भर गया जिससे वे क्रांति का आवाहन करने के लिए तैयार हो गए। ऐसा सामाजिक व्यवस्था का नंगा चित्रण प्रत्येक देश और जाति का प्रगतिशील साहित्य करने लगा जिससे समाज में असंतोष के बीज बो दिए गए। भारत देश की सामाजिक स्थिति रुस से अलग नहीं थी। सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत जर्जर रुढ़ियाँ, रीतियाँ, अंधविश्वास के नीचे सामान्य व्यक्ति दब-सा गया था। प्रगतिवाद से पूर्व गांधीजी के सामाजिक रचनात्मक कार्यों ने समाज की पतनोन्मुखता सामने लाया था जिसमें सुधार की आवश्यकता थी। इसलिए दिनकर और नवीन जैसे कवियोंने सामाजिक यथार्थ को अपनी रचनाओं में अंकित किया। समाज में प्रचलित भाग्यवाद, ईश्वरीय सत्ता, आर्य-अनार्य, ब्राह्मण शुद्र, काला-गोरा, मंदिर-मस्जिद, गीता-कुरान, व्यर्थ्य रुढियों का बोध कराकर उनके विरुद्ध जनसामान्य को क्रांति करने के लिए उकसाया। जिससे उनका मन असंतोष तथा आक्रोश से भर गया -

> भ्रांत है अतिरंजित इतिहास ?
> व्यर्थ है गौरव गान
> -------------
> -------------
> किसी को आर्य, अनार्य
> किसी को यवन
> किसी को हूण-यहूदी द्रविड
> किसी को शीश, किसी को चरण
> मनुज को मनुज न कहना आह!

2) **मार्क्सवाद का गुणगान :** कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद प्रगतिवादी विचारधारा का प्रमुख आधार है। रुस के समान भारत देश में भी वर्ग संघर्ष आरंभ हुआ। शासक-शासित, शोषक-शोषित, अमीर-गरीब, मिल मालिक-श्रमिक, जमींदार-किसान, उच्चवर्ग-निम्नवर्ग आदि का संघर्ष चल रहा था। कम्युनिस्ट पार्टी और उससे सम्बद्ध कवि साहित्यकार अपने काव्य के माध्यम से मार्क्स के सिद्धांतों का गुणगान कर रहे थे। केवल ये कवि या साहित्यकार ही नहीं अन्य कवि भी इनकी देखादेखी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार तथा प्रचार करने लगे। कवि पंत जी लिखते हैं-

> धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।
> तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।।

3) **रुस और उसके शासन की प्रशंसा :** प्रगतिवादी काव्य में केवल मार्क्सवाद का ही गुणगान नहीं किया बल्कि उसके साथ कम्युनिस्ट देश रुस का भी गुणगान किया है। वह इसलिए कि रुस एक ऐसा देश है, जहाँ वर्गहीन समाज की स्थापना करने वाला शासन है। जिससे कोई किसी का शोषण नहीं कर सकता। न ही कोई पूँजीप्रति सामान्य मानव को दबोच सकता है। जहाँ सभी मानव मानव है समान की प्रतीति आ जाती है। रुस के साम्यवादी शासन व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए कवि सुमन कहते हैं-

ऐसा वैसा दुर्ग नहीं यह, मजलूमों का प्यारा है।
यह इस युग के संघर्षों का सबसे प्रबल प्रतीक है।
लाल फौज ने लाल खून से आज बनाई लीक है।।
इस जागृति के स्वर में जन–जन कण–कण आज शरीक है,
दस–हफ्ते दस साल बन गये, मास्को अब भी दूर है।

4) **समाज का यथार्थवादी चित्रण :** प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषता है सामाजिक यथार्थ का चित्रण। जिससे सामाजिक असंतोष का जन्म होता है। प्रारंभ से ही हिंदी काव्य में सामाजिक यथार्थ स्थान पाता रहा है। भक्तिकालीन कवियों ने तत्कालीन समाज को यथार्थ रुप में अंकित कर आदर्श की कामना की। आधुनिक काल में भारतेंदु और द्विवेदी युगीन कवियों ने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हीनता का यथार्थ चित्रण किया। छायावादी कवियोंने भी यथार्थ का विशद् चित्रण अपने काव्य में किया है। सामाजिक यथार्थ के चित्रण में निराला सबसे आगे हैं। उनकी 'भिक्षुक' कविता समाज की दयनीय स्थिति को अंकित करती है–

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।

5) **राष्ट्र एवं विश्व के प्रति संवेदनशीलता :** इस युग में भारतेंदु युगीन राष्ट्रीय काव्यधारा प्रौढ हो चुकी थी। माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, दिनकर, सुभ्रदाकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि द्वारा रचित राष्ट्रप्रेम की कविताएँ आदर्श का काम कर रही थी। छायावादी कवियोंने भी अपने काव्य में राष्ट्रप्रेम को स्थान दिया। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर राष्ट्रप्रेम और विश्व–बंधुत्व की भावना को बढावा दिया। भारत देश तो पहले से ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' का आग्रही रहा है। अत: मार्क्सवाद का इसी दृष्टिकोण का यहाँ के हिंदी कवियों ने अंगीकार किया।

प्रगतिवाद संसार को साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की जकडन से मुक्त कराना चाहता है। शोषण, अत्याचार, दमन आदि का निर्मूलन करना चाहता है। अत: प्रगतिवादी कवि ने राष्ट्र–प्रेम के साथ अंतर्राष्ट्रीय प्रेम की अभिव्यक्ति की है। लेकिन उनकी यह अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि केवल 'दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ' तक ही सीमित रही । यही भाव कहीं कहीं व्यापक मानवतावाद के रुप में भी सामने आया है–

नहीं छोड सकते रे यदि जन,
देश, राष्ट्र, राज्यों के हित नित्य युद्ध करना,
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना,

तो अच्छा हो छोड़ दें अगर हम
अमरीकन, रुसी औ, इंगलिश कहलाना
देशों में आए धरा निखर
पृथ्वी हो सब मनुजों का घर
हम उनकी संतान बराबर।

6) **समस्याओं के प्रति जागृत दृष्टि :** मार्क्सवादी विचारधारा में समसामायिक समस्याओं के प्रति सजगता दिखाई देती है। प्रगतिवादी काव्य में जनजीवन की आर्थिक समस्याओं को अपने काव्य का विषय बनाया गया। भौतिक परिस्थितियों से उत्पन्न जनजीवन की समस्याओं का चित्रण प्रगतिवादी साहित्य में किया गया, क्योंकि असल में प्रगतिशीलता भौतिक संबंधों और विचारों की नींव पर आधारित होती है। इसलिए अपने युग की भौतिक परिस्थितियों के दर्शन प्रगतिवादी काव्य में हो जाते हैं। केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं-

बाप बेटा बेचता है,
भूख से बेहाल होकर
धर्म धीरज प्राण खोकर
हो रही अनीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है।
बाप बेटा बेचता है।

7) **साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद का विरोध :** समाजवाद के विरोधी तत्व जैसे साम्राज्यवाद, पूँजीवाद या सामंतवाद का प्रगतिवादी काव्य ने विरोध किया है। हाँलाकि यही वे तत्व है, जिनके बदौलत अत्याचार, शोषण और दमन किया जाता है। जिससे सामाजिक विषमता और अन्याय बढ जाता है। साथ ही समाज में वर्ग विभाजन होता है, शोषक-शोषित भेद, दरिद्रता और विषमता बढ़ जाती है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद समाज इसी सत्य पर आधारित है। इसी भावना को अभिव्यक्त करनेवाला और इन प्रवृत्तियों का खुलकर विरोध करनेवाला काव्य प्रगतिवादी काव्य के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु युग के कवियों ने भी शोषकों पर व्यंग्य प्रहार किया। भगवतीचरण वर्मा साम्राज्यवाद को बेनकाब करते हुए लिखते हैं -

वह राज-काज जो सधा हुआ है, इन भूखें कंगालों पर।
इन साम्राज्यों की नींव पडी है, तिल-तिल मिटनेवालों पर।।

8) **शोषितों के प्रति सहानुभूति :** प्रगतिवादी काव्य में किसान और मजदूरों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई है। मजदूर वर्ग का मार्क्सवाद में विशेष स्थान है। अत: प्रगतिवादी कवि मजदूरों को शोषण के खिलाफ क्रांति का आवाहन करने के लिए कहते हैं। पूँजीपति, जमींदार, मिलमालिक और शासन मिलकर दीन-हीन किसान-मजदूरों का शोषण करते रहते हैं। इसीको प्रगतिवादी कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है।

निराला ने तो अपनी 'बादल राग' जैसी प्रकृति प्रेम से संबंधीत कविता में शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है-

चुस लिया है उसका सार
हाड मात्र ही है, आधार,
ए, जीवन के पारावार।

एक अन्य प्रगतिवादी कवि कहते हैं -

श्वानों को मिलता वस्त्र-दूध भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक-ठिठुर, जोडों की रात बिताते हैं।।

9) **नई व्यवस्था का आह्वान :** प्रगतिवादी काव्य में पुरानी, जीर्ण-शीर्ण व्यवस्थाओं को छोडकर युगानुरुप नई व्यवस्थाएँ अपनाने का आह्वान किया गया है। उपयुक्त सामाजिक व्यवस्थाओं की ओर प्रगतिवादी कवियों ने ध्यान न देकर नयी व्यवस्था की माँग की है। पंत ने इसलिए अनुपयुक्त पुरातन को चले जाने के लिए कहा ताकि नया जीवन आरंभ हो -

''द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र।''

किंतु अंचल ने सारे समाज को ही ध्वस्त करना चाहा -

हो यह समाज चिथडे-चिथडे
शोषण पर जिसकी नींव पडी।

यह बडा अटपटा लगता है, क्योंकि संपूर्ण समाज का अस्तित्व मिटने से शोषण समाप्त नहीं होगा।

10) **बौद्धिकता और व्यंग्यात्मकता :** प्रगतिवादी काव्य में बौद्धिकता और व्यंग्यात्मकता की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में है। लेकिन यह बौद्धिकता मार्क्स के विचारों का तर्क-वितर्क द्वारा शोषण करने तक ही दिखायी देती है। मार्क्स के विचारों को जो लोग नहीं जानते उनके लिए इस काव्य का बौद्धिक तर्क समझना बडा ही कठिन है। वैसे देखा जाए तो यह बौद्धिकता विशिष्ट कोटि की होने के कारण इसमें रसानुभूति नहीं हो सकती। व्यंग्य की दृष्टि से देखा जाए तो निराला की लंबी कविता 'कुकुरमुत्ता' देखी जा सकती है। जहाँ- गुलाब शोषक पूँजीपंतियों का और कुकुरमुत्ता जनसामान्य शोषितों का प्रतीक बनकर उपस्थित हुआ है।

इस प्रकार प्रगतिवादी कवि ने जीवन के छदम् को भी व्यंग्य का विषय बनाया है।

11) **क्रांति का उद्घोष :** सामंती, साम्राज्यवादी और पूँजीवादियों के खिलाफ प्रगतिवादी कवि क्रांति का आवाहन करते हैं, जिससे व्यवस्थाओं में परिवर्तन आ जाए। इसके लिए वे रक्त क्रांति से भी नहीं डरते उसे उचित मानते हैं। वे केवल परंपराओं और रुढियों का ही विनाश नहीं चाहते बल्कि शोषक वर्ग का विध्वंस करना चाहता है। पूँजीपूतियों के गगनचुंबी महलों के विरुद्ध वे क्रांति का बिगुल बजाते हैं। कवि नवीन कहते हैं -

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये।

12) **कला संबंध मान्यताएँ :** प्रगतिवादी काव्य ने अनुभूति पक्ष में तो सर्वथा नई उद्‌भावनाएँ ही की साथ ही उसका अभिव्यक्त पक्ष इसी विचारधारा का पोषक रहा है। प्रगतिवादी कवि अपने विचारों को सरल और निरलंकृत भाषा में आम आदी तक पहुँचाना चाहता है। इसलिए कवि पंत घोषणा करते हैं -

तुम वहन कर सको तन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिए अलंकार।।

प्रगतिवादी कवि सामान्य व्यक्ति की चेतना को झकझोरते हैं। इसीकारण वे अपनी अनुभूति के विषय को कला के घेरे में बांधना नहीं चाहते। इनकी अभिव्यक्ति में विशेष प्रकार बोधगम्यता, सरलता और सहजता दिखायी देते है। कला के मापदंड भाषा, छंद, अलंकार और प्रतीक काव्य का सौंदर्य बढाते हैं। प्रगतिवादी काव्य में छायावादी संस्कृतनिष्ठ पदावली, क्लिष्ट प्रतीक योजना और लाक्षणिकता विरोध कर सरल, जन-साधारण के योग्य सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें संगीतात्मकता भी कम है। रुढ उपमानों के बजाए नए-नए रुपक और उपमानों का प्रयोग कर कलात्मक सौंदर्य में वृद्‌धि की गई है।

● **वैचारिक पृष्ठभूमि :**

सन 1936 से प्रगतिवाद का आरंभ हुआ लेकिन उसके बीज छायावादी कविताओं में पहले से ही बोये जा चुके थे। अंग्रेजी उपनिवेशवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप साम्राज्यवाद-विरोधी स्वरों की अनुगूँज भारतेंदु कालीन साहित्य में ही सुनाई पडने लगी थी। भारतेंदु युगीन कवियों का ध्यान किसानों-मजदूरों की दुर्दशा की ओर गया। प्रेमघन ने किसानों की दुर्दशा का वर्णन किया तो मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'किसान' नामक काव्य ही लिखा। प्रगतिवाद एक वैचारिक आंदोलन है उसे 'प्रगतिशील लेखक संघ' से उद्‌भूत नहीं माना जा सकता। उसे केवल मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवाह मानना भी भूल है। किसी भी विचारधारा के उद्‌भव और विकास के लिए सही समय और परिवेश की आवश्यकता होती है। यदि हम तत्कालीन काँग्रेस का इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें पता चलता है, उसके भीतर ही समाजवाद का पौधा पनप रहा था।

सन 1930-33 तक काँग्रेस का आंदोलन दोलायमान हो रहा था। सन 1930 में गांधीजी की दांडी यात्रा आरंभ हुई, नमक कानून तोडा गया। जिससे सारे देश में इस आंदोलन की आग चारों तरफ फैल गयी। सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ कई जगहों पर सशस्त्र विद्रोह भी हुए। लेकिन गांधी-इरविन पैक्ट और गोलमेज कॉन्फरेसौं की समझौतावादी नीति के फलस्वरूप यह आंदोलन फिका-सा पड गया। समझौतों के कारण ही गांधीजी भगतसिंह को बचा नहीं सके और 1933 में उन्हें काँग्रेस की सक्रिय राजनीति से अलग होना पडा। सत्याग्रह आंदोलन वापर किए जाने पर सुभाषचंद्र बोस रूष्ट हुए और उन्होंने काँग्रेस के पुनर्गठन की बात उठायी। सन 1934 में काँग्रेस में समाजवादी दल का जन्म हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी को गांधीवादी सिद्‌धांतों से घृणा थी। उस समय देश समाजवादी विचारधारा अपनाने के लिए तैयार था। पश्चिम में इसके अनुकूल माहौल होने के कारण संस्कृति की रक्षा हेतू विश्वलेखक अधिवेशन आयोजित किया गया। इन्हींकी

देखादेखी सन 1935 में लंदन में स्थित भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारावालों ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना का निश्चय किया। अप्रैल 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का प्रथम अधिवेशन मुन्शी प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में संपन्न हुआ। दूसरा संमेलन कलकत्ते में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ।

'प्रगतिवाद' की मूलधारणाएँ इस प्रकार है साहित्यकार जीवन से अलग होकर नहीं रह सकता। उसे केवल जीवन से जुडी घटनाओं का ही वर्णन ही नहीं करना चाहिए बल्कि जीवन से जुडी समस्याओं का समाधान करने के लिए सहयोग देना है। साथ ही कविता का अस्तित्व केवल इसलिए न हो कि वह संसार को सुख स्वप्न में निमग्न करें बल्कि जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करें। सामज के करूण कंद्रन और कोलाहल से डर कर पलायन करने के बजाए समाज के दुख दर्द को, सडान को दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो।

कुछ लोग प्रगतिवादी और प्रगतिशील साहित्य को एक ही मानते है, लेकिन दोनों में अंतर है। डॉ. विनय मोहन शर्मा के अनुसार प्रगतिवादी साहित्य वह कहलाता है जिसमें रोमानी या रोमांचकारी युग की सामंतवाणी का परित्याग हो और मजदूरों के राज्य की जय-घोषणा हो। साथ ही किसानों की जय और जमींदारों की पराजय की स्वीकृति हो। नारी की स्वच्छंद प्रवृत्तियों का उल्लासित स्वागत हो। डॉ. गणपतिचंद्र जी के अनुसार प्रगतिवादी साम्यवादी कथ्य की पूर्ति में सहयोग देनेवाला साहित्य है, परंतु प्रगतिशील स्वतंत्र है- वाद विशेष से आबद्ध नहीं। अंग्रेजी में प्रगतिवादी साहित्य को 'Progressive Literature' तो मराठी में 'पुरोगामी वाङ्मय' कहा जाता है। युरोपीय महायुद्ध के उपरांत साहित्य की यह लहर रुस में दौडी। वहाँ की जनता क्रूर तथा निर्दयी जारशाही से तंग आकर क्रांति करने पर उतारु हो आई। जिसमें वह सफल रही और जनता का शासन स्थापित हुआ। जिससे वहाँ के साहित्य में सर्वहारा वर्ग के गीत गाए जाने लगे, निम्न वर्ग पर ध्यान दिया जाने लगा। गोर्की उनके आदर्श हुए।

रुस में जब वस्तुवाद प्रबल हो रहा था वह हिंदी साहित्य खय्याम के नशे में किसी वृक्ष की छाया में लेटकर ठंडी हवा के झोकें खा रहा था। लेकिन जैसे ही कथा साहित्य में मुन्शी प्रेमचंद का आगमन हुआ। मधुशाला और मधुबाला का दौर समाप्त हुआ। वास्तववाद सामने आया। पहली बार सामान्यजन पात्रों को अपनाकर उनके सुखदुख का चित्रण किया जाने लगा। काव्य के क्षेत्र में छायावादी प्रवृत्ति के बावजूद प्रगतिवादी स्वर का उद्घोष करनेवाले पंत जी कहते हैं -

''जागो श्रमिकों बनो सचेतन
भूखे अधिकारी है श्रमजन।''

वैसे देखा जाए तो क्रांति का सूत्रपात पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पहले ही कर चुके थे -

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ....

भगवतीचरण वर्मा 'भैसागाडी' द्वारा क्रांति नाद करते हुए मेहनतकश के प्रति चिंतातुर दिखायी देते हैं-

''पैदा होना फिर मर जाना यह है, उन लोगों का एक काम।
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ, नारियाँ जन रही है गुलाम।।''

'दिनकर' भी उसी स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं -

''श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाडों को रात बिताते हैं।''

पं. उदय शंकर भट्ट द्वारा प्रस्तुत मार्मिक रुपक -

''मेरी बरसाते आंसू रे, मेरा बसंत पीला शरीर।
गरमी झरनों सा स्वेद, मेरे साथी दुख दर्द पीर।
दिन उनको मुझको रात मिली, श्रम मुझे उन्हें आराम मिला
बलि दे देने को प्राण मिले, हन्टर को सूखा चाम मिला।''

इतना सबकुछ हो जाने पर भी ऐसी विषम परिस्थिति में समाज जीवित हैं? कवि अँचल के स्वरों में युवा हृदय चीत्कार उठता है -

'हो यह समाज चिथडे, शोषण पर जिसकी नींव पडी'

और परमात्मा है कि, दीन-हीनों की रक्षा करने के बजाए खडा-खडा देखता रह जाता है। अत: समस्याओं से निपटने के लिए, निराकरण करने हेतु इधर उधर कविगण निहारते रहे, देखते रहे और उनमें से कुछेक ने रुस-क्रांति को अपना संबल माना। ऐसी ही क्रांति को भारत में लाना चाहा, कार्ल मार्क्स की पूजा की और उनके सिद्धांतो के बलबुते पर आगे बढते गए।

1.3 सारांश :

भारतेंदु युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि रीतिकाल में जिस वैयक्तिक श्रृंगारमयी काव्यधारापर अधिक बल दिया जा रहा था उसके स्थान पर कविवर्ग समाज और राष्ट्र को उद्‌बोधन देनेवाली लोकमंगलकारी भावना की ओर चल पडे थे। लोक मंगलकारी भावना को केंद्र में रखकर अपनी कृतियों का सृजन कर रहे थे। जिसकी पूर्ण परिणति हमें आगे चलकर द्विवेदी युग में दिखाई देती है। इस युग में कुछ लेखक केवल अतीत के गुणगान करते रहे। कुछेक ने आर्य समाज, ब्राह्मसमाज से प्रभावित होकर तथा पाश्चात्य वाङ्मय से प्रेरणा पाकर देश की राजनीतिक-आर्थिक दासता और बालविवाह, विधवा विवाह, निषेध जैसी रुढिवादी सामाजिक प्रथाओं के खिलाफ अपनी रचनाओं द्वारा असंतोष प्रकट करने लगे। इस काल में तीन काव्य-प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं- प्रवृत्तिमूलक प्रेम काव्य,दास्य भक्ति और माधुर्य भक्ति से ओतप्रोत रचनाएँ, सुधारवादी जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करनेवाली कविताएँ। इस युग की अधिकांश कविता वस्तुनिष्ठता, बुद्‌धिवादिता, वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता से युक्त है। इस संदर्भ में श्रीधर पाठक और जगन्मोहनसिंह की कविताएँ विशेष उल्लेखनीय है। इस युग में कवियों की अपेक्षा गद्‌यलेखन अधिक सक्रिय रहे।

द्विवेदी युगीन कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता है। इस युग में अधिकांश कवियों ने जातीय जीवन की बड़ी मार्मिक आलोचना की है। भारतभूमि के सर्वस्व-बलिदान, स्वार्थ-त्याग तथा पारस्परिक वैमनस्य दूर करने की प्रेरणा इस युग के कवियों ने दी है। इन कवियों ने सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडंबरों एवं निरर्थक रुढियों पर जोरदार लेखनी चलाई है। सामान्य मानव के गौरव को पहली बार इसी युग में सराहा गया। तुच्छ से तुच्छ और क्षुद्र काव्य के विषय बने। इसीयुग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयास से गद्य और पद्य भाषा का एकीकरण हुआ और खडीबोली काव्य की मुख्य भाषा बन गयी। द्विवेदी युग में महाकाव्य, लघु पद्य कथा, मुक्तक, प्रबंध-मुक्तक आदि प्रचुर मात्रा में लिखे गये। द्विवेदी युगीन काव्य को आरंभ में नीरस, इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक कहा गया लेकिन धीरे-धीरे इनमें मधुरता, सरसता और भावप्रवणता आती चली गयी। द्विवेदीयुगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण-सुधार एवं उच्चादर्शो का काव्य हैं। इस युग में सभी काव्य रुपों का सफल प्रयोग हुआ है।

छायावादी युग में कवि-प्रतिभा सर्जना के विविध क्षेत्रों में अधिक गतिशील रही और नयी दिशाओं को भी उजागर किया। अनुभूति की दृष्टि से इस युग का काव्य व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ-साथ सामाजिकता से जुडा रहा है। इस युग की अनेक कविताओं एवं गीतों में प्रमुखत: व्यक्तिनिष्ठ भावना मुखरित हुई है। छायावादी काव्य ने भौतिक तथा आध्यात्मिक संस्कृतियों के द्वंद्व एवं संघर्ष की ज्वलंत आधुनिक समस्या से जुझने का प्रयास किया है। इस धारा के कवियों ने द्वंद्व का निषेध कर भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृतियों के समन्वय पर बल दिया है। इस काल की काव्य-चेतना व्यक्ति और सामाजिकता की स्थितियों को स्पर्श कर दोनों में समन्वय का प्रयास भी करती है छायावाद युग का काव्य महान उपलब्धियों और अनेक संभावनाओं का काव्य है।

छायावादोत्तर काल में भौतिक और मानसिक दोनों स्तरों पर परिवर्तन हुए। द्वितीय महायुद्ध की घटना से मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ। आजादी मिली लेकिन देश विभाजन जैसे दौर से गुजरना पडा। यांत्रिकता और बौद्धिकता के फलस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। छायावाद के बाद हिंदी गद्य में भी प्रगति और प्रयोग की प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आयी। समाज में मानव मानव सब एक समान का भाव जगाया जाने लगा। ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग, वैयक्तिक और सामूहिक स्तर पर सदाचरण पर बल दिया जाने लगा। वैचारिक क्रांतियों और विचारों का भी स्वागत किया। इसी स्वागत के फल स्वरूप प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद का साहित्य रचा गया। छायावादोत्तर काव्यधारा के अंतर्गत राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, छायावादी, व्यक्तिवादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नयी कविता नामक छ: काव्य प्रवृत्तियों का समावेश होता है।

1.4 स्वाध्याय :

1) भारतेंदु यगीन परिवेश बताकर काव्य-प्रवृत्तियाँ स्पष्ट किजिए।
2) भारतेंदु युगीन प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ निरुपित कीजिए।
3) महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन परिवेश स्पष्टकर द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए।

4) छायावादी प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ निरुपित कीजिए।

5) उत्तरछायावादी युगीन परिवेश बनाकर काव्य प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

1.5 क्षेत्रीय कार्य :

1) भारतेंदु युगीन कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

2) द्विवेदीयुगीन, प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

3) छायावादी कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

4) छायावादोत्तर कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार किजिए।

1.6 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1973.

2) डॉ. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, इकतीसवां संस्करण, सं. 2053 वि.

3) कमल नारायण टण्डन, पल्लवी टण्डन, हिंदी साहित्य का इतिहास, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली प्रथम, संस्करण

4) डॉ. शर्मा रमेश चन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, विद्‌या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2002 ई.

5) प्रो. अरुण विश्वंभर, संपादक, बाबू गुलाबराय (मूल लेखक), हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रकाशक, लक्ष्मीनारायण आगरा, आगरा, नव्यतम् संस्करण।

❑❑❑

इकाई–2
आधुनिक हिंदी कविता : विकास प्रक्रिया के सोपान

अनुक्रम :

2.0 उद्‌देश्य।

2.1 प्रस्तावना।

2.2 विषय–विवरण।

2.2.1 प्रयोगवादी कविता – परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ।

2.2.2 नई कविता – परिवेश वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तिया।।

2.2.3 साठोत्तरी कविता, परिवेश वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ काव्य प्रवृत्तियाँ।

2.2.4 समकालीन कविता – परिवेश, विविध आंदोलन, प्रमुख कविता तथा उनकी रचनाएँ, कविता की प्रवृत्तियाँ, वैचारिक प्रवाह, परिवर्तन के नवीन सोपान।

2.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

2.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.5 सारांश

2.6 स्वाध्याय।

2.7 क्षेत्रीय कार्य।

2.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

2.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप –

1) प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता तथा समकालीन कविता के युगीन परिवेश से परिचित होंगे।

2) प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, समकालीन कविता के प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन कर पाएँगे।

3) प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को बता पाएँगे।

4) प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, समकालीन कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि से परिचित होंगे।

2.1 प्रस्तावना :

इस पुस्तक की दूसरी इकाई में हम प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, समकालीन कविता का परिवेश, प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ, काव्य-प्रवृत्तियाँ, वैचारिक पृष्ठभूमि आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

छायावादी कवियोंने नैतिकता के बोझ से अक्रांत प्रणय को मुक्त करने का प्रयास किया लेकिन वे असफल हो गए। इसी असफलता ने उन्हें रहस्यवादी बना दिया। छायावादोत्तर कवियोंने भी द्विवेदीयुगीन नैतिकता के कठोर बंधनों प्रति साहसपूर्ण विद्रोह किया जिसमें वे सफल हुए। इन्हीं के फलस्वरूप रचना तंत्र का ढाँचा परिवर्तित हुआ। अंतर्द्वंद्व-प्रधान हो जाने से व्यंग्य में तीक्ष्णता आ गई। जिससे समाज तिलमिला उठा। व्यक्तिवाद के कारण साहित्यकार समाज की ओर खुली आँखो से देखने लगा। अब उसे क्षितिज, अंधरों की लाली, उषा की आशा, मदिराक्षी के स्थान पर मजदूर के खुरदरे पैर, हाथ, बिवाई भरी एडियाँ दिखाई देने लगी। मोती-से ओसकणों के बजाए, कृषक-किशोरियाँ, हंसिया लिए खेतों में काम करनेवाले खेतिहर, मजदूर, किसान, स्त्रियां दिखाई देने लगी। कवि को कोयल की कुहू-कुहू के स्थानपर मिल के सायरन, गाडियों की खटखट, श्रमिक जनों का दिनभर मरना-खपना दिखाई देने लगा। कवि स्वर्ग से मिट्टी की ओर चल पड़ा।

'प्रगति'शब्द का अर्थ है - आगे बढ़ना, चलना अत: 'प्रगतिवाद' का शाब्दिक अर्थ है वह वाद जो आगे चलने तथा बढ़ने में विश्वास रखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इसका अर्थ बहुत व्यापक है। जीवन की समस्याओं से संघर्ष करना और नूतनता का आग्रह करना ही प्रगतिवाद है। यदि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म विद्रोह है तो प्रगतिवाद सूक्ष्म के प्रति स्थूल का विद्रोह है।

2.2 विषय विवेचन

2.2.1 प्रयोगवादी कविता – परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तियाँ।

प्रत्येक युग में प्रयोग होते आये है किंतु 'प्रयोगवाद' नाम शिल्पगत चमत्कारों को लेकर नये बोध एवं संवेदनाओं को प्रस्तुत करनेवाली उन कविताओं के लिए रुढ हो गया जो 'तारसप्तक'के माध्यम से 1943 में प्रकाशन-जगत में आयी। इन कविताओं का विकास प्रगतिशील कविताओं के साथ-साथ होता गया। प्रयोगवाद के विकसित रुप को कई विद्वान नई कविता मानते है। 'प्रयोगवाद' नाम से यह अभिप्रेत होता है कि कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चला दिया लेकिन ऐसा है नहीं। स्वयं अज्ञेय जी ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कवि कर्म की व्याख्या करते हुए 'प्रयोग' को दोहरा साधन माना। एक तो वह कवि द्वारा प्रेषित सत्य को जानने का साधन है और दूसरे वह उस प्रेषण क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी कविता 'नयी कविता' कहलायी। जिसमें परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधान की खोज की गई। यह

खोज नई नहीं है। वैसे देखा जाए तो नये वाद, नयी धारा अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की तुलना में नवीन खोज की तृष्णा लिए हुए दिखायी देती है। स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी कवितायें जो अपनी वस्तुगत और शिल्पगत विशेषताओं को लिए हुए प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से विकसित होकर निकली उन्हें नयी कविता के नाम से अभिहित किया गया।

● **परिवेश :**

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्यधारा समानान्तर प्रवाहित हुई। आरंभ में ये दो धाराएँ आपस में इतनी घुलमिल-सी गई थी की दोनों को अलग करना कठिन था। दोनों धाराओं में परिवर्तनप्रियता एवं विद्रोह की भावना, बौद्धिकता की प्रधानता, नये प्रतिकों की ओर रुचि पाई जाती है। लेकिन आगे चलकर दोनों धाराएँ अलग अलग हो गई। क्योंकि धीरे धीरे यह बात स्पष्ट हो गई कि प्रयोगवादी रचनाओं के मूल में प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थवाद के स्थान पर असामान्य चरित्रों के मनोविश्लेषण का प्राधान्य है। इसलिए अहंवाद का प्राबल्य है। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि प्रयोगवाद केवल शिल्प-शैली के नवीन प्रयोगों को लेकर चलता है। हाँलाकि प्रयोगवाद के मूल में भी समाजशास्त्रीय दर्शन है किंतु वह वैयक्तिकता से एवं अहंवाद से अत्यधिक प्रभावित है। प्रगतिवाद पर जहाँ मार्क्स का प्रभाव है वहाँ प्रयोगवाद पर फ्रायड और डार्विन का प्रभाव अधिक पडा है।

प्रगतिवाद से प्रयोगवाद की अलगता किस परिवेश में है यह देखना जरूरी है। वह कौनसा परिवेश है जिसके तहत प्रयोगवाद ने प्रगतिवाद से अपनी अलग पहचान बनायी। जब प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन एवं दलगत राजनीति से जुड गया, उसमें राजनीतिक जागरुकता बढ गयी। मध्यवर्गीय जीवन की चेतना का प्रकाशन करते-करते कविगण भी अब ऊब गये उनमें अहंकार एवं वैयक्तिकता की भवना घर कर गयी। पाश्चात्य दार्शनिकों के प्रभावस्वरूप वैयक्तिक भावना को बढावा मिला। यूरोपीय साहित्य में मनोविश्लेषण वाद से प्रभावित दो प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ-प्रकृतिवाद या प्रकृतवाद और दूसरा अतियथार्थवाद या अतिवस्तुवाद का विकास हुआ। प्रकृतिवादी लेखको में फ्रायड, युंग, एडलर का प्रभाव देखने योग्य है। इन्होंने मनुष्य की यौन वर्जनाओं को महत्त्व दिया। इनकी दृष्टि में साहित्य का मूलमंत्र दमित वासना का प्रकाशन है। इन प्रवृत्तियों का विकास पाश्चात्य साहित्य में डी.एच. लॉरेन्स, वर्जनिया बुल्फ, टी.एस. इलियट, जेम्स जॉयस, बट्रैन्ड रसेल आदि की रचनाओं में देखा जा सकता है। इसका प्रधान रुप सामाजिक एवं असामाजिक चरित्रों का मनोविश्लेषण करके दमित एवं कुंठित यौन वर्जनाओं को जीवन के मूल्य सत्य के रुप में उद्‌भासित करना है।

युरोपीय साहित्य के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित उक्त दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का हिंदी के वर्तमान युग की कविता पर अत्याधिक प्रभाव पडा है। प्रयोगवाद के प्रवर्तक कवि अज्ञेय, डी. एच. लॉरेन्स, टी.एस. इलियट इत्यादि से अत्यधिक प्रभावित हुए। इसलिए यौन वर्जनाओं का उद्‌घाटन एवं यौन संबंधी प्रतीकों की प्रचुरता प्रयोगवादी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। कवि धर्मवीर भारती प्रयोगशील काव्य की संभावनाओं की चर्चा करते हुए इसे स्वस्थ जनवादी कविता की विकास-श्रृंखला की एक कडी मानते हैं। श्री रामेश्वर

शर्मा ने प्रयोगवाद के जन्म का कारण बदलती हुई परिस्थिति में सामाजिक गतिक्रम को व्यक्त करने के लिए प्राचीन एवं परंपराबद्ध अभिव्यंजना पद्धति की अक्षमता को माना है। उनके मतानुसार प्राचीन रुढियों और संस्कारों से जब मनुष्य ऊब जाता है तो वह नवीनता की चाह करता है। इसीकारण जीवन और सौंदर्य के मापदंड बदल जाते हैं। जैसे छायावाद का सूक्ष्म भाव-सौंदर्य दर्शन प्रगतिवादी युग में सामाजिक यथार्थ दर्शन बनकर सामने आया।

श्री रामेश्वर शर्मा के अनुसार जब कोई प्राचीन सौंदर्य का मानदंड रुढिबद्ध हो जाता है तब मानव मन नये मानदंडों का निर्माण करता है। इन नये मानदंडो से नवीनता का प्रादुर्भाव होता है और उसका प्राचीनता से संघर्ष होता है यह नूतनता शीघ्र ही ग्राह्य हो जाती है वरना पिछडना पडता है। प्राचीन अभिव्यंजना पद्धति नवीन भावनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होने के कारण लेखक या कवि के मन में संघर्ष छिडता है। जिसके फलस्वरूप लेखक या कवि के हृदय में भाव व्यंजना के क्षेत्र में नये प्रयोग होते हैं। प्रयोगवाद तथा नई कविता का जन्म इन्हीं कारणोंसे हुआ । नवीन और प्राचीन संघर्ष के फलस्वरूप प्रयोगवादी कविता में नवीन शिल्प का आग्रह है। साथ ही नये प्रतीक एवं उपमानों को ग्रहण किया गया है।

● प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ :

1) **श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'** (1911-1987) : कवि अज्ञेय जी प्रयोगवादी नयी काव्य-परंपरा के प्रवर्तक कवि है। छायावादोत्तर हिंदी साहित्य में इनका स्थान अग्रणी साहित्यकारों में है। छायावादी कविता की पृष्ठभूमि से उठकर वे प्रयोगवाद तथा नयी कविता के पुरस्कर्ता बन गए। वे कवि होने के साथ-साथ प्रख्यात कथाकार, समीक्षक और विचारक भी है। साथ ही उन्होंने 'दिनमान' और 'प्रतीक' प्रत्रिका का संपादन भी किया। 'तार-सप्तक' की कविताओं के साथ नयी काव्ययात्रा आरंभ हुई। तार सप्तक में अज्ञेय जी ने प्रयोगवादी शैली में अनेक रचनाओं का सृजन किया।

अज्ञेय जी की काव्य-कृतियाँ हैं- 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए थे', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार','कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर-मुद्रा', 'नदी के बाँक पर छाया' आदि। इन्होंने अपने काव्य में प्रकृति, नारी, काम आदि विभिन्न विषयों का तिरुपण किया है-

तोड दूँगा तुम्हारा आज यह अभिमान।
तुम हंसो, कह दो कि अब उत्संग वर्जित है।
छोड दूँ कैसे भला मैं जो अभीप्सित हैं?

अज्ञेय की प्रौढ रचना 'हरी घास पर क्षण भर' में बुलबुल, कौआ आदि पक्षियों को लेकर कवि की चिंता निरुपित हुई है। 'बावरा अहेरी' की कुछ रचनाएँ अज्ञेय के जीवन-दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत करती है। वे वर्तमान के उन्मुक्त भोग के प्रति आस्थावान है। 'कितनी नावों में कितनी बार' में कवि अज्ञेय जी ने नयी-नयी प्रेयसियों को बार-बार अपनाने-त्यागने की प्रवृत्ति को मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया है। 'इंद्रधनुष रौंदे हुए थे'में आत्म-आरोपण की प्रवृत्ति को बाधा पहुँचानेवाले कवियों पर आक्षेप करते हुए अपने

विचार व्यक्त किए हैं। अहंवादी प्रवृत्ति ने आपके काव्य को दुरुह तथा अस्पष्ट बना दिया। इसलिए आपके बाद इस प्रवृत्ति का अंत हो गया।

2) **गिरिजाकुमार माथुर :** कवि गिरिजाकुमार माथुर जी आज के लोकप्रिय कवियों में से एक है। इनके काव्यग्रंथों में 'मंजीर', 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले', 'छाया मत छूना', 'भीतरी नदी की यात्रा', 'साक्षी रहे वर्तमान' आदि उल्लेखनीय हैं।

इनकी आरंभिक रचनाओं पर छायावदी शैली का प्रभाव है। 'मंजीर' की कविताओं में निराशा, विषाद और रुग्णता का चित्रण है। परवर्ती रचनाओं में यथार्थ के विभिन्न स्तर चित्रित हुए हैं। वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक अनुभूतियों को सहज भाषा में इन्होंने अपनी कृतियों में व्यक्त किया है।

3) **गजानन माधव मुक्तिबोध** (1917-1964) : कवि मुक्तिबोध एक अध्यापक, पत्रकार, कथाकार, विचारक तथा समीक्षक हैं। नयी कविता के अग्रज कवि है। इनकी रचनाएँ 'चाँद का मुँह टेढा है' तथा 'भूरी भूरी खाक धूल' में संकलित है। इनकी कविताओं में स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण एवं लोक हित की भावना का विकास हुआ है। वे व्यापक अनुभव जगत से जुडे हैं।

कुछेक इन्हें प्रयोगवादी एक कुछ प्रगतिशील कवि मानते हैं। इनकी विचारधारा पर टालस्टॉय, बर्गसॉ और मार्क्सवाद का प्रभाव लक्षित होता है। ये जीवन की क्षणभंगुरता के स्थान पर उनकी गतिशीलता में, नैराश्य के स्थान पर आस्था में और वैयक्तिक चेतना के स्थान पर समष्टि चेतना के प्रति अधिक विश्वास रखते हैं। अपनी इसी धारणा के कारण ये प्रगतिवादी कवि के रुप में स्वीकार किए जाते हैं। 'अंधेरे में' इनकी महत्त्वपूर्ण कविता है। जिसमें इनके व्यक्तित्व का पूर्ण विलास हुआ है। फैंटसी, मिथक तथा प्रतीक-योजना इनकी कलात्मक कुशलता का परिणाम है। 'अंधेरे में' कविता स्वप्न कथा है, एक फैंटेसी है।

4) **डॉ. धर्मवीर भारती** (1926-1997) : कवि होने के साथ-साथ कवि धर्मवीर भारती एक कथाकार एवं समीक्षक भी है। इनकी रचनाओं में 'ठंडा लोहा', 'सात गीत वर्ष', 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' उल्लेखनीय हैं। इनकी काव्य-कृतियों में रुप-सौंदर्य, कामुकता तथा उन्मुक्त विलास का चित्रण हुआ है। इनकी अेनक रचनाओं में व्यष्टि-समष्टि का द्वंद्व है। 'कनुप्रिया' में राधा का नया रुप दिखायी देता है। महाभारत के युद्ध की त्रासदी 'अंधा युग' में चित्रित की गई है। 'सात गीत वर्ष' में इन्होंने अपनी किशोर भावुकता को तोडने की कोशिश की है। 'टूटा पहिया' कविता सवाल करती है कि वैयक्तिकता के झूठी पड जाने पर सच्चाई किसका आश्रय लेगी ?

इतिहास की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड जानेपर
क्या जाने
सच्चाई टूटे पहियों का आश्रय ले।

5) **भारत भूषण अग्रवाल** (1919-1975) : ये तार सप्तक के प्रसिद्ध कवि है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – 'छवि के बंधन', 'जागते रहो', 'मुक्ति मार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'कागज के फूल', 'एक उठा हुआ हाथ आदि। सौंदर्य, प्रेम और विरह वर्णन के साथ नैराश्य ,वेदना तथा पराजय की सशक्त अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हुई है। इनके गीतों में मार्क्सवादी स्वर प्रस्फुटित हुआ है।

6) **भवानीप्रसाद मिश्र** (1914-1985) : कवि भवानीप्रसाद मिश्र सहज संवेदना के कवि है। इनकी रचनाओं पर 'वर्डस्वर्थ' और 'टैगोर' का प्रभाव दिखाई देता है। कवि भवानीप्रसाद मिश्र जी अद्वैतवाद तथा गांधीवाद के समर्थक है। इन्होंने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इनके प्रमुख कविता संग्रह है- 'गीत फरोश', 'चकित है दुख', 'अंधेरी कविताएँ', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबु के शिलालेख', 'फासले और फूल' आदि। इनकी भाषा तथा अभिव्यक्ति लोकजीवन के अधिक निकट है। मिश्रजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को पूर्णत: उजागर करती है उनकी पंक्तियाँ –

''जिस तरह हम बोलते हैं।
उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हमसे बडा तू दिख।'

7) **शमशेर बहादुर सिंह** (1911-1993) : कवि शमशेर मूलत: प्रयोवादी कवि है। इस दृष्टिसे अज्ञेय की परंपरा में आते हैं। शमशेर अपनी निजी अनुभूतियों, उनकी बारीक बुनावट और प्राय: दुरुहता के कारण लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। इनका आत्मसंघर्ष निजी है, उसमें अद्भूत आकर्षण है। वे कहते हैं –

मेरी कविताओं को
अगर वो उठा सकें और एक घूँट
पी सकें
अगर।

इस 'अगर' की विवेचना उनकी कविता की विवेचना है। वे मुख्यत: प्रेम और प्रकृति सौंदर्य के कवि हैं। उनकी रचना अन्यों की तुलना में संप्रेषण की समस्याएँ अधिक खडी करती हैं। किंतु हिंदु भाषा को अछूते बिंबो, रंगो, प्रतीकों और मित-कथन की भंगिमा से समृद्ध किया है। इनके अन्य काव्य संग्रह हैं- कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ, चुका भी नहीं मैं, इतने अपने पास, बात बोलेगी, काल तुझसे होड है मेरी और टूटी हुई बिखरी हुई आदि।

8) **कुँवर नारायण** (1927-2018) : कुँवर नारायण चिंतक कवि हैं। इनकी काव्य-कृतियाँ हैं- 'चक्रव्यूह', 'परिवेश : हम तुम', 'आत्मजयी', 'वाजश्रवा के बहाने' आदि। 'चक्रव्यूह' में रहना आदमी की नियति है तो उसे तोडना उसका धर्म है। 'परिवेश : हम तुम' में जीवन के सर्जनात्मक लक्ष्य की ओर संकेत किया गया है। 'आत्मजयी' की कथावस्तु 'कठोपनिषद' से ली गई है। जो यम-नचिकेता-आख्यान पर आधारित है। इनकी भाषा-शैली पर अज्ञेय का प्रभाव है।

9) **सर्वेश्वरदयाल सक्सेना** (1927-1983) : कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने स्वयं को किसी दल या विशेष राजनीतिक दल से जोडा नहीं। इन्होंने किसान-मजदूर जीवन तथा व्यवस्था के विरोध में बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बास का पुल' 'एक सूनी नाव', 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द' और 'खूटियों पर टँगे लोग' इनके काव्य संग्रह है। इनका दावा है कि -

'मैं नया कवि हूँ-
इसी से जानता हूँ कि सत्य की चोट
बहुत गहरी होती है,
मैं नया कवि हूँ।'

आरंभ में इन्होंने प्रेम कविताएँ लिखी। इनकी कविता में किसी भी प्रकार का द्वंद्व नहीं है न व्यक्ति का न समाज का और न ही आत्मा और बुद्धि का, न ही अंतर्बाह्य का। ग्रामीण परिवेश और ग्राम्य लय है।

10) **रघुवीर सहाय** (1929-1990) : दुर्बोध भाषा के कवि के रुप में रघुवीर सहाय का नाम लिया जाता है। इनके काव्य-संग्रह है - 'सीढ़ियों पर धूप में, 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गये हैं'आदि। अपनी भाषा, कला-सजगता, सामाजिक सरोकार और विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली के कारण इन्होंने अपनी अलग पहचान बनायी है। वे ठीक ही कहते हैं -

'मैं अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और एक ढ़हाता हूँ
आप कहते हैं की कविता की है।'

'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य-संग्रह में एक अनाहत जिजीविषा, मध्यवर्गीय जीवन का दबाव और लोकतंत्र की विडंबनाएँ चित्रित हैं। 'आत्महत्या के विरुद्ध' प्रकाशित होने पर वे महत्त्वपूर्ण कवि के रुप में प्रतिष्ठित होते है। लोकतंत्र की विडंबनाओं से वे सीधे साक्षात्कार करते हैं। ये विडंबनाएँ नेहरु-युग के बाद की विडंबनाएँ हैं। 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' आपातकाल से संबद्ध कविताओं का संग्रह हैं। 'लोग भूल गयें' का मूलाधार व्यंग्य और विडंबना है।

11) **केदारनाथ सिंह** (1934-2018) : कवि केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। 'अभी बिल्कुल अभी', जमीन पक रही हैं', 'अकाल में सारस', 'यहाँ से देखो', 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। कवि केदारनाथ जी ने संवेदनात्मक बौद्धिकता से अपनी कविता का नाता जोडा। जिसमें युगीन चुनौतियाँ है, फसले, रोटी, माँ, अनजानी प्रतिध्वनियाँ और आहटें तथा जीवन का पर्व है। उनकी चुनौती है कि पहले मुझे कविता की तरह पढो। इनकी रचनाएँ जीवनोत्सव की रचनाएँ हैं।

● **प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ :**

1) **उत्कट अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद :** प्रयोगवादी काव्य की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है, व्यक्तिवाद और अहंवाद। प्रयोगवादी कवि युगीन विषमताओं से संघर्ष करने में असफल तथा निराश हुआ। संतोषप्रद सामाजिक व्यवस्था की माँग करने के बावजूद वह ऐसी साामजिक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी अवस्था

त्रिशंकु जैसी हो गई। अपने इसी एकाकीपन के कारण वह व्यक्तिवाद एवं अहंवाद की सीमाओं में फंस गया। इसी व्यक्तिवाद के कारण उसमें व्यापक और सामुहिक अनास्था, घुटन, पीडा आदि विकृतियाँ घर कर गई। जिससे वह बाह्यजगत से पूरी तरह कट गया। प्रयोगवादी कवि ने अपने इसी अहंभाव को अपनी कविता में दृढता के साथ व्यक्त किया है। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि के कृतित्व में इस अहं भाव की तीव्र प्रतिक्रिया दिखायी देती है। धर्मवीर भारती अपने अहं को अभिमन्यू के रथ के पहिए के प्रतीक के रुप में व्यक्त करते हैं -

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फैंको मत।

प्रयोगवादी कवि को अपने अहं पर विश्वास होने के कारण वह युगीन विशेषताओं को भेदकर आगे निकल जाना चाहता है, लेकिन इस प्रयास में वह असफल होता है।

2) **युग जीवन के प्रति अनास्था :** जिस परिवेश ने प्रयोगवादी कवि को व्यक्तिवादी-अहंवादी बनाया, उसी परिवेश के प्रति युग जीवन के प्रति उसके मन में अनास्था भर गई। जिससे प्रयोगवादी कवि ने परंपरागत मूल्यों का तिरस्कार किया ही साथ ही समाज और जीवन के परंपरागत तथा वर्तमान मूल्यों का भी अहंवादी होने कारण तिरस्कार किया। उसने सबके प्रति अनास्था और अविश्वास की घोषणा कर दी। इसी अनास्था, निराशा, अविश्वास का पाश्चात्य साहित्य ने अपने साहित्य पर आरोपण करना शुरु कर दिया। प्रचलित जीवनमूल्यों में विचित्र परिवर्तनों की पुकार सुनाई देने लगी। वर्तमान समाज ने सभ्यता और संस्कृति के खोखलेपन को दूर करने की आवश्यकता महसूस की। अज्ञेय जी आसपास के वातावरण को नकारते हुए कहते हैं -

वंचना है चाँदनी सित
झूँठ वह आकाश का निर्बांध गहन विस्तार
शिशिर की राका-निशा की शांति है निस्सार।
दूर वह सब शांति, वह सित भव्यता
वह शून्य अवलेप का विस्तार।

3) **शंकालु मन :** व्यक्तिगत तथा सामाजिक असफलता मिलने के कारण प्रयोगवादी कवि सभी को शंकापूर्ण दृष्टि से देखता है। सामाजिक पथ पर वह जब चल पडता है तो उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। अपनी अनास्था एवं टूटन के कारण वह किन्ही अदृश्य चरणों में अपने आप को सौंप कर संतोष प्राप्त करता है। वर्तमान के प्रति अनास्था ने उसे शंकाशील बना दिया है। व्यक्तिवाद पर अखंड विश्वास होने के कारण अज्ञेय का शंकालु मन कह उठता है-

'लता टूटी
कुरमुराता मूल में है।
सूक्ष्म भय का कीट।'

इसके साथ कवि जगदीश गुप्त और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कहते हैं-

'लगता है सारा अस्तित्व ही किसी झूँठपर
टिका हुआ
जाता है आप ही बिखर-बिखर।'
- जगदीश गुप्त

'जिनके सहारे
लहरों से लड रहे हम
वे घडे कच्चे हैं।'
- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

4) **निराशा, कुंठा एवं घुटन का व्यापक प्रदर्शन :** प्रयोगवादी काव्य में व्यक्ति की निराशा, कुंठा, घुटन को अभिव्यक्त किया गया है। व्यक्तिवादी एवं अहंवादी होने के कारण सामाजिक विषमताओं, एकाकी संघर्ष करने में असफल रहने के प्रतिक्रियास्वरूप निराशा, कुंठा और घुटन उत्पन्न हो जाती है। जिसे सजीवता के साथ प्रयोगवादी कवि ने अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। कवि जब स्वयं संभल जाना चाहता है, तो द्वंद्व उसे घेर लेता है और वह निराशा तथा कुंठा के घेरे में फँस जाता है। कभी-कभी आशाउल्लास दिखाई देते हैं लेकीन क्षणिक उपस्थिति में कवि पुन: निराशा की ओर लौट पडता है -

'मेरी थकी हुई आँखो को
किसी ओर तो ज्योति दिखा दो।' - (अज्ञेय)
'छू सकी नहीं कोई ज्योति हृदय की धडपन को
एक भी किरन दे सके नहीं दीप सौ सौ।' - (जगदीश गुप्त)

5) **पराजय और पलायन :** निराशा, कुंठा, घुटन के समान ही प्रयोगवादी काव्य में पराजय और पलायन की भावना विद्‌यमान है। प्रयोगवादी कवि अपना स्थान बनाना चाहता है, लेकीन परिवेश के सामने हार जाता है, असफल हो जाता है। अपने को असफल होता देख उसकी क्रियाशीलता नष्ट होती है और इसलिए वह पलायन करना चाहता है। समाज की वास्तविकता से कटा हुआ कवि केवल शिल्प प्रदर्शन में लग जाता है। वह विवश और निरुपाय हो जाता है। प्रयोगवादी कवि का अहं जितना बडा है उतनी ही बडी है उसकी आत्मप्रवंचना, पलायन वृत्ति-

इस थके मस्तिष्क में मेरी पराजय
छिपकली - सी पग दबाए चल रही है । (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

6) **क्षणवादी भावनाएँ :** प्रयोगवादी कवि क्षण के महत्त्व को जानते हैं। उनमें क्षण बोध बेहद तीखा है। जिंदगी का एक क्षण जो व्यक्ति को सुख और तृप्ति प्रदान करता है, बाकी सारे जीवन से कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस एक क्षण की संपूर्णता में वह जीना चाहता है, क्योंकि भविष्य में पता नहीं ऐसा क्षण मिले

न मिले। इसी क्षणवादी विचार ने ही प्रयोगवादी कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित किया है। क्षणवाद और नियतिवाद की सहज और स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रयोगवाद में है –

एक क्षण :
एक क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णत:
इससे कदापि बडा नहीं था
महाम्बुधि जो पिया था अगस्त्य ने। – अज्ञेय

7) **लघुता एवं निरीहता :** प्रयोगवादी कवियों ने अनेक स्थानों पर अलग–अलग प्रकार से अपनी लघुता एवं निरीहता का चित्रण किया है। कहीं पर यह भावना अपराधों एवं पापों की स्वीकृति बनकर व्यक्त हुई है। मध्यकाल के भक्त और संत युग के समस्त पापों को अपने सिर पर लेकर सारे संसार की मुक्ति की कामना करते थे। लेकिन ऐसी उदात्त भावना प्रयोगवादी कवियों के मूल में नहीं है। बल्कि उनका पराजित और पददलित अहं ही हाहाकार करता दिखायी देता है जैसे –

'मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त
रिरियाता कुत्ता।' – अज्ञेय
'हम सबके दामन पर है दाग,
हम सबकी आत्मा में झूँठ,
हम सब के माथे पर शर्म,
हम सब के हाथों टूटी तलवार की मूठ। – धर्मवीर भारती.

8) **पीडा और दर्द की अभिव्यक्ति :** प्रयोगवादी काव्य में पीडा और दर्द की अभिव्यक्ति सहजता से हुई है। अज्ञेय ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में पीडा और दर्द को आत्म–परिष्कार के माध्यम रुप में अभिव्यक्त किया है। 'हरी घास पर क्षण भर' में यह पीडा और दर्द विद्‌यमान है। सियारामशरण गुप्त की पीडा विषयक पंक्तियाँ देखिए–

तुझे होगा जो पीडा बोध
वही तेरे पथ–क्षण का शोध।

लेकिन प्रयोगवादी कवियों की यह पीडा और दर्द व्यापकता से अभिव्यक्त न होकर केवल प्यार की पीडा या प्यार के दर्द तक सीमित है। धर्मवीर भारती ने अपनी कविता 'ठंडा लोहा' में दर्द को जिंदगी की विराटता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है –

कामनाएँ वे नहीं जो हो सकीं पूरी
घुटन, अकुलाहट, विवशता, दर्द, मजबूरी
जन्म–जन्मों की अधूरी साधना
पूर्ण होती है

किसी मधु-देवता की बाँहों में ।   - धर्मवीर भारती

9) **नग्न यथार्थ :** फ्रायड तथा प्रकृतवादियों द्वारा अस्तित्ववादियों का प्रभाव किसी न किसी रुप में प्रयोगवादियों पर रहा है। अत: वे अपनी कविताओं में जिस यथार्थ का चित्रण करते हैं, वह नग्न यथार्थ की सीमा तक पहुँच गया है। प्रयोगवादी कवि फ्रायड, इलियट, डी.एच. लॉरेन्स से प्रभावित होने के कारण फ्रायड का काम सिद्धांत नग्न यथार्थ बनकर प्रयोगवादी कविता में उपस्थित हुआ है। प्रयोगवादी कवियों ने यौन भावना की अश्लीलता की सीमा पार की है।

'मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रुप से आबाद।' - धर्मवीर भारती
'तन ने सम्पर्कों की सारी सीमाओं को पार किया,
पर न हुआ तृप्त हिया।'   - जगदीश गुप्त

10) **अति बौद्धिकता :** प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय ने 'तार सप्तक' में स्वीकार किया है कि प्रयोगशील काव्य में रागात्मक रसानुभूति को कोई स्थान नहीं है क्योंकि इसमें अति बौद्धिकता है। साथ ही विचारात्मकता की अधिकता होने के कारण प्रयोगवादी कविता गद्यवत लगती है। धर्मवीर भारती के अनुसार प्रयोगवादी कविता में भावना है लेकिन उस भावना के सामने प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिह्न को बौद्धिकता कहा जा सकता है। सांस्कृतिक ढाँचा चरमराने के कारण यह प्रश्नचिह्न उसकी ध्वनि मात्र है।

तीव्र गति
अति दूर तारा
वह हमारा
शून्य के विस्तार नीले में चला है।
और नीचे लोग
उसको देखते हैं, नापते हैं गति
उदय और अस्त का इतिहास ।   - मुक्तिबोध

11) **उपमानो की नवीनता :** प्रयोगवादी काव्य में पुराने परंपरागत उपमानों के स्थान पर सम-सामायिक जीवन से नए उपमान ग्रहण किए गए हैं। जिससे भाषा भी सजीव एवं कलात्मक हो गई है। जहाँ नये का आग्रह किया गया है, वहाँ कवि औचित्य का भी उल्लंघन करता है। वैसे उजले वस्त्र को कफन कहना, बादल को हड्डी कहना या टूटते सपनों को भुना हुआ पापड कहते में नयापन तो है किंतु निर्दिष्ट अर्थ का प्रभावशील संप्रेषण इनमें हो नहीं पाता। इनमें केवल वैचित्र्य बोध है। दु:साध्य प्रतीकों के माध्यम से यौन वर्जनाओं को प्रकट किया गया है। ये प्रतीक अवचेतन से ग्रहण किए जाने के कारण इनका चेतन संसार से तादात्म्य हो नहीं पाता। प्रयोगवादी कविता नये शिल्प और उपमानों को ग्रहण करती है-

'प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया'

'मेरे सपने टूट गए
जैसे भुना हुआ पापड'
'बिजली के स्टोव-सी
जो एकदम सुर्ख हो जाती है।'

12) **विषय वैविध्य :** प्रयोगवादी कवि अपने काव्य के लिए सामग्री किसी देश-विदेश से न लेकर सारे विश्व से ग्रहण करता है। वह स्थूलतम, सूक्ष्मतम पदार्थों को काव्य का विषय बनाकर उसे व्यापकता प्रदान करता है। संसार की हरेक वस्तु काव्य का विषय हो सकती है। इसलिए प्रयोगवादी कवियों ने चाय की प्याली, सायरन, रेडियम की घडी, चूडी का टुकडा, बाथरूम, क्रोशिए, गरम पकौडी, फटी ओढनी की चिन्दियाँ, मूत्र संचित मिट्टी आदि वस्तुओं को काव्य का विषय बनाया है।

13) **छंद और भाषा :** प्रयोगवादी कवियों ने छंद और भाषा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किए हैं। छंद के बंधन को अस्वीकार करते हुए मुक्त छंद, गद्यवत प्रवाह इन कवियों का प्रयोग है। निराला ने मुक्तछंद का प्रयोग कर लय, गति और गेयता काव्य में लाई। लेकिन प्रयोगवादी कवियों ने इस लय, गति और गेयता को दूरकर जिन मुक्त छंदों का प्रयोग किया उसमें एक हलचल-सी तो है लेकिन वे छंद प्रभाव-शून्य प्रतीत होते हैं। इन कवियों की करुणा और उच्छवास में पाठकों को द्रवित करने की क्षमता नहीं है।

प्रयोगवादी कवियों ने भाषा के क्षेत्र में भी नये प्रयोग किए हैं। इन्होंने भाषा के परंपरागत स्वरूप को तोडा-मरोडा। भाषा के प्रयोग में स्वच्छंदता के साथ भूगोल, विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान की दु:साध्य शब्दावली एवं बाजारू बोली का प्रयोग किया है।

14) **दुरूहता :** प्रयोगवादी काव्य में दुरुहता एवं जटिलता है। प्रयोगवादी कवियों के विचार और अनुभूतियों को सहजतासे समझा नहीं जा सकता। इस दुरुहता के मूल्य में इन कवियों की अति बौद्धिकता है। पाश्चात्य विचारक फ्रायड के मनोविज्ञान से उत्पन्न स्वच्छंद काम-तृप्ति तथा स्वप्न प्रतीकों के कारण प्रयोगवादी काव्य में दुरुहता आ गई है। दूसरी बात संकेतमयी भाषा तथा रागात्मक संबंधों के कारण भी प्रयोगवादी काव्य में दुरुहता दिखायी देती है। प्रयोगवादी कवि अपने द्वारा प्रयुक्त ब्दों में नए अर्थ भरने तथा भाषा को नए मुहावरों से सज्जित करना चाहता है। इसी के फलस्वरूप प्रयोगवादी काव्य में यह दुरुहता आ गई है। स्वच्छंद काम-तृप्ति के बारे में अज्ञेय कहते हैं -

नए मुहल्ले की ऊँची-ऊँची इमारतों के,
बीच से लाँघता हुआ,
विलायती मलाई की बर्फ खाई थी।

संकेतमयी भाषा के कारण प्रयोगवादी काव्य में अस्पष्टता दिखाई देती है, शब्दों को ताजगी देने और नये अर्थ भरने के प्रयास में प्रयोगवादी काव्य की भाषा में दुरुहता आ गई है।

● **नई कविता की प्रवृत्तियाँ :**

प्रयोगवादी कविताओं से नयी कविता अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियों के कारण भिन्न है। जो सूक्ष्म सत्य का अन्वेषण करने में असफल रहे उन्हें - प्रयोगवाद और नई कविता में कोई भेद नजर नहीं आता और वे नयी कविता का विवेचन तार-सप्तक से ही प्रारंभ करते हैं। हाँलाकि नई कविता और प्रयोगवाद एक नहीं है। प्रयोगवाद की कुछ प्रवृत्तियाँ नयी कविता में देखी जा सकती है किंतु नई कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ प्रयोगवाद में स्वीकार्य नहीं है। दोनों में एक तत्व समानता है और वह है नयी कविता के प्रारंभिक कवि अपने रचनाकाल के प्रारंभ में प्रयोगवादी कवि थे। उनके प्रयोगों से ही नयी कविता स्रोत फूट पडा है। नयी कविता की प्रवृत्तियाँ निम्ननुसार हैं-

1) **जीवन के प्रति आस्था :** नई कविता की सबसे प्रमुख और विशिष्ट प्रवृत्ति यही है जो कविता को प्रयोगवादी काव्य से अलग करती है। नयी कविता में जीवन के प्रति पूर्ण आस्था और उसे अंतिम क्षण तक भोगने का संकल्प अभिव्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी काव्य में जीवन के प्रति नकारात्मक अभिव्यक्ति, निराशा और असफलता के कारण जीवन से अलगाव का भाव ही प्रमुख था। नयी कविता में जीवन को संपूर्ण रुप से भोगने की लालसा है। नयी कविता में जीवन को दीन या एकांगी नहीं माना गया है। व्यक्ति, वर्ग, समाज चाहे किसी भी का जीवन क्यों न हो उसे जीवन के रुप में ही देखा गया है। भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं -

इस दुखी संसार में जितना बने हम सुख लुटा दें।
बन सके तो निष्कपट मृदु हास के दो कन जुटा दें।

जो कवि कभी प्रेम से निराश बन गया था, जो अपनी असफलता में केवल आत्महत्या की बात सोचता था। वह जीवन का महत्त्व पहचान सका और आशा तथा उल्लास नये कवि के जीवनोल्लास बनने के कारण जीवन के प्रति आस्था बढ गई। अद्यपि कविता में कवि का निजी दर्द अभिव्यक्त हुआ है फिर भी जीवन के प्रति आस्था दिखाई देती है।

2) **क्षण का उपयोग :** नई कविता में क्षण के महत्त्व को मान लिया गया है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हम क्षणों में जीते हैं। क्षणों की अनुभूतियाँ जीवन की संपूर्ण अनुभूतियों की निरंतरता में बाधा नहीं डालती बल्की वे संपूर्ण जीवन को एक श्रृंखला में जोडती है। क्षणों को सत्य मानना अर्थात जीवनाभूति को, हरेक व्यथा, और सुख को सत्य मानकर जीवन को साधन के रुप में स्वीकार करना। नई कविता में क्षणों की अनुभूतियों को लेकर मर्मस्पर्शी और विचारप्रेरक कविताओं का सृजन किया गया। लेकिन नई कविता पाश्चात्य क्षणवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है।

3) **लघु-मानववाद :** नई कविता में सबसे छोटे तथा निम्न वर्ग के मनुष्य के व्यक्तित्व को आदर के साथ प्रस्तुत किया है। नई कविता का सम्मोहन और प्रभावकारी स्वर है लघु मानववाद, लघु मानव का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अब तक उपेक्षित था। लघु मानव की संवेदना अपने काव्य में अंकित कर उसे समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने में नई कविता ने अपना योगदान दिया है। अब तक जिनका ध्यान लघु

मानव की ओर नहीं था। ऐसे लघुमानव पर केंद्रीत हुआ। इस प्रकार नई कविता ने सामान्य मनुष्य को व्यापकता और विशिष्टता प्रदान कर उसका महत्त्व प्रतिपादित किया है। सर्वेश्वर लिखते हैं-

तो यह नगण्य अस्तित्व एक
किसी के कन्धे पर भार नहीं होगा-
थरमस से हम सब
हर भावी यात्री के
प्यासे क्षणों का
अभिलाष भाल चूमेंगे।

4) **कथ्य की व्यापकता :** नई कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कथ्य की व्यापकता। नई कविता के अधिकांश कवि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से सम्बद्ध रह चुके हैं। नई कविता को कोई विषय वर्जित नहीं है। जीवन और जगत के सभी विषय नई कविता में समाहित हैं। नई कविता में समुद्रों का विस्तार, आकाश की गहनता, विज्ञान के आविष्कार, जीवनोपयोगी वस्तूएँ जैसे थरमस, टॉर्च, पैन, चाय का कप, बीडी, पिन, अणु, गंदा नाला आदि अनेक विषय अपनी विविधता लिए सहजता के साथ आए हैं। इसके साथ ही इनमें मृत्यू और जीवन, वर्तमान के प्रति लगाव, मानव महत्ता, दैनिक जीवन के लघुत्तम क्रिया-कलाप, देशी-विदेशी पृष्ठभूमि आदि अनेक विषयों का चित्रण है।

5) **अनुभूति की सच्चाई :** नई कविता में कवि की अनुभूति सच्चाई के साथ अभिव्यक्त हुई है। यह अनुभूति क्षण,समूचा काल, सामान्य व्यक्ति या विशेष पुरुष, आशा, निराशा की हो सकती है। कविता और जीवन के लिए अनुभूति की सच्चाई अमूल्य है। कवि अपनी और समाज की अनुभूतियों को कविता में अभिव्यक्त करता है। युग बोध द्वारा ही कवि समान रुप से मनुष्य मात्र के दर्द और संवेदना को अनुभूत कर कविता में ढाल देता है। यही कवि की अनुभूति की सच्चाई है। नई कविता अनुभूति पूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आंतरिक मार्मिकता के साथ जोडकर व्यक्त करती है। जिससे उस सत्य को उस व्यापार को या प्रसंग को नया अर्थ मिल जाता है। जैसे -

चेहरे थे असंख्य
आँखे थी
दर्द सभी में था
जीवन का देश सभी ने जाना था
पर दो
केवल दो
मेरे मन में कौंध गई
मैं नहीं जानता किसकी वे आँखे थी
नहीं समझता फिर उनको देखूँगा।

6) **बौद्धिक यथार्थ दृष्टि :** नई कविता भावना की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्त्व देती है। यह बुद्धिवाद नवीन यथार्थवादी दृष्टि और नवीन जीवन-चेतना की पहचान के रुप में दिखायी देता है। वह दृष्टि है जो हमारे अनुभवों का मूल्यांकन करती है, तटस्थता भी बनाये रखने का प्रयास करती है। साथ ही जीवन-चेतना की पहचान कराती है। नयी कविता में शहरी और ग्रामीण यथार्थ दोनों ही परिवेश को अंकित करनेवाले कवि हैं। जिंदगी के बौद्धिक यथार्थ का चित्रण लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसप्रकार किया है-

भर दो
इस त्वचा को मृतात्मा की, सूखी ठाठर में
वह घास-पात कूडा-कबाड सबकुछ भर दो
लगा दो इन नकली कौडियों की आँखें
कानों में सीपियाँ
पैरों में खपचियाँ।

7) **पीडा और निराशा :** नई कविता में अनास्था, निराशा, व्यक्तिवादी कुंठा, हीनता का बोध अभिव्यक्त हुआ है। सामाजिक परिवेश ही व्यक्ति में निराशा, पराजय और कुंठा का भाव जगाता है। मनुष्य द्वारा पीडा और निराशा को भोगने के कारण वह प्रेम, करुणा और उल्लास को नकारता है। जिस वस्तु की चाह की अगर वह नहीं मिलती तो निराशा हाथ आती है। ऐसी स्थिति में कवि निराशा में बहकर उस वस्तु में निहित रिक्तता पर व्यंग्य करता है। जहाँ प्रयोगवादी कवि निराशा, कुंठा, पराजय को ही सत्य मान बैठता है, वहाँ नई कविता के रचनाकार दर्द, निराशा और कुंठा में से प्रकाश प्राप्त करते हैं-

ओ मेजों की कोरों पर माथा रख कर रोनेवाले-
हर एक दर्द को नए अर्थ तक जाने दो। - धर्मवीर भारती

8) **सामाजिक दृष्टि :** जहाँ प्रयोगवादी कविता केवल व्यक्ति के अहं, आशा-निराशा, कुंठा, घुटन, चेतना, विश्वास को ही व्यक्त करती थी वहाँ नई कविता समाज के प्रति अपना दायित्व निभाना चाहती है। लोक के सुखदुःख हर्ष-विषाद, आशा-आकांक्षा और विकास-परिवर्तन करने में सहयोगी बनना नई कविता की सबसे बडी विशेषता है। नई कविता लोक-जीवन में गहराई से प्रवेश करती है। नई कविता बिंब के माध्यम से आंतरिक सत्य से साक्षात्कार कराती है। इन कवियों के बिंब, भाषा, शब्दावली, प्रतीक, उपमान, शिल्प-शैली के उपकरण ग्रामीण जीवन से लिए जाते हैं। कवि केदारनाथ सिंह द्वारा प्रयुक्त बिंब देखिए -

माटी को हक दो - वह भीजे, सरसे, फूटे, अँखुआए
इन मेडों से लेकर उन मेडों तक छाए,
और कभी हारे,
तब भी उसके माथे पर हिले,
और हिले,
और उठती ही जाए -

यह दूब की पताका
नए मानव के लिए।

9) **विशिष्ट शिल्प–विधान :** नई कविता का शिल्प–विधान नया और पूर्ववर्ती कविता से भिन्न है। शहरी कवि के बिंब नागरिक जीवन से और ग्रामीण संस्कारों से युक्त कवि के बिंब ग्रामीण जीवन से जुडे हुए होते हैं। कुछ बिंब और प्रतीक इतिहास तथा पुराणों से भी लिए गए हैं। उदाहरण स्वरूप 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'आत्मजयी' आदि प्रबंध कृतियाँ पौराणिक बिंब प्रस्तुत करती है। नई कविता की बिंबयोजना दिल को कचोटती है, झकझोरती है, जगाती है जैसे –

सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढकर,
कोई एक अपने
हाथ पैर समेटे
काँप रहा, हिल रहा – वह मर जाएगा। – मुक्तिबोध

नई कविता की शब्दावली भी लोक जीवन से ली गई है। नई कविता में ऊँचा, पचा, टोपे, भभके, खिंचा, सीटी, ठिठुरन, चिडचिडी, ठसकना, ठूँठ, सिराया, डाकती, पुनगियाना, अंकुराना आदि अनेक शब्दों को लोकजीवन से ग्रहण किया गया है। नयी कविता की शब्दावली –

दिया सो दिया
उसका गर्व क्या, उसे याद भी फिर किया नहीं।
पर अब क्या करुँ
कि पास और कुछ बचा नहीं
सिवा इस दर्द के
जो मुझसे बडा है, इतना बडा कि पचा नहीं,
बल्कि मुझसे ऊँचा नहीं।

● **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न – 1**

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य लिखिए।

1) भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी कविता .... कहलायी।
(नयी कविता / द्विवेदीयुगीन कविता / छायावादी कविता / इनमें से कोई नहीं)

2) 'दिनमान' और 'प्रतीक' पत्रिका का संपादन .... ने किया।
(निराला / पंत / अज्ञेय / प्रसाद)

3) फैंटसी से युक्त .... कविता है।
(मंजीर / अंधेरे में / ठंठा लोहा / जागते रहो)

4) दुर्बोध कवि के रुपमें .... को जाना-पहचाना जाता है।

(गिरिजाकुमार माथुर / कुँवर नारायण / प्रसाद / रघुवीर सहाय)

5) कुँवर नारायण .... कवि है।

(चिंतक / प्रकृति / दुर्बोध / इनमें से कोई नहीं)

ब) उचित मिलान कीजिए।

i)	अज्ञेय	अ) नाश और निर्माण
ii)	गिरिजाकुमार माथुर	ब) आत्मजयी
iii)	धर्मवीर भारती	क) बावरा अहेरी
iv)	भारतभूषण अग्रवाल	ड) ठंडा लोहा
v)	कुँवर नारायण	इ) जागते रहो

2.2.2 नई कविता – परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएं, काव्य प्रवृत्तियां

सन 1950 के बाद की काव्यधारा को हिन्दी में 'नयी कविता' कहा गया है । सन 1943 में प्रयोगवादी आंदोलन चल पड़ा। परंतु 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन के बाद से ही यह नया शब्द रूढ़ हो गया । अन्य काव्यधाराओं की तरह 'नयी कविता' विशिष्ट आंदोलन नहीं है । परंतु उसे आन्दोलन के रूप में चलाया गया है। 1953 में प्रकाशित 'नये पत्ते' से इस काव्यधारा की शुरुआत मानी गयी है। डॉ. जगदीश गुप्त एवं डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में 1954 से 'नयी कविता' का प्रकाशन शुरू हुआ और यहीं से इस काव्यधारा के सारे प्रतिमान, मान्यताएँ जीवन दृष्टिकोण स्पष्ट होने लगे। इसी कारण इस काव्यधारा का आरंभ 'नयी कविता' के (1954) के प्रकाशन से माना जा सकता है।

प्रयोगवाद के विरोध में इस काव्यधारा का आरंभ नहीं हुआ है। सन् 1950 तक आते-आते सारे विश्व में मनुष्य जाति तथा उसके भविष्य के प्रति जबरदस्त निराशा निर्माण हो गयी। दूसरे महायुद्ध के भयावह परिणाम दुनिया के सामने आ रहे थे । विज्ञान की इस राक्षसी प्रगति के कारण लाखों लोग कुछ घंटों में मारे गये थे । इस महायुद्ध के कारण संपूर्ण यूरोप की सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था नष्ट हो गयी थी। श्रेष्ठ मानवी मूल्यों की स्थिति हास्यास्पद हो गयी थी। 'व्यक्तिवादी' भावना का जोर बढ़ रहा था । सम्बन्ध सूत्र टूट रहे थे। अर्थप्रधान समाज व्यवस्था के कारण व्यक्ति को उत्पादन के एक पुर्जे में स्वीकार किया जा रहा था। प्रेम, करुणा, भावुकता आदि श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की हँसी उठाई जा रही थी। इस कारण 'व्यक्ति' 'अकेला' होता जा रहा था । बढ़ते हुए शहरों ने उसके अस्तित्व को ही नकारा था। वह भीड़ का एक अंग मात्र बन गया । भीड़ में रहते हुए भी वह बेहद अकेलेपन का अनुभव कर रहा था। बौद्धिकता, पूँजीवादी व्यवस्था, वैज्ञानिक दृष्टि, बढ़ती हुई शहरी संस्कृति ने सभी मंगलमय तथा पवित्र मूल्य उर्ध्वस्त कर दिये थे। नये जीवन मूल्य सामने नहीं थे और पुराने टूट रहे थे। इस कारण सारा समाज खोखला बन रहा था। दूसरी ओर यंत्र, बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहे थे। इस यंत्र-संस्कृति के सम्मुख मनुष्य अधिक हीन, दीन

असहाय्य बन चुका था। पूंजीवादी शोषितों में अंतर बढ़ रहा था । यूरोप में भी इसी प्रकार का परिवर्तन 1950 के बाद तेजी से शुरू हुआ । प्रजातांत्रिक व्यवस्था के कारण नेताओं का एक नया वर्ग समाज में उभर आया ।

सन् 1960 के बाद यह स्थिति और भी बढ़ गयी । क्योंकि सन् 1960 तक आते-आते यह अनुभव किया जाने लगा कि 'प्रजातंत्र' की व्यवस्था मात्र कागज पर है; जन- सामान्य का फायदा इससे कम ही हुआ है । दरिद्रता की संख्या में वृद्धि हुई । सन् 1947 के देश-विभाजन ने मनुष्य की क्रूरता तथा पशुवृत्ति को फिर से स्पष्ट कर दिया । सन् 1960 के बाद जो पीढ़ी आयी, उसने अपने आस-पास दरिद्रता, बेकारी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद को ही पाया । साम्प्रदायिकता और अधिक उभर आने लगी । सन् 1962 के चीनी आक्रमण से 'मोहभंग' की स्थिति पैदा हुई । इस आक्रमण ने राजनीतिक आदर्शों को समाप्त कर दिया। इस प्रकार 1947 से लेकर आज तक इस देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में में जो विविध परिवर्तन हो रहे थे; उसका असर सर्वसामान्य व्यक्ति के जीवन पर होना स्वाभाविक था। टूटते हुए जीवन मूल्य, यंत्रयुग के कारण बढ़ती हुई भौतिकता, कृत्रिमता, टूटते पारिवारिक सम्बन्ध, स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टि, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेईमानी आदि बदलाव को अभिव्यक्त करना इस युग का तकाजा था। संक्रमणशील काल में कलाकार की यह नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह किसी भी प्रकार की राजनीतिक अथवा आर्थिक विचारधारा के दबाव से मुक्त होकर इस नये युग की नयी अनुभूति को, बेचैन मनःस्थिति को, नैराश्य और संघर्ष को अभिव्यक्त करें।

विशिष्ट भाषा-शैली अथवा शिल्प का आग्रह न करते हुए इस अनुभूति को प्रामाणिकता के साथ व्यक्त करना यही मुख्य समस्या थी और यह समस्या चुनौती के रूप में खड़ी थी । और 'नये कवि' ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया । पुराने कवि अपने आदर्शों से ही लिपटे पड़े थे । छायावादी अपने कल्पना जगत् से बाहर नहीं आना चाहते थे; प्रगतिवादी किसी विचारधारा के अधीन जाकर उसी दृष्टि से 'समस्या' को देख रहे थे। प्रयोगवादी जीवन की ओर निराश दृष्टि से देख रहे थे । वे मानसिक ग्रन्थियों, कुण्ठाओं और विफलताओं में ही खो गये थे। नयी कविता ने जीवन की समग्रता को स्वीकार किया है । अर्थात् क्षण की महत्ता के साथ ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । महंगाई, कालाबाजार, रिश्वतखोरी, साम्प्रदायिकता, बेईमानी आदि ने उसके अस्तित्व को ही खत्म करना चाहा है । देश के स्वतंत्र होने के बाद उसकी आकांक्षाओं को धक्का लगा। क्योंकि उसकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ । इसी कारण सन् 1950 के बाद साहित्य में इस मध्यम वर्ग की अस्थिर, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का संघर्ष हुआ है । इस वर्ग का कवि अपने को अनेक विरोधी संघर्षों की स्थिति में पा रहा है और अपना मार्ग निश्चित नहीं कर पा रहा है । एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता और उन्नति से उसके मन में आस्था और विश्वास निर्माण हो रहा था तो दूसरी ओर अपनी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति न होने से निराशा और अवसाद-सा घेरता था । अर्थात् उसकी संवेदनाएँ अधिक वैयक्तिक होती जा रही थीं तो दूसरी ओर वह अपने को समस्त, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं से अलग नहीं कर पा रहा था। इसी कारण कह

सकेंगे कि इन नये कवियों के सम्मुख वर्तमान युग की जटिल समस्याएँ एवं उलझी मानव समस्याएँ खड़ी हैं। मानवीय संबंध और मानवमूल्य पहले की अपेक्षा अधिक जटिल और अस्त-व्यस्त हो गये हैं। इसलिए नये साहित्य की आवश्यकता थी; जो बदलते समाज और बदलते मानव को पूर्णतः व्यक्त कर सके। डॉ. रघुवंश ने लिखा है कि - ''नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता के आगे की स्थिति है । प्रयोगशील कविता ने परम्परा से विद्रोह के रूप में प्रयोग तथा अन्वेषण का मार्ग स्वीकार किया था, पर नयी कविता के संदर्भ में वे उसकी प्रवृत्ति के सूचक हैं। प्रयोग युग का कवि अपने संघर्ष के प्रति निश्चित नहीं था, आज का कवि अपनी सारी शंकाओं के बीच अपने व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान है।'' (साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'नयी कविता' 'युगीन परिस्थिति और व्यक्ति' के पारंपारिक संघर्ष और समन्वय को काव्य-विषय के साथ में स्वीकार करती है। अब संक्षेप में हम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे-

नयी कविता की प्रवृत्तियाँ:-

1) **आस्था का स्वर:-**

यही वह विशेष प्रवृत्ति है जिस कारण यह काव्यधारा प्रयोगवाद से स्वतंत्र हो जाती है। नये कवि का अपने व्यक्तित्व पर विश्वास है; अपने स्वर के प्रति उसे आस्था है । जब कवि अपने युग की सारी विषमता, कलुषता तथा अंधकारों के समस्त को झेलने का संकल्प करता है तब उसका अहं विश्वास का एक आधार ढूंढ़ लेता है । धर्मवीर भारती जो इस धारा के प्रमुख हैं - अपने दृश्य काव्य 'अंधायुग' में युग अंधकार के बीच आन्तरिक अनासक्त भाव की आस्था को व्यंजित करते हैं । भविष्य की उज्ज्वलता पर इन कवियों की आस्था है। जीवन के यथार्थ पक्ष की ओर अधिक आस्था और विश्वास से इन्होंने देखा है । यथार्थ जीवन को अपनाकर जीवन से पलायन करने की प्रवृत्ति का इन्होंने खंडन किया है । जीवन की विद्रूपताओं के प्रति इन्होंने व्यंग्य किया है । उनके इस व्यंग्य ने यह सिद्ध किया है कि वे जीवन के शुक्ल पक्ष को ही अधिक महत्व देते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि इनमें मात्र आस्था का स्वर है । अनास्था, निराशा, अविश्वास का स्वर भी इनमें है । परंतु वह एक विशिष्ट मानसिक स्थिति के रूप में प्रकट हुआ है । यह 'अनास्था' किसी मानसिक रुग्णता में परिवर्तित नहीं होती अपितु वह उन्हें आस्था की ओर लौटाती है । अनास्था का यह स्वर दुष्यन्तकुमार, रमा सिंह, शरद देवड़ा, अजित कुमार आदि की कविताओं में मिलता है ।

नई कविता की सबसे प्रमुख और विशिष्ट प्रवृत्ति यही है जो कविता को प्रयोगवादी काव्य से अलग करती है नयी कविता में जीवन के प्रति पूर्ण आस्था और उसे अंतिम क्षण तक भोगने का संकल्प अभिव्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी काव्य में जीवन के प्रति नकारात्मक अभिव्यक्ति, निराशा और असफलता के कारण जीवन से परामुखता का भाव ही प्रमुख था किन्तु नयी कविता जीवन में ज्वार से आंदोलित है जो सम्पूर्ण रूप मे उसे भोगने की लालसा से सम्पन्न है। नयी कविता में जीवन को नगण्य, दीन, अकिंचन या एकांगी नहीं स्वीकार किया गया । जीवन चाहे व्यक्ति का हो या वर्ग का, चाहे समाज का ही क्यों न हो, उसे

जीवन के रूप में ही देखा गया है। भवानीप्रसाद मिश्र प्रकोपों से टूटते हुए जीवन का त्यौहार मनाते हुए कहते हैं-

> ''इस दुखी ससार में जितना बने हम सुख लुटा दें।
> बन सके तो निष्कपट मृदु हास के दो कन जुटा दें''

जो कवि कभी प्रेम से निराश था और अपनी असलता में केवल आत्महत्या की बात सोचता था वह जीवन का महत्व पहचान गया और उसे अधिक सुन्दरता से परिपूर्ण करने की सोचने लगा । आशा और उल्लास नये कवि के जीवन का उत्साह बन गए है।

यद्यपि कविता मे कवि का निजी दर्द और निजी भाव है। किंतु जीवन के प्रति आस्था स्पष्ट दृष्टव्य है।

2) **क्षण की अभिव्यक्तिः-**

नई कविता क्षण की अनुभूति को महत्व देती है। इसका अर्थ यह नहीं कि जीवन की संपूर्णता में उसका विश्वास ही नहीं है । जीवन की सम्पूर्णता को स्वीकार करते हुए भी वह एक-एक क्षण बोध की अनुभूति को सत्य मानकर जीवन का पूर्ण उपयोग करना चाहती है। रोमान्टिक और अध्यात्मवादी दृष्टि क्षण की मनःस्थिति को नकारती है। यह काव्य-धारा क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है। इसीलिए वह अनुभूति से गुजरने का आग्रह करती है और इसी कारण वह काल्पनिक अनुभूतियों के स्थान पर प्रखर यथार्थ का आग्रह करती है। अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी मार्मिकता के साथ यह पकड़ लेना चाहती है। इसी कारण जीवन के सामान्य से सामान्य दिखने वाले व्यापार में ये कवि नवा अर्थ पा लेते हैं । अज्ञेय, धर्मवीर भारती, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, कुंवर नारायण, कीर्ति चौधरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय आदि की कविताओं में इस क्षण की अभिव्यक्ति हुई है ।

इससे स्पष्ट है कि नई कविता जो क्षण-बोध और उसके उपभोग के सत्य की अनुभूति कराती है, वह मौलिक रूप में अपने ही जीवन-दशन और परिवेश के जीवन सत्य पर स्थापित है। जैसे महेंद्रकुमार मिश्र लिखते है-

> ''अब आज आत्मा की सृजनातुर वैदेही-
> परित्यक्ता मन से क्षीण, विवश
> संशय और अनिश्चय की अटवी में
> पा गई शरण वाल्मीकि सरीखे
> काव्य-वृक्ष की छाया में
> यह जनमेगी वह पुत्र जा कि
> उसकी पीड़ा को सस्वर गायें
> जो सहज सत्य के भटके नृप को
> जननी तक वापस लाएँ।''

3) **आधुनिकता की पहचान:–**

'आधुनिक परिवेश' यह नयी कविता का कैनवास है । इस आधुनिकता को उसकी संपूर्ण संगति–विसंगति के साथ इसने स्वीकारा है । उसका विश्वास इस आधुनिकता में है । इस आधुनिकता में उसने वर्जनाओं और कुण्ठाओं की अपेक्षा 'मुक्त यथार्थ' को स्वीकार किया है। इस आधुनिकता के कारण आम आदमी की जो स्थिति हुई है, जो मूल्यगत परिवर्तन हो रहे हैं, उसे वह शब्दबद्ध करना चाह रही है; आधुनिकता के कारण केवल भौतिक परिवर्तन हो रहे हैं अथवा मानसिक भी इसको वह देखना चाह रही है। यह आधुनिकता मनुष्य जीवन के स्वस्थ विकास में सहयोग दे रही है अथवा उसके अस्तित्व को खत्म कर रही है, इसकी तलाश वह कर रही है । अज्ञेय, मुक्तिबोध, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल आदि करीब–करीब सभी कवियों ने इस आधुनिकता की तलाश अपनी कविताओं में की है।

4) **समसामयिकता को महत्व:–**

नयी कविता चिरन्तन और अमर समस्याओं अथवा भावबोधों की अपेक्षा 'समसामयिकता' को सर्वाधिक महत्व देती है। मनुष्य आज जिस वातावरण में जी रहा है; उसे जिस आर्थिक, मानसिक और सामाजिक तत्वों से गुजरना पड़ रहा है, उसी को शब्दबद्ध करना चाहती है। अपने परिवेश के प्रति विशिष्ट दायित्व को स्वीकार करने के कारण यह समसामयिकता की दृष्टि विकसित हुई है। इसी दृष्टि के कारण इन कवियों ने 'लघु मानव' को महत्व दिया है। क्योंकि इस परिवेश में यह लघुमानव ही सर्वाधिक उपेक्षित और त्रस्त रहा है। इस कारण असामान्य और अलौकिक चरित्र यहाँ नहीं हैं । लघु मानव अपनी प्रकृति, संस्कृति और विकृति को लेकर यहाँ उपस्थित हुआ है ।

इस काव्यधारा का मुख्य उद्देश्य मानव व्यक्तित्व की स्थापना करना है। श्री लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार ''नयी कविता का आग्रह जिस विशेष तत्व पर है, वह उस मानव व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होता है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटुताओं के बावजूद मनुष्य को उसकी मूल मर्यादा के प्रति, निजत्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक रखना चाहता है।'' अज्ञेय, मुक्तिबोध, कुंवर नारायण, जगदीशगुप्त, कीर्ति चौधरी, रघुवीर सहाय, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि प्रमुख नये कवियों के विषय समसामयिक ही है।

5) **यथार्थवादी दृष्टि:–**

प्रगतिवादियों ने काव्य क्षेत्र में यथार्थवादी दृष्टि की स्थापना की प्रगतिवादियों का यथार्थ 'सामाजिक' ही था, उसमें व्यक्ति 'यथार्थ' को स्थान नहीं था। प्रयोगवाद ने व्यक्ति की मानसिक स्थितियों का उद्घाटन किया तथा उसकी वर्जनाओं, कुंठाओं को पथार्थ रूप में स्वीकार किया। नयी कविता यथार्थ के इन कृत्रिम भेदों को नहीं मानती । उसने यथार्थ को उसके समग्र रूप में स्वीकार किया है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण ही व्यक्ति की मानसिक स्थितियाँ बनती हैं। इस कारण 'प्रखर यथार्थवादी दृष्टि' यह नयी कविता की अपनी विशिष्टता है। इस धारा के सभी कवियों में यह दृष्टि मिलती है।

6) **व्यंग्य की प्रधानता :–**

इन कवियों ने व्यंग्य के शस्त्र को स्वीकार किया है। व्यंग्य के मूल में सुधार भावना होती है। जहाँ सारे बंधन ही खत्म कर दिये जाते हैं; स्वतंत्रता के नाम पर जहाँ मनुष्य उच्छृंखल बनता जाता है; वहाँ उसमें सुधार के लिए उपदेश धर्म, ईश्वर आदि की शक्तियाँ काम नहीं करती। ऐसे समय 'व्यंग्य' ही एकमात्र और शक्तिशाली माध्यम बचा रहता है। अप्रतिम व्यंग्य कविताएँ इस काव्यधारा ने दी हैं। प्रभाकर माचवे, श्रीकान्त वर्मा, दिनकर, सोनवलकर, भवानीप्रसाद मिश्र, नागार्जुन, भारत भूषण अग्रवाल आदि कवियों में व्यंग्य की प्रधानता है

7) **मानवतावादी स्वर :–**

आज दुनिया इतनी करीब आ चुकी है कि अब साहित्य में संकुचित मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति संभव ही नहीं है । नये कवि का मानवतावाद स्वप्निल, आदर्श अथवा किसी विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित, प्रभावित नहीं है। वह शुद्ध यथार्थ हैं । दीन-दलितों के प्रति जबरदस्त करुणा और सहानुभूति इसमें है। दुनिया के किसी भी भाग में मानवता रौंदी गयी तो यह कवि विचलित हो जाता है। विश्व भर के मनुष्य के प्रश्न समान हैं; ऐसा वह मानता है। इसी कारण वह सबको समेट कर चलनाके मनुष्य के प्रश्न समान है; ऐसा वह मानता है। इसी कारण वह सबको समेट कर चलना चाहता है। नये आधुनिक और वैज्ञानिक युग में जीने वाला मनुष्य उसकी चिन्ता का विषय है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, गिरिजा कुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र आदि सभी कवियों में यह चिन्ता व्यक्त हुई है। इन प्रमुख विशेषताओं के अलावा प्रेम, नारी, प्रकृति आदि के विवेचन में भी विशेष दृष्टि व्यक्त हुई है ।

8) **लघु मानववाद :**

नई कविता ने सामान्यतया, सबसे छोटे तथा निम्न वर्ग के मनुष्य के व्यक्तित्व को समादर रूप में प्रस्तुत किया। वह लघु मानववाद, जो नई कविता का सम्मोहक और सर्व प्रभावकारी स्वर है, यह भी जीवन को सम्पूर्ण रूप से देखने और भोगने का ही एक धर्म है। इसे भी जीवन की पूर्णता के ही संदर्भ मे देखा जाना चाहिए। सघु मानव का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूस - प्यास और मानसिक आं च को लिए दिए अब तर उपेक्षित था। इस लघु मानव का अर्थ यदि मनुष्य की लघुता को खोज-खोजकर सत्य रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने से है तो निश्चय ही यह अतिवादी, प्रतिक्रियावादी और असत्य जीवन दृष्टि है। नई कविता न लघु मानव की लघुता या हीनता का स्वीकार करके उसमें और अधिक हीनता भरने का घृणित कार्य नहीं किया अपितु उस सामान्य लघु धौर उपेक्षित मनुष्य वा संवेदना सहानुभूति और समादर की दृष्टि से अंकित करके शेष समाज में उसको महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने में योग दिया है जो लोग उस लघु की भोर देखते तक नहीं थे, नई कविता उस लघु को काव्य में सर्वोत्तम काथ्य बनाया जिससे सबका ध्यान लघु मानव पर केंद्रित हुआ यही नई कविता की लघु मानववादी दृष्टि है। इस काव्य में मनुष्य किसी वर्ग चेतना, सिद्धान्त या आदेश की बैसाखी पर चलता हुआ इसने पास नहीं आया, वह तो अपने सम्पूर्ण सुख-दुख, राग विराग के परिवेश से सयुक्त शुद्ध मनुष्य ने रूप में ही आया है इसलिए

नई कविता ने सामान्य मनुष्य को व्यापकता और विशिष्टता प्रदान की। उसका महत्व प्रतिष्ठित किया है। सर्वेश्वर ने लिखा है

''तो यह नगण्य अस्तित्व एक
किसी के कंधे पर भार नहीं होगा-
चरमस से हम सब
हर भावी यात्री के
प्यासे क्षणों का
अभिशाप भाल चूमेंगे''

9) **अनुभूति की सच्चाई:–**

नई कविता में कवि अपने अनुभवों को सूक्ष्म बनाकर ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करता है। यह अनुभूति चाहे दाह की हो या एक काली, किसी सामान्य व्यक्ति भी हो या विशेष पुरुष की, आशा की हो या निराशा की, अनुभूति की सच्चाई कविता और जीवन दोनों के लिए अमूल्य होती हैं इस अनुभूति की सच्चाई की जब हम बात करते हैं तो यह प्रश्न स्वभावत: उठता है कि यह अनुभूति कवि की है या समाज की? उत्तर स्पष्ट ही है कि कविता में कवि अपनी ही अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है । समाज की अनुभूतियों को भी कवि आत्मसाथ करके उन्हें पचाकर, अपनी बनाकर ही कविता में व्यक्त करता है। कवि का आंतरिक रचनाकार यत्रवत् नहीं है। वह अपनी पराई अनुभूतियों को आत्मसात् करके फिर कविता में व्यक्त करता है । जो कवि ग्रहण करता है, वह कवि को अनुभूति के समान ही निजी हो जाता है। वही काव्य का सत्य बन जाता है इसलिए कवि के व्यक्तित्व का सं स्कार करने के लिए, युग का समाज में भी सत्यमयी चेतना का निवास होना चाहिए। युग–बोध के द्वारा ही वह अपने ही चश्मे से सबको देख लेता है और समान रूप से मनुष्य मात्र के दर्द का संवेदना का अनुभव कर उसे अभिव्यक्त कर देता है। यही कवि की अनुभूति को सच्चाई है।

नई कविता जीवन के प्रत्येक क्षण को सत्य मानती है और उस क्षण को पूरी हार्दिकता और चेतना के साथ भोगने का समयन करती है। क्षणों में दिखाई पढने वाला सौन्दर्य क्षणों में अनुभूत जीवन की व्यथा, क्षणों की मन: स्थिति और क्षण में उत्पन्न कोई सत्य, नई कविता को अनुभूति का उत्स होता है। नई कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आंतरिकता के साथ पकडकर व्यक्त करती है जिससे उस व्यापार या प्रसंग को नया रूप मिल जाता है । जैसे

''चेहरे थे पसस्य
दर्द सभी में पा
जीवन का दश सभी ने जाना था
पर दो बेवल दो
मेरे मन मे कौंध गईं

मैं नहीं जानता किसकी वे घाँसें थी''

10) **शिल्पगत विशेषता :-**

नयी कविता ने प्रयोगवादियों के शिल्प को थोड़े से अंतर के साथ स्वीकार किया है। भाषा की मर्यादा को वे भी स्वीकारते हैं। भाषा को अधिक सूक्ष्म, ध्वन्यात्मक बनाने का प्रयत्न इन्होंने किया है। नये बिम्बों और प्रतीकों की योजना इन्होंने की है । ये बिम्ब और प्रतीक आधुनिक जीवन से सम्बंधित हैं। काव्य भाषा को एक नयी शक्ति इन्होंने दी है। जनसामान्य में प्रचलित दर्जनों शब्दों का प्रयोग इन्होंने किया है। अंग्रेजी, उर्दू तथा अन्य बोली भाषाओं से सैकड़ों शब्द इन्होंने लिए हैं। इस कारण काव्य-भाषा में अधिक गहराई आ गयी है । मुक्तछंद को ही इन्होंने स्वीकार किया । परंतु 'अर्थलय' के सिद्धान्त की स्थापना भी इन्होंने की। मुक्तक शैली का प्रयोग ही अधिक है । खंडकाव्यों की रचना भी हुई। इस तरह प्रगति प्रयोग की तुलना में इस धारा ने अनेक शैलियों को स्वीकार किया है ।

नई कविता के कवि

1) **गजानन माधव मुक्तिबोध :-**

नयी कविता के प्रमुख कवि हैं, इनकी कविता वाद के सीमित दायरे को तोड़कर आधुनिक मनुष्य की बेचैनी को व्यक्त करती है। 'चांद का मुँह टेढ़ा है' इनका एकमात्र काव्य संग्रह है, जो इनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ । मुक्तिबोध हिन्दी के उन अपवादात्मक कवि हैं, जिन्हें जिंदगी की आखिरी सांस तक परन्तु परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा। समझौतावादी वृत्ति उनमें किसी भी स्तर पर नहीं थीं। मुक्तिबोध ने कहानियाँ लिखी हैं । एक उपन्यास (विपात्र) भी लिखा है । वे हैं। उन्होंने लिखा भी है कि मैं मुख्यतः विचारक न होकर केवल कवि हूँ।'' इनकी मूलतः एक कवि कविता अति बौद्धिक है। कविता को वे 'सांस्कृतिक प्रक्रिया' मानते हैं। कला को जीवन सापेक्ष्य मानते हैं। इनकी कविता में आधुनिक व्यक्ति की छटपटाहट तथा संवेदनशील मन की चिन्ता ही व्यक्त हुई है। वे कवि कर्म को सरल और आत्मस्फूर्त नहीं मानते। ब्रह्मराक्षस के शिष्य की तरह इनमें भी अभिव्यक्ति की बेचैनी है । कविता में रचनाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है ऐसा वे मानते हैं। इस अर्थ में कविता आत्मचरित्रात्मक होती है। कम- से-कम इनकी कविताओं की यही नियति है। इनकी अधिकतर कविताएँ लम्बी हैं। इन दीर्घ कविताओं में अनेक प्रतीक हैं, बिम्ब हैं और स्वप्न हैं। ये कवितायें कल होने वाली घटनाओं की पूर्व सूचना देती हैं। अभिव्यक्ति को वे कलाकार का सबसे बड़ा संकट मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे। तोड़ने होंगे यह और गढ़ सब, पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार ।'' कविता का यही उद्देश्य वे मानते हैं। इस अर्थ में मुक्तिबोध हिन्दी के सबसे बड़े विद्रोही कवि हैं। उनकी इन लम्बी कविताओं में यथार्थ की जटिलता व्यक्त हुई है। डॉ. मदान के शब्दों में ''वास्तविकता की जटिलता अथवा जटिलता की वास्तविकता'' इनके काव्य में हैं। मअंधेरे मेंफ इनकी सबसे प्रसिद्ध और लम्बी कविता है। इस कविता के सम्बन्ध में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है। कि - ''यह कविता देश के जन इतिहास का दहकता इस्पाती दस्तावेज है।'' मुक्तिबोध जनसामान्य की समस्याओं से जुड़े हुए कवि हैं । परंतु ये समस्याएँ इतिवृत्तात्मक

रूप में व्यक्त नहीं हुई हैं। समस्याओं की भीतरी तहों का वे उद्धाटन करते हैं। इसी कारण इनकी कविताएँ अधिक सूक्ष्म, बौद्धिक, जटिल और भयावह लगती हैं विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है कि ''मुक्तिबोध का काव्य ऐसा नर काव्य है, जिसमें नारायण के आँखों की व्यथा भरी हुई है।''

2) **भवानी प्रसाद मिश्र**

मिश्रजी 'दूसरा सप्तक' के महत्वपूर्ण कवि हैं। दूसरा सप्तक के कवियों को प्रयोगवादी कहा गया परंतु मिश्र जी की कविता वादों से ऊपर है उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि, ''जब मैंने दूसरा सप्तक में अपनी कविताएं भेजी थीं, तब मुझे यह भी मालूम नहीं था कि प्रयोगवाद नाम का कोई वाद कहीं चल रहा है।'' इनकी कविताओं में नयी कविता के सारे लक्षण मिलते हैं। अनुभूति सम्पन्न और ईमानदार कवि के रूप में विख्यात हैं। 'गीत फरोश' इनका पहला काव्य संकलन हैं। इसमें प्रकृति विषयक विविध कविताएँ हैं । आधुनिक व्यस्त जीवन पर कठोर व्यंग्य की कविताएँ हैं। 'अंधेरी कविताएँ' और 'गाथा पंचशती' इनके अन्य काव्य संकलन हैं। इस देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक वातावरण में जो विघटन हुआ है; उसका पर्दाफाश इन दोनों संग्रहों में किया गया है । इन भयावह परिस्थितियों के बावजूद भी इनकी आस्था डगमगाई नहीं है। इसी कारण मअंधेरा कविताएं अपन नहीं करती । कान्ति कुमार ने लिखा ''मिश्र जी का काव्य अपनी जिजीविषा, सामाजिकता, उदात्ता एवं युग बोय कारण जहाँ समाज के बौद्धिक वर्ग के बीच समादृत हुआ है, वहीं अपनी प्रखर अनुभूति, बेलाग ईमानदारी, अभिव्यक्ति की सहजता एवं दैनंदिन समस्याओं के स्पष्टीकरण के कारण राह चलते आदमी का भी मन बांधने में सफल हुआ है। सरलतम भाषा-शैली के लिए मिश्र जी विख्यात हैं। उनकी इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा, ''हम सहज ही मिश्र जी को हिन्दी साहित्य में लोक जीवनग्राही कवियों की परम्परा से जोड़ सकते हैं जो अमीर खुसरो, कबीर, रहीम, मीरा, रसखान, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त एवं निराला आदि कवियों के रूप में अक्षुण्ण भाव से प्रवाहित हो रही है। ये सभी लोक मांगलिक अनुभूति के कवि हैं। भवानीप्रसाद मिश्र को सर्वोदयवादी कवि कहा गया है। 'बुनी हुई रस्सी' इनका नवीनतम काव्य संग्रह है । इसी काव्य-संग्रह पर इन्हें अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

3) **शमशेर बहादुर सिंह :-**

आरम्भ में शमशेर का सम्बन्ध प्रगतिवादी काव्य आंदोलन से था । मदूसरा सप्तकफ में इनकी कविताएँ आने से इन्हें प्रयोगवादी कवि के रूप में भी देखा गया और आज नई कविता के समीक्षक और कवि 'इन्हें' नई कविता की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार शमशेर तीन प्रमुख काव्य आंदोलनों से सम्बन्धित रहे परन्तु इनकी कविता मुक्तिबोध की तरह किसी मवादफ में आबद्ध नहीं है। दे मूड्स के कवि हैं, किसी विजन के नहीं।'' मलयज का यह वक्तव्य वास्तव में सही है- ''किन्तु उनके मूड को हम एक ऐसे व्यक्ति का मूड कह सकते हैं कि जो आज के कटु यथार्थ को देखता ही नहीं, उसे जीवन में झेलता भी है।'' आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने शमशेर को 'प्रयोगवादी काव्य' के प्रगतिशील सम्भाग का कवि कहा है। शमशेर जन-मन की भावना के सहयात्री बनने के पक्षधर हैं। इनकी अनुभूति जीवन यथार्थ से निष्पन्न है। इनका

आग्रह – है कि ''कलाकारों को अपने चारों तरफ की जिंदगी में दिलचस्पी लेनी चाहिए।'' जीवन में तेजी से हो रही कायापलट ही नये कवि की काव्य सामग्री है ऐसा वे मानते हैं। 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ' इनके प्रकाशित काव्य संग्रह हैं । भाषा का कलात्मक रूप शमशेर की कविताओं में मिलता है। कम–से–कम शब्दों में वे अधिक–से– अधिक व्यक्त करते हैं । सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति एवं शब्द संक्षिप्ति के कारण इनकी कविता कठिन लगती है। वे अपनी कविताओं का विशिष्ट स्तर बनाये रखने में सफल हुए अपने पाठकों को भी वे उस स्तर पर लाना चाहते हैं। सरसरी तौर पर पढ़कर न तो उन्हें समझा ही जा सकता है और न ही उसका आस्वाद लिया जा सकता है। संस्कृत, उर्दू और फारसी शब्दों की अधिकता इनके काव्य–भाषा की विशिष्टता है ।

4) **कीर्ति चौधरी :–**

'तीसरा सप्तक' के कवि के रूप में इन्हें मान्यता मिल गयी है । कांति कुमार के अनुसार, ''सामान्य जीवन की सामान्य पीड़ाओं, सामान्य भाषाओं एवं उनकी सामान्य अभिव्यक्तियों की कवयित्री हैं।'' इसी कारण इनकी कविताएँ अति बौद्धिकता से आक्रान्त नहीं है। स्त्री की विभिन्न मनोदशा का बड़ा सहज चित्रण इनकी कविताओं से हुआ है। आलोचकों के अनुसार इनकी कविताएँ अतिरिक्त भावुकता से ग्रस्त हैं। परंतु इसी अतिरिक्त भावुकता के कारण ये कविताएँ मार्मिक बन गयी हैं। यह भावुकता इनकी कविताओं का दोष भी हो सकता है और शक्ति भी।

5) **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :–**

'काठ की घंटियां' और 'गर्म हवा' इनके दो प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। पहले काव्य संग्रह में व्यंग्य का स्वर प्रधान है। यह व्यंग्य जीवन के सभी पक्षों और स्थितियों पर किया गया है। डॉ. धनंजय वर्मा के अनुसार ''सर्वेश्वर वैचारिक उत्तेजना और प्रतिक्रियाओं के कवि हैं। इसी कारण उनमें से संयत, संयमित अभिव्यक्ति की कमी है।'' तो दूसरी ओर रामस्वरूप चतुर्वेदी इनके काव्य में 'शिल्प' और मभाव विधानफ की अभिन्नता देखते हैं । सर्वेश्वर के काव्य विषय समसामयिक जीवन से अनुप्राणित हैं। राजनीति, समाजनीति और नैतिक दारिद्र्य पर उन्होंने कठोर व्यंग्य किये हैं । प्रजातंत्र की सारी विडम्बनाओं को इनकी कविताओं में ढूंढा जा सकता है। सम्पूर्ण मानव अस्तित्व ही उनके व्यंग्य की परिधि में आ जाता है। अज्ञेय के शब्दों में, ''इनकी कविता सच्चे अर्थ में समकालीन जीवन से सम्पृक्त छूते आकारों के विरुद्ध समर्थ व्यक्तित्व का विद्रोह है ।'' सर्वेश्वर मूलतः वैयक्तिक संवेदना और सूक्ष्म बोध के चित्रकार हैं। ये उन थोड़े–से कवियों में से हैं, जो गांव, कस्बे और शहर तीनों परिवेशों में पाठकों के साथ सहज रूप से एकरस हो जाते हैं। 'बांस के पुल', 'एक सूनी नाव', 'कुआनों नदी' इनके अन्य काव्य संग्रह हैं।

6) **केदारनाथ अग्रवाल :–**

इनकी भी आरंभिक रचनाएँ प्रगतिवाद से संबंधित थीं । परंतु बाद में वे उस 'वाद' से मुक्त हो गये। प्रकृति सौंदर्य का बड़ा सूक्ष्म चित्रण वे करते हैं। इसी कारण इन्हें ''प्रकृति सौंदर्य और मानवीय मूल्यों का कवि'' कहा गया है। केदारनाथ अपनी अनुभूति बड़े सीधे ढंग से व्यक्त करते हैं । 1930 से ये लिख रहे हैं।

नींद के बाद, युग की गंगा, लोक और आलोक, फूल नहीं रंग बोलते हैं इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं । सामाजिक यथार्थ की ओर इनका अधिक रुझान है। दूसरी ओर प्रकृति के विविध रंगों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति भी यहाँ हुई है।

7) **लक्ष्मीकांत वर्मा :–**

नई कविता के प्रथम समीक्षक के रूप में इन्हें मान्यता प्राप्त है। उपन्यास और एकांकी के क्षेत्र में इन्होंने नये प्रयोग किये हैं। नई कविता के आरम्भिक दौर में इन्हें कवि के रूप में प्रसिद्धि मिली। वर्मा जी विद्रूपता के कवि हैं। व्यंग्य इनका प्रभावी शस्त्र है । कान्ति वर्मा के अनुसार ''इनका विषय चयन अभिजात्यहीन है, भाषा अभिजात्यहीन है और शिल्प भी अभिजात्यहीन है। जिंदगी के अनदेखे अनजाने क्षेत्र में वे चले जाते हैं और उसकी सफल अभिव्यक्ति करते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इन्हें 'सहानुभूति का कवि' कहा है।

8) **डॉ. जगदीश गुप्त :–**

'नांव के पाँव', 'शब्द-दंश', 'हिमविद्ध' आदि गुप्त जी की चर्चित कृतियाँ हैं । गुप्त जी चित्रकार भी हैं। इस कारण इनकी कविता में चित्रात्मकता अधिक है। कविताओं में इनकी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि दिखलाई देती है। परन्तु प्रायः अनुभूति नहीं होती । व्यंग्यात्मकता, सूक्ष्म प्रकृति चित्रण, बौद्धिकता इनके काव्य की अन्य विशेषताएँ है ।

9) **राजकमल चौधरी :–**

नई कविता के आरम्भिक दौर के सबसे प्रतिभा सम्पन्न और मौलिक कवि के रूप में इन्हीं को स्वीकार किया जाना चाहिए, परन्तु दुर्भाग्य से ये उपेक्षित रहे हैं। छायावादी कविता की परम्परा से पूर्ण विद्रोह करने वाले कवियों की पंक्ति में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। ''इनकी काव्य संवेदना परम्पराओं एवं संस्कारों से बिल्कुल अलग है और उसमें आधुनिकता पूरी तरह से विद्यमान है।'' इनके काव्य में नकारात्मक स्वर की अधिकता है। इनका विद्रोह सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति है। यौन कुण्ठा की अभिव्यक्ति इन्होंने सर्वाधिक की है । व्यक्ति का अकेलापन, भटकन, आवारगी और शून्यरत मनःस्थिति की कलात्मक अनुभूति इनके काव्य में है।

10) **दुष्यन्त कुमार :–**

नये भाव बोध और आधुनिक मनुष्य की त्रासद स्थिति का गजलों और गीतों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति करने वाले, दुष्यन्त नई कविता के सशक्त कवि हैं । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने इनके काव्य में एक विशिष्ट संतुलन देखा है । सर्वसामान्य व्यक्ति की अनुभूति को और उसके दुःखों को अकृत्रिम और अनौपचारिक रूप से व्यक्त करने में दुष्यन्त को अत्याधिक सफलता मिली। 'सूर्य का स्वागत' और 'आवाजों के घेरे' इनके काव्य संकलन तथा 'एक कण्ठ विषपायी' काव्य नाटक है। नई कविता की उपलब्धियों के रूप में इस काव्य नाटक को स्वीकार किया गया है। विषय, भाषा, शिल्प आदि सभी दृष्टियों से नई कविता को व्यापकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका दुष्यन्त कुमार ने निभाई है। 'साये में धूप' इनका प्रसिद्ध गजल संग्रह है ।

11) **धूमिल :–**

युवा नये कवियों में स्मृति शेष धूमिल का स्थान अग्रणी है। अनुभूति के प्रति प्रामाणिकता, खुद्दारी और सर्वसामान्य जीवन से सम्बन्धित भाषा और आधुनिक जीवन की त्रासदी का जीवन्त चित्रण धूमिल काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'संसद से सड़क तक' इनका बहुचर्चित काव्य संग्रह है । इस संग्रह की 'मोचीराम' 'जनतंत्र' 'सूर्योदय' 'पटकथा' महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। इनमें भारतीय जीवन की असहायता और भयावहता का बड़ा सूक्ष्म और चेतनायुक्त चित्रण मिलता है। उन्होंने स्वयं को 'दूसरे प्रजातंत्र की तलाश' का कवि कहा है। स्वतंत्रता के बाद इस देश के आम आदमी की मानसिकता को ही इन्होंने काव्य विषय के रूप में स्वीकार किया है ।

2.2.3 साठोत्तरी कविता–परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएं, काव्य प्रवृत्तियां

साहित्य समय के साथ कदम मिलाकर पता करता है वीरगाथा काल के काव्य से लेकर आज तक के समय के परिवर्तनों के अनुसार कविता ने कई मोड लिए है माठोत्तर कविता भी ऐसा ही एक मोड है। कवि समाज मे रहता है, यह सामान्य व्यक्ति की तुलना में अधिक मवेदनशील धौर प्रथिन प्रभिव्यक्तिक्षम होता हैं। समाज की हलचलें कवि की हृदयत श्री सवेदना के तारों को झनझना देती हैं और भनभनाहट को वह कविता के बाने मे व्यक्त कर देता है। सन् 1960 तन नयी रविताना बोलबाला रहा। 1960 के बाद भारत मे सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र मैं बड़ी उथल–पुथल हुई, जिनके स्वर साठोत्तर कविता मे सुनाई पडे ।

साठोत्तरी कविता–परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि

साहित्य समय के साथ कदम मिलाकर चला करता है वीरगाथा काल के काव्य से लेकर आज तक के समय के परिवर्तनों के अनुसार कविता ने कई मोड लिए है साठोत्तर कविता भी ऐसा ही एक मोड है। कवि समाज में रहता है, वह सामान्य व्यक्ति की तुलना में अधिक संवेदनशील औरर अधिक अभिव्यक्तिक्षम होता हैं। समाज की हलचलें कवि की हृदयतंत्री संवेदना के तारों को झनझना देती हैं और भनभनाहट को वह कविता के बाने में व्यक्त कर देता है। सन् 1960 तब नयी कविता का बोलबाला रहा। 1960 के बाद भारत में सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र मैं बड़ी उथल–पुथल हुई, जिनके स्वर साठोत्तर कविता मे सुनाई पडे ।

1960 के बाद नयी कविता, अकविता के भिन्न रूप में जो कविता अस्तित्व में आई उसे साठोत्तर कविता कहा गया। साठोत्तरी हिन्दी कविता में अकविता, शुद्ध कविता, ठोस कविता, सहज कविता, ताज़ी कविता, सपाट कविता, युयुत्सु कविता, बीटनिक कविता, अस्वीकृत कविता, आक्रोशित कविता आदि तमाम प्रवृत्तियाँ एक साथ विद्यमान हैं। यही कारण है कि सन् 1967 के बाद की इन तमाम काव्य प्रवृत्तियों को नामांकित करने के लिए एक समग्र नाम दिया गया साठोत्तरी कविता । 1964 मे मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद इस प्रकार की रचनाओं की प्रवृत्तियां अधिक स्पष्ट हुई। इस कविता में पाकिस्तान के कच्छ पर आक्रमण, कच्छ न्यायाधिकरण के पक्षपातपूर्ण निर्णय, ताशकद घोषणा के तथ्यों का असर मुखरित है। इन परिवर्तनों ने बुद्धिजीवियों को भी सोचने के लिए मजबूर कर दिया। विज्ञान की भयावह स्थिति, मानवीय सत्ता का विघटन, महँगाई, बेकारी, पूंजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम, आधुनिकता के अभिशाप आदि ने भी

कविता को करवट बदलने का आधार प्रदान किया। नयी कविता का मुख्य विषय व्यक्ति था साठोत्तर कविता का विषय समकालीन संसार हो गया। नये युवा कवियों ने इन बदली हुई परिस्थितियों को लेकर आक्रोश, खीझ, झुझलाहट विद्रोह का भाव व्यक्त दिया । नीलम श्रीवास्तव, विनोद शुक्ल,सौमित्र, चन्द्रकांत देवताले, विष्णु, कमलेश, ज्ञानेन्द्रपति, श्रीकांत वर्मा, वेणु, गोपाल, माहेश्वर, केदारनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, लीलाधर जगुडी जैसे कवियों ने नयी कविता से भिन्न प्रकार के आक्रोश का रूप अपनाया। ये कवि जुझारू प्रवृत्ति के थे। इन्होंने परिस्थितियों सम्बधी भीतरी प्रतिक्रिया, आन्तरिक संकट कविता के माध्यम से व्यक्त किया। इनकी वाणी न सपाटबयानी, मोहभंग, विद्रोह के क्षेत्र में भी नया रंग दिलाया। इन कविताओं में संवेदनाएं भी हैं, विचार भी यहाँ निर्मम वास्तविकता एवं तीखा व्यंग भी देखने को मिलता है।

साठोत्तरी काव्य की प्रवृत्तियां:–

1) **यथाथ स्थितिजन्य दबाव की अभिव्यक्तिः–**

उपयुक्त परिस्थितियों का नए कवि अपने ऊपर ऐसा भारी दबाव महसूस कर रह थे कि जिसे व्यक्त करना उनकी मजबूरी बन गयी उस जहर को वे उगल देन के लिए आतुर हो उठे जैसे –

''यह वह कविता नहीं है,
यह केवल खून सनी चमडी उतार लेने की तरह है,
यह केवल रस नही, जहर है जहर।''

2) **मोहभंग:–**

साठोत्तर कविता में जो मोहभंग की स्थिति है वह उसे पूववर्ती कविता से अलग पहचान प्रदान करती है। राजनीतिक अव्यवस्था, मूल्यवृद्धि नेताओं के झूठे धोके, आश्वासन, बेरोजगारी, महँगाई, ताशकन्द घोषणा और चीन तथा पाकिस्तान के आक्रमण, भ्रष्टाचार, सरकारी निष्क्रियता आदि ऐसी बातें थी, जिन्होंने युवा कवियों का मोहभंग कर दिया। उनका आक्रोश जबाब दे गया और उन्होंने लिखा–

''मैंने इन्तजार किया
अब कोई बच्चा भूखा रहकर
स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत
बरसात में नहीं टपकेगी।''

लीलाधर जूगडी की इन पंक्तियों में भी मोहभंग की स्थिति को अभिव्यक्ति मिली है-

''सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है। चारो ओर
कंगाली के पास आटा नहीं
गाली है

और जिस पर कोई नहीं
खाना चाहता
आजादी एक झूठी थाली है।''

कविया को आजादी के बाद वर्षो तक दिए जाते रहे आश्वासन झूठे प्रतीत होते हुए

3) **आक्रोश का स्वर:–**

ये अब और घोखा खाने की स्थिति में नहीं रहना चाहते थे या तो युवा वर्ग कभी भी अत्याचार, अन्याय, शोषण, धोका बर्दाश्त नहीं करता, पर नए युवा कवियों ने उस सारी स्थिति को आक्रोश के स्वर में अस्वीकार कर दिया। अपने आस–पास की स्थिति ने उनमें नफरत भर दी। ये खामोश न रह सके, आक्रोश के स्वर में कह उठे –

''मैं देखता रहा, हर तरफ ऊब थी
संशय था, नफरत थी
मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे
असहाय था।''

श्रीकांत जैसे कवि विचित्र अनुभूति के शिकार हुए। न वे आत्महत्या कर पलायनवादी बनना चाहते थे और न प्रगतिवादियों की तरह खून कर सकने के लिए खूनी हो सकते थे–

''कोई भी जगह नहीं रही
रहने लायक
न मैं आत्महत्या कर सकता हूँ
न औरों का खून।''

4) **अस्वीकारोक्ति:–**

साठोत्तरी कविता अपनी मौजूद परिस्थितियो से सहमति नहीं दिला सकी। प्रगतिवादी कवि की तरह ''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए'' जैसे साठोत्तरी कवि नहीं कहना चाहता वह क्या करें, का रास्ता भी निश्चित नहीं करता, महज अस्वीकृति का भाव व्यक्त करता हुआ कह उठता है कि हमें आसमानी आंकडे स्वीकार नहीं, हमें अपना स्थान ऐठन वाला, बेशर्माई से खिलखिलाकर हँसते मन्त्री का चेहरा देखना स्वीकार नहीं

मंत्री-
खिलखिलाता
कर बढाता
भत्ते बनाता
पूँछ हिलाता

फिर आ रहा
मतदान पेटी के पास
यह ऐसे लोगों से पूछ बैठता है-
क्या दिया तुमने।
महज जयहिन्द
फकत फाकाकशी आंकडे
बस आसमानी आंकडे और
गुत्थम गुत्थाई रोशन की कसी कतारें
बेरोजगारी।''

व्यंग्य वह बेबसी महसूस करता है । व्यंग्य पर मन को राहत देने का प्रयत्न करता है। यह बैठकर, पानी पीकर कोसता है, व्यंग्य करता है- संसद के उन लोगों पर जो हजार बुराइयों को भीतर छिपाए, दुधमुहे के समान भोले - भाले चेहरे बनाकर जिम्मेदारी निभाने का नाटक करने से, मोटी तोंद को संभालने, देशहित की बातें करने के लिए आ बैठते हैं वे सामान्य सांसद निरे ढोंगी लगते है-

''संसद एक मंदिर है
जहाँ किसी को द्रोही नहीं कहा जा सकता
दूध पिए मुंह पीछे आ बैठे
जीवनदानी, गोददानी सदस्य तोंद सम्मुख धर
बाले देश प्रेम लाना, हरियाना प्रेम लाना
आइसक्रीम लाना।''

संसद में यही सब तो होता है। अलग-अलग क्षेत्र का साँसद अलग-अलग अपने प्रान्त की भलाई करने की चाल चलता है। देशहित उनकी दृष्टि में गौण हो जाता है। वे सबसे पहले अपना हित देखते हैं। अधिक लाभ प्राप्त कर मोटे, तोंदिल हो जाते है। संसद में बैठने का अधिकार पाकर उन्हें कोई दोपी, देशद्रोही, स्वार्थी, भ्रष्ट भी करार नहीं दे सकता। वे देशप्रेम की बातें भाषणों में कहते हैं, पर पक्षपात का रवैया अपने व्यवहार से अलग नहीं कर पाते ।

5) **नई सवेदनाएं:-**

साठोत्तरी कवि की संवेदनाएँ नए प्रकार की हैं। वे परिस्थितियों की सहज देन हैं। भूखे दुखी आदमी को सौंदर्य भी आकृष्ट नहीं करता, ''मुझे भजन न होई गोपाला'' साठोत्तरी कविता के कवियों के भीतर तनाव तो है ही, उन्हें बाहर सब घोर विसंगतियाँ नजर आती हैं। ऐसी स्थिति में उनके भीतर आल्हाद का भाव कैसे आए? उन्हें परम्परागत जीवन-मूल्य अस्वीकार्य लगते हैं। उन्हें किसी में सौंदय नजर नहीं आता। सौंदर्य कहीं भी तो उन्हें मन के भीतर घुटन आदि के कारण आकृष्ट नहीं करता। उसे आज अकालिक मौत

का- सा सामना करते व्यक्ति दिखाई देते हैं वह अकालिक मौत सत्य प्रतीत होती है। रघुवीर सहाय ऐसी ही अनुभूत नई संवेदना को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

''कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर एक जान देता था।
कितना समझदार था प्रकृतिवादी?
हर दुख का कारण वह पहचान लेता था।
कितना महान या गीतकार?
जो दुख के मारे अपनी जान से लेता था।
कितना अकेला हूँ मैं समाज से?
जहाँ सदा मरता है एवं और मतदाता।''

यह सही है कि दुखी व्यक्ति दूसरों से तुलना भी कभी-कभी कर लेता है। वह दूसरों की तुलना में खुद को अधिक दुखी महसूस करता है।

6) अनिश्चय, असंतोष एवं निर्मम वास्तविकता: –

साठोत्तरी कविता में तनाव, संत्रास और अनिश्चितता की स्थिति का सामना करते मनुष्य की तस्वीर है। ऐसा आदमी देखता है, महसूस करता है पर मीनमेख निकालने का लम्बा धैर्य साहस नहीं रख पाता। वह टूट-सा जाता है। वह मूल्य नहीं तलाशता है। डॉ. हरिचरण शर्मा के मतानुसार श्रीकान्त वर्मा के ममाया दर्पणफ की कविताएँ अनिश्चय और असन्तोष की कविताएँ हैं उनमें मूल्यों के तलाश का प्रयत्न नहीं है। जैसे -

''मैं बिल्ली की शक्ल में छिपा हुआ चूहा हूँ।
औरों को रौंदता हुआ
अपने से डरा हुआ बैठा हूँ।''

7) राजनीति का चित्रण: –

साठोत्तरी कवि राजनीति को दूभर सच्चाई के रूप में देखता है। वह उसे अनेक बुराइयों का कारण महसूस करता है। वह प्रगतिवादियों की तरह दलगत राजनीति से सम्बद्ध नहीं है। छायावादियों की तरह राजनीति को ज्यादा अनदेखी भी वह नहीं करता । आज सब लोकतंत्र की दुहाई देते हैं पर करतब कुछ और ही प्रकार के करते हैं। साठोत्तरी कविता का कवि राजनीतिक गतिविधियों का पर्दाफाश करता है वह राजनीति के बारे में कुछ कहना अपना कवि-कर्म मानता है। संसद में सभी अच्छे निर्णय नहीं होते हैं, वहां भी राजनीति चलती है। यह भाव यहाँ इस प्रकार व्यक्त है-

'अपने यहाँ संसद
तेल की एक घानी है ।

जिसमे आधा तेल है
आधा पानी है।''

साठोत्तरी कविता की सीमा:-

साठोत्तरी कविता समसामयिक सत्य को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करती है। उसमें काव्य को, बात को साफ कहने की प्रवृत्ति है। वह अच्छाई है पर सपाट बयानी यानी विल्कुल अभिषात्मक कथन अखरने वाली वस्तु है । उसमें लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता है ही नहीं । प्रगतिवादी कविता की भाँति यह जन-जीवन से सम्बद्ध है। इस कविता में राजनीति के शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है जिससे वर्णन में एकरसता आ गई है। सभायें, नारे, जनमत, विधायक, मतदाता लोकनायक, वन महोत्सव, मतदान आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। शब्द एवं वाक्य प्रयोग एकरसता लिए हुए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि साठोत्तरी कविता अपने समय की परिस्थितियों की देन है। यह उन्हें वाणी दे रही है। यह पूववर्ती कविता से भिन्न प्रकार की है। इसमें जीवन की आग है। इसमें वास्तविकताएँ झलक रही हैं, पर शैली सपाट है।

साठोत्तरी कविता के कवि

1) **धूमिल:-**

साठोत्तरी हिन्दी कविता और सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के सर्वाधिक चर्चित और पठनीय कवियों में से हैं। वे साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि हैं। उनके मात्र तीन कविता संग्रह प्रकाश में आए हैं, जिनके शीर्षक हैं- 'संसद से सड़क तक', 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र' और 'कल सुनना मुझे' धूमिल ने इन तीनों संग्रहों के जरिए भारतीय लोकतन्त्र और संसद की पूरी प्रक्रिया का बेहतरीन जायजा लिया है। हरेक सृजनात्मक साहित्य अपने समय समाज और परिवेश की निर्मिति होता है। युगबोध ही रचनाकार की चेतना का स्वरूप निर्धारित करता है। समकालीन राजनीति, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक परिवेश और घटकों से युगबोध निर्मित होता है एवं रचनाकार की चेतना में इन सबका प्रतिफलन होता है। धूमिल साठोत्तरी हिन्दी कविता के बेहद महत्त्वपूर्ण कवियों में से हैं। उनका काव्य स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास का एक जीवन्त दस्तावेज है।

2) **चंद्रकांत देवताले:-**

साठोत्तरी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं चंद्रकांत देवताले । कवि चंद्रकांत देवताले ऐसे कवि हैं जिनका व्यक्तित्व कृतित्व में व्यक्त हुआ है। इनकी रचनाओं में वास्तविक कृतित्व में व्यक्त हुआ है। इनकी रचनाओं में वास्तविक चित्रण है। देवताले ने अपनी रचनाओं में समाज, आर्थिक विषमता, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि का यथार्थ चित्रण किया है। इनकी कविताओं में औरत, घर, स्त्री आदि शब्द बार-बार आते हैं। इनकी पहली कविता मज्ञानोदयफ में सन् 1957 ई. में प्रकाशित हुई थी।

इनका काव्यसंसार 'हड्डियों में छिपा ज्वर' और 'दीवारों पर खून से' (1973), 'लकडबग्घा हँस रहा है' (1980), 'रोशनी के मैदान की तरफ' और 'भूखंड तप रहा है' (1982), मआग हर चीज में बताई गई थीफ छः कविता संग्रहों का है। देवताले ने अपनी रचनाओं में अधिकतर यथार्थ को ही महत्त्व दिया है, मोहभंग, नाराजगी, घृणा, विद्रोह, आक्रोश भाव व्यक्त किया है। विद्रोह और आक्रोश इनकी कविता का मुख्य स्वर है। इनकी कविता आंतरिक बेचैनी को उभारकर सामने लाती है। मदीवारों पर 'खून से' इसका उदाहरण है। यह देवताले का दूसरा काव्यसंग्रह है। 'हड्डियों के ज्वर में तपते तपते कवि दीवार के खून से टकरा गया।', मदीवारों पर खून सेफ संग्रह की कविताएँ अपना अस्तित्व अपने साथ रखती हैं। यह कविता हमें चौराहे पर ले जाती है। इसमें आधुनिक मानव के समूचे प्रश्न, उसकी विवशता के साथ उपस्थित है।

3) **केदारनाथ अग्रवाल –**

छायावादी पृष्ठभूमि में काव्य आरंभ करने से इनके काव्य में नारी सौंदर्य और प्रणय की अभिव्यक्ति हुई है। प्रारंभिक रचनाएँ प्रगतिवादी हैं; किन्तु बाद में वे इस वाद से मुक्त हुए। इनके प्रमुख काव्यसंग्रह 'नींद के बाद', 'युग की गंगा', 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' हैं। इनका रूझान सामाजिक यथार्थ की ओर अधिक है। साथ ही प्रकृति प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है। प्रेम वर्णन देखिए- हम तुम दोनों को मद विह्वल चुम्बन का अधिकार रहे। 'नींद के बाद' कवि का पहला काव्यसंग्रह है। 'युग की गंगा' दूसरे काव्यसंग्रह से अग्रवाल की दृष्टि यथार्थनिष्ठ हो गई और वे जनता के कवि बन गए। इसमें जीवन की विषमताओं व असंगतियों के प्रति विद्रोह भाव मुखरित हुआ है। कवि वैभवपूर्ण शहरी जीवन को छोडकर ग्रामीण जीवन के यथार्थ को चित्रित करता है। ग्राम्य जीवन गांव और शहर की तुलना, निम्न वर्ग की दयनीय दशा, आधुनिक जीवन में व्याप्त मलीनता, तथा वर्तमान व्यवस्था के प्रति असंतोष और विद्रोह-इनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी रचनाओं में साम्यवाद के प्रति दृढ़ आस्था एवं क्रांति के आह्वान का स्वर सुनाई देता है। ग्रामीण प्रकृति का भी इन्होंने अपने ढंग से वर्णन किया है, जो विशेष प्रभावी नहीं है। इनके काव्य में काव्यात्मकता कम चिन्तन और प्रचार प्रवृत्ति अधिक है। फिर भी इनके काव्य में आस्था, आशा और सामाजिक बोध अधिक हैं। इनकी अन्य कृतियों में 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', 'आग का आईना', 'पंख और पतवार', 'हे मेरी तुम', 'और मार प्यार की थापें' आदि उल्लेखनीय हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में वर्गीय संघर्ष अधिक दिखाई देता है। निम्न वर्ग की दीन हीन स्थिति का यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में दिखाई देता है। मानव कुत्ते से भी गया गुजरा बन चुका है

4) **केदारनाथ सिंह –**

'तीसरा सप्तक' के कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं में उनके भीतर चलने वाले आत्म-संघर्ष की झलक साफ दिखाई देती है। उनका काव्य संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' प्रकाशित हुआ है। इसमें उनकी 1954-1959 ई. के बीच की कविताएँ हैं। इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर प्रगतिवाद का प्रभाव है। बाद में अज्ञेय के प्रभाव से प्रयोगबादी और माथुर के प्रभाव से नई कविता की ओर उन्मुख हुए। इनकी कविताओं में प्रगतिबाद तथा प्रयोगवाद की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। कवि ने आधुनिकता की चुनौती को आज के

बदलते सन्दर्भों के स्तर पर स्वीकार किया है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ तीन कोटि की हैं। प्रथम-ग्राम्य प्रकृति, द्वितीय नवयुग का चित्रण और - तृतीय- प्रेमविषयक । केदारनाथ सिंह को ग्राम जीवन अधिक भाता है। ग्राम जीवन के, कृषक रूपों का चित्रण हुआ है। 'धानों का गीत' देखिए-

5) **दुष्यन्तकुमार –**

दुष्यन्तकुमार हिन्दी काव्यक्षेत्र में न तो तार सप्तक के माध्यम से आए ना ही अपने अहं की अभिव्यक्ति तथा व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए आए। इनकी यही विशेषता इन्हें अन्य कवियों से अलग करती है। इन्होंने वैयक्तिकता की संकर गली पार कर समाज, राष्ट्र, युग की समस्याओं को अपने काव्य का विषय बनाया। दुष्यन्तकुमार का काव्य यथार्थ एवं व्यापक सामाजिक चेतना का काव्य है। इनकी कविता न तो अतिरंजित रूमानियत का शिकार बनी और न अलौकिक बयान दिखाऊ आक्रोश और फिरकेबाजियों से उनकी कविताएँ बहुत दूर है। इन्होंने जीवन्त भाषा में समकालीन यथार्थ का साक्षात्कार किया है। दुष्यन्त की केवल पाँच (5) काव्यकृतियाँ हैं (1) 'सूर्य का स्वागत' (1957), 'आवाजों के घेरे' (1963), 'जलते हुए वन का वसन्त' और 'साये में धूप' (1975) तथा एक काव्यनाटक 'एक कण्ठ विषपायी' प्रकाशित है।

● परिवर्तन के सोपान तथा वैचारिक प्रवाह :

प्रयोगवादी काव्यान्दोलन प्राय: एक दशक तक चला और इस अल्पावधि में ही अपने चरम विकास पर पहुँचकर समाप्त हुआ। इसी के गर्भ से 'नयी कविता' काव्यान्दोलन का जन्म हुआ। जिसने 'प्रयोगवाद' को भी आत्मसात करने का प्रयास किया। प्रयोगवादी कवियों में से अधिकांश 'नयी कविता' के समर्थ हस्ताक्षर बने। कोई ठोस आधार न होने के कारण प्रयोगवादी काव्यान्दोलन अल्पायु साबित हुआ। अभिव्यंजना और शिल्प के साथ-साथ विषयवस्तु के घरातल पर प्रयोगवादी नवीनता के आग्रही थे। प्रयोगवादी प्रवृत्तियों और कवियों का प्रभाव परवर्ती काव्यपर पडा।

प्रयोगवादी कविता में नवीनता के प्रति गहरा आग्रह देखा जा सकता है। प्रयोगवाद ने कविता के लिए उन्मुक्त वातावरण तैयार किया और अन्वेषण के अनंत किरणों से उसे आलोकित लिया। प्रयोगवाद ने हिंदी कविता को कलात्मकता के कई नये आयाम दिए। इस काल की कविता में ही भाषा का एक नया तेवर दिखाई देता है। हिंदी की उपभाषाओं और जनपदीय बोलियों के साथ-साथ अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी के भी अनेक शब्दों, मुहावरों, छंदों और उक्तियों को इन कवियोंने अपनाया । गद्य कविता का आविष्कार प्रयोगवाद की देन माना जा सकता है। प्रयोगवाद ने काव्यवस्तु के क्षेत्र को अत्यंत विस्तृत कर दिया। इन्होंने शोषण, उत्पीड़न के चित्र प्रस्तुत किए। जटिल संवेदना, गोपनीय मनोभाव, मानव की संवेदना को प्रयोगवाद ने अभिव्यक्ति दी है। प्रयोगवाद ने जीवन जगत में विकसित होते हुए नए मूल्यों की काव्य में स्थापना की। प्रयोगवाद ने हिंदी काव्य में एक नये सौंदर्यबोध को जन्म दिया।

भारत में पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप पश्चिमी औद्योगिक देशों जैसी आधुनिक रुचि तथा आधुनिकता-बोध, नगरीय सभ्यता, यांत्रिकीकरण के कारण एक नया सौंदर्यबोध उभर रहा था जिसे 'प्रयोगवाद' ने काव्य में स्थापित किया। साथ ही मानव जीवन की अनुभूतियों और अंतर्विरोधों को प्रकृति के

विभिन्न रुपों और पक्षों में उद्घाटित किया गया । प्रयोगवादी कवियों ने काव्य की नयी कसौटी तैयार की। तत्कालीन परिस्थितियों में व्याप्त असंगति, अनिश्चित धारणाओं, टूटती हुई आस्थाओं आदि के बीच से रुपायित होते हुए नवीन आदर्शों का आश्रय लेकर प्रयोगवादी रचनाकारों ने अपने रचना-संसार और अपने वैचारिक परिप्रेक्ष्य को विश्लेषित किया। छायावादी काव्य-समीक्षा तथा आरंभिक प्रगतिवादी स्थूल समीक्षा दृष्टि को नयी दृष्टि देने और इसे सूक्ष्म मानदंडो की दिशा में विकसित करने का श्रेय भी प्रयोगवादी रचनाकारों को जाता है।

नयी कविता ने हिंदी काव्य की भावभूमि को नये आयाम तथा विस्तार प्रदान किये। व्यक्ति से समाज तक और राष्ट्र से विश्व तक 'नयी कविता' की संवेदना देखी जा सकती है। जीवन के यथार्थ को कई कोनों से उसकी संपूर्णत: में पकडने की कोशिश नयी कविता ने की है। नयी कविता में संशय, अनास्था, दिशाहीनता, अराजकता और मूल्यहिनता आदि नकारात्मक मूल्य यथार्थ के प्रति गहरे आग्रह की उपज है। नयी कविता ने काव्य की भावभूमि को गहरा और व्यापक बनाया है। कविता की रचना-प्रक्रिया में बाह्य जगत से संवेदना की ओर प्रयाण करना और संवेदना की आंतरिकता से बाह्य जगत की ओर चलना क्रमश: गहराई और व्यापकता के आयामों को छूना है। नई कविता में परंपरा की नींव पर नए चिंतन को स्थापित करने की गहरी कोशिश है। पौराणिक संदर्भों को लेकर अपने वर्तमान को खोजने और पाने की कोशिश की गई है। नयी कविता में व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में विविधता दिखाई देती है। वस्तुत: यह विविधता नई कविता की प्रयोग अर्पिता कही प्रतिफल है। नये कवियों ने कथ्य के साथ-साथ भाषा, छंद, बिंब-विधान और अभिव्यक्ति कौशल के स्तर पर अनेक प्रयोग किये है।

नई कविता ने हिंदी कविता को पहली बार संवेदना के स्तर पर भावुकता से मुक्त करने का प्रयास किया। नया कवि प्रेम और राष्ट्रीयता, वासना और मानवीय संबंधों को एक नये ढंग से देखने लगा। यथार्थ के प्रति अधिकाधिक बढते आग्रह के कारण वह एक ओर तो वस्तुवादी तो दूसरी ओर बुद्धिवादी बना। नया कवि प्रकृति को अपने बाहर और भीतर एक समान अनुभव करता है। एक तरह से वह स्वयं को अर्थात अपने 'आत्म' को बाह्य जगत के साथ बिंब-प्रतिबिंब भाव से ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है।

'नई कविता' काल में नई चेतना दृष्टि के साथ एक नई आलोचना दृष्टि भी विकसित हुई । हिंदी काव्यालोचना के विकास में 'नई कविता' का यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। नए कवियों ने स्वयं भी लगातार नए रचना वैशिष्ट्य को परिभाषित करने के प्रयास लिए। इनमें जगदीश गुप्त, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'नई कविता'ने एक नए आलोचना शस्त्र का निर्माण किया।

2.2.4 समकालीन कविता-परिवेश, वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कवि तथा रचनाएँ, काव्य प्रवृत्तिया

प्रस्तावना :

किसी व्यक्ति के समय या किसी कालखंड में प्रचलित या व्याप्त प्रवृत्तियों या स्थितियों को उस व्यक्ति के समकालीन माना जा सकता है और इन प्रवृत्तियों एवं स्थितियों के होने का भाव 'समकालीनता'

है। जो कुछ लिखा जा रहा है, वह सब समकालीन नहीं है। समकालीनता एक जीवन दृष्टि है जहाँ कविता अपने समय का आकलन तर्क और संवेदना की संमिलित भूमि पर करती है। सर्जनात्मक धरातल पर यह एक प्रकार से मुठभेड है। जहाँ वस्तुओं के प्रचलित नाम अर्थ बदल जाते हैं। कविता में जीवन को एक नया विन्यास मिलता है, एक नया अर्थ मिल जाता है एक नए मुहावरे में। लेकिन इसकी पहचान का कार्य सरल नहीं होता। इसे ही मुक्तिबोध ने अभिव्यक्ति के खतरे उठाना कहा है। वास्तविक यह है कि अपने समय से आँख मिलाए बिना न रचना संभव है न आलोचना।

समकालीन कविता को मुख्य रुप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहला दौर 1950 से 1960 के बीच का जिसे नयी कविता के आंदोलन का दौर भी कहा जा सकता है। दूसरा है 1960 से 1970 के बीच का यह साठोत्तरी कविता का दौर है। जिसमें अकविता का आंदोलन विशेष रुप से उभरा। तीसरा दौर 1970 से 1980 के बीच का है। इसमें विचार कविता का आंदोलन सामने आया। इस प्रकार समकालीन कविता नयी कविता से विचार कविता तक एक लंबी यात्रा तय कर चुकी है। इस कविता का विषय समकालीन संसार हो गया। नये युवा कवियों ने 1960 के बाद की बदली हुई परिस्थितियों को लेकर आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट, विद्रोह का भाव व्यक्त किया। इन्होंने परिस्थितियों संबंधी भीतरी प्रतिक्रिया, आंतरिक संकट को कविता के माध्यम से व्यक्त किया। इनकी वाणी ने सपाट बयानी, मोहभंग, विद्रोह के क्षेत्र में नये रंग भर दिये। इन कविताओंमें विचार भी है, संवेदनाएँ भी है, साथ ही निर्मम वास्तविकता एवं तीखे व्यंग्य के दर्शन भी हो जाते हैं।

युगीन परिवेश :

- **राजनीतिक परिवेश :**

स्वतंत्रता के बाद जनता की जो अपेक्षाएँ थी वह पूरी नहीं हो सकी। निर्धनता, भूख, बेकारी, निरक्षरता, उपेक्षा, असुरक्षा, आतंक भय एवं उग्रता जनित अनेक समस्याओं से उसे जूझना पडा। जनता को सुखद भविष्य के आश्वासन दिये गये। सन 1960 तक यह सिलसिला चलता रहा। अनेक पंचवर्षीय योजनाएँ लागु की गयी। लेकिन 1962 में चीनी आक्रमण और भयावह पराजय होने के कारण अनेक समस्याएँ मुँह बाये खडी रही। सन 1965 और सन 1971 के पाकिस्तानी युद्ध के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था बुरी तरह टूट गयी। राजनीतिक दृष्टि से भ्रष्टाचार, हिटलरशाही, कुर्सी-लिप्सा जैसी अनेक विकृतियाँ बुरी तरह पैठ गयी। कुटिल राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट हथकंडो से जातिवाद, वर्गवाद और सांप्रदायिकता बढ गई। सन 1975 के आपात्काल के पश्चात राजनीति का भ्रष्ट चेहरा खुलकर जनता के सामने आया। जनतांत्रिक व्यवस्था चरमरा गई। अमीर और अधिक अमीर, गरीब और भी गरीब होते जाने की संभवनाएँ बढ़ती गई। राजनीति के क्षेत्र भाई-भतीजा वाद, विकृत संसदीय प्रणाली, चाटुकारिता की संस्कृति का बोलबाला हो गया।

- **सामाजिक परिवेश :**

विकृत राजनीतिक व्यवस्था के कारण समाज में वर्ग-वैषम फैल गया। उच्च वर्ग, उच्च मध्य वर्ग, मध्यवर्ग, संघर्षरत मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, सर्वहारा वर्ग निर्माण हुए। उच्च वर्ग में उद्योगपति, सत्ताधिश, जमींदार

आते हैं। उच्च मध्यवर्ग में उच्च पदस्थ प्रथम श्रेणी के अधिकारी, मध्यवर्ग में द्‌वितीय श्रेणी के अधिकारी, गैरसरकारी संस्थानो में कार्यरत अधिकारी आते हैं। संघर्षरत मध्यवर्ग में रोजी रोटी की व्यवस्था भर कर सकने वाले व्यक्ति आते हैं। बुद्धिजीवी होने के बावजूद अपनी दुरावस्था के कारण जानते हुए भी कुछ कर नहीं पाते। उनकी अपनी सीमाएँ हैं। जिनके सामने वे लाचार हैं। फलत: कुंठित भी हैं। निम्नवर्ग भोजन तथा वस्त्र आदि को भी पूरा करने में पूर्णतया असमर्थ होनेवाले व्यक्ति आते हैं। सर्वहारा वर्ग में बंधुआ मजदूर भूमिहीन किसान, बूटपॉलिशवाला, रिक्शवाला, तांगेवाला, मोची, घरेलु नौकर, मजदूर, बोझ ढोनेवाला, विस्थापित व्यक्ति आ जाते हैं। सामकालीन कवियों ने संघर्षरत मध्यवर्ग के प्रतिनिधि के रुप में उनके संकटों, अभावों, समस्याओं का वास्तविक चित्र अंकित किया है। पूरे आम वर्ग की नियति समाज के उच्च वर्गों द्‌वारा परिचालित होती है। इस भयानक सत्य के दर्शन भी हमें समकालीन कविता में हो जाते हैं।

● आर्थिक परिवेश :

वर्तमान समाज में अर्थ का विशेष महत्त्व होता है। आज का सामान्यजन घोर आर्थिक विपन्नता में जी-मर रहा है। आर्थिक विषमता एवं शोषण के कारण आम आदमी त्रस्त है। स्वतंत्रता के बाद 'गरीबी हटाओ' का नारा व्यवहारिक स्तर पर असफल ही रहा । आज आम आदमी महँगाई, बेरोजगारी, भूखमरी, निर्धनता आदि समस्याओं से पल-पल जूझ रहा है। बेरोजगारी समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। शिक्षित युवा रोजगार न मिलने के फलस्वरूप अपना अस्तित्व तक मिटाने के लिए विवश है।

आजादी के बाद किसानों का लगा जमीदारों का दौर अब खत्म हो गया किंतु यह केवल कल्पना मात्र बनकर रह गया है। भले ही जमींदारी प्रथा खत्म हो गई हो पर अब भी किसान और मजदूरों की हालत में कोई सुधार नहीं आया है। बल्कि ठेकेदार, उद्योगपति, राजनेता, बहे बडे फार्म मालिकों के रुप में नये पूँजीपति निर्माण हो गये जिन्होंने किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर महानगरों में मजदूर बनने पर विवश कर दिया है। मुद्रा स्फीति के साथ साथ काले धन, रिश्वत, चोर-बाजारों के कारण उत्पन्न आर्थिक समस्याओं के बोझ तले निम्न मध्य वर्ग, निम्नवर्ग, बुरी तरह पिस रहा है। इन वर्गों की विवशता, क्रिया-प्रतिक्रियाओं का विशद चित्रण समकालीन कविताओं में दिखाई देता है।

● धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश :

धर्म के रुढिवादी रुप में अब तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है, लेकिन आम आदमी अब भी उससे दृढता के साथ जुडा हुआ है। जिसके संकेत समकालीन साहित्य में मिलते हैं। समाज में प्रचलित मान्यतायें भी धर्म का रुप ले लेती है। छुआछुत, जाति-व्यवस्था, रीति-रिवाज, कर्मकांड धर्म के ही अंग है। लेकिन इन विचारधाराओं के विरोध में स्वर उठने लगे हैं। आज धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन आ रहा है। पूजा-पाठ, देवोपासना का महत्त्व जितना पहले पहल प्रधान था अब उतना नहीं रहा बल्कि गौण हो गया है। ईश्वर-कल्पना, धार्मिक, मूल्यों में भी परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है।

आधुनिक सामाजिक, आस्था का केंद्र अब ईश्वर न होकर मनुष्य जीवन की शक्ति और सीमायें बन गई हैं। समकालीन रचनायें आम आदमी के मन में अलौकिक सत्ता के प्रति गहरे बनते जा रहे संदेह को

मुखरित कर रही हैं। आम आदमी की दृष्टि में इसके पूर्व ईश्वर का दीन-बंधू, करुणा सिंधु रुप था। लेकिन अब वह रुप धूमिल-सा पड गया है। आम आदमी को ईश्वर केवल प्रति-पत्थर, गूँगा, बहरा प्रतीत होता है। साथ ही पाखंडियों का काल्पनिक सृजन भी लगता है। आज तक पूँजीपतियों ने धर्म और ईश्वर का भय दिखाकर दीन-हीन जनता पर अत्याचार कर उनका शोषण किया है। इसलिए अब आम आदमी को पुरानी धार्मिक मान्यताएँ सडी गली लगने लगी है। अब आम अदामी जान गया है कि जन्म और कर्म से जाति विभाजन करने के पीछे उच्च वर्ग की गहरी चाल है। इस माध्यम से वह अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। इसलिए वह इस प्रथा के विरुद्‌ध अपना स्वर बुलंद करना चाहता है। आम आदमी जीवन की विषमताओं को झेलते-झेलते इतना विवेकी बन गया है कि अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए वह धर्म को सर्वोपरि माने। आज भी आम आदमी का एक वर्ग खास कर दलित एवं सर्वहारा वर्ग अंधविश्वासी बनकर पाखंड से परिपूर्ण बाह्याचारों में डुबा हुआ है। नवीन सभ्यता से वह कोसों दूर है, और पाप-पुण्य, पुनर्जन्म जैसे अंधविश्वासों में उलझा हुआ अपने शोषण को सहने के लिए मजबूर है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं, कि इस समसामायिक युग में अधिकांशत: आम जीवन निर्धनता और मँहगाई के दोहरे बोझ से त्रास्त है। जिससे उत्सव, पर्व या त्योहारों की प्रसन्नता है ही नहीं। अभावों ने आम आदमी को इतना तोडकर रखा है कि वह अपने जीवन का अंत कर देना चाहता है। इस प्रकार समकालीन कवियों ने आम आदमी की केवल बाह्य प्रतिक्रियाएँ ही नहीं बल्कि उसके अंतर्जगत का एक एक कोना उजागर किया है।

● साहित्यिक परिवेश :

साहित्य का प्रवाह सतत गतिशील रहता है। साहित्य में जो भी नवीनता आती है वह पूर्व वादों के प्रतिक्रियास्वरूप आती है। कविता के क्षेत्र में नयी कविता तथा साठोत्तरी कविता के अंतर्गत आनेवाले अनेक काव्यान्दोलनों के बाद समकालीन कविता सामने आयी। आजादी मिलने के बावजूद हम सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सभी मोर्चों पर पिछडे ही रहे। औद्योगिक विकास होने के बावजूद आम आदमी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं में उलझा रहा। मँहगाई और बेरोजगारी ने आम आदमी की कमर तोड दी। जिससे युवा वर्ग आक्रोश का स्वर बुलंद करने लगा। कुंठा, हताशा, प्रताडना, विवशता, दयनीयता में जीने-मरने वाले आम आदमी को समकालीन साहित्यकार ने करीब से देखा। उसने अपने साहित्य में समूचे परिवेश के साथ आम आदमी के प्रत्येक पहलू को खोलकर रख दिया। इसप्रकार समकालीन साहित्य में आम आदमी ही झाँकता हुआ नजर आता है।

● विविध आंदोलन :

आंदोलन में 'दोलन' शब्द निहित है जो गतिशलीता का परिचायक है। जब स्थिति जडवत् हो जाती है, तो उसके प्रतिक्रिया स्वरूप आंदोलन उभरता है। आंदोलन का मूल उद्‌देश्य ही उस स्थिति विशेष में बदलाव लाना, परिवर्तन लाना या उससे अलग नयी स्थिति का निर्माण करना। राजनीति अथवा धर्म के क्षेत्र में इस प्रतिक्रिया की गति जलद होती है। लेकिन समाज, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में धीमी होती है। इसे

पहचानने के लिए विशेष प्रयास करने पडते हैं। जिससे कि समकालीन कविता के संदर्भ में उभरे विविध आंदोलन के महत्त्व को रेखांकित किया जा सके।

समकालीन कविता के मुख्य रुप से तीन दौर या तीन पडाव है। पहला दौर 1950 से 1960 के बीच का है। इसे नयी कविता के आंदोलन का दौर भी कहा जा सकता है। दूसरा पडाव 1960 से 1970 के बीच का है। यह साठोत्तरी कविता का दौर है। इसमें अकविता का आंदोलन विशेष रुप से उभरा। तीसरा दौर 1970 से 1980 के बीच का है। इसमें विचार कविता का आंदोलन सामने आया। इसप्रकार समकालीन कविता के तीन दौर हुए जिनमें मुख्य रुप से तीन ही आंदोलन उभरकर सामने आए।

● छठे दशक की कविता (नयी कविता)

सन 1951 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरे सप्तक' के प्रकाशन के पश्चात् 'नयी कविता' का नाम सामने आया। 1954 में जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नयी कविता' नाम की पुस्तिका का संपादन किया। जिससे एक नये वाद के रुप में 'नयी कविता' प्रतिष्ठित हो गयी। हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद और 'नयी कविता' को लेकर चर्चा आरंभ हुई। कुछ विद्वानों दोनों को एक तो कुछेक ने दोनों को अलग-अलग समझा। वैसे देखा जाए तो 'नयी कविता', 'प्रयोगवाद' की अगली सीढी है। जहाँ प्रयोगवाद द्वंद्व और प्रतिक्रिया कविता है वहाँ नयी कविता संश्लेषण और सामंजस्य की कविता है। अनास्था, विघटन, निराशा, कुंठा विवशता, बोझिलता और छटपटाहट नयी कविता में सर्वत्र दिखाई देती है। अधिकांश रचनाओं में आस्था, साहस, विश्वास और संकल्प का भी समन्वय हुआ है। नये कवियों ने अपनी कविता में लघु मानव की प्रतिस्थापना करते हुए क्षण को महत्त्वपूर्ण माना है। प्रकृति, नारी आदि को नये दृष्टि से देखते हुए नये बिंब, उपमान, प्रतीक, अलंकारों का प्रयोग किया है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, लक्ष्मीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कीर्ति चौधरी, विजय देव नारायण साही, कुँवर नारायण, नरेश मेहता, दुष्यंतकुमार, भवानीप्रसाद मिश्र, जगदीश गुप्त, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय आदि।

● सातवें दशक की कविता – साठोत्तरी कविता :

सन 1960 के पश्चात् जो कविता सामने आयी उसे साठोत्तरी कविता के नाम से पहचाना गया। सन 1960 के बाद चलाये जा रहे अनेक काव्यांदोलनों का स्वरूप इस नयी कविता में समाया गया है। कवियों अपनी सोच को नयी दिशा देते हुए सामयिक कविता को विविध नामों से पुकारा। साठोत्तरी हिंदी कविता में विद्रोह, आक्रोश, अंतर्विरोध, सामाजिक मूल्यों के अस्वीकार की भावना, भूखी-नंगी स्मशानी पीढी का जोश, सहजाभिव्यक्ति दिखायी देती है। इस काल के कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश बाजपेयी, राजीव सक्सेना, मणि मधुकर, मुक्तिबोध, रवींद्रनाथ त्यागी, ममता अग्रवाल, दूधनाथ सिंह, रघुवीय सहाय, भवानी प्रसाद मिश्र, रामेश्वर लाल खंडेलाल, केदारनाथ अग्रवाल, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, अशोक बाजपेयी, रमेश कुंतल मेघ, गंगा प्रसाद विमल, कुंतल कुमार जैन आद के नाम शामिल किये जा सकते हैं। इस कवि की प्रमुख रचनाओं में 'अपनी शताब्दी के नाम', 'आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें',

'आत्महत्या के विरुद्ध', 'अंधेरी कवितायें', 'गर्म हवाएँ', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' - 'मछलीधर' आदि प्रमुख हैं।

● **अकविता :**

नयी कविता के नव्यतम रुप को अकविता के नाम से पहचाना गया। अकविता के प्रचारकों में अतुल विमल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल के नाम उल्लेखनीय है। सन 1965 में श्याम परमार अकविता आंदोलन के प्रवर्तक के रुप में सामने आए। इस कविता में निषेधात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई थी। लेकिन दृष्टिकोण की अस्थिरता, प्रदर्शनवादिता, संशयग्रस्त मन:स्थिति तथा अंतर्विरोध के कारण जो इस कविता को बढ़ावा दे रहे थे, समर्थक थे वे ही इस कविता का विरोध करने लगे। अकविता में अनास्था, विकृत यौनाचार, आत्महत्या, संन्यास, नैतिक मूल्यों का खंडन, बलात्कार इत्यादि को विद्रुपता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

● **सहज कविता :**

इइ कविता के आंदोलन के पुरस्कर्ता है डॉ. रवींद्र भ्रमर। सन 1960 के बाद एक अवधि विशेष के बीच कविता के क्षेत्र में नये नये नाम और नारे उछाले गये। जिसके द्वारा अनास्था और दीनतापूर्वक दलीलें पेश करके नयी पीढि को गुमराह करने की साजिश की गयी। अहंकार, आत्महत्या, योनि और जंघाओं पर कविता लिखने के प्रेणा दी गयी। जिससे कविता में कुठाएँ और विकृतियाँ घर कर गई और स्वस्थ कविता खो गई। सहज कविता नये सिरे से कविता की खोज करना चाहती है। लेकिन अकृत्रिम जीवन-बोध और अकृत्रिम कला रचना को स्थापित करनेवाला यह काव्यांदोलन किसी आंदोलन का रुप नहीं ले सका।

● **अन्य काव्यांदोलन :**

नयी कविता की पृष्ठभूमि को लेकर अनेक कविता आंदोलन सामने आये और नष्ट हो गए।उनमें से प्रमुख हैं-

भूखी पीढी का काव्यान्दोलन : अमेरिकन काव्यान्दोलन का प्रभाव सबसे पहले बंगला की भूखी पीढ़ी पर पड़ा और फिर उसके बाद हिंदी में आया। 'भूखी पीढ़ी' के कवियों ने नारी पुरुष के भ्रष्ट यौनाचार, बीभत्स क्रिया-कलापों का चित्रण अश्लिल शब्दों में प्रस्तुत किया है जो शिष्ट समाज के लिए हानिकारक है।

श्मशानी पीढी : युगीन आस्था, असंतोष और निराशा के कारण उपजे निषेधात्मक बोध को श्मशानी पीढ़ी आधार मानती है। इन कवियों के मतानुसार मनुष्य, सभ्यता, संस्कृति, क्षमा, दया, नम्रता, प्रेम, आदर्श, मूल्य और इतिहास आदि सभी परंपराविहिन है। इनकी परंपरा देखने पर एक मुखौटेवाली अर्थात सपाट चेहरा कवि को दिखाई देता है।

ताजी कविता : इस आंदोलन के सहयोगियों के अनुसार अब नयी कविता में नयापन नहीं है। नयी कविता शिल्पगत रुढियों के कारण निस्तेज बन गयी है। अत: लक्ष्मीकांत वर्मा 'ताजी कविता' को

आवश्यकता महसूस करते हैं। 'ताजी कविता' जो अद्‌वितीय भाव खोजेगी, नयी भाषा, रचेगी, नये संदर्भों को सार्थक अभिव्यक्ति देगी।

सनातन सूर्योदयी नूतन कविता आंदोलन : मार्च 1962 में 'भारती पत्रिका' के माध्यम से वीरेंद्रकुमार जैन ने इस आंदोलन का प्रवर्तन किया। जिसके द्‌वारा प्रयोगवाद और नयी कविता की अतियथार्थवादी प्रवृत्तियों का विरोध किया गया। यह आंदोलन तत्कालीन काव्य-चेतना को झकझोर कर दो-तीन वर्षों में ही समाप्त हो गया।

वाम कविता (संघर्षशील काव्यांदोलन) : इस कविता के मूल में व्यापक साामजिक चेतना, क्रियाशील होने के कारण कवियों ने समाज को संघर्ष एवं विद्रोह की प्रेरणा देकर क्रांति का आवाहन किया। इनकी कविता में सामाजिक शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार और असमानता के विरुद्ध गंभीर स्वर प्रस्तुत हुआ है। इन्हें 'संघर्षशील काव्य', युयुत्सावादी कविता, नव प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता, प्रतिबद्‌ध कविता, वाम कविता आदि नामों से भी जाना जाता है।

युयुत्सवादी कविता आंदोलन : सन 1969 में शुलभ श्री रामसिंग ने कलकत्ता से प्रकाशित 'युयुत्स' के माध्यम से इस आंदोलन का प्रारंभ किया। इन कवियोंने कुंठा, काम-वासना के चित्रण और पलायनवादिता का विरोध कर यथार्थ पहचानने पर बल दिया। साथ ही काव्य को जन सामान्य से जोडने का प्रयास किया।

नव प्रगतिशील काव्यान्दोलन : जनवर 1966 के 'कविता' पत्रिका के अंक में नवल किशोर ने 'नवप्रगतिशील काव्य' की अवधारणा पर प्रकाश डाला। सन 1968 में 'प्रतिश्रुत पीढी' शीर्षक से डॉ. रणजीत के संपादकत्व में कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, जुगमंदिर, राजीव सक्सेना, एवं रणजीत आदि कवियों की रचनायें प्रकाशित हुई। ये मानवतावादी कवि रहे हैं।

समकालीन कविता : समकालीन काव्यधारा में कवियों की तीन पीढियाँ प्रौढ, मध्य, और युवा एक साथ सक्रिय है। जिनमें अधिकांश एक ही प्रवृत्ति विशेष की रचनायें दिखाई देती है। प्रौढ पीढ़ी के कवियों ने आम आदमी पर अधिक लिखा है। रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, श्रीकांत वर्मा इस पीढ़ी के प्रथम हस्ताक्षर हैं। इनकी कवितायें आम आदमी के जीवन के विविध पक्षों को संवेदनाओं, पीडाओं, निराशा, आशा, जिजीविषा आदि मनोवेगों के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ सिद्‌ध हुई हैं। इस दृष्टि से रघुवीर सहाय के 'हँसो, हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गये हैं', 'कुछ पत्ते कुछ चिठ्ठियाँ', श्रीकांत वर्मा की 'जलसाघर', केदारनाथ सिंह की 'जमीन पक रही है', 'अकाल में सारस', रामदरश मिश्र की 'जुलूस कहाँ जा रहा है' और लक्ष्मीकांत वर्मा का 'तीसरा पक्ष' आदि काव्य कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

मध्य पीढी के अंतर्गत धूमिल, लीलाधर जगूडी, चंद्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, सोमदत्त, बलदेव वंशी, प्रयाग शुक्ल, रमेशचंद्र शाह, राजेंद्रकुमार, मान बहादुर सिंह, सौमित्र मोहन, रमेश दबे, मलयज, नीलाभ, विनोदचंद्र पांडेय, देवेंद्र कुमार इत्यादि नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने आम आदमी को अतिरिक्त संवेदना के साथ कथ्य के रुप में प्रस्तुत किया है। युवा पीढि में राजेश जोशी, अरूण कमल, गोरख पांडेय,

उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, ज्ञानेंद्रपति, असद जैती, मनोज सोनकर, राजकुमार कुंभज आदि के नाम आते हैं। नवोदित पीढ़ी में निरंजन श्रोत्रिय, देवी प्रसाद मिश्र, अनिल गंगल, शैलेंद्र चौहान, कुमार अंबूज, एकांत श्रीवास्तव, स्वप्निल श्रीवास्तव, नरेशकुमार, अश्वघोष आदि प्रमुख हैं।

इइ प्रकार समकालीन कविता, नयी कविता से विचार कविता एक लंबी यात्रा पार चुकी है, और इस काल में उभरकर आए विभिन्न आंदोलनों ने इसे ऐसी दिशा और दृष्टि दे दी है जो वैयक्तिकता से सामाजिकता की ओर जाती है तथा स्थितियों के प्रति भावुक होने के बजाए उनकी निर्मम चीरफाड करने में विश्वास करती है।

● समकालीन प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ :

नयी कविता के बाद की कविताओं के लिए हिंदी कविता में 'समकालीन' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। सन 1960 के बाद की कविताओं को समकालीन कविता के नाम से जाना जाता है। डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल के अनुसार समकालीन कविता में चार पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। सबसे पुरानी पीढ़ी के कवियों में प्रमुख है, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शमशेर बहादूर सिंह, मुक्तिबोध। उसके बाद की पीढी के कवि हैं, सवैश्वरदयाल सक्सेना, धूमिल, गिरिजाकुमार माथुर, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र, धर्मवीर भारती आदि। तीसरी पीढी के कवि है, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूडी, आलोक धन्वा, राजेश जोशी, ज्ञानेंद्रपति और चौथी पीढी अर्थात् नयी पीढ़ी की कवि हैं देवीप्रसाद मिश्र, बोधिसत्व, कुमार अंबुज, संजय चतुर्वेदी, एकांत श्रीवास्तव, स्वप्निल श्रीवास्तव, अनिलकुमार सिंह आदि हैं। प्रमुख कविता या उनकी रचनाओं का परिचय निम्ननुसार हैं–

1) **नागार्जुन :** नागार्जुन मूलत: जनवादी कवि हैं। समाज में व्याप्त विडंबनाओ का चित्रण इन्होंने अपनी कविताओं में किया है। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ है– 'युगधारा', 'सतरंगे पंखोवाली', 'प्यासी पथराई आँखे', 'तुमने कहा था', 'खिचडी विप्लव देखा हमने', 'रत्नगर्भा', 'भस्मांकुर' (खंडकाव्य)। कवि नागार्जुन की कवितायें भारत की राजनीति एवं प्रशासन की व्यवस्था पर कडा व्यंग्य करती है। गाँव के भूमिहीन किसान, मजदूर, दलित, पीडित, उपेक्षितों की वेदना को वाणी प्रदान की है। साथ ही सामंतवादी वर्ग की निंदा भी की है। कवि नागार्जुन देश, धरती और आम आदमी के कवि माने जाते हैं। इनकी कविताएँ राजनीतिक नेताओं की पोल खोलती है। पं. जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण, इंदिरा गांधी, अटलबिहारी वाजपेयी, आदि नेताओं की राजनीति पर उनकी कविताएँ केंद्रीत हैं। 'तुमने कहा था' कविता में कवि ने भारतीय भ्रष्ट राजनेताओं की छवि अंकित की है। राजनीति के संदर्भ में उनकी 'प्रजातंत्र का होम', 'अगले पच्चास वर्ष और', 'तीनों बंदर बापू के', 'प्रेत का बयान', 'शासन की बंदक', '26 जनवरी 15 अगस्त', 'मंत्र' आदि कविताएँ स्वातंत्र्योत्तर भारत की खस्ता हालातों को रेखांकित करती हैं। '26 जनवरी 15 अगस्त' कविता द्वारा कवि कहना चाहता है कि आजादी के इतने साल बाद भी आम आदमी सुखी नहीं है, बल्कि शोषक, मंत्री और चोर ही सुखी है। –

''किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है

कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है
सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है
मंत्री ही सुखी है, मंत्री ही मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है।।''

2) **मुक्तिबोध :** मुक्तिबोध की कविता मनुष्य के आत्म संघर्ष को उजागर करती है। इनका जन्म 1916 में तथा निधन 1964 में हुआ, लेकिन खेद की बात यह है कि उनके निधन के बाद आलोचकों ने उनकी कविताओं की प्रशंसा की। उनके जीवनकाल में उन्हें जितनी ख्याति मिलनी चाहिए थी उतनी नहीं मिली। सन 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की 17 कविताएँ संकलित हैं। सन 1964 में श्रीकांत वर्मा ने 'चाँद का मुँह टेढा है' काव्य संग्रह प्रकाशित किया है।इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ है- 'चाँद का मुँह टेढा है', 'भूरी भूरी खाक धूल', 'प्रतिनिधि कविताएँ', 'मुक्तिबोध रचनावली', 'लकडी का रावण', 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे में' आदि। हिंदी कविता में मुक्तिबोध लंबी कविताओं एवं फैन्टेसी के कवि माने जाते हैं।

प्रारंभ में वे छायावाद से प्रभावित थे लेकिन बाद में उनपर फ्रेंच दार्शनिक बर्गसाँ के जीवन सिद्धांतों का प्रभाव पडा। तत्पश्चात् वे मार्क्स की वैज्ञानिक दृष्टि से काफी प्रभावित हुए। कवि समाज में उपेक्षित पीडित समुदाय की व्यथा प्रस्तुत करते हैं। 'मेरे लोग' कविता द्वारा कवि कहते है -

उपेक्षित काल-पीडित सत्य के समुदाय
लेकर साथ
मेरे लोग
असंख्य स्त्री-पुरुष बालक भटकते हैं
किसी की खोज है उनको
भटकना चाहते हैं द्वार देहली पर किसी के किंतु
मीलों दूरियों के डैश खींचते हैं....।

वर्तमान समाज व्यवस्था में षड्यंत्र के शिकार पिछडे लोग व्यवस्था में अपनी जगह बनाना चाहते हैं। जिसके लिए वे संघर्ष करते रहते हैं। 'चाँद का मुँह टेढा हैं' कविता में वे कहते हैं-

आदमी की दर्दभरी गहरी पुकार सुन
जो दौड पडता है आदमी है वह भी
जैसे तुम भी आदमी, वैसे मैं भी आदमी।

सन 1950 के बाद मुक्तिबोध ने लंबी कविताएँ लिखी हैं। ये कविताएँ मानव के संघर्ष एवं पीडा को रेखांकित करती हैं। 'अंधेरे में' कविता सामाजिक स्थिति की सच्चाई व्यक्त करती है। जिसमें डर, आतंक और मूल्य आदि का समावेश हैं। 'भूल गलती' और 'ब्रह्मराक्षस' कविताएँ बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी कविताएँ किसी वाद के घेरे में बंधकर नहीं रही है। इनकी अपनी एक स्वतंत्र कलात्मक दृष्टि

होने के साथ-साथ उनपर मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मुक्तिबोध की कविताएँ मनुष्य के अंतर्बाह्य संघर्ष एवं पीडा को अजागर करती है।

3) **केदारनाथ सिंह :** केदारनाथ सिंह ने अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' से अपना काव्य लेखन प्रारंभ किया। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'अभी बिल्कुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस', 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ', 'बाघ' आदि। इनकी कविताओं में लोक जीवन के सामाजिक यथार्थ का चित्रण हैं। साथ ही आज के भौतिकवादी युग में जीनेवाले लोगों की आंतरिक संवेदना हैं। इनकी कविताएँ आशावाद को जन्म देती हैं। 'यहाँ से देखो' और 'अकाल में सारस' की कविताऍं प्रकृति और मनुष्य के अंतर्संबंध को अजागर करती है। 'जमीन पक रही है' काव्य संग्रह में कवि ने अपने समय के आदमी के संघर्ष को चित्रित किया है। 'अकाल में सारस' में केवल मनुष्य ही नहीं पेड-पौधे, पशु-पक्षी भी बोलते हैं। केदारनाथ की कविता में ग्रामीण और शहरी जीवन बोध हैं। गाँव और शहर को एक साथ पाने और खोने के बीच का द्वंद्व कवि को कचोटता है।

आज एक नयी उपभोक्तावादी संस्कृति पनप रही है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति हावी हो रही है। 'कुदाल' कविता में माध्यमसे कवि किसानों, खेतिहर मजदूरों की समस्या उपस्थित करते हैं। आज भारत में किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। कवि कुदाल के माध्यमसे कहते हैं -

'मेरे लिए मेरी सदी का सबसे कठिन सवाल
कि क्या ये अब क्या ये कुदाल का
क्योंकि अंधेरा बढ़ता जा रहा था
और उसे अब दरवाजे पर छोडना
खतरनाक था।
..... मेरे घर में कुदाल के लिए जगह नहीं थी।''

कवि केदारनाथ सिंह की कविताएँ सामान्य मनुष्य को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। उनकी कविताएँ ग्रामीण संस्कार और महानगरों की अमानवीयता प्रदर्शित करती हैं। कवि केदारनाथ जी मानवीय संवेदनाओं को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

4) **धूमिल :** धूमिल का असली नाम सुदामा पांडे हैं। 9 नवम्बर 1936 को बनारस के खेवली नामक गाँव में इनका जन्म हुआ। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ है- 'संसद से सडक तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र'। कवि अपनी कविता में प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य को महत्त्व न देते हुए आम आदमी की मोहभंग की स्थिति को उजागर करते हैं। इन्होंने समकालीन व्यवस्था पर अपना विद्रोह, असंतोष, आक्रोश आदि को व्यंग्यात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया है।

आम आदमी को संविधान में तय की गई बातों के अनुरुप न्याय नहीं मिल पा रहा है। इसलिए वे अपनी कविता ''जनतंत्र के सूर्योदय'' द्वारा कहते हैं -

'जहाँ रात में
संविधान की धाराएँ
नाराज आदमी की परछाई को
देश के नक्शे में
बदल देती है।'

इसप्रकार धूमिल ने आम आदमी की आवाज को सरकार तक पहुँचाने की कोशिश की है। आजादी के इतने साल बाद भी स्थितियों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया है। आज भी देश में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बलात्कार, गरीबों के शोषण का बोलबाला हैं। कवि धूमिल नवयुवकों में आक्रोश,विद्रोह, एवं नयी क्रांति पैदा करना चाहते हैं। इनकी कविता का केंद्रीय चरित्र आम आदमी है। साथ ही भ्रष्ट नेताओं की चालाकी, आम आदमी का आक्रोश भी है। इन सबके लिए संसद की कार्य-प्रणाली जिम्मेदारी है इस लिए कवि धूमिल कहते हैं -

अपने यहाँ संसद
तली को वह धानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है
और यदि यह सच नहीं है
तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी इनामदाारी का मलाल क्यों है।
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यों हैं ?

कवि धूमिल ने समकालीन व्यवस्था में भ्रष्ट राजनीति, संस्कृति साहित्यकार की पोल खोलकर रख दी है। आजादी के बाद की जनता की सच्चाई को उजागर किया है। जनता की मोहभंग की स्थिति को उजाकर करते हुए वे लिखते हैं-

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?'

5) **हरिनारायण व्यास :** इनका जन्म 14 अक्तूबर 1923 को मध्यप्रदेश के शाजापुर जिले के 'सुंदरसी' गाँव में हुआ और, 2013 को पुणे में इनका निधन हुआ। अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' में इनकी कविताएँ संकलित की गयी है। इनकी कविताओं में गाँव के प्रति आसक्ति, राष्ट्रीय चेतना, प्रेम, संवेदना, लोक व्यवस्था के चित्र प्रस्तुत किये गए हैं। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं - 'मृग और तृष्णा' 'त्रिकोण पर

सूर्योदय', बरगद के चिकने पत्ते', 'आउटर पर रुकी ट्रेन' आदि। 'मृग और तृष्णा' कविता संग्रह की कविताओं में महानगरीय जीवन चित्रित किया गया है।

'दिन भर की सहेजी हुई भूख को
कोई अपनी नयी चप्पलों के साथ सिरहाने रखकर सो रहा है।
गांव छोडकर
शहर आया हुआ मजदूर नया-नया भिखारी।'

हरिनारायण व्यास 'दूसरा सप्तक' के तीसरे कवि हैं। ये किसी भी काव्यान्दोलनों से जुडे कवि नहीं है। उनकी कविताओं में गाँव और महानगरों की स्थिति के चित्र दिखाई देते हैं। गाँव से लगाव, मजदूरों की व्यथा, भक्तजनों का पाखंड, गाँव का परिवर्तन, मूल्यों का ह्रास, महानगरीय जीवन संघर्ष, अकेलेपन की त्रासदी, भीड में अकेलापन, बढता हुआ प्रदुषण, उदासीनता आदि उनकी कविताओं में दिखाई देते हैं।

6) **लीलाधर जगूडी :** सत्तरोत्तर कवियों में इनका नाम सर्वप्रथम आता है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'शंखमुखी शिखरोंपर', 'नाटक जारी है', 'इस यात्रा में', 'रात अब भी मौजूद हैं', 'बची हुई पृथ्वी', 'घबराए हुए शब्द', 'भय भी शक्ति देता है', 'अनुभव के आकाश में चाँद', 'ईश्वर की अध्यक्षता' में आदि। समकालीन परिवेश के अनुरूप इनकी कविताएँ मानवीय जीवन के नये अनुभव को उजागर करती है। इनकी कविताओं में लोक-जीवन के संसार को देखा जा सकता है। इनकी कवितायें भय या डर से संघर्ष करती हैं। इनकी कविता में भय से लडने की या संघर्ष करने की शक्ति हैं। यही भय आदमी को संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करता है। 'एक डरी हुई आत्मा' में कवि ने भय के विरुद्ध साहस की तलाश की है। कवि कहते हैं -

'हो सकता है आप भी एक डरी हुई आत्मा थी
मेरी तरह सशरीर साहस की तलाश में थे
क्योंकि जो हैं वे भय के कारण साहसी है।
मैं आपका स्वागत करता हूँ
ताकि थोडा ही सही साहस कहीं दिखे।'

इसप्रकार इनकी कविताएँ भय या डर से लगातार संघर्ष करती है। कवि लीलाधर जगूडी समाज के नये अनुभवों को समेटने की कोशिश करते हैं। प्रकृति और मानवीय जीवन के परस्पर संबंध को अधोरेखित किया है। इन्होंने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं पर आधारित कविताएँ लिखी है।

7) **चंद्रकांत देवताले :** कवि चंद्रकांत देवताले समकालीन कविता के सातवें दशक के कवि हैं। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं- हडिडयों में छिपा ज्वर', 'रोशनी के मैदान की तरफ', 'भूखंड तप रहा है', लकडबग्घा हँस रहा है', आग हर चीज में बतायी गयी थी', 'पत्थर की बेंच' आदि। इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से समाज के आदमी के सुख-दुख और पारिवारिक जीवन को महत्त्व दिया है। इनकी कविता में हिंसा, अन्याय , दमन और मानव-विद्रोह हैं। कवि ने समाज में व्याप्त आर्थिक समानता, रंगभेद समाज का अंतर्द्वंद्व आदि को महत्त्व दिया है।

आदिवासी जीवन का चित्रण देवताले की कविताओं में हुआ है। जिसमें आदिवासी विकास की सरकारी नीति की कवि ने खिल्ली उडायी है।

'हाइ पॉवर देखेगा बस्तर के ऊँचे दरख्त
हवा बस्तर की फेफडों में भरकर
हाइ पॉवर बटोरेगा बस्तर की
आदिवासी कला के नमूने
ड्राइंग रुम में रखेगा सजा के
धातु की हिरण- मुखवाली खूँटी राजधानी जाकर।'

इस प्रकार देवताले जी ने ग्रामीण जनजीवन के साथ आदिवासी जीवन को उजागर किया हैं।

8) **अरुण कमल :** इनका जन्म 15 फरवरी 1954 में बिहार के रोहतास जिले के 'नाझरीगंज' गाँव में हुआ। वे हिंदी के समकालीन कवियों में से एक हैं। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं- 'अपनी केवल धार', 'सबूत' 'नए इलाके में' 'पुतली में संसार' आदि। ये मूलतः जनवादी कवि के रुप में सामने आते हैं। अपनी छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से सामान्य आदमी की संवेदना को अभिव्यक्त करते हैं। 'अपनी केवल धार' में एक दयनीय व्यक्ति की स्थिति को दर्शाते हुए लिखते हैं -

'यह अनाज जो बदन रक्त में
टहल रहा है तन के कोने-कोने
यह कमीज जो ढाल बनी है
...... सब उधार का माँगा-चाहा
नमक-तेल, हींग-हल्दी तक
सब कर्जे का
यह शरीर भी उनका बन्धक।'

अरुण कमल की कविताओं में आम आदमी की व्यथा, राजनीतिक विसंगतियाँ, स्त्री की व्यथा, सामाजिक प्रतिबद्धता, तनाव, हताशा, अकेलेपन की त्रासदी देखी जा सकती है। समाज में स्थित श्रमजीवियों की स्थितियों का परिचय दिया है। इनकी कविता विषय को गहरा अर्थ प्रदान करती हैं।

9) **मंगलेश डबराल :** समकालीन जनवादी कवियों में मंगलेश डबराल का नाम सर्वप्रमुख आता है। इनकी कविताएँ सामंती और पूँजीवादी सभ्यता का विरोध करती हुई। मानवीय जगत के विभिन्न दृश्यों को उद्घाटित करती हैं। इनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं - 'पहाड पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज भी एक जगह है' आदि। उनकी कविता समकालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण करती है। वे महानगर में रहते हुए भी अपने गाँव के परिवेश के साथ जुडकर रहना चाहते हैं। 'एक जीवन के लिए' कविता में कवि मनुष्य जीवन के संघर्ष को चित्रित करते हुए लिखते हैं-

'शायद अंधेरा था
या एक खाली मैदान
या खडे होने भर की जगह
शायद वहाँ एक आदमी था
अपने ही तरीके से लडता हुआ।'

मंगलेश डबराल ने समाज के विविध जन-जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है। उनकी कविताओं में समाज की विसंगति नारीवादी स्वर, प्रकृति के प्रति मानव प्रेम, शोषण का विरोध, मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण, करुणा, दु:ख, संत्रास, आशावाद, निराशा, भूमंडलीकरण, विज्ञापन है। उनकी कविताएँ सहज रुप में समाज के जन-जीवन को स्पर्श करती है। जिसमें कविने अनुभवों की सच्चाई को अधिक महत्त्व दिया है।

10) **उदय प्रकाश :** उदय प्रकाश एक उत्कृष्ट कथाकार होने के साथ-साथ कुशल कवि भी है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।- 'सुनो कारीगर', 'अबतूर-कबूतर', 'रात में हारमोनियम' तथा 'एक भाषा हुआ करती है' आदि। कवि उदय प्रकाशने आज की लडखडाती दुनिया, बेचैनी और छटपटाहट को महत्त्व दिया है। उनकी कविता में पत्रकारिता, अपराध, बलात्कार, हिंसा, घबराए हुए लोग, राजनीति दलाली, संस्कृति, बाजार, रचनाकार की नियति, सांप्रदायिकता, डायनासोर, लुप्त होती हुई प्राचीन लिपियाँ आदि विषयों और वस्तुओं को महत्त्व दिया गया है। इनकी कविता में घटना का वर्णन अधिक है। कवि ने व्यंग्य के माध्यम से कवि, पत्रकार, राजनेता, दलाल, मंत्री, फोटोग्राफर, सरकारी कर्मचारियों, प्रापर्टी डीलर आदि का पर्दा फाश किया है। साथ ही सार्वजनिक प्रशासन, पर्यावरण, अखबारों की सच्चाई, मनुष्यता को बचाना चाहते हैं। वे कहते हैं -

'बचाना ही हो तो बचाए जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड, शहर में हवा
पेडों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में
नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी।'

इनकी कविताओं में वर्तमानकालीन मानवीय जीवन की सशक्त पहचान है। इन्होंने लोकभाषा की शैली को अपनाया है। समकालीन कविता में वे जनवादी कवि माने जा सकते हैं।

अन्य समकालीन कवियों में लीलाधर, मंडलोई, आलोक धन्वा, वीरेन डंगवाल, विष्णू खरे, मनोज सोनकर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कुमार अंबुज, बद्रीनारायण आदि के नाम आते है। लीलाधर मंडलोई की कविता मानव प्रकृति और पशु पक्षियों की दुनिया से निर्मित है। कवि ने अपने प्रदेश की जनजतियों के जीवन और अनुभव को चित्रित किया है। आलोक ध्वन्वा साधारण जीवन के कवि हैं। उनकी कविता में पूंजीवाद और तत्कालीन व्यवस्था के प्रति प्रहार है। वीरेन डंगवाल समसामायिक स्थितियों में मनुष्य की आंतरिक वेदना को बडे ही कलात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। वे छोटी-छोटी चीजों एवं वस्तुओं के माध्यम से सामान्य जीवन जीनेवाले लोगों की दुनिया का चित्रण करते हैं। विष्णु खरे जी ने शहरों में जीनेवाले सामान्य

लोगों की स्थितिपर प्रकाश डाला है। मनोज सोनकर की कवितायें- सामान्य आदमी की व्यथा, भ्रष्ट नेताओं का विरोध, किसान और मजदूरों का शोषण, प्रकृति की विभिन्न छटाएँ अभिव्यक्त करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएॅ दलितों के जीवन को एक नयी दिशा देती है। उनका काव्य दलितों के भोगे हुए जीवन का यथार्थ है। जो दलित की पीडा, संघर्ष और अस्मिता को उजागर करता है। कुमार अंबुज की कविता में समकालीन भारतीय समाज के क्रूर यथार्थ का चित्रण है। इनकी कविताएँ शोषितों के जीवन का चित्रण करती है। साथ ही शोषितों की इच्छाओं, अपेक्षाओं के द्वारा आशावाद निर्माण करती है। समकालीन कवि बद्रीनारायण की कविताओं में समाज पर वैश्वीकरण के बढते प्रभाव को अंकित किया गया है। इनकी कविताएँ अपने समय के समाज की विकृतियों को परखती है।

- **समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :**

1) **आम आदमी का चित्रण :** समकालीन कविता में आम आदमी के जीवन के प्रत्येक पक्ष को उभारा गया। आम आदमी की सामान्य दिनचर्या को सहानुभूति के साथ समकालीन कविता में चित्रित किया गया है। धोबी, नाई, दर्जी, मजदूर, खलासी, चौकीदार, घरेलु नौकर, पोस्टमैन, सिपाही, किसान, क्लर्क जैसे उपेक्षित चरित्रों को संवेदनशीलता के साथ कविता में चित्रित किया गया है। घूमिल अपनी कृति 'संसद से सडक तक' में लिखते हैं -

'पत्नी का उदास और पीला चेहरा
मुझे आदत-सा आँकता है
उसकी फटी हुई साडी से झाँकती हुई पीठ पर
खिडकी से बाहर खडे पेड की
वहशत चमक रही है।'

2) **समकालीन कविता और समाज :** आम आदमी को अपनी अस्मिता बचाने के लिए समाज में संघर्ष करना पड रहा है। उसकी स्थिति मानो घास जैसे हो गई है। हर बार उसकी उपेक्षा ही की जा रही है। लगभग वह अपनी पहचान खो रहा है -

मैं घास की तरह जन्मा
और बढा। मुझे किसी ने नहीं बोया
सभी ने रौंदा। और सभी ने चरा।

बदलती परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। समकालीन कविता में बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त प्रदान की गई। धोखा खाते-खाते आम आदमी आविश्वासी हो उठा है। वह अपने को जीवित रखने के लिए कोई भी तरीके अपनाना चाहता है, क्योंकि उसे अब पता चल चुका है कि ईमानदारी एवं सादगी से कुछ प्राप्त नहीं होनेवाला-

पिछले साल मैंने एक नारा लगाया था

परंतु दुकानदार ने मुझे अंदर बुलाया
और जास्ती राशन देकर एक सिगरेट पिलाया।

आम आदमी में मानवीयता आज भी बाकी है। उसका परिवार अभावों जूझता रहता है। आदर्श और यथार्थ के द्वंदव में आम आदमी जीता-मरता है। बिना थके श्रम करने के पश्चात् भी उसे दो वक्त की रोटी नसीब नहीं होती। कवि केदारनाथ सिंह की कविता 'रात में सिलाई' का दर्जी अपने परिवार की उपजीविका के लिए देर रात तक कपडे सीता रहता है। आजादी के इतने साल बात भी आम आदमी अभावों में जी-मर रहा है। आम आदमी का मोहभंग हो गया है। कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह की कविता 'आधीरात' में राजनीतिक व्यंग्य उभरा है-

मैं उस आदमी को वर्षों से खोज रहा हूँ,
जिसने आजादी का परचम उठाकर
(महज एक गुलाब के लिए)
हमसे हमारा इतिहास चुरा लिया
और उसकी जगह एक नकली दस्तावेज रखकर,
खुद चोर दरवाजे से बाहर निकल गया।

समकालीन कवियोंने आम आदमी पर हो रहे चुनाव के असर, उसकी परिस्थितियों का चित्रण भी किया है। आज का आम आदमी राजनैतिक-अराजनैतिक क्रूरताओं और दमन का शिकार होता जा रहा है। धर्म, जाति या संप्रदाय के नाम पर भडकी भीड आदमी को ही आदमी का दुश्मन बनाने पर तुल जाती है। आम जनता में पुलिस की छवि रक्षक के बजाए भक्षक की बन बैठी है। न्याय व्यवस्था भी विकृत बन चुकी है। आम आदमी की दशा में किसी भी प्रकार का परिर्वत नजर नहीं आता। आम आदमी व्यवस्था के चंगुल से भागने के लिए छटपटाता है। इसलिए विद्रोह करना चाहता है-

भले ही
कानों पर पहरे हों
जबानों पर ताले हों
आवाज
अगर सचमुच आवाज है
तो दब नहीं सकती
वह सतत आजाद है।

3) **समकालीन कविता और देश की आर्थिक स्थिति :** समसामायिक युग में समाज का शोषित वर्ग मँहगाई की समस्या से जूझ रहा है। अर्थाभाव ने उसकी हालत पस्त कर दी है-

जहाँ केवल शिक्षा नहीं
टमाटर भी महँगे हैं

जीभ पर रोटी और दाल तक
हड्डियों के दर्द की
एक कहानी है।

आम आदमी का समूचा संघर्ष केवल एक रोटी के लिए है। जिसे वह पाना चाहता है-

जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है।
इस दुनिया में भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क रोटी है।

अधिकांश निम्नवर्गीय बेघर है। भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आम आदमी छटपटाता रहता है। दरिद्रता से उत्पन्न कुठाएँ उसे आत्महीनता की स्थिति तक ले जाती है। समस्त दुर्व्यवस्था के प्रति उसमें विरोध का स्वर उभरता है।

4) **समकालीन कविता में बदलते धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य :** समकालीन कविता में बदलते धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य के चित्र दिखाई देते हैं। लेकिन अब भी निम्न और निम्नमध्यवर्ग इन रुढियों को मानता हुआ नजर आता है। आम मनुष्य में अलैकिक सत्ता के प्रति संदेह उत्पन्न होने लगता है। वह सोचता है-

सब कुछ देख और सुनकर
वह चुप रहता है।
ईश्वर के पास
क्या जुबान नहीं है

कभी-कभी वह विद्रोही हो जाता है और कहता है-

'इस विप्लव बेला में भाग रहे ईश्वर को
बच्चों के मस्तिष्क में मत टिकाने दो पैर।

कर्मकांड-विधि विधान के जितने भी साधन है, जैसे व्रत उपवास, आराधना, तीर्थयात्रा आदि उसकी दृष्टि में केवल बाह्याडंबर बन गये है। इसलिए वह पलायन करना चाहता है। उसे एहसास हो चुका है कि अब ईश्वर के सहारे स्थितियाँ बदली नहीं जा सकती।

5) **समकालीन कविता में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की पहचान :** आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती जिसके कारण व कुंठाग्रस्त मन:स्थिति में जीता-मरता रहता है। अपने भविष्य को लेकर वह भयभीत हो जाता है। लेकिन उसके सोच में जागरुकता आ गई है।

लेकिन
जब मैं रोटी की तरफ हाथ बढाता हूँ
तब

ये मेरा हाथ काटने के लिए तैयार हो जाते हैं
कितने विचित्र हैं
ये लोग।

युगीन परिवेश में विषय परिस्थितियों के मध्य आम आदमी संघर्षरत हो जाता है। लेकिन उसकी पराजय ही हो जाती है। जिससे वह निराश हो जाता है। लेकिन फिर सोचता है कि एक न एक दिन अच्छे दिन भी आयेंगे। समकालीन कविता में इसी आशा-निराशा के स्वर मुखरित होते हुए दिखाई देते हैं। आम आदमी व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करना चाहता है और कभी कभी उसके जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं जहाँ जिजीविषा और आत्महत्या के द्‌वंद्‌व में वह फँस जाता है -

वह एक आदमी था जोर मर गया
वह एक विश्वास था, जो बन गया हमारे कंधों पर लाश
एक आम आदमी: जिसने अपने को कहीं से तोडा नहीं
अपने को बाँटा नहीं
कहीं से मरोडा नहीं।

इसप्रकार समकालीन कवियों ने आम आदमी के अंतर्जगत के प्रत्येक कोने में झाँकने का सफल प्रयास किया है।

6) **भाषा एवं शिल्प विधान :** समकालीन कविता में आम जीवन की भाषा, शब्द-चयन, मुहावरें, लोकोक्तियाँ, बिंब, प्रतीक, अलंकार इत्यादी मिलते हैं। समकालीन कविता की भाषा में सादगी और सरलता है। साथ ही आम आदमी की बोलियों, अखबारी भाषा, जनभाषा का प्रयोग हुआ है।

ईशे बाँध्दो, उसे काट्‌टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्‌टो।
धिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जुत्तें को ऐना बनाओ।

समकालीन कविता में मुहावरें एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भी है जैसे

'दवा-दारू के अभाव में
उसका पिया
राम-प्यारा हो गया।'

मुहावरें लोकोक्तियों के साथ बिंब, प्रतीक और अलंकारों का सुंदर प्रयोग समकालीन कविता में हुआ है- बिंब विधान का उदाहरण -

आटे में नमक की तरह
तुम्हारी याद
मुझे स्वाद से
भर देगी।

प्रतिक विधान का उदाहरण -

सबसे डरती गाय
घास चरती गाय
दूध देती गाय
दूध पीता बच्चा
दूध पीती बिल्ली
दूध पीता साँप
माँ, मुझको डर लगता
मेरा घर
कैसे-कैसे जीवों का घर लगता हैं।'

उपर्युक्त पंक्तियों में 'गाय' आदमी का, दूध श्रम का, बिल्ली चालाक नेता, साँप उद्योगपति, बच्चा परिवारिक संबंधों का प्रतीक बन गया है। सममकालीन कवियों ने उपमादि अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है-

समय के सिलासिले में
तुम पूस की तरह ठण्डे हो रहे हो।

समयकालीन कविता आम आदमी के बोलचाल के शब्दों में साकार हो उठी है।

● समकालीन कविता : वैचारिक प्रवाह

समकालीन काव्यधारा में प्रौढ, मध्य और युवा कवियों की तीन पीढियाँ एक साथ सक्रिय है। नयी कविता के युग से आज तक लेखन कर्म में प्रवृत्त कवियों की प्रौढ पीढ़ी है। इस पीढी के कवियों ने आम आदमी पर अधिक लिखा है। इनकी कवितायें आम आदमी के जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने में समर्थ सिद्ध हुई हैं। सप्तक दशक के आसपास अपनी कृतियों से अत्यंत चर्चित कवितायों की पीढी मध्य के अंतर्गत आती है। इन कवियों ने आम आदमी को अतिरिक्त संवेदना के साथ कथ्य के रुप में प्रस्तुत किया है। समकालीन कवियों की युवा पीढी में उन कवियोंकी गणना की जा सकती है, जिन्होंने सप्तम दशक के पश्चात् ही अपना सृजय कार्य आरंभ किया है।

1980 की राजनीति में बडे उतार-चढाव आये। इस दशक में बीस सूत्रीय कार्यक्रम, अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष, अंतरराष्ट्रीय बाल वर्ष, अस्पृश्यता-निवारण, युद्ध और विश्व शांति आदि के लिए जितने भी प्रयास किये गये सभी असफल रहें। इस दशक के कवियों ने हर जगह जो नीतिमूल्यों में गिरावट आ गयी है उसे तटस्थ होकर अभिव्यक्त किया है। साथ ही उत्पन्न विसंगति तथा अराजकता पर अपनी व्यंग्य लेखनी चलाई है। जिनमें प्रमुख कवि हैं, भारतभूषण अग्रवाल, कीर्ति चौधरी, भवानी प्रसाद मिश्र, मुक्तिबोध, जगदीश चतुर्वेदी, धूमिल अज्ञेय, चंद्रकांत देवताले, शमशेर बहादूर सिंह, रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह आदि।

नौवें तथा दसवे दशक में युवा और वयोवृद्ध कवियों की रचनायें साथ-साथ छपती रही। नागार्जुन, अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रामदरश मिश्र के साथ-साथ देवीप्रसाद मिश्र, नरसिंह श्रीवास्तव, कुमार अंबुज जैसे नये कवि कवि कर्म में जूटे रहें। इस दशक में बडे आकार वाली प्रबंध कृतियाँ छपती रही। नवें दशक की कविता में 'वाद' के नामपर केवल 'जनवाद' सक्रिय रहा है। इसी नवें दशक में 'विक्षुब्ध-कविता' के नाम से एक काव्यान्दोलन आरंभ हुआ। नवे दशक में ही नवगीत और उससे जुडे जनगीत अपनी जडें मजबूत करते रहें हैं। इस अवधि में गजल संग्रह भी छपने लगे।

आठवे दशक में ही 'लंबी कविता' लिखना प्रारंभ हुआ था। नवें दशक में बहुत सी लंबी कविताएँ लिखी गयी। जगदीश चतुर्वेदी (मालवे का संगीत), शैलेश जैदी (सूरज एक सलीब), नरेंद्र मोहन (एक अदद सपने के लिए) इनमें प्रमुख रहे हैं। नवें दशक में ही नागार्जुन, रामदरश मिश्र, राजेश जोशी, उदयप्रकाश, नरेंद्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, गिरिजा कुमार माथुर जैसे जानेमाने कवियों के कविता संग्रह प्रकाशित हो गये। नवें और दसवें दशक के बीच 'पहल' का समकालीन कविता विशेषांक निकला। 'गवाह', 'संचेतना', 'दस्तावेज' 'प्रतिमान' आदि विशेषांक निकले जिनके द्वारा जनवादी काव्यधारा के दर्शन हो जाते हैं। मनोज सोनकर, दूधनाथ सिंह, आलोक धन्वा, अशोक चक्रधर, वेणु गोपाल, बलदेव वंशी इस धारा के युवा कवि हैं। इन दोनों दशकों की कविता की बेरोजगारी, बढती हुई मॅहंगाई, भ्रष्टाचार, वैज्ञानिक प्रगति, सांप्रदायिकता दुष्प्रभाव, नये बिंब-प्रतीक योजना, लंबी कविताएँ आदि विशेषताएँ हैं।

समकालीन मुख्य काव्यधारा के समानांतर प्रबंध काव्य, नवगीत और गजल आदि धाराओं के दर्शन हो जाते हैं। समकालीन प्रबंध काव्य में पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक प्रबंध काव्य लिखे गये। 'जानकी-जीवन' (राजाराम शुक्ल), सौमित्र (रामश्वेर दयाल दुबे), 'द्रोण' (रामगोपाल रुद्र), 'सूर्यपूत्र' (जगदीश चतुर्वेदी), 'युगपुरुष चाणक्य' (विद्याभूषण), कालजयी (भवानीप्रसाद मिश्र), ज्योति पुरुष (रघुवीर शरण), 'इतिहास पुरुष' (डॉ. देवदूत), 'प्रार्थना पुरुष' (नरेश मेहता), आत्मदान (बलदेव वंशी), 'अहत्या' (प्रभा खेतान) आदि प्रमुख प्रबंधकाव्य हैं।

नयी कविता जुडे कवियों ने गीत को नया रुप देने का प्रयास किया। सन 1958 में राजेंद्र प्रसाद द्वारा नवगीत संज्ञा का प्रयोग किया गया। इसी नवगीत को जनगीत, अनुगीत, गीतिका-गजल आदि नामों से भी पुकारा गया। निराला को 'नवगीत' के जन्मदाता माना जाता है। नवगीतकारों में रामदरश मिश्र, उमा शंकर तिवारी, वीरेंद्र मिश्र, रवींद्र भ्रमर, नचीकेता, वेद प्रकाश अमिताभ के नाम उल्लेखनीय है।

समकालीन गीतिकाव्य गजलों के रुप में भी रचा गया। आठवें दशक में दुष्यंत कुमार ने नजल के माध्यम ने गजल के माध्यम से युग की विसंगतियों का पर्दाफाश करना प्रारंभ किया था। दुष्यंत कुमार के अलावा चंद्रसेन, विराट, नीरज, सूर्यभानु गुप्त, रामदरश मिश्र, जहीर कुरेशी, कुँवर बैचेन, ज्ञान प्रकाश, विवेक आदि गझलकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। हिंदी गजल को अधिक लोकप्रियता मिली है। लेकिन इस दशक के गीत अधिक स्तरीय और स्थायी महत्त्व के हैं।

2.3 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

निरलंकृत - अलंकारविहिन

आकृष्ट-आकर्षित

फासिज्म - उग्र राष्ट्रवाद / प्रजातंत्र के खिलाफ होनेवाली आततायी व्यवस्था

जारशाही - रुस में जार की उपाधि धारक राजाओं का शासन, क्रूर तथा निर्दय शशसन

संबल - आधार

महाम्बुधि - महासागर.

2.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं अध्ययन प्रश्न के उत्तर 1

अ) 1) नयी कविता

2) अज्ञेय

3) अंधेरे में

4) रघुवीर सहाय

5) चिंतक

ब) उचित मिलान

1) अज्ञेय - बावरा आहेरी

2) गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण

3) धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा

4) भारत भूषण अग्रवाल - जागते रहो

5) कुँवर नारायण - आत्मजयी

2.5 सारांश :

प्रगतिवाद ने सामाजिक यथार्थ को सौंदर्य की बुनियाद मानकर सामाजिक जीवन के यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से पहचाना और उसे रुपाकार देने का प्रयास किया। प्रगतिवादी कविता ने एक ठोस जीवन दृष्टि को स्वीकार कर समकालीन जीवन-चेतना को पहचाना और नये सर्जन की सार्थकता को रेखांकित किया। प्रगतिवादी काव्य ने द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन को अपनी काव्य-चेतना का आधार बनाया है। हिंदी कविता में इसी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन और वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश करने का श्रेय प्रगतिवादी कविता को है। यह जीवन-दर्शन हमारी सामाजिक व्यवहार तथा दृष्टि को प्रभावित करता है। इस सामाजिक जीवन में मनुष्य को ही नहीं प्राकृतिक परिवेश को देखने तथा उन्हें सार्थकता देनेवाली नवीन दृष्टि

प्रगतिवादी काव्य में देखने को मिलती है। प्रगतिवादी काव्य ने सुंदरता के नये प्रतिमान खडे किये। प्रगतिवाद ने मेहनतकश जनता तथा उसके द्वारा किए गए उत्पादन, श्रम और निर्माण को सांदर्य के प्रतिमान का आधार बनाया। प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना तथा वर्ग चेतना ने काव्य संसार की सीमाओं को असीम बना दिया। प्रगतिवाद ने हिंदी कविता को वैज्ञानिक यथार्थ दृष्टि दी। सामंतवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सांप्रदायिकता और फासीवाद तथा इससे जुडी हुई तमाम शोषक शक्तियों पर प्रगतिवादी काव्य ने जमकर प्रहार किये हैं। जन आंदोलन तथा जनवादी संस्कृति प्रगतिवाद की बुनियाद है। प्रगतिवादी काव्य ने हिंदी कविता को लोक जीवन तथा लोक-कलाओं से जोडा। नयी विषयवस्तु के अनुरुप नयी भाषा का निर्माण किया। आक्रोश की कविता हिंदी को प्रगतिवाद की देन है। प्रगतिवाद के माध्यम से काव्य-समीक्षा को एक बडा समाज-सापेक्ष, सार्थक तथा मौलिक काव्य-सिद्धांत प्राप्त हुआ।

प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रारंभ अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' से माना जाता है। प्रयोगवाद को यदि नयी कविता से अलग करके देखे तो उसका जीवन काल बहुत अल्प अर्थात् 1943 से 1950 तक मानना होगा। प्रयोगवाद की मूलभूत बातें नयी कविता में दिखाई देती हैं। प्रयोगवाद पर पाश्चात्य साहित्य तथा दर्शन का प्रभाव स्वीकार किया गया है। उसमें निराशा, कुंठा, पीडा को मनोवैज्ञानिक पुट देकर चित्रित किया गया है। प्रयागेवाद का दर्शन फ्रायड के मनोविज्ञान पर आधारित है। प्रयोगवादी रचनाकारों ने श्रृंगारिक भावों का चित्रण अधिक किया है। प्रयोगवाद में नवीन कथन-भंगिमा, अभिव्यंजना शैली और विविध विषयों को नवीन रुप में अभिव्यक्त करने की और तेजी से बढने की पृष्ठभूमि में युगीन परिस्थितियाँ सहायक रही हैं। इस कविता पर व्यक्तिवादिता, अहंकार आदि का आरोप किया जाता है। व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण इन कवितायों की रचनाओं में समसामायिक स्थितियों के चित्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। प्रयोगवादी काव्य पर जटिलता का भी आरोप लगाया गया है। जटिलता के साथ संकीर्णता, नीरसता, यथार्थ से पलायनवादिता का भी आरोप लगाया जाता है। प्रयोगवादी काव्य में नवीनता के लिए आग्रह और पुरातन के प्रति उपेक्षा आज के जटिल जीवन के अनुकूल ही है। इसके लिए परिस्थितियाँ भी सहायक रही हैं। नये शिल्प, नई भाषा, नई अभिव्यक्ति के प्रति बेहद आत्म-सजगता प्रयोगवादी कवियों में देखी जाती है। प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, गद्यात्मक, बिंबात्मक और रोमानी शैली में अपनी रचनाओं का सृजन किया है।

प्रगतिवाद यथार्थ की ओर उन्मुख होकर जन-जीवन के साथ जुडने का प्रयत्न कर रहा था, और शिल्प के प्रति अधिक आग्रही नहीं था, तो दूसरी ओर प्रयोगवादी काव्यधारा के कवि शिल्प को ही प्रधानता देकर रचना में प्रवृत्त हो रहे थे। उसी समय 'तार-सप्तक' के प्रकाशन से कवियों का एक नया वर्ग, नयी काव्य चेतना लेकर आया। जिसने काव्य में प्रयोगशीलता को बढावा दिया लेकिन इसके अतिरिक्त युवा कवियों का एक वर्ग ऐसा था जो सप्तकीय सीमा से हटकर काव्य रचना कर रहा था। प्रयोगवादियों ने इसे 'नयी कविता' नाम दे दिया। इन्होंने नई काव्य प्रवृत्तियों के लिए 'नयी कविता' नाम स्वीकार लिया। नयी कविता में नये स्वर की पुकार बहुत तीखी होकर उभरी है। नवीनता के प्रत यह आगह संक्राति को तोडने और गतिरोध को झटककर नयी दिशा में बहने की आकुलता के रुप में व्यक्त हुआ है। नयी पीढी की दिशाहीनता नयी कविता

की अनेक कविताओं में व्यक्त हुई है। नयी कविता में दिशाहीन मानव की अर्थहीन जिंदगी में पूँजीवादी अर्थतंत्र के दबाव के फलस्वरूप उभरती हुई टूटन और यंत्रणा का लगातार चित्रण हुआ है। नये कविता की अर्थहीन जिंदगी एकरस और यांत्रिक हो उठी है। लघुमानव की अवधारणा के साथ नयी कविता में क्षणवाद का भी काफी महत्त्व है। नयी कविता में समसामायिक यथार्थ के मार्मिक चित्र देखने को मिलते हैं। नयी कविता में आस्था और विश्वास के चित्र बिखरे पडे हैं। अकेलेपन, अजनबीयत, वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष से संबंधित रचनाएँ नयी कविता आंदोलन में मिलती हैं। द्‌वितीय विश्वयुद्‌ध की विभिषिका और फासीवाद के खूँखार शिंकजे में पीसती हुई मानवता के संत्रास के विरोध में नयी कविता ने अपना स्वर ऊँचा किया है।

समकालीन कविता में कुंठाग्रस्त आम आदमी का चित्रण किया गया है। उनकी इच्छा, आकांक्षा, दृष्टि, निराशा, विवशता, आक्रोश खीझ, कुंठा को विस्तृत वर्णन का विषय बनाया है। समकालीन कविता का युग मूल्यों के संक्रमण का युग है। भोली विवश जनता शासकों के हाथों समकालीन व्यवस्था में ठगी जा रही है। समकालीन कवियों ने दलाल, अफसर, चाटुकार वर्ग के चरित्र को आम आदमी को दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। समसामायिक युग में समाज का शोषित वर्ग बढती मँहंगाई की समस्या से जूझ रहा है। युगीन परिवेश में आम आदमी ने स्वयं को विषम परिस्थितियों के मध्य, संघर्षरत ही पाया है। आम आदमी व्यवस्था के प्रति आक्रोशव्यक्त करना चाहता है। उनके द्‌वारा विरोध किए जानेपर भी उसे कोई लाभ उसे नहीं मिल पाता। समकालीन कवियों ने इस पक्ष को सजीवता से शब्दबद्‌ध किया है समकालीन कविता आम जीवन को व्यक्त करने के कारण बोलचाल के निकट आ गयी है। वह आम आदमी से जुडकर उसकी बात उसकी भाषा में कह रही है। लेकिन कहीं कहीं जटील प्रतीकों-बिंबो के कारण भाषा दुर्बोध हो जाने के कारण आम आदमी की पहुँच से दूर चली जा चुकी है।

2.6 स्वाध्याय :

1) प्रगतिवादी कवि तथा उनकी रचनाएँ स्पष्ट कीजिए।
2) प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ निरुपित कीजिए।
3) प्रयोगवाद तथा नई कविता का परिवेश स्पष्ट कर प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ विशद कीजिए।
4) साठ्येत्तरी काव्य की प्रवृत्तिया स्पष्ट कीजिए।
5) समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए।
6) समकालीन कवि तथा उनकी रचनाएँ स्पष्ट कीजिए।
7) प्रयोगवाद का स्वरूप बताकर प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ निरुपित किजिए।
8) नई कविता स्वरूप स्पष्ट कर नई कविता की प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए।

टिप्पणियाँ लिखिए :

1) प्रगतशील लेखक आंदोलन
2) समकालीन कविता के परिवर्तित नवीन सोपान

3) प्रगतिवादी कविता की वैचारिक पृष्टभूमि

4) प्रगतिवादी कविता का परिवेश

5) नयी कविता के वैचारिक प्रवाह

2.7 क्षेत्रीय कार्य

1) प्रगतिवादी कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

2) प्रयोगवादी तथा नई कविता के कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

3) समकालन कविता के कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

2.8 अतिरिक्त अद्ययन के लिए :

1) डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973

2) डॉ. शर्मा रमेश चंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2002 ई.

3) डॉ खंडेलवाल जयकिशन प्रसाद, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सप्तम संस्करण, 1969.

4) डॉ. मिश्र रामदरश, डॉ सिंह महीप, समकालीन साहित्य चिंतन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण प्रथम, 1986.

5) डॉ. महेश्वर सरिता, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नयी कविता, अप्रतिम प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991.

❑❑❑

इकाई–3
आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का इतिहास

अनुक्रम :

3.0 उद्‌देश्य।

3.1 प्रस्तावना।

3.2 विषय-विवेचन।

3.2.1 हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास-प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी कृतियाँ-वैचारिक प्रवाह

3.2.2 कहानी साहित्य का विकास-प्रमुख कहानीकार तथा उनकी कृतियाँ-वैचारिक प्रवाह

3.2.3 हिंदी नाटक साहित्य का विकास-प्रमुख नाटककार तथा उनकी कृतियाॅ-वैचारिक प्रवाह

3.2.4 हिंदी एकांकी साहित्य का विकास - प्रमुख एकांकीकार तथा उनकी कृतियाँ, वैचारिक प्रवाह

3.3 शब्दार्थ

3.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.5 सारांश

3.6 स्वाध्याय।

3.7 क्षेत्रीय कार्य।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

3.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

1) हिंदी उपन्यास - साहित्य के विकास को समझ सकेंगे।
2) प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी कृतियों से परिचित होंगे।
3) साठोत्तरी उपन्यासों से परिचित होंगे।
4) हिंदी कहानी-साहित्य के विकास को समझ पाएँगे।
5) प्रमुख कहानीकार तथा उनकी कृतियों से परिचित होंगे।
6) साठोत्तरी कहानी और विविध कहानी आंदोलन को समझ पाएंगे।

7) हिन्दी नाटक साहित्य के विकास को समझ पाएंगे।

8) प्रमुख नाटककार तथा उनकी कृतियों से परिचित होंगे।

9) समकालीन हिंदी नाटकों से परिचित होंगे।

3.1 प्रस्तावना :

हिंदी गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटना है, इसीलिए इस युग को 'गद्यकाल' कहा जाता है। भारतेंदु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेशद्वार है। भारतेन्दु ने स्वयं गद्य की लगभग सभी विधाओं का प्रारंभ किया। इन्हें आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का जनक भी कहा जाता है। भारतेन्द्रु काल से लेकर आज तक उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आलाचना, यात्रा साहित्य, रेखाचित्र आदि विविध विधाओं का विकास होता रहा।

सेमिस्टर दो प्रश्नपत्र छ की दूसरी इकाई में हमने आधुनिक हिंदी कविता के विकास का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम कथा साहित्य के विकास का अध्ययन करेंगे। इसके लिए हिंदी उपन्यास, कहानी, नाटक साहित्य के विकास पर विस्तार से चर्चा करेंगे। हिंदी उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और उनकी कृतियों पर प्रकाश डालेंगे। साठोत्तरी उपन्यास, कहानी, नाटक की चर्चा करेंगे तथा विविध कहानी आंदोलन को स्पष्ट करेंगे।

3.2 विषय विवेचन :

3.2.1 हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास-प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी कृतियॉ, वैचारिक प्रवाह

हिंदी उपन्यास साहित्य का प्रारंभ आधुनिक काल में भारतेन्दु युग में हुआ है। हिंदी में उपन्यास साहित्य का प्रारंभ बंगला और अंग्रेजी उपन्यासो के अनुकरण और संपर्क से हुआ है। कुछ विद्वान संस्कृत के 'कादंबरी' को उपन्यास मानते है और हिंदी उपन्यास का संबंध संस्कृत से जोड़ते हैं। यह सही नहीं है। भारत में सबसे पहले अंग्रेजी के अनुकरण पर बंगला भाषा में उपन्यास लिखे गए। फिर बंगला के अनुकरण पर हिंदी में उपन्यास लिखे गए। इस तरह अप्रत्यक्ष रुप से अंग्रेजी उपन्यासों के प्रभाव से हिंदी उपन्यास-साहित्य का प्रारंभ हुआ है।

प्रेमचंद ने उपन्यास-साहित्य को उत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके उपन्यासों से हिंदी उपन्यास-साहित्य को एक नई दिशा मिली। उपन्यासों में जन-जीवन का चित्रण होने लगा। अत: हिंदी उपन्यासों के विकास का अध्ययन उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के साथ सम्बद्ध माना जाता है। हम इस दृष्टि से प्रेमचंद को केन्द्र मानकर हिंदी उपन्यास-साहित्य के विकास को तीन कालखंड़ों में बांटकर उपन्यास के विकास का अध्ययन करेंगे।

1) प्रेमचंद पूर्व युग (सन 1882-1915)

2) प्रेमचंद युग (1915-1936)

3) प्रेमचंदोत्तर युग (1936 से अबतक)

1) प्रेमचंद पूर्व युग :

प्रेमचंद से पूर्व हिंदी साहित्य में आचार, नीति, धर्म, उपदेश, तिलस्मी, जासूसी और मनोरंजनार्थ उपन्यास लिखे गए। जिनका जनजीवन से कोई संबंध नहीं था। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से श्रद्धाराम लिखित 'भाग्यवती' उपन्यास हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। आ. शुक्ल श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास मानते है। इसमें दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है। सेठ कुसंगति में पड़ जाता है। अंत में उसका एक सज्जन मित्र द्वारा उद्धार हो जाता है। इसमें उपदेश की प्रधानता है। बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान' आदि दो सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें उपदेश, सुधार की बात है। 'नूतन ब्रह्मचरी' का विनायक ड़ाकुओं के सरदार पर नैतिक विजय प्राप्त करके उसे चरित्रवान बना देता है। इस प्रकार इस काल के भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों में सुधार, उपदेश की वृत्ति प्रधान है।

द्विवेदी युग में जासूसी, तिलस्मी उपन्यास लिखे गए, जिसमें अद्‌भूत और असाधारण घटनाओं का ऐसा वर्णन है कि पाठक का मन धक्का खाकर आगे बढ़ता है। देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति' तिलस्मी उपन्यास है। गहमरी ने 'खूनी कौन है?' 'सरकती लाश' जासूसी उपन्यास लिखे। सहाय ने 'लाल चीन', मिश्रबन्धू ने 'वीरमणि' नाम से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिनमें ऐतिहासिकता कम है। इस युग में बंगला, मराठी, अंग्रेजी के अनेक उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इस काल के उपन्यासों में नैतिक शिक्षा, सुधार, पाश्चात्य सभ्यता की कटु आलोचना है। तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों में मनोरंजन की प्रधानता है। उपन्यासों में जीवन की आलोचना, कलात्मकता नहीं है।

२) प्रेमचंद युग :

प्रेमचंद उपन्यास-साहित्य में युग-प्रवर्तक के रुप में आए। उन्होंने हिंदी उपन्यास को साहित्यिक सम्मान का पद दिलाया। हिंदी उपन्यास को जासूसी और ऐय्यारी उपन्यासों के माया जाल से निकालकर मानव जीवन की वास्तविक पृष्ठभूमि पर लाकर खड़ा किया। वस्तुत: वे हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार है। इनके 'सेवासदन' उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही हिंदी उपन्यास-साहित्य को एक नई दिशा, नई गति और नई जिन्दगी मिली। इनके उपन्यासों में पहली बार जन सामान्य को वाणी मिली और कला केवल मनोरंजन का साधन न रहकर जीवन को स्पष्ट करनेवाली बनी। उनके उपन्यासों में विशाल जन जीवन और विशेषत: भारत के किसान और मध्यवर्गीय जीवन की अनेक समस्याएँ कलात्मक रुप से चित्रित हुई है। इनके पात्र सजीव, व्यक्तित्व-संपन्न साधारण मानव है। उपन्यास के तत्व भी इनके उपन्यास में मिलते हैं। यही कारण है कि, प्रेमचद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है।

प्रेमचदं का युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल पुथल का युग था। उन्होंने अपने युग और समाज को सच्चाई से देखा और पराधीनता, साहुकारों द्वारा किसानों का शोषण, अशिक्षा, दहेज की कुप्रथा, घर, समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं, विधवाओं, मध्यवर्ग, अस्पृश्यता आदि की सामाजिक समस्यों को यथार्थ रुप में उपन्यासों में दिखलाया। 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' उपन्यासों में ग्राम जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण है। उन्होंने दो प्रकार के उपन्यास लिखें - राजनीतिक, सामाजिक। प्रेमचंद के उपन्यास हैं- 'प्रेमा', 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'सेवा सदन' (वेश्या-समस्या), 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' (शासक-समस्या), 'कर्मभूमि', 'निर्मला' (अनमेल-विवाह-समस्या) 'गोदान', 'गबन', 'मंगलसूत्र' आदि ।

'गोदान' यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें किसान एवं मजदूर के शोषण की करुण कथा है। गोदान हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसे किसान जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को सभी दृष्टियों से उत्कर्ष पर पहुँचाया। भाव और विषय की दृष्टि से समृद्ध बनाया।

- **अन्य उपन्यासकार :**

इस युग में जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, कौशिक आदि प्रतिभाशाली लेखकों का उदय हुआ। प्रसाद ने प्रेमचंद की भांति जमींदारों के अत्याचार, ग्रामीणों की सरलता, सयुंक्त परिवार आदि का सजीव वर्णन किया है। उनके 'कंकाल' उपन्यास में समाज की कुरीतियों का चित्रण है। 'तितली' उपन्यास में प्रेम के आदर्श और आत्मसंयम का चित्रण है।

कौशिक के 'माँ', 'भिखारिणी' दोन प्रसिद्ध उपन्यास है 'भिखारिणी' में आंतर जातीय विवाह की समस्या को उठाया है। चतुरसेन शास्त्री (हृदय की प्यास) ने हिंदी उपन्यासों के विकास में योगदान दिया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इस युग में हिंदी उपन्यास-साहित्य कलात्मक बना। उसमें जीवन की आलोचना चित्रित हुई। प्रतिभाशाली उपन्यासकार निर्माण हुए।

- **प्रेमचंदोत्तर युग :**

इस युग में हिंदी उपन्यास-साहित्य का विविध मुखी विकास हुआ। लेखकों ने सामाजिक मनोवैज्ञानिक, साम्यवादी, ऐतिहासिक, आंचलिक, आधुनिक बोध के उपन्यास लिखे ।

- **सामाजिक उपन्यास :**

इन उपन्यासों में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। समाज सुधार, निम्न-मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण तथा समाज की रुढ़ि-परंपराओं, पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष आदि का भी चित्रण सामाजिक उपन्यासों में किया गया है। प्रमुख उपन्यासकार हैं- उपेन्द्रनाथ अश्क (सितारों का खेल, गिरती दिवारें), भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, भूलेबिसरे चित्र), विष्णू प्रभाकर (तट के बंधन), राजेन्द्र यादव (सारा आकाश), उदयशंकर भट्ट (डॉ. शेफाली सागर) आदि।

- **मनोवैज्ञानिक उपन्यास :**

फ्रायड, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांत, विचारों से प्रेरित होकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाने लगे। इन उपन्यासों में व्यक्ति के अंतर-संघर्ष का चित्रण है। व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुठांओं, यौन प्रवृत्तियों का चित्रण है। जैनेंद्र ने अपने उपन्यासों में नागरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण किया है। इनके 'परख', 'सुनिता', 'त्यागपत्र', 'और', 'कल्याणी' में नारी-पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण है।

अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' में 'जटिल एवं गंभीर शैली' में यौन-प्रवृत्तियों का चित्रण है।

इलाचंद जोशी के 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' उपन्यासों में व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुठाओं का चित्रण है।

- **साम्यवादी उपन्यास :**

साम्यवादी उपन्यासों में वर्ग विषमता, आर्थिक शोषण, सामाजिक क्रांति, नारी स्वातंत्र्य, जीवन संघर्ष आदि का चित्रण है। उसी तरह इन उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं को साम्यवादी दृष्टिकोण से परखा गया है।

यशपाल इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। उन्होंने ''दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रुप' अदि उपन्यासों में साम्यवाद की उपयोगिता, नारी की स्वतंत्रता, स्त्री पुरुष संबंध आदि का चित्रण किया है। साथ ही यशपाल ने समाज की जर्जर मान्यताओं के खोखलेपन को दिखाया है। अन्य साम्यवादी लेखक है राहुल सांकृत्यायन (सिंह सेनापति) नागार्जुन (दुखमोचन), रांगेय राघव (घरौंदा)

- **ऐतिहासिक उपन्यास :**

इन उपन्यासों में ऐतिहासिक विस्मृत प्रसंगों को सजीव किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखंड, झांसी, ग्वालियर आदि स्थानों के ऐतिहासिक विस्मृत प्रसंगों को सजीव किया है। इनके उपन्यास हैं- 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी' आदि।

- **आंचलिक उपन्यास :**

आंचलिक उपन्यासों में किसी अंचल या प्रदेश की संस्कृति को उसके सजीव वातावरण में प्रस्तुत किया जाता है। इनमें लोक-संस्कृति, लोक गीतों एवं लोक शब्दावली का भी चित्रण किया जाता है। इसके अलावा किसी आँचल विशेष के जन जीवन, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, आचार-विचार, वेशभूषा, खान-पान विवाह आदि संस्कार सामाजिक मान्यताएँ आदि बातों को भी लेखक आँचलिक उपन्यासों में चित्रित करता है। इस दिशा में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' विशेष उल्लेखनीय है। इसमें बिहार की संस्कृति का सजीव चित्रण है। अन्य आंचलिक उपन्यासकार है- नागार्जुन (बलचनमा), उदयशंकर भट्ट (लोक परलोक), राही मासूम रजा (आधा गाँव) आदि।

- **नये प्रयोग, आधुनिक बोध के उपन्यास :**

आजादी के बाद उपन्यास शिल्प में नए-नए प्रयोग हुए। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोडा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' शिल्प की दृष्टि से प्रयोगशील उपन्यास है।

औद्योगिककरण, यांत्रिकीकरण, पाश्चात्य विचार धारा का प्रभाव आदि से उत्पन्न आधुनिकता का, आस्थाहीन समाज का चित्रण उपन्यासों में होने लगा। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' तथा 'न आनेवाला कल' उपन्यास आधुनिकता से प्रभावित है। इसमें आस्थाहिन समाज का चित्रण है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में समलैंगिक यौन सुख में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। यह अपने कथानक और शैली की दृष्टि से अलग उपन्यास है। मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' आधुनिकता से प्रभावित है। इसमें पढ़े-लिखे पति-पत्नी के झगडों का चित्रण है। उषा प्रियवंदा के 'पचपन खंबे लाल दिवारे' में नौकरी करनेवाली अविवाहिता नारी के जीवन संघर्ष का वर्णन है। अन्य उपन्यासकारों में श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), कृष्णा सोबती (डर से बिछुडी), निर्मल वर्मा (वे दिन), कमलेश्वर (डाक बंगला), शैलेश मटियानी (कबुतरखाना) महत्त्वपूर्ण है। इन उपन्यासों में भी आधुनिकता, मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पहलु हैं।

इसके अलावा महिला उपन्यासकारों ने नारीवादी उपन्यास लिखकर उपन्यास के विकास में योगदान दिया। इन उपन्यासों में नारी समस्या केन्द्रीत है। इस दिशा में मृदुला गर्ग (कठगुलाब), मैत्रेयी पुष्पा (स्मृतिदंश), नासिरा शर्मा (जिंदा मुहावरे) महत्त्वपूर्ण हैं।

आगे चलकर उत्तर आधुनिकता, पूँजी वाद, खुले बाजार, ग्लोबलाइझेशन का रुप आदि का चित्रण उपन्यासों में होने लगा। इस दिशा में मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' आदि उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं।

इस तरह हिंदी उपन्यास साहित्य में युग के अनुसार अनेक विषय, शैलियाँ आती रही, जिससे हिंदी उपन्यास-साहित्य विकसित होने लगा। इस क्षेत्र में नए उपन्यास, नए लेखक आने लगे।

- **प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी कृतियाँ :**

उपन्यासकार प्रेमचंद :

प्रेमचंद का जन्म बनारस के 'लमही' गांव में हुआ था। प्रेमचंद बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। हिंदी उपन्यास साहित्य के इतिहास में सन 1918 से 36 तक के समय को प्रेमचंद युग नाम से जाना जाता है। 'सेवासदनं (1918) के प्रकाशन के साथ प्रेमचंद हिंदी में एक युग प्रवर्तक उपन्यासकार के रुप में सामने आए। इनके पहले उपन्यासों में रहस्य, रोमांच, आचार-विचार, उपदेश, मनोरंजन आदि की प्रवृत्ति प्रधान थी। प्रेमचंद ने उपन्यासों को जीवन और समाज से जोड़ने का प्रथम प्रयास किया। प्रेमचंद के आगमन के साथ ही हिंदी उपन्यास जगत में एक नये युग की शुरुआत हुयी। 'सेवासदन' उनके ऊर्दू उपन्यास 'बाजारे हुस्न' का हिंदी अनुवाद है। हिंदी भाषा के महत्त्व और व्याप्ति को देखते हुए वे हिंदी में लिखने लगे।

प्रेमचंद अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रुप में जाने जाते हैं। वस्तुतः सही अर्थो में उन्होंने ही हिंदी उपन्यास शिल्प का विकास किया। विषय और शैली की दृष्टि से हिंदी उपन्यासों को समृद्ध बनाया। उनके 'सेवासदन' उपन्यास के प्रकाशन से हिंदी उपन्यास साहित्य को नई दिशा मिली तथा उपन्यासों में जन-जीवन का चित्रण होने लगा। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई और जनजीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र देखने मिला। यही कारण है कि प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है।

- **प्रेमचंद के उपन्यास :**

प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यास इस प्रकार है - 'सेवासदन' (1918), 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1933), 'गोदान' (1935) और 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण)

इन उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचंद ने प्रथम बार हिंदी उपन्यासों को मनोरंजन के धरातल से उठाकर सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। प्रेमचंद साहित्य के माध्यमसे सामाजिक परिवर्तन करना चाहते थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में जनजीवन का बहुत बारीक और यथार्थ वर्णन किया। आर्थिक विषमता, वर्णभेद, साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता, शोषण, अंधविश्वास, अशिक्षा आदि भारतीय सामाजिक परिस्थितियों ने प्रेमचंद को लेखन के लिए प्रेरित किया। प्रेमचंद के उपन्यासों में अनेक सामाजिक विषमताओं तथा समस्याओं- शोषण, गरीबी, अशिक्षा, दहेज, अंधविश्वास, अनमेल-विवाह, अंतर-जातीय विवाह, विधवा समस्या, नारी की दयनीय स्थिति, वेश्यावृत्ति, साम्प्रदायिकता अस्पृश्यता आदि- का वर्णन है, तथा उनके समाधान का प्रयत्न है। सेवासदन, निर्मल में विवाह और उससे जुडी समस्याओं का वर्णन है। 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गोदान' में ग्रामीण जीवन, अस्पृश्यता आदि को आधार बनाया गया है।

प्रेमचंद को आदर्शोंन्मुखी यथार्थवादी उपन्यासकार के रुप में जाना जाता है। उनके अधिकांश उपन्यासों में भारतीय समाज-विशेषकर निम्न मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं का यथार्थ वर्णन है तथा उन समस्याओं का आदर्शवादी हल प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में भारतीय जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, सुख-दुख, आशा-आकांक्षा आदि का वास्तविक परिचय मिलता है।

- **प्रेमचंद के उपन्यासों का परिचय :**

'सेवासदन' में उन्होंने विवाह से जुड़ी समस्याओं- दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, पत्नी का स्थान आदि को उठाया है। 'निर्मला' में उन्होंने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। 'गोदान' में कृषक जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है, जो उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जाता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थ और प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है कि इसकी सर्वत्र सराहना हुयी है।

'प्रेमाश्रम' हिंदी का पहला राजनीतिक उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद किसान-आंदोलन से जुड़ जाते है। चंपारन, अवध, गुजरात आदि में किसान-आंदोलन महात्मा गांधी के निर्देश में चल रहा था। किसान जमींदारों का दबाव बेगारी, शोषण, अत्याचार के विरुद्ध तनकर खड़े होते हैं। 'रंगूभूमि' में शासक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण है तो 'कर्मभूमि' में स्वतंत्रता संग्राम की एक झलक है। 'गबन' में उन्होंने स्त्रियों के आभूषण प्रेम के दुष्परिणामों का चित्रण किया है तो 'कायाकल्प' पुनर्जन्म से संबंधित है।

इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यास जीवन के विविध पहलुओं से जुड़े हुए है। उनमें अपने समय की ग्रामीण शहरी सभी समस्याओं का चित्रण और समाधान है। प्रेमचंद के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता है- आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, जिसके कारण वे पाठकों में अति लोकप्रिय हुए हैं। विषयवस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रेमचंद औरों से श्रेष्ठ है। प्रेमचंद को शताब्दियों से दलित, अपमानित और उपेक्षित किसान की आवाज और असहाय नारी जाति के पक्षधर माना जाता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण प्रेमचंद हिंदी उपन्यास में एक नए युग सूत्रपात्र करने में सफल हुए हैं।

- **मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार :**

हिंदी उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक परंपरा का सूत्रपात जैनेंद्र कुमार के उपन्यासो से हुआ है। जैनेद्र ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास-साहित्य को नई दिशा देने का सफल प्रयास किया। जैनेद्र का उपन्यास-साहित्य मूलत: नारी के अंतरमन का विश्लेषण तथा नर-नारी संबंधों की तलाश का साहित्य रहा है। जैनेंद्र ने अपने उपन्यासों का विषय भारत के गाँवों को न बनाकर नगरों को बनाया है और उनमें नागरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में आत्मपीड़न की अधिकता है। इनके 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' में नारी-पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया गया है। इनके उपन्यासों में जीवन के कतिपय मौलिक प्रश्न है जो आज के मानव के लिए विचारणीय है।

जैनेंद्र अपने पात्रों की मानसिकता की गहराईयों में उतरने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने अपने पात्र शहर की गलियों और कोठरियों से लेकर उनके मनोवैज्ञानिक यथार्थ का चित्रण किया। जैनेद्र ने विषयवस्तु और शिल्प, दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यासों को नया धरातल प्रदान किया। इन्ही बातों के कारण जैनेद्र को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रवर्तक कहा जाता है।

- **जैनेंद्र के उपन्यास :**

जैनेंद्र के 'परख' (1929), 'सुनीता' 1935), 'त्यागपत्र' (1937), 'कल्याणी' (1939), 'सुखदा' (1952) 'विवर्त' (1953) और 'व्यतीत' आदि उल्लेखनीय है।

इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंकाओं का निरुपण कथा के माध्यम से किया है। 'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' वयस्क संवेदनशील पाठकों के लिए लिखे गए है। इन उपन्यासों में विवाह स्वयं एक समस्या है, क्योंकि सारी अनिश्चितताएँ उसके बाद आरंभ होती है। जैनेद्र ने

अपने उपन्यासों का विषय सामाजिक जीवन बनाकर व्यक्ति के मानसिक शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। 'परख' उनका पहला उपन्यास है। उसकी नायिका का प्रेम अशरिरी और प्लेटोनिक है। वह प्रेम सत्यधन से करती है और विवाह बिहारी से।

'सुनीता' में फ्रायड़ के सिद्धांतों के आलोक में हरिप्रसन्न के व्यवहार का चित्रण हैं। श्रीकांत और सुनीता का दाम्पत्य जीवन सुखी, पर नीरस है। वह तालाब के जल की तरह शांत है। उसमें लहरें नहीं उठती। हरिप्रसन्न को घर में प्रवेश करा कर श्रीकांत विवाह के तालाब को आंदोलित करता है। इससे घर टूटने की समस्या खड़ी होती है।

'त्यागपत्र' में मृणाल के आत्मपीड़न की गाथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। साथ ही अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण भी किया गया है।

'कल्याणी' एक अतृप्त और आधुनिक नारी की कथा है। 'सुखदा' एक कुंठाग्रस्त नारी की कहानी है।

इस प्रकार जैनेन्द्र ने हिंदी उपन्यास साहित्य को नई दिशा प्रदान की और उपन्यास को मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में प्रवेश कराया। हिंदी उपन्यास को नये शिल्प और नयी भाषा से समृद्ध किया।

- **प्रगतिवादी उपन्यासकार यशपाल :**

हिंदी उपन्यास-साहित्य के विकास में यशपाल का योगदान बड़ा रहा है। यशपाल प्रगतिवादी परंपरा के सर्वप्रधान उपन्यासकार है। इन्होंने प्रगतिवादी उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास को नया मोड़ दिया। यशपाल से हिंदी उपन्यासों में एक नवीन हिंदी प्रगतिवादी उपन्यासों का युग आरंभ हुआ। यशपाल के उपन्यासों पर सर्वप्रथम साम्यवादी दर्शन और कार्ल-मार्क्स के विचारों का प्रभाव है।

यशपाल का जन्म 1903 में पंजाब के फिरोजपुर में हुआ। लाहोर के कॉलेज में इनकी शिक्षा शुरु हुई। यही से इनकी राजकीय गतिविधियाँ बढ़ गयी। ये विद्रोही बनकर भगतसिंह के क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। इस प्रकार यशपाल का प्रारंभिक जीवन क्रांतिकारी रहा है। यशपाल ने जेल में अपना जीवन पठन-लेखन में बिताया।

यशपाल साम्यवादी विचारधारा के उपन्यासकार थे। उनका साम्यवादी, क्रांतिकारी व्यक्तित्व उनके उपन्यासों में प्रतिबिंबित है। 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' उनके साम्यवादी विचारधारा के प्रमुख उपन्यास है। यशपाल साम्यवादी दल के सक्रिय कार्यकर्ता थे। वे पहले से ही प्रखर राष्ट्रवादी रहे। राष्ट्रीय आंदोलन के समय उन्हें कई बार जेल यात्रा करनी पड़ी।

- **यशपाल के उपन्यास :**

'दादा कामरेड' सन 1931, 'द्रेशद्रोह' सन 1943, 'दिव्या' सन 1943, 'पार्टी कामरेड' सन 1947, 'अमिता' सन 1956, 'झूठा सच' सन 1966 'मनुष्य के रुप', ' बारह घण्टे' आदि।

'दादा कामरेड' यशपाल का प्रथम उपन्यास है। इसमें मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष दिखाया है। लेखक ने कम्युनिस्ट पार्टी से संबंधित मजदूर आंदोलन को सामाजिक राजनीतिक परिवेश में प्रस्तुत किया है।

'देशद्रोही' का कथानक महायुद्ध में अंग्रेज सरकार के विरोध में काँग्रेस और समाजवादी दल की क्रांति की तैयारी से संबंधित है। कम्युनिष्ठ पार्टी की नीति को स्पष्ट रखना लेखक का उद्देश्य है।

'पार्टी कामरेड' में यशपाल ने कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करके कांग्रेस पार्टी की नीति का खंड़न किया है।

सामाजिक उपन्यासों के साथ-साथ यशपाल जी ने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'दिव्या' और 'अमिता' प्रसिद्ध हुए। इनमें बौद्धयुगीन संस्कृति का चित्रण समाजवादी दृष्टि से किया गया है। 'अमिता' में कलिंग विजय के अवसर पर अशोक द्वारा किए गए भीषण नरसंहार और अमिता के अहिंसात्मक भाव का चित्रण है।

'मनुष्य का रुप' में आर्थिक, सामाजिक, विषमताओं का यथार्थ चित्रण है। पुरुष द्वारा नारी के शोषण की अभिव्यक्ति है। 'झुठा सच' इनका सर्वोत्कृष्ठ उपन्यास माना जाता है। इसमें भारत विभाजन की यथार्थ घटनाओं का चित्रण हुआ है। साम्प्रदायिक दंगे, अत्याचार, बलात्कार-सा शरणार्थीयों का जीवन तथा काँग्रेस सरकार की नीतियों का यथार्थ, भव्य चित्रण किया गया है। इस प्रकार यशपाल के उपन्यास देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, गतिविधियोंपर प्रकाश डालते हैं।

- **उपन्यासकार कमलेश्वर :**

आजादी के बाद के हिंदी उपन्यास साहित्य में कमलेश्वर शीर्ष रहे है। इनका पूरा नाम कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना है। समस्त हिंदी पाठक इन्हें 'कमलेश्वर' नाम से जानते है। एक मध्यवर्गीय परिवार में इनका जन्म 6 जनवरी 1932 ई. में उत्तरप्रदेश के मैनपुरी कस्बे में हुआ।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों द्वारा आम आदमी की जिन्दगी की विसंगतियों को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। अपने समकालीन राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं को दिखाया है। उसी तरह महानगर की समस्या, मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष संबंध, साम्प्रदायिकता आदि का भी चित्रण इनके उपन्यासों में मिलता है। इनके उपन्यासों का समाज से गहरा संबंध रहा है। इनके उपन्यासों के कथानक कस्बों से लेकर बड़े शहरों के विभिन्न क्षेत्रों तक फैले हुए हैं। इनके उपन्यासों में मध्यवर्ग का यथार्थ जीवन अंकित है।

- **कृतियाँ :**

कमलेश्वर के 12 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'काली आंधी', 'आगामी अतीत' इन उपन्यासों पर फिल्में बनी है और वे काफी चर्चित भी रही है।

1) एक सड़क सत्तावन गलियाँ - 1961, (2) डाकबंगला - 1962, (3) लौटे हुए मुसाफीर - 1963, (4) तीसरा आदमी - 1967, (5) समुद्र में खोया हुआ आदमी - 1965, (6) काली आंधी -

1974, (7) आगामी अतीत - 1976, (8) वही बात - 1980, (9) रेगिस्तान - 1988, (10) सुबह दोपहर शाम 1992, (11) कितने पाकिस्तान 2000, (12) अनबीता व्यतीत 2004

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर का पहला उपन्यास है। बदनाम गली नाम से इस पर फिल्म बनी है। लेखक ने अपने गाँव मैनपूरी में आए परिवर्तनों को चित्रित किया है। मैनपुरी कस्बे का वातावरण, वहाँ के लोग, उनके सुख-दुख, उनकी जीवन पद्धति इन सब को लेखक ने चित्रित किया है। उसी तरह इसमें वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों, स्त्री-पुरुष के नए संबंधों एवं नारी विषयक समस्याओं का चित्रण मिलता है।

'डाक बंगला' कश्मीर की मनोहारी पृष्ठभूमि पर लिखा है। नायिका इरा के जीवन में कई पुरुष आते है। वह किसी के साथ स्थिर नहीं होती। इरा के माध्यम से नारी की स्थितियाँ, नियती को चित्रित किया है।

'लौटे हुए मुसाफिर' राजनीतिक उपन्यास है। इसमें सन 1947 के आसपास हुए भारत-पाकिस्तान विभाजन की पीड़ा, लोगों की वेदना व्यक्त हुई है।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज में नारी-पुरुष के बदलते संबंधों का सूक्ष्म चित्रण है। नगर में रहनेवाले पति-पत्नी के बीच तीसरे आदमी की उपस्थिति से उत्पन्न मानसिक स्थितियों को विचित्र रुप से दिखाया है। महानगरीय जीवन में आर्थिक विपन्नता, घुटन, तिरस्कार, कुंठा आदि भावों को प्रस्तुत किया है।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास महानगरीय जीवन पर आधारित है। मध्यवर्ग का आदमी जिन आशा-आकांक्षाओं में, सुखों को प्रतीक्षा में जीता है, उसका चित्रण इसमें है। मध्यवर्ग के टूटन, व्यथा को चित्रित किया है।

'रेगिस्तान' इसमें आज भारत आचार विचार आदर्शों, मूल्यों के प्रति रेगिस्तान हो रहा है। गांधीजी के विचारों पर चलकर जिन लोगों ने हिंदी प्रचार के लिए त्याग किया, उन्हें स्वाधीनता प्राप्त होने पर जो मान दिया गया, उसी की पोल खोल दी गई है।

'कितने पाकिस्तान' 20 वी शती के अंतिम दशक के महान उपन्यास के रुप में इसे स्वीकार किया है। यह एक गंभीर और पाठकों को बेचैन करनेवाला उपन्यास है। इसमें देश विभाजन, उसकी त्रासदी आतंकवाद आदि का चित्रण है। मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने का काम धर्म के नाम पर राजनीति करनेवाले लोग करते रहे हैं, और आज भी कर रहे हैं।

'वही बात' उपन्यास में एक मध्यवर्गीय पत्नी के अपने व्यस्त इंजीनियर पति से ऊबकर अपने बॉस से संबंध बढ़ाने और फिर उससे भी ऊबकर पति की ओर लौटने की कहानी है।

'आगामी अतीत' में भी स्त्री-पुरुष संबंध को ही प्रस्तुत किया है। 'सुबह-दोपहर-शाम' में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का चित्रण हैं। इस प्रकार कमलेश्वर उपन्यासों में जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करते है।

- **उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा :**

आजादी के बाद की लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का नाम ऊँचा है। इनका जन्म 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ के सिर्कुरा गांव में हुआ। पुष्पा जी ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन, नारी की वेदना, सामाजिक, राजनीतिक विद्रुपता, उच्च वर्गियों की नीति, घिनौनी राजनीति, विकृत पूँजीवादी व्यवस्था आदि को दिखाया है।

- **कृतियाँ :**

पुष्पा जी के आठ उपन्यास है। 'स्मृतिदंश' में नारी जीवन की मर्मांतक पीड़ा, वेदनाओं का चित्रण है। 'बेतवा बहती रही' में विकास के नाम पर होनेवाले विद्रुपीकरण की चर्चा है। 'चाक' में सामाजिक, राजनीतिक, विद्रुपता, बुराई को दिखाया है। 'इदन्नमम' बुन्देलखंड के ग्राम जीवन पर आधारित है। साथ ही विकृत पूँजीवादी व्यवस्था और सामंती व्यवस्था का चित्रण है। 'विजन' में लेखिका ने उच्चशिक्षित, उच्चवर्गियों का पर्दा फाश किया है। बुद्धीजीवी वर्ग की घिनौनी गंदी राजनीति का चित्रण इसमें है। इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने अपने समय का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।

- **उपन्यासकार संजीव :**

संजीव का पूरा नाम राम संजीवन प्रसाद है। लेकिन इन्हें सभी हिंदी प्रेमी 'संजीव' नाम से ही जानते है। इनका जन्म 6 जुलाई 1947 को उत्तर प्रदेश के बांगर गांव में हुआ। आजादी के बाद के कथा-साहित्य में संजीव ऊँचे रहे है। इनके उपन्यास साहित्य में गहरा अध्ययन, चिंतन, मौलिकता एवं शोध दृष्टि झलकती है। इनके उपन्यास पिछडे, पेक्षित, वर्जित क्षेत्र की दर्दभरी व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। ग्रामीण, आंचलिक, मेहनत करनेवाले, शोषित और उपेक्षित सर्वहारा वर्ग के दर्द की पुकार इनके उपन्यासों में सुनाई देती है। संजीव ने अपने उपन्यासों में पिछड़े अंचलों की त्रासदी, वहाँ पर रहनेवाले लोगों का अभिशापमय जीवन, लोक संस्कृति एवं लोकजीवन तथा दलित चेतना से संबंधित पहलुओं को प्रकाश में लाने की कोशिश की है।

संजीव के प्रकाशित उपन्यास इस प्रकार है- 'किसनगढ़ के अहेरी' संजीव का प्रथम उपन्यास है। इनमें लेखक ने किसनगढ़ के माध्यम से पिछड़े अंचल में शोषण की समस्या को चित्रित किया है। यह उपन्यास निम्नवर्ग, उनका संघर्षमय जीवन और पूंजिपतियों के कारनामों को प्रस्तुत करता है।

'सर्कस' उपन्यास में सर्कस के कलाकारों की बद्तर जिंदगी प्रस्तुत की है।

'सावधान! आग नीचे है।' उपन्यास कोयला अंचल पर लिखा है। खदान में काम करनेवाले मजदूरों का दयनीय जीवन, ठेकेदार, दलालों की कुटिलताएँ, शोषणतंत्र के नये रुपों एवं व्यवस्था के अनुरुप विसंगतियों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है।

'धार' उपन्यास में कोयला अंचल के आदिवासियों की रचनात्मक संघर्ष गाथा है। इसमें लेखक ने पूँजीवादी व्यवस्था, शोषण तंत्र, राष्ट्रीय संपत्ति की लूट, माफिया गिरोह का आतंक, मेहनती आदिवासियों की समस्या का चित्रण किया है।

'पांव तले की दूब' उपन्यास औद्‌योगिकरण, आदिवासियों का जीवन आदि को दिखाता है।

'सूत्रधार' एक जीवनी परक उपन्यास है। इसमें भोजपुरी के नटसम्राट भिखारी ठाकूर के जीवन को चित्रित किया है। कुल मिलाकर हम कह सकते है कि संजीव के उपन्यासों में परिवेश, जातीय जीवन, व्यवस्थागत विसंगतियों, शोषण, लोक संस्कृति आदि का सूक्ष्म अंकन हुआ है।

वैचारिक प्रवाह :

- **स्वरुप :**

1960 के बाद के उपन्यासों को साठोत्तरी उपन्यास कहा जा सकता है। इस समय कांग्रेस प्रशासन से लोगों का मोह भंग हो चुका था। 62 के भारत-चीन युद्‌ध ने मोहभंग की स्थितिपर अपनी मुहर लगा दी थी। लोग समाज से दूर आत्मकेन्द्रीत होने लगे। इनका प्रभाव उपन्यास की संरचना और कथ्य दोनों पर पड़ा। लेखकों में अंतर्मुखता बढ़ी। वे तकनीकी प्रदर्शन की ओर आ गए। साहित्य में अंधकार, पलायन, अलगाव, व्यक्तित्व विभाजन की ध्वनि सुनाई देने लगी। उपन्यासों की संरचना में गहरा बदलाव आया। अपनी शैली को तोड़कर नयी-नयी शैलियों का प्रयोग होने लगा। मानवीय संबंधों में विचित्र बदलाव होने लगे। मानवीय संबंधों पति-पत्नी में, प्रेमी-प्रेमिका में, माता-पिता और पुत्र-पुत्री में विचित्र बदल होने लगा। इस तरह से 1960 में सारा वातावरण ही बदल गया था। इसी की ध्वनि 60 के उपयासों में गूँजने लगी।

आजादी के बाद मूल्य विघटन, राजनीति, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत दबाओं में पिसते लोग उपन्यास के केन्द्र में आये। इन उपन्यासों में एक और अपनी मिट्‌टी से जुड़ने का प्रयत्न है, तो दूसरी ओर फ्रायड़ की मनोवैज्ञानिक अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभाव में अपने परिवेश को आँकने का प्रयत्न दिखाई देता है, इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में प्रमुख रुप से दो धाराएँ प्रवाहित है।

1) व्यक्ति चेतना प्रधान उपन्यास, 2) जन चेतना प्रधान उपन्यास। इन दो धाराओं के अतिरिक्त ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपन्यास की एक धारा भी दिखाई देती है। प्रस्तुत काल के व्यक्ति चेतना उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक, प्रयोगवादी तथा आधुनिकता वादी रुप में प्रकट हुई है और जन चेतना आंचलिक, समाजवादी तथा राजनैतिक व्यंग्यबोध के माध्यम से प्रकट हुई है, इसी लिए प्रस्तुत काल के उपन्यास-साहित्य को आंचलिक, प्रयोगवादी, मनोवैज्ञानिक, आधुनिकतावादी, राजनैतिक, ऐतिहासिक सांस्कृतिक वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

- **आधुनिकतावादी उपन्यास :**

यांत्रिकीकरण, दो महायुद्‌धोत्तर अस्तित्ववादी चिंतन से प्रेरित होकर समकालीन जीवन में व्याप्त विसंगति, संत्रास, घुटन तथा नागरी बोध को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यास अधिक संख्या में लिखे गये। सन 1960 से 1970-71 तक मुख्यत: आधुनिकतावादी उपन्यास लिखे गए। इन उपन्यासों को प्रयोगवादी उपन्यास या आधुनिकता बोध के उपन्यास कहा जा सकता है। औद्‌योगिकरण, बदलते हुए परिवेश भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यांत्रिक सभ्यता के परिणाम से आज जीवन में विश्रृंखलता, अकेलापन एवं

निराशा घर कर गयी है। उपन्यासकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है और उन्होंने अनेक उपन्यासों में इन बातों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। मोहन राकेश के 'अन्धेरे बंद कमरे' तथा 'न आनेवाला कल' (1968 ई.) ऐसे ही उपन्यास है। इनके अतिरिक्त राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' में उपन्यासकार ने टूटते हुए मानव का चित्रण किया है। मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में तलाकशुदा दम्पति के बच्चोंपर पड़नेवाले दुष्प्रभाव का निरुपण किया है। नरेश मेहता के 'यह पथ बन्धु था' में अकेलेपन एवं अजनबीपन का बोध कराया गया है। निर्मल वर्मा के उपन्यासों - 'वे दिन (1964 ई), 'लालटीन की छत' में भी आधुनिकता बोध दिखाई देता है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' एवं 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में भी आधुनिकता बोध का गहरा रुप उभरा है। भीष्म साहनी कृत **'तमस'** में विभाजन की मानसिकता एवं उससे लाभ उठानेवाले लोगों को बेनकाब किया गया है। इसके अतिरिक्त ममता कालिया का 'बेघर 1971), गंगाप्रसाद विमल का 'अपने से अलग' (1969), कृष्ण सोबती का 'जिन्दगीनामा' (1979), मृदुला गर्ग का 'चित्तकोबरा' (1980) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं।

इन उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण पाया जाता है। ये उपन्यास सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा व्यक्तिवादी यथार्थ से प्रेरित है। पाश्चात्य विचारों एवं उपन्यासों का उनपर पर्यात्त प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव विशेषकर स्त्री-पुरुष संबंधों, जीवन की विसंगतियों तथा निरर्थकता के प्रकटीकरण में दिखाई देती है। ठीक इनके समान्तर ऐसे उपन्यास भी लिखे गए, जो जीवन को लेकर सामान्य मनुष्यों की समस्याओं को दिखा रहे थे। ये समस्याएँ सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक थी। श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' (1968) में भ्रष्टाचार और आजाद भारत के लोकतंत्र को नंगा किया गया है। जगदंबाप्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' (1974) में गरीबी, शोषण, गंदगी में पले समाज के चित्रण द्वारा वर्ग-शत्रु को पहचानने और नंगा करने का प्रयत्न किया गया है। मार्कण्डेय का 'अग्निबीज' (1980), अब्दुल बिसमिल्लाह का 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' (1986) आदि नवीन प्रगतिवादी उपन्यसास हैं।

- **उत्तर आधुनिकतावादी उपन्यास :**

हिंदी साहित्य में आधुनिकता के प्रति अधिक मोह रहा है। रुस के टूटने तथा साम्यवादी विचारधारा के क्षीण होते ही 'पूँजीवाद' खुले बाजार की नीति, ग्लोबलाइजेशन आदि के रुप में तीसरी दुनिया पर पूरी तरह हावी हो गया। अपनी समृद्ध संस्कृति तथा स्वतंत्रता के बावजूद आज हम पूँजीवादी देश के ग्राहक मात्र बन गए है। हिंदी उपन्यास साहित्य में उत्तर आधुनिकता की गूँज मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा' में सुनी जा सकती है। इसमें युवा पीढ़ी की दिशाहीनता को अभिव्यक्ति दी गई है। अन्य उपन्यासों में विनोद कुमार का 'नौकर की कमीज' सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' इसी परंपरा के उपन्यास है। ये अपनी नवीन तकनीकों और कथ्य में उत्तर-आधुनिकता वाद के प्रतीक है।

- **आंचलिक ग्राम चेतना के उपन्यास :**

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य में ग्राम जीवन में व्याप्त शोषण, अभाव और पीड़ा का यथार्थ अंकन है। इस परंपरा में रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा, हिमांशु जोशी, राजेन्द्र अवस्थी प्रमुख है।

मिश्र जी ग्रामीण चेतना से जुड़े उपन्यासकार है। इनके 'पानी के प्राचीर', 'दूसरा घर' इन उपन्यासों में महानगर है, लेकिन चरित्र ग्रामीण है, जो एक ओर ग्रामीण तथा दूसरी ओर नागरी सभ्यता-व्यवस्था के शोषण के शिकार है। राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' में आजादी के बाद के ग्रामीण मुस्लिम जन जीवन का चित्रण किया गया है। इसमें गाजीपुर के गंगोली गाँव की मुस्लिम आबादी टूटते जाने की कहानी है। मुसलमानों की अंदरुनी जिंदगी के पन्ने निकालनेवाला यह पहला उपन्यास है। हिमांशू जोशी के 'सुराज', 'अंधेरा' विशिष्ट उपन्यास है, जिसे 'आंचलिकता का नव-उपन्यास कहा जा सकता है। पहाडी, आदिवासी जनजीवन का चित्रण जोशी के इन उपन्यासों में यथार्थ रुप में पाया जाता है। इन सभी उपन्यासों में आधुनिकीकरण के कारण बदलते ग्रामीण समाज का चित्रण किया गया है।

- **राजनैतिक उपन्यास :**

इस आजादी के बाद राजनीति के जन जीवन पर पड़े प्रभाव का अंकन इस प्रकार के उपन्यासों में है। इस दृष्टि से यशपाल के 'झूठा संच' उपन्यास में मार्क्सवादी विचारों की अभिव्यक्ति है। यह देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

- **मनोवैज्ञानिक उपन्यास :**

व्यक्ति के आंतरिक यथार्थ को मनोविज्ञान के सहारे प्रस्तुत करनेवाले उपन्यास प्रस्तुत काल में लिखे गए। व्यक्ति के अंर्तमन के परस्पर विरोधी विचारों, संघर्ष, तनाव, कुंठा, चिंता, आशंका आदि को अभिव्यक्त किया गया। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नरेश मेहता का 'दो एकांत', श्रीकांत वर्मा का 'दूसरी बार' इस घारा के उपन्यास है।

- **प्रयोगशील उपन्यास :**

आलोच्यकाल में शिल्प की दृष्टि से भी नवीन प्रयोग होने लगे। ऐसे उपन्यासों में परंपरागत शिल्प विधान की जगह प्रतीक, सिनेरियो टेकनीक आदि का प्रयोग हुआ है। प्रभाकर माचवे के 'परंतु', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तुल' आदि प्रयोगशील उपन्यास माने जाते हैं।

सारांश रुप में हम कह सकते है कि आलोच्य काल के उपन्यासों में विषय विविधता के साथ, शैलियों के विभिन्न रुप निर्माण हुए। आत्मकथात्मक शैली, डायरी, पत्र, वर्णनात्मक, संवाद आदि विविध शैलियों में उपन्यास मिलते है। महानगरीय बोध से उत्पन्न मानसिकता मानवीय संबंधों के बदलते रुप को उसमें दिखाया गया है। आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन, यौन विसंगतियां, अजनबीपन, विद्रोह, कुंठा एवं मूल्यों का ऱ्हास आज के उपन्यास के विषय है।

3.2.2 हिंदी कहानी साहित्य का विकास – प्रमुख कहानीकार तथा उनकी कृतियाँ, वैचारिक प्रवाह :

कहानी लेखन की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन है, परन्तु हिंदी कहानी का विकास प्राचीन परंपरा के आधारपर नहीं हुआ है। आधुनिक हिंदी गद्‌य के निर्माण के साथ ही हिंदी में कहानियों की रचना का आरंभ हुआ। आरंभ में अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत साहित्य की कहानियों का अनुवाद हिंदी में होता रहा। हिंदी कहानी के आरंभ में न तो किसी प्रतिभा का उदय हुआ और न ही किसी मूल्यवान रचना की सृष्टि। आरंभ में केवल अनुवादित कहानियाँ मिलती थी। कुछ विद्‌वान इंन्शाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' तथा शिवप्रसाद हिंद का 'राजा भोज का सपना' को हिंदी की प्रथम कहानी मानते है। इनमें कहानी के कथातत्व को छोड़कर अन्य तत्त्वों का पालन नहीं है। लल्लुलाल ने 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल-पच्चीसी' आदि संस्कृत कथाओं के हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किए।

- **सरस्वती पत्रिका :**

हिंदी में सर्वप्रथम कहानी लाने का श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को है। इस पत्रिका के प्रकाशन के साथ आधुनिक ढंग की हिंदी कहानियों का प्रारंभ हुआ। आ. शुक्ल जी ने किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। सबसे पहले 'इन्दुमती' सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई। इस कहानी में भारतीय वातावरण और रजपूती गौरव का वर्णन है। शुक्ल जी ने कहानी के तत्त्वों पर ध्यान देकर 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी लिखी। इसके अलावा 'पंडित और पंडितानी' (वाजपेयी), प्रेम और वीरता की 'राखी बंद भाई (वृंदावनलाल वर्मा) आदि कहानियों का प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ।

इसके बाद हिंदी कहानी के विकास में तीन युग माने गए। 1) प्रसाद युग, 2) प्रेमचंद युग, 3) प्रगतिवादी युग।

1) **प्रसाद युग :**

प्रसाद युग कहानी के प्रारंभिक युग के बाद उसे समृद्‌ध तथा शक्तिशाली बनाने का कार्य प्रसाद जी ने किया। 1911 ईसवी में 'इंदू' पत्रिका में प्रसाद की 'ग्राम' कहानी प्रकाशित हुई और कहानी के क्षेत्र में एक नया युग प्रारंभ हुआ। इनके बाद उनकी 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आँधी', 'इन्द्रजाल', 'आकाशदीप', आदि अनेक सुंदर कहानियाँ प्रसिद्‌ध हुई। इनमें कुतुहल, करुणा, प्रेम, सौंदर्य, आदर्श चरित्र, नाटकीयता, दार्शनिकता, काव्यात्मकता तथा वातावरण प्रधानता आदि के मनोहारी दर्शन होते है।

विश्वभरंनाथ शर्मा 'कौशिक' जी ने बाल विवाह, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, अंधविश्वास आदि सामाजिक विषयोंपर कहानियाँ लिखकर कहानी के विकास में योगदान दिया। कौशिक की 'रक्षाबंधन' पारिवारिक जीवन चित्रण के कारण अत्यंत प्रसिद्‌ध हुई। इनकी 'ताई' हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में मानी जाती है। अन्य कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री, गुलेरी उल्लेखनीय है। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की पवित्र प्रेम के लिए किए गए निस्वार्थ बलिदान को दिखानेवाली कहानी 'उसने कहा था' विश्वविख्यात कहानियों में से एक है। यह हिंदी कहानी परंपरा में एक माइलस्टोन है। इसमें प्रथम महायुद्‌ध के एक सैनिक लहनासिंह की

करुणा मिश्रित प्रेमकथा है। विविध दृश्य, भाषा, सजीवता के कारण यह रचना अनुपम है। एक बार यह कहानी पढ़ लेने पर न जाने कितनी देर 'उसने कहा था' की प्रतिध्वनि मन-मास्तिष्क में गुंजती रहती है। इस कहानी ने गुलेरी जी को अमर बना दिया। हिंदी की यह सबसे पहली, सर्वागपूर्ण यथार्थवादी कहानी है, जो कला के प्रत्येक अंग पर खरी उतरती है। शास्त्री जी ने मुगलकालीन वातावरण का चित्रण करनेवाली 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' कहानी लिखी। इस युग में हिंदी कहानी को श्रेष्ठ लेखक, श्रेष्ठ कहानियाँ मिली।

2) **प्रेमचंद युग :**

प्रेमचंद के आने से हिंदी कहानी साहित्य में एक अपूर्ण परिवर्तन हुआ। प्रेमचंद ने हिंदी कहानी साहित्य को स्वावलंबी बनाया। हिंदी कहानी को उत्कर्ष पर पहुँचाया। उन्होंने 300 कहानियाँ लिखी, जो 'मानसरोवर' संग्रह में प्रकाशित है। उन्होंने समाज के प्रत्येक अंग पर किसान, मजदूर, डॉक्टर, वकील, अछुत, जमींदार, वृद्ध बालक-महानियाँ लिखकर कहानी के विकास में योगदान दिया। उनकी कहानियों में जीवन के विविध रुपों का अंकन हुआ है हिंदी में उनकी सर्व प्रथम कहानी है - 'पंचपरमेश्वर'। इसमें उन्होंने दिखाया है कि पंच के आसन पर बैढ़नेवाले के मन में मित्र, शत्रु, ईर्ष्या, द्वेष के भाव नहीं आते। पंच के मुँह से परमेश्वर बोलते है। वे सत्य का पक्ष लेकर न्याय करते है।

प्रेमचंद ने घटना, चरित्र, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार की कहानियाँ लिखी। इनकी श्रेष्ठ कहानियाँ है- 'पंचपरमेश्वर', 'कफन', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'पूस की रात', 'ईदगाह', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'अलग्योझा' आदि। कथा, चरित्र उद्देश्य, कथोपकथन की सजीवता के कारण इनकी कहानियाँ हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में आती है।

इस काल में प्रसाद, प्रेमचंद से प्रभावित होकर बख्शी, शिवपूजय सहाय, सुदर्शन, रायकृष्णदास, ब्यास आदि ने कहानी के विकास में योगदान दिया। सुदर्शन ने प्रेमचंद की तरह यथार्थवादी कहानियाँ लिखी। इन्होंने तत्कालीन जीवन की समस्याओं को कहानी का विषय बनाया। इनकी प्रसिद्ध कहानी है - 'हार की जीत'। बख्शी जी ने भावात्मक कहानियाँ लिखी। चंडीप्रसाद हदयेश ने कवित्वपूर्ण कहानियाँ लिखी।

इस युग में महिला कहानीकारों का भी आगमन हुआ। शिवरानी देवी (कौमुदी), उषादेवी मित्रा (गोघुली) आदि उल्लेखनीय है। कुल मिलाकर इस युग में कहानी का विकास श्रेष्ठता की ओर बढ़ गया।

- **प्रगतिवादी, प्रेमचंदोत्तर युग :**

इस समय कहानी काफी समृद्ध हुई। उसमें नये कथ्य और शिल्प विषयक कुछ परिवर्तन हुए। यशपाल ने प्रगतिशील कहानियाँ लिखी। 'पिजड़े की उड़ान', 'ज्ञानदान', 'वो दुनिया' आदि। यशापाल के कहानी संग्रहों में प्रमुख है। इनमें वर्ग संघर्ष, समाज की आर्थिक स्थिति, धर्म, नीति, परंपरा की आलोचना है।

जैनेंद्र, अज्ञेय तथा इलाचंद्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक विषयों पर कहानियाँ लिखकर कहानी विधा को समृद्ध किया। जैनेंद्र की 'स्पर्धा', 'फाँसी', 'पाजेब', 'एक शर्त' आदि कहानियों में मन की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक घरातल पर चित्रण है। अज्ञेय ने दमित वासनाओं, कुष्ठाओं तथ मानसिक संघर्षो का अपनी

कहानियों में विश्लेषण किया। अन्य कहानीकारों में उल्लेखनीय है– विष्णु प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रभाकर माचवे आदि। श्रीराम शर्मा (बाघ से भिड़ंत, मौत के मुँह में) और रघुवीर सिंह ने शिकारी जीवन से संबंधित कहानियों का निर्माण किया।

चंद्रकिरण सौनरेकसा, महादेवी वर्मा, उषादेवी मित्रा जैसी महिला कहानिकारों ने घरेलु जीवन की सामाजिक, तथा स्त्री जीवन, भारतीय नारी का आदर्श दिखानेवाली कहानियाँ लिखकर हिंदी कहानी के विकास में योगदान दिया।

हरिशंकर शर्मा, बेढब बनारसी, परसाई जैसे कलाकारों ने हास्य–व्यंग्य प्रधान कहानियाँ लिखी, जिनमें समाज की विषमता, भ्रष्ठाचार पर व्यंग्य है। हिंदी कहानी के विकास में इन्दू, माया, चाँद आदि पत्रिकाओं ने योगदान दिया। इन पत्रिकाओं में कहानियोँ छपती रही।

- **नयी कहानी :**

स्वतंत्रता के बाद 1950 के आसपास कहानी में यथार्थ को एक नए ढंग से दिखाया गया। दुष्यंतकुमार ने इसे 'नयी कहानी' नाम से संबोधित किया। इसमें महानगरीय जीवन बोध तथा मध्यवर्गीय जीवन की अभिव्यक्ति है। वैज्ञानिकरण, औद्योगीकरण पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव की भी अभिव्यक्ति है। इसमें शिल्प की दृष्टि से कुछ नवीन प्रयोग भी दिखाई देते है। बिंब और प्रतीक इसकी अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण अंग है। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, नयी कहानी के उल्लेखनीय कलाकार है। 'मलबे का मालिक' मोहन राकेश की भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी प्रसिद्ध कहानी है। राजेन्द्र यादव की कहानियों में आधुनिकता को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ने की कोशिश दिखाई देती है। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्मकथा', 'प्रतीक्षा', 'अपने पार' इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। कमलेश्वर की कहानियों में जीवन के विविध आयाम दिखाई देते है। उनकी 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी महानगरीय जीवन की ट्रेजेडी है। 'नीली झील', 'मांस का दरिया' उनकी अन्य प्रमुख कहानियाँ है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा मेहसन्निसा परवेज आदि इस काल की प्रमुख महिला कहानीकार है।

- **समकालीन कहानी :**

समकालीन कहानी जीवन के गंभीर प्रश्नों और समस्याओं से जुड़ी है आधुनिकीकरण, वैज्ञानीकरण, औद्योगिकरण और इनसे उत्पन्न विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक नैतिक और मानवीय समस्याआं का चित्रण इस कहानी में गहराई से हुआ है। इस पीढ़ी में अनेक कहानीकारों का आगमन हुआ। इनमें ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, गोविंद मिश्र, शैलेश मटियानी, मृदुला गर्ग, हिमांशू जाशी आदि के नाम उल्लेखनीय है।

ग्रामों का वर्णन प्रेमचंद के समय से कहानी में हो रहा था, किन्तु इस नवीन आंचलिक कहानी में ग्रामांचल का वर्णन नये रुप और नयी भाषा में हुआ। इसमें गांव की मिट्टी की जो सोंधी महक और गॉव के लोगों का जो जीवन देखने को मिला, वह पारम्परिक कहानी से भिन्न है। इस वर्ग के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' (तीसरी कसम, लाल पान की बेगम), शिवप्रसाद सिंह (आरपार की माला) मार्कण्डेय

(महुए का पेड़, भूदान) के नाम उल्लेखनीय है। समकालीन कहानी की भाषा जीवन के निकट, सहज, स्वाभाविक है।

कुल मिलाकर समकालीन कहानी समय के साथ विकास की ओर बढ़ रही है। आधुनिक हिंदी साहित्य में कहानी का जिस तेजी से विकास हुआ है, उतना किसी अन्य गद्य विधा का नहीं।

प्रमुख कहानीकार तथा उनकी कृतियाँ :

- **कहानीकार प्रेमचंद :**

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्तक कहानीकार माने जाते है। प्रेमचंद के आने से हिंदी कहानी साहित्य में एक अपूर्व परिवर्तन आ गया। प्रेमचंद ने विभिन्न साहित्यों की कहानी रचना का अध्ययन करके स्वयं अपनी कहानी कला के शिल्प का निर्माण किया और उसे चरम विकास तक पहुँचाया। अपनी कहानी के द्वारा मूक और दीन-हीन किसानों, मजदूरों का चित्रण किया। पहले वे नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखते थे। नवाबराय उर्दू में लिखा हुआ उनका कहानी संग्रह 'सोजेवतन' स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत होने के कारण इसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था। फिर वे हिंदी में 'प्रेमचंद' नाम से लिखने लगे।

प्रेमचंद कहानी क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक है। उनकी कहानियाँ प्राय: घटनाप्रधान है। उनका सांसारिक जीवन का ज्ञान अत्यंत विस्तृत और सूक्ष्म था। इसी से वे अपनी कहानियों में हमारी सामायिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं एवं आंदोलनों का सफल चित्रण करने में सफल हो सके। उनकी पहली, हिंदी कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 ई. में प्रकाशित हुई और अंतिम 'कफन' 1936 ई. में। इन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो 'मानसरोवर' के आठ खंडो में प्रकाशित हुई हैं।

प्रेमचंद एक मानवतावादी एवं उपयोगितावादी कहानीकार है। उन्होंने सभी प्रकार की घटनाप्रधान, चरित्र-प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक कहानियाँ लिखकर हिंदी कहानी साहित्य को आगे बढाया। विशेष व्यापकता, चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता, विचार, भाव, गंभीरता, प्रवाहपूर्ण शैली, वातावरण शैली आदि की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियाँ अद्वितीय बन पड़ी है।

- **कृतियाँ :**

'पंचपरमेश्वर', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'शंतरज के खिलाड़ी', 'अलग्योझा', 'ईदगाह','अग्निसमाधि' 'पूस की रात' 'सुजान भक्त', 'कफन', 'नमक का दारोगा', 'प्रेरणा', 'परीक्षा', 'सवा सेर गेहूँ', 'ठाकूर का कुआँ', 'बुढी काकी', 'लाटरी', 'माता का हृदय', 'आपबीती' आदि प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में से है।

प्रेमचंद ने समाज के विभिन्न वर्गो की अनेक समस्याओं का समावेश अपनी कहानियों में किया है। जमींदार, पूजीपति, महाजन, विधवा, वेश्या, शिक्षा की समस्या, नारी के अधिकार प्राप्ति की समस्या आदि। इन सबका चित्रण कहानी में किया है। उनकी कहानियाँ अपने परिवेश से अपने आसपास के जीवन से जुड़ी

हुई है। उनकी अधिकांश कहानियों के विषय ग्रामीण जीवन से लिये है। कई कहानियाँ कसबे की जिन्दगी या स्कूल कॉलेज से भी जूडी हुई है। उनकी कहानियों के पात्र हर वर्ग, धर्म, जाति के है। कोई हिन्दू है तो कोई मुसलमान, कोई किसान है, तो कोई विद्यार्थी। अपनी कहानियों में उन्होंने विविध समस्याओं को भी उठाया है- जमींदारों के द्वारा किसानों के शोषण की समस्या, सूदखोरों के शोषण से पिसते ग्रामिणों की समस्या, छुआछुत की समस्या, रुढि एवं अंधविश्वास, संयुक्त परिवार की समस्या, भ्रष्टाचार एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ आदि। संक्षेप में हम कह सकते है कि प्रेमचंद ने उपन्यास की हिंदी कहानी-साहित्य को नई दिशा गति दी। उनके कहानियों में विषय-वैविध्य दिखाई देता है। उन्हें कहानी के युग प्रवर्तक कहा जाता है।

- **मनोवैज्ञानिक कहानीकार जैनेंद्रकुमार :**

जैनेद्र एक मनोवैज्ञानिक कहानीकार है। हिंदी कहानी के विकास में जैनेद्र का स्थान विशेष रुप से महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहानी को घटना के स्तर से उठाकर चरित्र और मनोवैज्ञानिक सत्य का वाहक बनाया। उन्होंने व्यक्ति मन की गुत्थियों, प्रश्नों और शंकाओं का वर्णन किया। जैनेद्र की कहानी का प्रधान विषय 'नारी' है, ज्यो 'पातिव्रत्य' की कैद से निकाल कर मुक्ति की सांस लेना चाहती है। उसी तरह मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण जैनेद्र की कहानियों में प्रमुखता से हुआ है। 'हत्या', 'खेल', 'अपना-अपना भाग्य', 'पत्नी', 'पाजेब', 'एक दिन' आदि जैनेद्र की प्रसिद्ध कहानियाँ है। इसके अतिरिक्त जैनेद्र की कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए है, जिनमें 'फाँसी', 'स्पर्धा', 'वातायन', 'एक रात', 'ध्रुवयात्रा', 'दो घड़ियाँ', 'जय संधि' आदि प्रसिद्ध है।

जैनेद्र कुमार ने अपनी कहानियों में प्राय: मध्य वर्ग के व्यक्तियों को ही स्थान दिया है, जो सामाजिक परंपराओं से अलग रहकर नैराश्य, कुंठा, घुटन, पीडा आदि मनोभावों से ग्रसित है। मध्यवर्ग के ऐसे ही व्यक्तियों के मन की सूक्ष्म और अव्यक्त मनोभावनाओं का उद्घाटन उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। इस प्रकार की कहानियों में उनकी 'नादिरा', 'परदेसी', 'क्या हो' आदि उल्लेखनीय है।

जैनेद्र की कहानियों में वैचारिकता और बौद्धिकता का आधार भी उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ही रहा है, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी बहुत सी कहानियाँ फ्रायड़ आदि महान मनोविश्लेषकों से प्रभावित कही जा सकती है। इस श्रेणी के अंतर्गत आनेवाली कहानियों में 'मास्टर साहब', 'एक रात', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'पानवाला' तथा 'पत्नी' आदि विशेष रुप से उल्लेखनीय है। जैनेंद्र ने मध्यम वर्ग की मनोवैज्ञानिक असंगतियाँ और कमजोरियाँ चरित्र तथा मनोविश्लेषण पर आधारित है। चरित्र-चित्रण जैनेद्र के कहानी शिल्प का प्रधान अंग है।

- **समाजवादी कहानीकार यशपाल :**

आधुनिक युग के हिंदी कहानीकारों में यशपाल का विशिष्ट स्थान है। यशपाल ने प्रगतिवादी कहानियॉ लिखी, जिसमें समाज की कुरीतियों की कटू आलोचना, आर्थिक शोषण, विषमता वर्ग संघर्ष का चित्रण है। यशपाल ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया है। क्रांतिकारी स्वभाव और राष्ट्रप्रेम ने उनमें राजनैतिक दासता के प्रति विद्रोह की भावना भर दी थी। इसीलिए 'सांग' जैसी कहानियों में उन्होंने अंग्रेजी शासन के

विरुद्ध अपनी आवाज लगायी थी, किन्तु उनकी कहानियों की दुनिया मुख्य रुप से सामाजिक रही है। उनमें मध्यमवर्गीय समाज की विसंगतियों का अनुभव है। 'पिंजरे की उड़ान', 'ज्ञानदान', 'फूलों का कुर्ता', 'खच्चर और आदमी' आदि कहानी संग्रहों की अधिकतर कहानियाँ सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों और आर्थिक सवालों को अभिव्यक्त करती है। सहजता सरलता उनकी कहानियों की शिल्पगत विशषेता है। साधारण बोलचाल की भाषा, कथन पद्धति में व्यंग्य के साथ वर्णनात्मकता उनकी कहानी को सहज, प्रभावशाली बनाती है।

यशपाल के प्रसिद्ध कहानी संग्रहो में 'पिंजरे की उड़ान' (1939), 'वो दुनिया' (1942), 'ज्ञानदान' 1943, 'तर्क का तुफान' (1944), 'भस्मावृत्त चिंगारी' (1946), 'फूलो का कुर्ता' (1946), 'धर्मयुद्ध' (1950), 'उत्तराधिकारी' (1951), 'चित्र का शीर्षक' (1951) आदि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है।

यशपाल की अधिकांश कहानियों में भारतीय जीवन में व्याप्त शोषण और दरिद्रता के कारणों का विश्लेषण किया गया है। उसी तरह यशपाल की अधिकांश कहानियों में नागरिक सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों और मध्यवर्ग की भौतिक और मानसिक आवश्यकताओं और समस्याओं का चित्रण हुआ है। उनकी 'दु:ख' कहानी में विभिन्न व्यक्तियों के लिए दु:ख की अलग-अलग अनुभूतियों का चित्रण है। 'परदा' कहानी में चौधरी पीरबख्श की दयनीय आर्थिक स्थिति में खानदान के सम्मान की रक्षा के प्रयत्न का मार्मिक चित्रण हुआ है। 'वैष्णवी' में हिन्दु नारी के वैधव्य तथा धार्मिक अंधविश्वास और रीति-रिवाजों के खोखलेपन का उद्घाटन किया गया है। इसी प्रकार 'फलित ज्योतिष', 'चंदन महाशय', 'सोमा का साहस' आदि कहानियों में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं का चित्रण किया गया है।

यशपाल की राजनीतिक विषयों से संबंधित कहानियों में शोषण और अन्याय को ही भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का मूल कारण बताया गया है। जैनेद्र ने स्पष्ट कहा है कि इस शोषण और अन्याय से जनता को तभी मुक्ति मिल सकती है, जब वह कम्युनिज्म विचारधारा को स्वीकार करें। इस प्रकार यशपाल एक सफल प्रगतिवादी कहानीकार है।

- **कहानीकार राजेन्द्र यादव :**

राजेन्द्र यादव का जन्म आगरा के आहीरपाडा मोहल्ले में हुआ। राजेन्द्र यादव नयी कहानी के एक उल्लेखनीय कहानीकार है। राजेन्द्र यादव की कहानियों में आधुनिकता को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ने की कोशिश दिखाई देती है। इनके कहानी संग्रह है- 'जहाँ लक्ष्मी कैद है, छोटे-छोटे ताजमहल', 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'प्रतीक्षा', 'अपने पार', 'किनारे से किनारे तक', 'श्रेष्ठ कहानियाँ', 'टूटना', 'लहरे और परछाइयाँ', 'खेल खिलौने' आदि।

इन कहानियों में सामाजिक यथार्थ की संवेदनात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति सूक्ष्म, सरल रुप में पायी जाती है। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ एवं जीवन-मूल्यों को व्यापक मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है, इसलिए उनकी कहानियॉ व्यक्ति के मानसिक अंतर संघर्षों एवं तनावों को अभिव्यक्त करती है।

- **नई कहानी के कमलेश्वर :**

नई कहानी में कमलेश्वर का स्थान ऊँचा है। इनका पूरा नाम कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना है। कमलेश्वर की कथा यात्रा कस्बे से शुरु होकर महानगर तक स्वाभाविक रुप में विकसित होते हुए आधुनिक संवेदना का प्रतिनिधित्व करती है। कमलेश्वर की कहानियों में जीवन के विविध आयाम दिखाई देते है। उनकी 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी महानगरीय जीवन की ट्रेजेडी है। इनकी कहानियों का मूल स्वर आशावादी है। यही कारण है कि ऊब, घुटन, संक्रमण, और विघटन को मानवीय सहानुभूति के साथ चित्रित किया है। कथानक के अनुरुप वातावरण निर्माण की अद्‌भूत क्षमता उनके कहानियों की विशेषता है। 'नीली झील', 'देवी की माँ', 'कस्बे का आदमी', 'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'मांस का दरिया', 'बयान', इतने अच्छे दिन' अदि कमलेश्वर के प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।

वैचारिक प्रवाह :

- **कहानी आंदोलन :**

आजादी के बाद कहानी लेखन में कई कहानी आंदोलनों का आरंभ हुआ। कोई भी कहानी आंदोलन लंबे समय तक नहीं चल सका। विविध कहानी आंदोलन के नाम इस प्रकार है- 1) नई कहानी, 2) सचेतन कहानी, 3) अचेतन कहानी, 4) साठोत्तरी कहानी, 5) अकहानी, 6) कहानी, 7) जनवादी कहानी, 8) सक्रीय कहानी ।

इन आंदोलनों की कहानियों को परखने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि कहानी दो प्रमुख धाराओं में बंटी हुई है। 1) सन 1950 से 1960 से 1960-65 तक की कहानियों में 'व्यक्ति चेतना' प्रमुख रहने से, इस 'व्यक्ति चेतनावादी कहानी' कहा जा सकता है।

साठोत्तरी कहानियों में 'जन-चेतनां प्रधान रहने से इसे जन चेतनावादी कहानी कहा जा सकता है।

- **नई कहानी :**

आजादी के बाद हिंदी में नई पीढ़ी के कहानीकारों ने कहानी लेखन के क्षेत्र में अनेक नवीन क्रांतिकारी परिवर्तन किये। हिंदी कहानी के इस नवीन रुप को 'नयी कहानी' नाम दिया गया। दुष्यंत कुमारने 'कल्पना' पत्रिका में एक लेख में 'नई कहानी' नाम से इसे संबोधित किया। इस कहानी आंदोलन को प्रतिष्ठा देने में 'नई कहानियाँ' तथा 'कहानी' पत्रिका के संपादक भैरव प्रसाद गुप्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। नई कहानियों के माध्यम से उन्होंने हिंदी को अनेक कहानीकार दिए।

- **नई कहानी का स्वरूप :**

स्वाधीन भारत में स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रचार होने और नौकरियाँ पाने से परिवार में उनकी स्थिति बदली। नगरों, महानगरों में औद्‌योगिक विकास होने से सामुहीक जीवन का महत्त्व सामने आया। देश विभाजन से हुए सांम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थियों की समस्या, हमारी मानसिकता में आये बदल, भूख, गरीबी,

बेरोजगारी, अशिक्षा जैसी समस्याओं ने हमारे जन जीवन को पूरी तरह प्रभावित किया। इस परिवर्तन का हिंदी कहानी पर दबाव पड़कर कहानी का रुप बदला और 1955 के आसपास 'नई कहानी' आंदोलन शुरु हुआ। अत: कहानियों के विषय जीवन की इन वास्तविक समस्याओं से जुड़ गए।

नयी कहानी के कथ्य एवं शिल्प संबंधी अपनी कुछ विशेषताएँ है। नयी कहानी यथार्थ के प्रति नया दृष्टिकोण लेकर आयी। इसमें काम संबंधों की स्वीकृति के साथ दाम्पत्यगत दूरियों को स्वीकार किया। इसमें महानगरीय जीवन बोध तथा मध्यम वर्गीय जीवन को अभिव्यक्ति मिली। यह कहानी मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन के साथ ही विद्रोह भावना से युक्त है। इसपर एक ओर मार्क्सवाद का प्रभाव है, वही दूसरी ओर वैज्ञानिकता, औद्योगिकरण, पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव तथा व्यक्ति चेतना को अभिव्यक्ति मिली है। शिल्प की दृष्टि से कुछ नवीन प्रयोग भी इसमें दिखाई देते हैं। भाषा में स्वाभाविकता है। बिम्बात्मकता और प्रतीकात्मकता इसकी अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण अंग है।

- **नयी कहानी के प्रतिनिधि कहानीकार :**

कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, रेणु, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज, आदि नई कहानी के उल्लेखनीय कलाकार है।

नई कहानी में नगरबोध की प्रवृत्ति प्रमुखता से व्यक्त हुई है। आज के नगरीय जीवन में पाई जानेवाली झूठी सहानुभूति, आंतरिक ईर्ष्या, स्वार्थपरता, जीवन की कृत्रिमता अदि की अभिव्यक्ति कमलेश्वर की (मांस का दरिया, राजा निरबंसिया) निर्मल वर्मा (परिन्दे, पिछली गर्मियों में), अमरकांत (देश के लोग) कहानियों में देखी जा सकती है। नई कहानी में आधुनिक बोध कई अर्थो में विद्‌यमान है। मध्यकालीन मूल्यों के ऱ्हास तथा नवीन वैज्ञानिक सोच ने आज की कहानी को प्रभावित किया है। नागरीय जीवन की वास्तविक स्थितियों का चित्रण तो इस कहानियों में हैं ही साथ ही आधुनिक बोध से उत्पन्न अकेलेपन एवं रिक्तता की अनुभूति, युगीन संक्रमण एवं तनाव को भी उसमें अभिव्यक्त किया गया है। मोहन राकेश, तनावों के कहानीकार है। कमलेश्वर की कहानियों में युगीन संक्रमण तथा जीवन के विविध आयाम दिखाई देते है। उनकी 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी महानगरीय जीवन की ट्रेजेड़ी है।

नई कहानी को समृद्‌ध करने में हिंदी कथा लेखिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज जैसी कहानी लेखिकाओं ने पति-पत्नी एवं नारी पुरुष सम्बन्धों को अपनी कहानियों में प्रमुखता से अभिव्यक्त किया है। 'मै हार गयी', 'यही सच है' आदि मन्नू भंडारी के प्रमुख कहानी संग्रह है।

प्रेम और विवाह के कटू-मधुर संबंधों का चित्रण भी नए कहानीकारों ने किया है। कमलेश्वर की 'बयान' राजेन्द्र यादव की 'टूटना', मन्नू, भंडारी की 'यही सच हैं इस दृटि से उल्लेखनीय है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त गोविंद मिश्र, ममता कलिया, भीष्म साहनी (भाग्य रेखा), नरेश मेहता (एक समर्पित महिला) आदि नयी कहानी के रचनाकार हैं।

● **जनचेतनावादी /साठोत्तरी / समकालीन कहानी :**

अन्न विधाओं के समान ही सन् 1960 के बाद कहानी साहित्य में भी बदलाव आया। नयी कहानी बदले हुए परिवेश के साथ अपना मेल नहीं कर सकी। 1962 के चीनी हमले ने मोहभंग की स्थिति पैदा कर दी। मूल्यों का विघटन हो रहा था। परिणामत: इस दशक के कहानीकार ने रोमांस मुक्त होकर नये यथार्थ का साक्षात्कार किया। नयी कहानी का आंदोलन इसी कारण कमजोर पड़ गया। बदले हुए परिवेश में इस कहानी द्वारा स्थापित रुढ़ियों के पति विद्रोह का स्वर उभरने लगा। विद्रोह का यह स्वर कई रुपों–अकहानी आंदोलन (जगदीश चर्तुवेदी), सचेतन कहानी (महीप सिंह) सक्रिय कहानी (राकेश वत्स) सहज कहा (अमृतराय) समकालीन कहानी (गंगाप्रसाद), समांतर कहानी (कमलेश्वर), जनवादी कहानी आदि – रुपो में निर्माण हुआ। इस आंदोलन के कहानीकार एक दूसरे से जुड़े हुए भी थे। इन सब ने मिलकर एक नयी तरह की कहानी देने का प्रयत्न किया। संक्षेप में इस कहानी को साठोत्तरी या समकालीन कहानी के नाम से जाना जा सकता है। हम यहाँ इन आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय दे रहे है।

अकहानी : इसमें जीवन की विसंगति, व्यक्तित्व का विघटन, आदि की प्रधानता है। अकहानी मान लेती है कि जीवन ऊब, संत्रास और घुटन के सिवा और कुछ नहीं। दूधनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा इसके रचनाकार है।

सचेतन कहानी : महीप सिंह इस कहानी आंदोलन के प्रवर्तक रहे है। इसमें वैचारिकता को विशेष महत्त्व दिया गया। यह कहानी आधुनिक जीवन बोध तथा मनुष्य को उसकी अनुभूतियों के साथ समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है। महीप सिंह, हिमांश जोशी, देवेन्द्र सत्यार्थी इस वर्ग के कहानीकार है।

समानान्तर कहानी : इस आंदोलन के सूत्रधार कमलेश्वर है। इस प्रकार की कहानियों में निम्नवर्गीय समाज की स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का खुलकर चित्रण हुआ। कमलेश्वर ने 'सारिका' में समान्तर कहानी की मानसिकता को स्पष्ट करने के लिए लेख लिखे। कमलेश्वर, नरेंद्र कोहली, मृदुला गर्ग आदि इसके कहानीकार है।

जनवादी कहानी : यह कहानी आम आदमी के अधिकारों का समर्थन करती है। यह अधिकतर राजनैतिक कहानियाँ है। शोषकों के चेहरे दिखाकर शोषितों, दलितों को वर्ग संघर्ष के लिए तैयार करना इसका उद्‌देश्य है।

सक्रिय कहानी : इसके प्रणेता राकेश वत्स है। उनके अनुसार सक्रिय कहानी का अर्थ है– आम आदमी की ऊर्जा, जीवंतता की कहानी। इसके कहानीकार है – राकेश वत्स, सुरेन्द्रकुमार अब्दुल बिसमिलाह आदि।

● **जनचेतनावादी / साठोत्तरी कहानी का स्वरूप :**

साठोत्तरी या समकालीन कहानी में यथार्थ का अनेक रुपों में निरुपण हुआ। परिणामत: जीवन के सभी पक्षों को कहानी में व्यक्त होने का अवसर मिला। आधुनिकीकरण, वैज्ञानीकरण, औद्योगिकरण और इनसे उत्पन्न विभिन्न प्रकार की आर्थिक सामाजिक, नैतिक और मानवीय समस्याओं का चित्रण इस कहानी में

गहराई से हुआ है। नैतिक रुढ़ियों और मान्यताओं का विघटन, व्यक्ति के जीवन में घर कर गई निराशा और उससे उत्पन्न व्यथा तथा क्रोध, महानगरीय तथा औद्योगिक बस्तियों की समस्याएँ, भ्रष्ट राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था और उसे बदल ड़ालने की व्यग्रता, प्रेम और सेक्स का नूतन भाव-बोध, निजी रिश्तों पर अर्थतंत्र का दबाव और खंडित हुए परिवारिक संबंध, नौकरीपेशा नारी की समाज में बदलती हुई स्थिति, नारी में आधुनिकता और पुरातनता का द्वंद्व, देश के राजनैतिक परिवेश का चित्रण युवाओं का आक्रोश, अनुशासन हीनता, देश में शिक्षित बेरोजगारी की भयंकर समस्या, योग्यता, प्रतिभा की दारूण अवमानना, देश में नौकरशाही का भ्रष्ठ व्यवहार और दफ्तर का वातावरण आदि जीवन की अनेक समस्याओं का सशक्त चित्रण समकालीन, साठोत्तरी कहानी में हुआ है। इस कहानी की स्वरूपगत विशेषताओं को सूत्र रुप में इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है- 1) जनचेतना के प्रति प्रतिबद्धता, 2) निम्न वर्गीय, मध्यवर्गीय नगरीय, और ग्रामीण शोषित जन जीवन की अभिव्यक्ति, 3) शोषण-मूलक व्यवस्था का विरोध, 4) वर्ण-व्यवस्था, जाति प्रथा तथा परंपरागत भ्रष्ट मान्यताओं का विरोध, 5) अन्याय-शोषण के प्रति अहिंसात्मक, हिंसात्मक आंदोलन का प्रतिपादन, 6) स्वार्थी राजसत्ता एवं प्रशासकों की निंदा, 7) समकालीन सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का चित्रण, 8) नये जीवन मूल्यों की तलाश।

- **जनचेतनावादी / साठोत्तरी प्रतिनिधि कहानीकार :**

महीप सिंह (कितने संबंध), रामदरश मिश्र (वह एक), गिरिराज किशोर (पेपरवेट), राकेश वत्स (अतिरिक्त), गोविंद मिश्र (आंसू), गंगा प्रसाद विमल (इधर-उधर), अब्दुल बिसमिल्लाह (टूटा हुआ पंख), नासिरा शर्मा (पत्थर गली), मालती जोशी (मध्यंतर), मेहरुन्निसा परवेज (गलत पुरुष) आदि साठोत्तरी उल्लेखनीय कहानीकार है।

3.2.3 हिंदी नाटक साहित्य का विकास – प्रमुख नाटककार तथा उनकी कृतियॉ, वैचारिक प्रवाह

हिंदी नाटकों का वास्तविक उद्‌भव-काल भातेन्दु युग ही रहा है। इसके पूर्व ब्रजभाषा पद्‌य में कुछ संस्कृत नाटकों का अनुदान मिलता है। 'शकुन्तला', 'आनंद रघुनंदन' अदि। इन नाटकों में पद्‌य की प्रधानता है। नाटकीय नियमों का अभाव है। कुछ नाटकीय नियमों का पालन करते हुए भारतेन्दु के पिता बाबू गोपालचंद्र ने 'नहुष' नामक नाटक लिखा। कुछ आलोचक (नहुष' को पहला मौलिक नाटक मानते है। इसके बाद राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृत के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' नाटक का हिंदी में अनुवाद किया। इसमें पद्‌य की भाषा ब्रज और गद्‌य की खड़ीबोली है ।

- **भारतेन्दु युग :**

भारतेन्दु से पूर्व पद्‌य-नाटकों का नाट्य-जगत में कोई विशेष योगदान नहीं था। इन्हें आरंभिक नाट्यकृतियों (नहुष, आनंद रघुनंदन) के रुप में अवश्य उल्लेखित किया जा सकता है। भारतेन्दु का आगमन हिंदी नाट्य जगत में एक युग-प्रवर्तक व्यक्ति के रुप में हुआ। उनके नाटक हिंदी के सर्वप्रथम नाटक माने जा सकते है। हिंदी नाटक के विकास में भारतेन्द्रु का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनके मौलिक और अनुदित नाटकों की संख्या 17 हैं।

भारतेन्दु काल राष्ट्रीय जागरण का काल है। इस काल में जनता में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ, धर्म, समाज में जागरुकता आ गयी। इन बातों को नाटकों में दिखलाया गया। इसके अलावा नाटकों में भारतीय संस्कृति, समाज सुधार, देशभक्ति, सांस्कृतिक जागरण, आर्थिक दुर्दशा, सामाजिक, धार्मिक समस्या आदि को भी दिखलाया गया है।

भारतेन्द्रु के 'मौलिक नाटकों में 'भारत दुर्दशा' (अंग्रेजों के कारण भारत की दुर्दशा का चित्रण) 'नीलदेवी' (भारतीय संस्कृति, नारी का आदर्श), 'प्रेमजोगिनी' (सामाजिक समस्या का चित्रण), 'अंधेर नगरी', 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' (भ्रष्ट सरकारी व्यवस्था पर चोट) आदि प्रमुख है। जिन्दा दिली इन नाटकों की विशेषता है। वास्तव में सच्चे अर्थों में नाटक लिखने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। उन्होंने संस्कृत नाट्यशास्त्र के रुढ नियमों का त्याग कर हिंदी नाटक को नवीन युग के अनुसार बनाया और उसे राष्ट्रीय भावना के प्रचार का सशक्त साधन बनाया था। भारतेन्दु से प्रेरणा लेकर प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्ण जी ने तत्कालीन समस्याओं को अपने नाटकों में दिखाया। मिश्र जी के 'गो-सकंट' नाटक में गो हत्या की समस्या है। राधाकृष्णदास के 'दुखिनीबाला' में बाल विवाह की समस्या है। इनके अलावा बालकृष्ण भट्ट (पद्मावत) किशोरीलाल गोस्वामी (मयंक-मंजरी) श्रीधर पाठक आदि ने भी नाटक के विकास में योगदान दिया।

अनूदित नाटक : इस युग में बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी के कुछ नाटकों के हिंदी अनुवाद भी हुए। भारतेन्दु ने संस्कृत के 'कर्पुर-मंजिरी', 'पाखंड-विडंबन', 'मुद्रा राक्षस', आदि नाटकों का अनुवाद किया। बालकृष्ण भट्ट ने बंगला नाटक शर्मिष्ठा' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के विभिन्न नाटकों के हिंदी अनुवाद तैयार किए गए। इस तरह इस युग के नाटकों में जीवन से जुड़ी अनेक बातों का चित्रण हुआ।

- **द्विवेदी युग :** इस युग में हिंदी नाटकों की परंपरा क्षीण हो गयी। मौलिक नाटक कम लिखे गए और अनुवाद अधिक होते रहे। अधिकांश नाटकों में धार्मिक भावना, पौराणिक कथाओं की प्रधानता है। गिरधरलाल का 'राम वन यात्रा', राम नारायण मिश्र का 'कंसवध' धार्मिक पौराणिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में चतुर्वेदी का 'तुलसीदास', वियोगी हरि का 'प्रबुद्ध यामुने', मिश्र बंधुओं का 'शिवाजी' प्रमुख है। अनूदित परंपरा में संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी, बंगला के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए।

- **प्रसाद युग :** प्रसाद के आगमन से हिंदी नाट्य-साहित्य को एक नई दिशा और गति मिली। प्रसाद के प्रयत्न से हिंदी नाट्यकला में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। इन्होंने सर्व प्रथम हिंदी नाटकों के पात्रों के मन संघर्ष का कलात्मकता पूर्ण चित्रण किया और पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। अपने नाटकों में वध, आत्महत्या, युद्ध आदि वर्जित दृश्यों का समावेश किया। प्रसाद की नाट्यकला में भारतीय और युरोपीय दोनों नाट्य प्रणालियों का सुंदर समन्वित रुप मिलता है। वास्तव में प्रसाद एक प्रतिभाशाली कलाकार और नाट्य क्षेत्र के सम्राट है। प्रसाद जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटक लिखे। इनके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना, नवीन आदर्श, प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा आदि देखने मिलती है। प्रसाद

ने अपने अधिकांश नाटकों के कथानकों का चयन भारत के गौरवपूर्ण अतीत से किया। इनके द्‌वारा प्रसाद ने देश की सोयी हुई जनता में आत्मगौरव, उत्साह, बल एवं प्रेरणा का संचार किया।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक है - 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'राजश्री', 'ध्रुव स्वामिनी, 'विशाख' आदि।

'चंद्रगुप्त में विदेशी आक्रमण और भारत की विजय का वर्णन है। 'राजश्री' में सम्राट हर्षवर्धन की बहन राजश्री की जीवन गाथा है। 'ध्रुवस्वामिनी' में गुप्त काल का रहस्य है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रसाद ने हिंदी नाटक को उत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके नाटकों में भारतीय संस्कृति, आदर्श, अतित गौरव, देशभक्ति, मनोविज्ञान, प्राचीन-नवीन समन्वय, पाश्चात्य-भारतीय नाट्यकला का समन्वय है।

प्रसाद युग के अन्य उल्लेखनीय नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविंददास, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इस समय तक भारत में हिंदू और मुस्लिम सम्प्रदाय में संघर्ष चल रहा था। इस समस्या को हल करने के लिए राजनेताओं तथा साहित्यकारों ने प्रयत्न किए। हरिकृष्ण प्रेमी ने भी अपने नाटकों के माध्यम से इस समस्या का समाधान करना चाहा। प्रेमी जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों से हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके 'रक्षा बंधन' में रानी कर्णवती मुगल सम्राट हुमायूँ को राखी बांधकर अपना भाई बना लेती है। 'स्वप्नभंग' में शाहजहाँ के पुत्र द्‌वारा हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए अपने बलिदान कर देने की कथा है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने हिंदी में समस्या नाटकों का सूत्रपात किया। इन्होंने सामाजिक समस्याओं विशेषत: नारी की समस्या को अपने नाटकों में दिखाया है। 'मिश्र जी ने अपने नाटकों में समाज में व्याप्त स्त्री-शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य प्रेम-विवाह, प्रणय, दाम्पत्य जीवन, काम और नैतिकता आदि बातों को दिखलाया। नारी-पुरुष के संबंधों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण किया। इसके नाटक इब्सन और बर्नार्ड शॉ से प्रभावित है। मिश्र जी के प्रसिद्‌ध नाटक है। 'सिन्दूर की होली', 'राक्षस का मंदीर', 'संन्यासी' आदि। प्रसाद के बाद हिंदी नाटकों को नयी दिशा देनेवालों में मिश्र जी का नाम उल्लेखनीय है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने पहली बार नाटकों को रोमांटिक कटघरे से निकालकर आधुनिक भावबोध और जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास किया। 'छटा बेटा','कैद', 'उड़ान', 'अलग-अलग रास्ते', 'अंजोदीदी' अश्क जी के प्रमुख नाटक है। इनमें पारिवारिक जीवन, सामाजिक रूढ़ियों से त्रस्त नारी, यात्रिक मनुष्य के जीवन आदि का यथार्थ, मार्मिक रुप में विवेचन हुआ है। इनके 'कैद' में सामाजिक रुढ़ियों में बँधी हुई नारी का चित्र है, तो 'उड़ान में रुढ़ियों को तोड़कर खुले वातावरण में सांस लेती हुई नारी का चित्र है।

प्रसादयुगीन नाटककारों में उदयशंकर भट्ट ने 'अंबा', 'शक विजय' आदि। ऐतिहासिक एवं समस्यामूलक नाटकों की रचना की। संक्षेप में हम कह सकते है कि प्रसाद युग हिंदी नाटकों को प्रौढ़ता की ओर ले जानेवाला युग सिद्‌ध हुआ। इस काल के नाटककारों ने राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्रीयता की भावना जगाने का प्रयत्न किया।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटक : इस युग में हिंदी नाटकों का चहुमुखी विकास हुआ। इस काल के नाटक जीवन के यथार्थ से अधिक जुड़े हुए है तथा उनमें रंगमंचीयता एवं अभिनेयता का विशेष ध्यान रखा गया है।

देश में स्वतंत्रता के बाद एक नई चेतना का विकास हुआ तथा जनमानस में जो अपेक्षाएँ थी वे भी पूरी नहीं हो सकी। सर्वत्र स्वार्थपरता, छलकपट, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता का बोलबाला हो गया। युवा पीढ़ी भ्रमित हो गई। बढ़ती हुयी बेरोजगारीने तनाव, संघर्ष एवं आपराधिक प्रवृत्तियों को जन्म निया। मूल्यों में परिवर्तन हुआ और समाज का ढांचा बिखरने लगा। महानगरीय जीवन, यांत्रिकता, औद्योगिकरण के कारण जीवन और जगत में अनेक नई समस्याओं का विकास हुआ। नवीन परिवेश, भावबोध, एवं नवीन मान्यताओं ने नाटकों की विषय-वस्तु को भी बदल दिया। नाटक ने पुरानी लोक छोड़कर नवीन मार्ग ग्रहण किया। जटिल जीवनानुभूतियों को अब नाटक में प्रस्तुत किया जाने लगा तथा अन्तर्द्वन्द चित्रण को प्रमुखता दी जाने लगी।

प्रसादोत्तर नाटककारों में विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विनोद रस्तोगी, सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. शंकर शेष आदि के नाम उल्लेखनीय है। विष्णु प्रभाकर ने अपने नाटकों में आधुनिक भावबोध से उत्पन्न तनाव एवं जीवन संघर्ष को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया। इनके 'युगे-युगे क्रांति' में पीढ़ीगत संघर्ष की अभिव्यक्ति है। 'डॉक्टर' एक मनोवैज्ञानिक नाटक है, जिसमें भावना और कर्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया गया है।

मोहन राकेश के नाटक भावबोध और रंगमंच की दृष्टि से अनुपम है। इनके नाटक है- 'आषाढ का एक दिन (1958 ई) 'आधे अधूरे' नाटक में वर्तमान समाज की विसंगतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति है। मध्यमवर्गीय परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा-अधूरा रह गया है। राकेश ने आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक विषमताओं को इसका कारण बताया है। इस नाटक का नायक महेन्द्रनाथ अपने अधुरेपन को भरने के लिए विवाह करता है, परन्तु 'सावित्री' जिस पूर्ण पुरुष की तलाश में है, वह महेन्द्रनाथ में खोज नहीं पाती। वह संपर्क में आए चार पुरुषों को अधूरा ही पाती है। इनके नाटकों का शिल्प बेजोड़ है। रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण सफल नाटक है।

विनोद रस्तोगी एक सफल रेड़ियो नाटककार भी माने जाते है। इनके 'आजादी के बाद' में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति है।

लक्ष्मीनारायण लाल एक बहुचर्चित नाटककार है। इन्होंने आधुनिक समाज-व्यवस्था से सबंद्ध अनेक नाटकों की रचना की। इनके नाटकों में मानवीय जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण है। उसी तरह अनेक नाटकों में आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था और शासन-तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को प्रतीकात्मक रुप में दिखाया गया है। पूँजीवाद और भ्रष्टाचार ने किस प्रकार से व्यक्ति को चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह घेर रखा है, इसका चित्रण मिस्टर अभिमन्यु में हुआ है। 'अंधा कुआँ', 'मादा कैकटस्', 'दर्पण', मिस्टर अभिमन्यु', 'सुर्यमुख', 'कलंकी' आदि डॉ. लाल के प्रमुख नाटक है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक हिंदी नाटक रंगमंचों की स्थापना हुयी। इसका हिंदी नाटकों के निर्माण पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। इससे अनेक हिंदी महत्त्वपूर्ण रंगमंच उपयोगी नाटकों का (मादा कैक्टस, अंधायुग, लहरों के राजहंस, दर्पण) उदय हुआ। इन नाटकों में रंगमंच और साहित्य दोनों का समन्वय है।

गीतिनाटक : आगे चलकर गीतिनाट्य भी लिखे गए। इनमें पंत का 'शिल्पी', दुष्यंतकुमार का 'एक कंठ विषपायी' प्रमुख है। धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' को हिंदी का सर्वप्रथम पूर्ण गीतिनाट्य कहा गया है। इसने महाभारत कालीन असत्य, अनैतिकता तथा युद्धजन्य अर्धसत्यों को बड़ी मार्मिकता से रेखांकित किया है। यह आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत करनेवाला गीत-नाट्य है। व्यक्ति को बाह्य संघर्ष ही नहीं आंतरिक संघर्ष भी झेलने पड़ते हैं और ये आंतरिक संघर्ष अधिक भयावह होते हैं। 'अंधायुग' एक सशक्त कृति है, जिसमें महाभारत के पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग के तनाव, कुंठा, अन्तर्द्वन्द्व, आवेश एवं अभिशप्त जीवन को अभिव्यक्त किया गया है।

इसके आलावा आधुनिक नाटकों में सुरेन्द्र वर्मा कृत 'द्रौपदी', सर्वेश्वरदयाल कृत 'बकरी', डॉ. शंकर शेष कृत 'फन्दी', मन्नू भंडारी कृत 'बिना दीवार का घर', रमेश उपाध्याय कृत 'पेपरवेट', भीष्म साहनी कृत 'कबिरा खड़ा बाजार में' आदि महत्त्वपूर्ण है। इन नाटकों में आधुनिकता, अनास्था, विसंगतियाँ आदि की अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक लहजे में हुई है।

अनुवाद : इन मौलिक नाटकों के अतिरिक्त अन्य भाषा के नाटकों के अनुवाद भी किए गए। अनूदित नाट्य कृतियों द्वारा हिंदी रंगमंच की ओर दर्शकों को आकर्षित किया गया तथा हिंदी नाटक में विभिन्न शिल्प-शैली भी आ गयी। श्रीमती केशवचंद वर्मा जी ने विजय तेंदूलकर का मराठी नाटक 'पंछी ऐसे आते है' का सफल अनुवाद किया। कृष्ण कुमार ने उत्पल दत्त के बंगला नाटक 'छायानट', प्रतिभा अग्रवाल ने बादल सरकार के 'पगला घोड़ा' का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों के अनुवादों से हिंदी नाट्य साहित्य समृद्ध बना। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हिंदी नाटकों की यह विकास यात्रा आगे बढ़ रही है। नए नाटककार प्रयोगशील है। वे नाटक लिखते समय रंगमंच की सुविधाओं का विशेष ध्यान रखने लगे है। हिंदी नाटक मानव जीवन की विसंगतियों को, समसामयिक समस्याओं को प्रस्तुत करने की एक सशक्त विधा के रुप में विकास पथ पर अग्रसर है।

● प्रमुख नाटककार तथा उनकी कृतियाँ –

1) **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :** भारतेन्दु का जन्म हिंदी साहित्य के इतिहास के पूर्व जागृत काल में हुआ। भारतेन्दु आधुनिक हिंदी गद्य के प्रवर्तक थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में उनका कार्य महान था। उन्होंने हिंदी गद्य की सभी विधाओं को नयी दिशा दी। नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध, अलोचना, पत्रकारिता और कविता सभी क्षेत्र में उनका कार्य बड़ा था। प्रतिभा संपन्न इस रचनाकार ने हिन्दी की जो सेवा की, वह अभूतपूर्व है। भारतेन्दु ने अपने काल के साहित्यकारों को साहित्य सृजन की प्रेरणा दी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म प्रसिद्ध सेठ अमीन चंद के वंश में हुआ। उनके पिता गिरिधरदास अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। बाल्यावस्था में हरिश्चंद्र के काव्य रचना आरंभ कर दी थी और अल्प आयु में काव्य-प्रतिभा और सभी प्रकार की रचना क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि पत्रकार और साहित्यकारों ने इ. 1880 में उन्हें भारतेन्दु की उपाधि से सम्मानित किया। कविताओं के साथ इन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक,

निबंध भी लिखे। इनकी रचनाओं में तत्कालीन सभी समस्याओं का अत्यंत प्रभावी चित्रण है। विभिन्न सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न संदर्भ को लेकर उन्होंने अनेक रचनाओं का निर्माण किया। उनकी पत्रिका थी- 'काव्यवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मॅगेजीन।'

हिंदी में नाटक लिखने की परंपरा का सूत्रपात भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से ही मानना चाहिए, क्योंकि इनसे पूर्व 'नाटक' नाम से जो रचनाएँ हिंदी में उपलब्ध होती है, उनमें नाट्यकला के तत्वों का अभाव है। उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर अनेक नाटक लिखे। कही उनकी समस्या पौराणिक है, कही सामाजिक है, कहीं आर्थिक है, तो कही देश की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण है। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन जनता में नवीन राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। हिंदी रंगमंच का भी विकास किया। भारतेन्दु जी ने नाट्य रचना को भारतीय और योरोपिय सिद्धांतों का परिष्कार कर हिंदी नाटकों को नवीन शैली प्रदान की। इनके नाटक शैली और शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नाटक रचना की दृष्टि से भी भारतेन्दु अपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। इस प्रकार नाटक और रंगमंच संबंधी संपूर्ण गतिविधियों के प्रधान केन्द्र होने के कारण भारतेन्दु को युग-प्रवर्तक माना गया है।

भारतेन्दु ने हिंदी नाटक की शुरुआत की थी, तब उनके सामने कोई आदर्श रुप नहीं था। उन्होंने संस्कृत नाटको को अपना आदर्श बनाया। इसी कारण उनके नाटकों पर संस्कृत के नाटकों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अपने नाटकों में पश्चिमी नाट्यकला का सुंदर निर्वाह किया, राष्ट्रीय प्रेम, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सुधार को अभिव्यक्त किया। भारतेन्दु जी ने मौलिक तथा अनुवादित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है। अनूदित नाटक मुख्यत: बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी भाषाओं की नाट्य कृतियों पर आधारित है। इन अनूदित नाटकों से हिंदी नाट्य साहित्य को नवीन दृष्टि मिली और हिंदी में नाट्य रचना का सूत्रपात हुआ।

भारतेन्दु जी ने कुल 17 नाटक लिखे सात अनूदित और दस मौलिक।

- **अनूदित नाटक :**

  1) विद्यासुंदर (1868) संस्कृत बंगला संसकरण का अनुवाद।

  2) रत्नावली (1868) संस्कृत से अनुवाद

  3) धनंजय विजय (1873) संस्कृत से अनुवाद

  4) कर्पूर मंजरी (1875) संस्कृत से अनुवाद

  5) पाखण्ड विड़म्बन (1872) संस्कृत से अनुवाद

  6) मुद्राराक्षस (1878) संस्कृत नाटककार विशाखादत्त के मुद्राराक्षस नामक नाटक का हिंदी अनुवाद।

  7) दुर्लभ बन्धू (1880) शेक्सपियर के 'मर्चंट ऑफ वेनिस का अनुवाद।

- **मौलिक नाटक :**

  1) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवती (1873) प्रहसन

  2) सत्य हरिश्चंद्र (1875) नाटक

  3) श्री चंद्रावली (1876) नाटिका

  4) विषस्य वैषमौषघम् (1876) भाषा

  5) भारत दुर्दशा (1880) नाट्य रासक

  6) नील देवी (1881) गीति रुपक

  7) अन्धेर नगरी (1883) प्रहसन

  8) सती प्रताप (1875) गीति रुपक

  9) प्रेमजोगिनी (1875) नाटिका

  10) भारत जननी (1877) नाट्य गीत

'विद्यासुंदर' में राजकुमारी विद्या और राजकुमार सुंदर के प्रेम का वर्णन है। 'धनंजय विजय' में राजा विराट के यहाँ रहते हुए अर्जुन की कौरवों पर विजय और चुराई हुई गायों के वापस ले जाने का वर्णन है। 'कर्पूर-मंजरी' में एक लपंट राजा की प्रेम कथा है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' यह भारतेन्दु का पहला मौलिक नाटक है। यह सन 1903 में लिखा गया प्रहसन है। इसमें मांस-मदीरा सेवन करनेवालों की पोल खोली गई है। उसस समय के समाज-सुधारकों, धर्म-प्रचारकों, विधवा, विवाह के पक्षपातियों और पंडितों की खिल्ली उड़ाई गई है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' भारतेन्दु का सबसे प्रसिद्ध नाटक है। युरोपिय शैली के अनुसार है। इसमें राजा हरिश्चद्र की सत्य-प्रतिज्ञा की महिमा को दिखाया है। 'भारत दुर्दशा' राजनीतिक नाटक है। इसमें अंग्रेजों के कारण भारत की जो दुर्दशा हुयी, उसी का वर्णन है। 'नीलदेवी' नाटक भारतीय स्त्रियों को अंग्रेज स्त्रियों की तरह कार्य-कुशल बनाने की अभिलाषा से लिखा गया था। इसमें नीलदेवी का वीरतापूर्ण कौशल दिखाया है। 'विषम विषमौषधम' में ब्रिटिश सरकार की प्रशंसा है। 'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है। इसमें अव्यवस्थित राज्य पर गहरी चोट है।

अपूर्ण नाटक : अपूर्ण नाटक दो है - 1) प्रेमयोगिनी, 2) सती प्रताप। प्रेमयोगिनी नाटक आत्मकथात्मक है। स्वयं भारतेन्दु इसके नायक रामचंद्र के रुप में उजागर हुए है। इसमें तत्कालीन समाज का साहस के साथ वर्णन किया है। 'सतीप्रताप' में सावित्री-सत्यवान की कथा है। सारांश यह कि नव जागरण, देश की दुर्दशा की पुकार उनके नाटकों में दिखाई देती है। भारतेन्दु कृत नाटक हिंदी के प्रथम नाटक माने जाते है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से गद्य की नवीन परंपरा का द्वार खोल दिया था।

- **नाटककार जयशंकर प्रसाद :**

जयशंकर प्रसाद का जन्म सन 1946 को सुघनी साहू नामक व्यापारी परिवार में हुआ। हिंदी नाटकों का जो आरंभ भारतेन्दु युग में हुआ था, उसे प्रसाद जी ने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँचाया। प्रसाद महाकवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार के रुप में प्रसिद्ध है। हिंदी नाटक के क्षेत्र में प्रसाद जी की देन अद्‌वितीय है। प्रसाद जी के नाटक भारतीय संस्कृति को फिर से स्थापित करने में सफल है। भारतीय अतीत का गौरव उनके नाटकों का मूलाधार है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद का योगदान बड़ा है। उन्होंने हिंदी नाटक को नवजीवन दिया, नई दिशा दी। हिंदी नाटक के पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करके उनके अंर्तद्वन्द्व का चित्रण किया।

- **प्रसाद के नाटकों की विशेषताएँ :**

प्रसाद ने नाटकों के माध्यम से इतिहास एवं कल्पना का सुंदर समन्वय करके निस्तेज, निष्प्राण इतिहास में जान भर देने का कार्य किया। इतिहास की प्राचीन घटनाओं के माध्यम से व्यंग्य रुप में वर्तमान की समस्याओं का चित्रण और समाधान किया। भारतीय इतिहास के गौरवकाल के महापुरुषों को अपने नाटकों का पात्र बनाकर भारतीयता के प्रति स्वाभिमान की भावना को प्रोत्साहन दिया।

प्रसाद जी ऐतिहासिक नाटकों की रचना करनेवाले हिंदी के प्रमुख नाटककार माने जाते है। भारत के अतीत गौरव का चित्रण करने के साथ-साथ उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना, भारतीय संस्कृति की भावना उत्पन्न करने का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से किया है। भारतीय संस्कृति में प्रसाद को मानवता के उच्च आदर्श के दर्शन हुए। उनके विचारों में सांस्कृतिक उत्कर्ष भारतीय जीवन को प्रेरणा प्रकाश दे सकता है। उनके नाटकों में इसी भावना का सफल प्रयास हुआ है।

प्रसाद जी का युग राजनीतिक उथल-पुथल और अशांति का युग था। देश में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल रुप से बढ़ रही थी, जिसे आगे बढ़ाते हुए प्रसाद जी ने राष्ट्रीय जागरण की चेतना को और भी शक्तिशाली बनाया। उन्होंने ऐतिहासिक कथावस्तु को ऐसे कलात्मक रुप से संगठित किया है कि उनके नाटकों में वर्तमान युग की समाजवादी विचारधारा, अहिंसा, नारी जागरण, राष्ट्रीय आंदोलन आदि की स्पष्ट झलक मिलती है।

प्रसाद के नाटकों के नायक भारतीय नाटक के गुणों से सुशोभित है। उनमें साधारण व्यक्ति की अच्छाइयाँ-बुराइयाँ, दुर्बलताऍ-सबलताऍ दिखाई देती है। इनके नायक अपना अलग विशिष्ठ व्यक्तित्व रखते है। नाटक में वीर रस प्रधान है। उसमें श्रृंगार रस भी है। उनके नाटकों में तत्कालीन युग का चित्रण है। उनमें भूतकाल, वर्तमान काल का सुंदर समन्वय है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद के नाटक बेजोड़ है। नाटकों की कथावस्तु रस, नायक, प्रतिनायक आदि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुकूल है। इनके नाटक न तो दु:खांत है और न सुखांत बल्कि प्रसादान्त है।

● **प्रसाद की नाट्यकृतियाँ :**

प्रसाद ने 13 नाटक लिखे।

1) सज्जन (सन 1910-11)
2) कल्याणी परिचय (1912-13)
3) करुणालय (1912)
4) प्रायश्चित (1914)
5) राज्यश्री (1915)
6) विशाख (1921)
7) अजातशत्रु (1922)
8) कामना (1927)
9) जनमेजय का नागयज्ञ (1926)
10) स्कंदगुप्त (1928)
11) एक घूँट (1930)
12) चंद्रगुप्त मौर्य (1931)
13) ध्रुवस्वामिनी (1933)

इन नाटकों में प्रसाद जी ने प्राचीन नाट्यशास्त्र और पाश्चात्य नाट्यकला के उपयोगी तत्वों का उपयोग कर नाट्य-शिल्प के क्षेत्र में एक नई पद्धति को जन्म दिया। उनके प्रयास से हिंदी नाटकों के बाह्य स्वरूप में परिवर्तन हुआ। नाटकों में प्रस्तावना, आकाश भाषिक आदि को निकाला गया तथा प्राचीन नाट्यशास्त्र में वर्जित-वध, युद्ध आत्महत्या आदि दृश्यों को नि:संकोच दिखाया जाने लगा। पाश्चात्य नाट्य शैली के अनुरूप हिंदी नाटकों में मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व का समावेश किया जाने लगा। इस प्रकार प्रसाद जी ने नाटक की कथावस्तु का संगठन, चरित्र-चित्रण, दृश्य-विधान आदि में नाट्य शिल्प की प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य पद्धति का संतुलित तथा कलापूर्ण समन्वय कर नाट्य कला का नया रुप प्रस्तुत किया। प्रसाद जी के नाटकों में ऐतिहासिक कथावस्तु के उपयुक्त वातावरण निर्मिति के लिए संस्कृत गर्भित, गंभीर भाषा शैली का प्रयोग है। अपनी भारतीयता, संस्कृति की भावना, राष्ट्रीयता के प्रति आग्रह और स्वाभाविक कल्पना से उन्होंने अपने नाटकों को युग के अनुकूल किया है। यही कारण है कि प्रसाद जी को अपने युग का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जाता है।

● **प्रसाद के नाटकों का परिचय :**

ऐतिहासिक नाटकों में 'राज्यश्री' उनकी प्रथम कृति है। इसमें हर्षकालीन भारत का चित्रण है। 'अजातशत्रु' इसमें अजातशत्रु संबंधी झूठी धारणा कि उसने अपने पिता का वध करके राज्य प्राप्त किया, दूर किया। 'चंद्रगुप्त' प्रसाद का सबसे बड़ा नाटक है। इसमें राजनीतिक चालें और चाणक्य का सूत्र-संचालन है तथा मौर्य राज्य की स्थापना का विस्तृत चित्रण है। 'स्कंदगुप्त' में स्कंदगुप्त द्वारा भारत से हुणों को भगाने का चित्रण है। 'ध्रुवस्वामिनी' का कथानक गुप्तकाल का है। इसमें एक प्राचीन हिंदू रानी अपने कायर पति को त्याग कर अपने देवर का वरणकरती है। सही कारण होने पर पुनर्विवाह को उचित माना है। पुनर्विवाह का अधिकार हिंदू स्त्री को है या नहीं इस समस्या को बड़े कौशल से उन्होंने प्रस्तुत किया है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में प्रसाद जी ने आर्य और नाग जातियों का संघर्ष दिखाया है। 'एक घूंट' सफल एकांकी है। 'करुणालय' गीतिनाट्य है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी की ऐतिहासिक नाट्य परंपरा में प्रसाद जी श्रेष्ठ नाटककार है। उन्होंने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। अनेक ऐतिहासिक नाटकां में भारतीय संस्कृति के प्रभावी चित्र है, वर्तमान का जीवन संदेश है तथा भविष्य की प्रेरणा है। इसके साथ उनमें देशभक्ति, राष्ट्रीयता की गहरी छाप है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद के नाटक बेजोड़ है।

३) विष्णु प्रभाकर :

विष्णु प्रभाकर ने अपने नाटकों में आधुनिक भावबोध से उत्पन्न तनाव एवं जीवन संघर्ष को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है। इनके लिखे प्रसिद्ध नाटकों में 'डॉक्टर' (1958), 'युगे-युगे क्रांति', 'टूटते परिवेश' महत्त्वपूर्ण है। विष्णु प्रभाकर जी के नाटकों में 'नव प्रभात', 'समाधि' (ऐतिहासिक), डाक्टर) (मनोवैज्ञानिक), 'युगे-युगे क्रांति', 'टूटते परिवेश', 'कुहासा और किरण' (सामाजिक), 'होरी', 'चंद्रहार' है। इसके अलावा 'टगर', 'बंदिनी', 'सत्ता के आरपार', 'अब और नहीं', 'गंधार की भिक्षुणी' आदि।

● नाटकों की विशेषताएँ :

विष्णु जी के नाटकों में भारतीयता की आंतरिकता की रक्षा के विचार है। नाटक पूर्ण सार्थक प्रासंगिक है। इन रचनाओं में लेखक ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोन से पारिवारिक, सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं को उठाया है। ''टूटते परिवेश'' नाटक में जनरेशन गॅप की समस्या को चित्रित किया है। पारिवारिक विघटन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। 'डॉक्टर' एक मनोवैज्ञानिक नाटक है, जिसमें भावना और कर्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। यह विष्णु जी का पहला चर्चित नाटक है। अनिला अपने भाई की सहायता से डॉक्टर बनना चाहती है। डॉ. अनिला में भावना और नैतिक कर्तव्य का संघर्ष दिखाया गया है। डॉ. अनिला का अंतर्द्वन्द्व ऑपरेशन करते समय भी चलना रहता है। 'युगे-युगे क्रांति' नाटक में एक पीढ़ी से पाँच पीढ़ी तक के पीढ़ीगत संघर्ष की अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में सन 1875 से 1942 तक की कथाओं का उल्लेख है। 'अब और नहीं' नाटक में मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्त्री-पुरुष के अधिकार एवं दाम्पंत्य जीवन के आए उतार-चढ़ाव को चित्रित किया है। 'टगर', 'कुहासा किरण' नाटक के कथानकों में परिवार केन्द्र में है। 'टगर' में पत्नी के हृदय की वेदना है, जो पुरुष से बदला लेने के लिए उतावली हो जाती है। 'बंदिनी' नाटक में लेखक ने अंध विश्वास पर प्रकाश डाला है। कालिनाथ इस नाटक का प्रमुख पात्र है। वह स्वप्न-प्रेमी है। वह अपनी माँ के मरने के बाद, माँ अपने ही घर में बहु के रुप में आ गई है। ऐसा सपने में देखकर उसे जीवन का सत्य मानता है।

विष्णु प्रभाकर के ऐतिहासिक, पौराणिक, नाटकों में 'नवप्रभात', 'सत्ता के आर-पार', 'गंधार की भिक्षुणी' प्रमुख है। इनमें इतिहास के विकास का संदेश दिया है। 'गंधार की भिक्षुणी' की कथा में भारत के प्राचीन काल के अंतिम समय की चर्चा है। यह शेक्सपियर के ट्रेजेडी को दिखाता है। आनंदी अपने जीवन से

विरक्त होकर भिक्षुणी बनती है। बाद में फिर से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है। 'नव प्रभात' में सम्राट अशोक की कथा द्वारा वर्तमान शांति आंदोलन का प्रतिपादन किया है।

इसके अतिरिक्त 'माँ-भाई-बंटवारा' पारिवारिक समस्या पर, 'बंधनमुक्त', 'अछूत उद्धार', 'साहस', 'वेश्यावृत्ति पर', 'गरीबी', लिपस्टीक की मुस्कान' आधुनिक नारी की फॅशन पर लिखे सामाजिक नाटक है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी ने युगीन परिस्थितियों पर नाटक लिखे। वे एक सफल नाटककार है।

● **नाटककार मोहन राकेश :**

मोहन राकेश स्वाधीन भारत के सफल हिंदी नाटककार है। वे बहुमुखी प्रतिभावाले साहित्यकार थे। मोहन राकेश का जन्म पंजाब मे अमृतसर में एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। मोहन राकेश को सबसे अधिक प्रतिष्ठा अपने नाटकों के कारण मिली। नाटक की ओर उनका ध्यान सबसे अंत में गया। 'आषाढ का एक दिन' उनका सर्वप्रथम रंगमंचित एवं प्रकाशित नाटक है। इस नाटक की प्रस्तावना में उन्होंने हिंदी रंगमंच के अभाव का उल्लेख किया है और हिंदी रंगमंच के द्वारा ही हिंदी नाटकों की उन्नति एवं उनके विकास का मार्ग प्रशस्त होने की बात कही है। राकेश के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साहित्यिकता तथा रंगमंच दोनों का समन्वय साधकर ही अपने नाटकों की रचना की। इनके द्वारा लिखे गए चार नाटक प्रकाशित हुए हैं।

● **नाट्य कृतियाँ :**

1) आषाढ का एक दिन (1958)

2) लहरों के राजहंस (1965)

3) आधे अधूरे (1969)

4) पैर तले की जमीन

इसके अतिरिक्त 'अंड़े के छिलके' नाम से इनके एकांकियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

नाटक परिचय : 'आषाढ का एक दिन' संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार कालिदास के जीवन पर आधारित नाटक है। इसमें प्रेम संबंध की समस्या को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कालिदास को रचना की प्रेरणा अपने गांव से, परिवेश और प्रकृति से प्राप्त होती है। इस प्रेरणा का सबसे प्रभावी स्रोत है - मल्लिका। राज्याश्रय प्राप्त होने के बाद कालिदास अपने परिवेश से दूर हो जाता है। नाटक की नायिका और कालिदास की प्रेमिका मल्लिका कालिदास को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए किस प्रकार अपने स्वार्थों का बलिदान देती है, यही नाटककार ने दिखाया है। कालिदास राजकवि बनकर उसे भूल जाता है। अंत में जब कालिदास को मल्लिका की याद आती है, तब सबकुछ समाप्त होता है। 'विलोम' इस नाटक का प्रभावशाली खल पात्र है। यह नाटक रंगमंचीयता की दृष्टिसे पूर्ण उपयुक्त है।

'लहरों के राजहंस' में नंद और सुंदरी की कथा महात्मा बुद्ध के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की गई है। तथागत बुद्ध, उसके भाई नंद और नंदपत्नी सुंदरी को लेकर स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रकाश ड़ाला गया है। इसमें नंद और सुंदरी के अहं के टकराव के द्वारा उत्पन्न होनेवाले संघर्ष को अत्यंत कुशलता से प्रस्तुत किया है। रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक भी अधिक सफल रहा है। सुंदरी, नारी सौंदर्य को आकर्षक का केन्द्र मानती है और सौंदर्य के अहं से ग्रस्त है। नंद अपनी पत्नी के प्रति आकृष्ट है, वैसे बौद्ध धर्म के प्रति भी आकृष्ट है। जब नंद बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर मुंडीत मस्तक लिए हुए घर आता है तो उस सौंदर्य गर्विता 'सुंदरी' का अहं चूर-चूर हो जाता है। इस नाटक में चित्रित नंद का व्यक्तित्व आधुनिक भावबोध से युक्त संशयशील मानव का प्रतीक है, जो अनिर्णय की स्थिति में रहने के लिए विवश है।

'आधे अधूरे' स्वातंत्र्योत्तर भारत का पहला हिंदी नाटक है, जिसमें टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सभी पात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति में अपूर्ण है। इसमें आधुनिक जीवन की विसंगतियों को दिखाया गया है। इसका नायक 'महेन्द्रनाथ' अपने अधूरेपन को भरने के लिए विवाह करता है, परन्तु नायिका 'सावित्री' जिस पूर्ण पुरुष की तलाश में है वह महेन्द्रनाथ में नहीं खोज पाती। वह जिन चार पुरुषों के संपर्क में आती है, सबको अधूरा ही पाती है, और अंत में यह सोचने को बाध्य हो जाती है - ''सब के सब एक-से है।''

'पैर तले की जमीन' राकेश का अधूरा नाटक था, जिसे उनका मित्र कमलेश्वर ने पूरा किया। इसमें नदी की बाढ़ के कारण पानी से घिरे विभिन्न पात्र मृत्यु की पीड़ा का कैसा अनुभव करते है यह दिखाया गया है।

● मोहन राकेश के नाटकों की विशेषताएँ :

मोहन राकेश ने सर्वप्रथम नाटक की साहित्यिकता और रंगमंच का समन्वय साधा। उनके नाटकों की कथावस्तु मौलिक, रोचक तथा संक्षिप्त है। घटनाओं में सर्वत्र स्पष्टता, सुसंगति है। आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष की उचित योजना के कारण कथा अधिक प्रभावशाली बन गयी है। इनके नाटकों में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य तत्वों का सुंदर सामंजस्य है। नाटक के पात्र संख्या में कम है। सबकी अपनी विशेषता है। संवाद छोटे-छोटे हास्य-व्यंग्य से युक्त है। इससे पाठक या श्रोता को भाव समझने में सरलता होती है। भाषा सरल, प्रवाही है। इनके नाटक रंगमंच के अनुकूल है।

● नाटककार सुरेन्द्र वर्मा :

हिंदी के बहुचर्चित नाटककारों में सुरेन्द्र वर्मा जी का स्थान ऊँचा है। साठोत्तरी नाटककारों में युवा, प्रयोगशील नाटककार के रुप में वर्मा जी अद्वितीय रहे है। वर्मा जी के नाटक मोहन राकेश के नाटकों की अगली कड़ी कही जाती है।

सुरेन्द्र वर्मा जी का जन्म 7 सितंबर 1941 में हुआ। इन्होंने नाटकों के साथ उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि विधाओं में भी लिखा, लेकिन नाट्य क्षेत्र में इन्हें अधिक सफलता मिली। इनके नाटक इस प्रकार है

– 'द्रौपदी', 'सेतुबन्ध', 'नायक, खलनायक-विदुषक', 'आठवॉ सर्ग', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'छोटे सैय्यद बड़े सय्यद', 'एक दुनी एक', 'शकुंतला की अंगुठी', 'कैद-ए-हयात' आदि।

● वर्माजी के प्रमुख नायकों का परिचय :

'द्रौपदी' नाटक में वर्मा जी ने महाभारतकालीन द्रौपदी के विभाजित व्यक्तित्व को आधार बनाकर प्रमुख पात्र मनमोहन और सुरेखा के दाम्पत्य जीवन में आयी दरार और उसका उनके बच्चों अलका एवं अनिल पर पड़नेवाले प्रभाव को दिखाया है। महानगरीय जीवन के समूची त्रासदी को यह नाटक व्यक्त करता है। आंतरिक संघर्ष को झेलते हुए आज के मध्यवर्गीय पात्र मनमोहन और सुरेखा के प्रतिरुप है। इसका कथानक आधुनिक समाज की नियती और संघर्ष को पूरी तरह व्यक्त करता है। रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक अनुकूल है। पात्र योजना सजीव है तथा भाषाशैली एवं नाट्य-शिल्प की दृष्टि से यह एक सफल कृति है।

'आठवाँ सर्ग' वर्मा जी का चर्चित नाटक है, जिसकी कथावस्तु कालिदास के 'कुमार संभव' के विवादास्पद ह सर्ग की अश्लीलता को आधार बनाकर साहित्य के इस ज्वलंत प्रश्न पर विचार किया है कि साहित्य पर सेन्सर शिप लगाना उचित है या अनुचित। सुरेन्द्र वर्मा जी के विचारों में साहित्य को श्लीलता-अश्लीलता के चश्मे से देखना ठीक नहीं है। कलाकार के उपर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध लगाना उचित नहीं है। नाटककार ने आपातकालीन भारत में सत्ताद्वारा लेखकों की कलम पर लगाये गए अंकुश को गलत ठहराने का सफल प्रयास किया है।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में वर्माजी ने स्त्री-पुरुष संबंधों की नयी व्याख्या करते हुए काम संबंधों की जटिलता को रेखांकित किया है। नाटक की नायिका रानी शीलवती को नपुंसक राजा शारीरिक सुख दे नहीं सकता। तब रानी अमात्य परिषद का निर्णय और पति की आज्ञा मानकर आचार्य आर्यप्रतोष के साथ शरीर संबंध रख लेती है। यदि किसी कारण से पुरुष में नपुंसकता आ जाए तो स्त्री के जीवन में ऐसी जटिलताएँ आ जाती है कि फिर वह नैतिकता, परंपरा मर्यादा तथा संस्कृति के प्रचलित अर्थ भूल जाती है। जीवन की सच्चाई काम-तृप्ति है। नैतिकता, मर्यादा, संस्कृति, परंपरा सब इसके आगे छोटे है। काम सुख स्त्री का अधिकार है और पुरुष का कर्तव्य। स्त्री-पुरुष इनमें से कोई एक किन्ही कारणों से असंतुष्ट या अपूर्ण अनुभव करता है, तो वह अर्पूता जीवन का अभिशाप बन जाती है। यही इस नाटक का कथ्य है। शीलवती कहती है कि नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं केवल पुरुष के इस संयोग सुख में है। नाटककार ने यह स्पष्ट किया है कि काम-सुख ही स्त्री को नैतिकता, मर्यादा, परंपरा में बांधे रखता है। सुरेन्द्र वर्मा जी के इन नाटकों का विश्लेषण करने के बाद यह स्पष्ट होता है, कि वर्मा जी ने स्त्री-पुरुष के काम संबंधों को अपने कई नाटकों की विषय वस्तु बनाया है। वे साठोत्तरी नाटककारों में नई चेतनाओं के युवा प्रयोगशील नाटककार के रुप में सफल है।

- **वैचारिक प्रवाह :**

1960 के बाद के हिंदी नाटकों को साठोत्तरी या समकालीन नाटक कहा जाता है। समकालीन नाटक जीवन में अकेलेपन, रिक्तता बोध, मानवीय संबंधों की जड़ता को अभिव्यक्ति देनेवाले विषयों से संबंधित है। यह नाट्य साहित्य आधुनिक बोध की भूमिका पर लिखा गया है। भले ही उसके लिए पौराणिक कथानक चुने गए हों या आधुनिक परिवेश से कथानक चुने गए हों। स्त्री-पुरुष के बदले हुए संबंधों, व्यक्तियों की निराश मनोदशा, अकेलेपन की पीड़ा, मूख्य विघटन, मानवीय संबंधों की टूटन, यौन कुंठाएँ, भ्रष्ठ व्यवस्था, शोषण के प्रति विद्रोह इन नाटकों की विषय-वस्तु रही है। इन नाटकों के शिल्प में भी नवीनता, सांकेतिकता आदि दिखाई पड़ती है।

समकालीन नाटकों में दो प्रवृत्तियाँ है 1) व्यक्ति चेतना के नाटक, जिनमें मूल्य विघटन, मानवीय संबंधों की टूटन, यौन जीवन की कुंठाएँ आदि का अंकन है। 2) जन चेतना के नाटक जिनमें शोषण मूलक, भ्रष्ट व्यवस्था से शोषित जन जीवन और शोषण के प्रति विद्रोह आदि का अंकन है।

1) **व्यक्ति चेतना प्रधान नाटक :**

महायुद्ध के परिणाम, दो बड़े राष्ट्रों की साम्राज्य लिप्सा तथा षड़यंत्रों से घूमिल अंर्तराष्ट्रीय परिवेश, स्वार्थ से भरा, राजनीतिक सामाजिक, परिवेश अभाव, तंगी से भरा आर्थिक परिवेश, अमानवीय औद्योगिक यांत्रिक सभ्यता इन सबका परिणाम परंपरागत जीवन मूल्यों तथा आदर्शो पर होने लगा। इसी कारण परंपरागत सभी मूल्य टूटने लगे। व्यक्ति का सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन तथा संबंध टूटने लगा। इसके बाद की पीड़ा कुंठा अकेलापन, अभाव इन सबका चित्रण समकालीन नाटकों में हुआ है। जीवन की पीड़ादायक अवस्था संघर्ष और यौन संबंधों के माध्यम से व्यक्त हुई है। इन बातों को प्रस्तुत करनेवाले नाटकों में विष्णू प्रभाकर के 'युगे-युगे क्रांति', 'टूटते परिवेश', जगदीशचंद्र माथुर का 'पहला राजा' (1969) मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे अधूरे' आदि उल्लेखनीय है। विष्णू प्रभाकर ने अपने नाटकों में आधुनिक भाव बोध से उत्पन्न तनाव एवं जीवन संघर्ष को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है। 'युगे-युगे क्रांति' में पीढ़ीगत संघर्ष की अभिव्यक्ति है तथा 'टूटते परिवेश' में पारिवारिक विघटन को यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है। मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक में टूटन, बिखराव की अभिव्यक्ति है। प्रमुख रुप से विघटन की प्रक्रिया का अंकन है। यह विघटन व्यक्ति, परिवार, समाज, देश सर्वत्र व्याप्त है। आज चारों और असंतोष, अविश्वास फैला है। माथुर जी के 'पहला राजा' का कथ्य मिथक, ऐतिहासिक है, किन्तु इसके माध्यम से स्वतंत्र भारत के पुनर्निमाण, आधुनिकीकरण की समस्या को दिखाया है।

लक्ष्मीनारायण लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' में पूँजीवाद और भ्रष्टाचार ने किस प्रकार व्यक्ति को 'चक्रव्यूह' में अभिमन्यु की तरह घेर रखा है, इसका चित्रण है। इनके अन्य नाटकों 'दर्पण', 'मादा कैक्टस', 'अंधा कुआँ' में भौतिकवादी अंधी दौड का चित्रण हुआ है और मानवीय जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत करने वाला गीति नाट्य है। व्यक्ति को बाह्य संघर्ष ही नहीं आन्तरिक संघर्ष भी झेलने पड़ते है और ये आंतरिक संघर्ष अधिक भयावह होते है। इसमें महाभारत के पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग के संत्रास, तनाव, कुंठा, अन्तर्द्वन्द्व आवेश एवं अभिशप्त जीवन को अभिव्यक्त किया गया है।

टूटते संबंधो और मूल्यों को प्रस्तुत करने के लिए नाटकों में यौन जीवन को दिखाया गया है। इस दिशा में उल्लेखनीय नाटक है – मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' लक्ष्मीनारायण लाल के 'दर्पण', 'अंधा कुआॅं', 'मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी', 'रमेश बक्षी का 'वामाचार' आदि। उसी तरह सुरेन्द्र वर्मा के 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', मुद्राराक्षस का 'तिलचट्टा' इनमें भी यौन समस्या का चित्रण है। इस तरह इन नाटकों में आधुनिक नारी की विविध प्रवृत्तियों, प्रेमविवाह, स्त्री–पुरुष के बदले हुए यौन संबंध, कुंठा, मूल्यविघटन, अविश्वास सबका अंकन है।

- **जन चेतना प्रधान नाटक :**

जन चेतना प्रधान नाटकों में आजादी के बाद के राजनैतिक, आर्थिक शोषण मूलक व्यवस्था में पीडित, शोषित जन जीवन का वास्तविक अंकन हुआ है। इस शोषण से मुक्ति के लिए संघर्षशील जन चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इस दिशा में उल्लेखनीय नाटक है– ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', शंकर शेष का 'फंदी', 'एक ओर द्रोणाचार्य, सर्वेश्वर दयाल सकसेना का 'बकरी', मन्नू भंडारी का 'महाभोज' नरेन्द्र कोहली का 'शंबुक की हत्या' असगर वजाहत का 'वीरगति', दूधनाथ सिंह का 'यमगाथा' आदि।

संक्षेप में हम कह सकते है कि इन नाटकों में प्रमुखत: राजनैतिक भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति आक्रोश, विद्रोह का अंकन है। नेताओं की स्वार्थी सत्ता लालसा, प्रशासन क्षेत्र में चलनेवाला भ्रष्टाचार, रिश्वतबाजी, अकार्यक्षमता, पुलिसो का धनवान, राजनेताओं का समर्थन और जनता के प्रति भ्रष्टाचार, क्रूरता, शोषण का व्यवहार, शिक्षा क्षेत्र में अपप्रवृत्तियाँ, न्याय व्यवस्था में अन्यायी, अत्याचारियों का प्रभाव, बेकारी, गरीबी, साम्प्रदायिकता, जातीवाद, ग्राम शोषण की नयी शैलियाँ आदि को दिखाना इस प्रकार के नाटकों का उद्देश्य है।

3.2.4 हिंदी एकांकी साहित्य का विकास – प्रमुख एकांकीकार तथा उनकी कृतियां, वैचारिक प्रवाह

1) **हिंदी एकांकी साहित्य का वैचारिक प्रवाह:–**

आधुनिक युग की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण एकांकी का उद्भव हुआ है 'एकांकी' के उद्भव के लिए निम्नलिखित कारण दिये जाते हैं– (अ) आधुनिक जीवन की व्यस्तता; मनोरंजन के लिए आज लोग अधिक समय बर्बाद करना नहीं चाहते। कम–से–कम समय में वे मनोरंजन चाहते हैं। इसी कारण मएकांकीफ का जन्म हुआ। (आ) पश्चिम में जनता के मनोरंजन के लिए विनोदपूर्ण 'इण्टरल्यूड्स' लिखे जाते थे, उसी का विकसित रूप एकांकी है । (इ) 18 वीं शती में पेरिस, बर्लिन, लन्दन, डबलिन, शिकागो आदि नगरों में लघुमंचीय आंदोलन शुरू हुए; इस कारण एकांकी का विकास हुआ। (ई) प्रीतिभोजों में भोजन के पूर्व के

समय का उपयोग करने के लिखे गये प्रहसनों तथा प्रेक्षागृहों में, इन प्रहसनों के प्रारम्भ में प्रेक्षकों के बीच में आ जाने वाली भीड़ के लिए द्विपात्रीय संवादात्मक 'कर्टेन रेजर' के प्रचलन से एकांकियों के सर्जन को अभूतपूर्व प्रेरणा दी है। (उ) 16 वीं शती के अंत में तथा 20 वीं शती के आरम्भ में विश्व भर में स्कूलों और कालेजों की संख्या बढ़ने लगी । इन स्थानों पर पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विविध अवसरों पर जो नाट्य प्रयोग करने पड़ते थे; वे आकार में छोटे ही चाहिए थे। इस कारण भी एकांकियों का जन्म हुआ ।

उपर्युक्त पाँच कारणों के अलावा और अनेक कारण भी हो सकते हैं, परंतु ये पांच कारण महत्वपूर्ण माने जाते है। इस विधा का जन्म यूरोप में ही हुआ और वहीं से अंग्रेजी के माध्यम से यह विधा हिन्दी में आई ।

आज का एकांकी साहित्य जीवन से पूर्णतः जुड़ा हुआ है, ''जीवन प्रवाह की किसी एक धारा, मानव चरित्र की किसी एक विशेषता, एक उत्तेजक प्रसंग, एक मर्मस्पर्शी घटना, एक जीवन्त क्षण की चित्रावली, प्रस्तुत करना एकांकी का उद्देश्य होता है।'' 'अर्थ-बहुत अरु आखर थोरे' वाली बात यहाँ पर होती है। एकांकी का अपना एक निश्चित संविधान होता है । आधुनिक मनुष्य जीवन की व्याख्या करना उसका उद्देश्य है। जीवन की संगति-विसंगति को, विभिन्न समस्याओं को, मानवीय प्रवृत्तियों को तथा समसामयिक विषयों को उद्घाटित करने के उद्देश्य से इस विधा का जन्म हुआ। नाटक की सारी विशेषताओं को ग्रहण करने के बावजूद भी एकांकी नाटक से अलग है। कहानी के निकट होने के बाद भी वह कहानी से दूर है। जिंदगी की कोई एक मूल समस्या या किसी एक पहलू को कथावस्तु के रूप में इसमें स्वीकार किया जाता है। इस कथावस्तु में संघर्ष या द्वन्द्व अत्याधिक जरूरी होता है। संघर्ष तो एकांकी का प्राण तत्व है। अलावा इसके संकलनत्रय, चरित्र-चित्रण, अभिनयशीलता, रंगमंच निर्देश, प्रभाव - ऐक्य इसके अन्य महत्वपूर्ण तत्व हैं ।

2) **हिंदी एकांकी साहित्य का विकास- प्रमुख एकांकीकार तथा उनकी कृतियां अ)भारतेन्दुकालीन एकांकी साहित्य तथा प्रमुख एकांकीकार और उनकी कृतियां:-**

'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'विषस्य विषमौषधम', 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' - भारतेन्दु के इन पाँच लघु नाटकों को आरम्भिक एकांकियों के रूप में स्वीकार किया जाता है। परंतु आधुनिक एकांकी स्वरूप की दृष्टि से ये नाटक संस्कृत से अधिक प्रभावित हैं। कलात्मक दृष्टि का इनमें अभाव है। शिल्प कमजोर है। चरित्र-चित्रण स्थूल है । त्रिकू संगति का निर्वाह नहीं किया गया है। दृश्य के लिए अंक अथवा गर्भाक आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। पारसी रंगमंच का प्रभाव इन पर अधिक है । इस युग के अन्य एकांकीकारों में बालकृष्ण भट्ट राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रेमधन आदि प्रमुख हैं इस काल में लिखे गये एकांकी दो प्रकार के हैं; अनुवादित या छायांकित तथा दूसरे मौलिक। भारतेन्दु का 'भारत जननी' बंगला एकांकी का अनुवाद है और 'भारत दुर्दशा' उनका मौलिक एकांकी। ये एकांकियाँ एकांकी-साहित्य के आरम्भिक अवस्था को स्पष्ट करते हैं । इन एकांकीकारों के प्रेरणा स्रोतों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि -''प्रायः नाटककारों को एकांकी लेखन की मूल प्रेरणा धार्मिक कृत्यों एवं कथाओं, पुराणों के आख्यानों, इतिहास के प्रसिद्ध इतिवृत्तों समाज की दुष्प्रवृत्तियों, राष्ट्र के प्रति अनुराग,

प्राचीन भारत के गौरव से मिली हैं।'' इनका उद्देश्य प्राचीन भारत के गौरव को ही स्पष्ट करना था, मानवी जीवन की व्याख्या करना नहीं। शिल्प की दृष्टि से इस काल के एकांकी अत्यन्त शिथिल हैं। इन लेखकों की दृष्टि शिल्प पर है ही नहीं। इनमें नृत्य, संगीत, गीत, हास्य को अधिक महत्व दिया गया है। रंगमंचीय उपलब्धियों की दृष्टि से भी ये सफल नहीं है। पाठ्य पुस्तक के रूप में ही इनका अधिक महत्व है। एकांकीकार जीवन की स्थूलता का वर्णन ही करते बैठे हैं। इनमें पौराणिक, धार्मिक अथवा ऐतिहासिक कथा को केवल संवादात्मक रूप दिया गया है। परिणामतः अभिनय, चरित्र, शिल्प आदि की दृष्टि से आधुनिक एकांकी के बीज इनमें पाये जाते हैं। इन एकांकियों की एक ही उपलब्धि है कि संस्कृत नाट्य विधान से ये धीरे-धीरे दूर हट रहे हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यद्यपि यह सत्य है कि उन्होंने (भारतेन्दु) एकांकी को नाटक से पृथक सत्ता नहीं माना है। और उन्होंने तथा उनके समकालीन नाटककारों में से किसी ने भी ज्ञात भाव से एकांकी लिखने की चेष्टा नहीं की है, तथापि उनके एकांकियों में एकांकी का स्वरूप स्पष्ट है। इस प्रकार नाटकों की भाँति भारतेन्दु ही हिन्दी एकांकी रूपक के जनक हैं। उनका 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' हिन्दी का प्रथम एकांकी है । भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, शालिग्राम, देवकीनन्दन खत्री, राधाकृष्ण दास, अम्बिका दत्त व्यास तथा अन्य अज्ञात लेखकों ने इस एकांकी रूप के विकास में योगदान किया है।

आ) द्विवेदी कालीन एकांकी साहित्य तथा प्रमुख एकांकीकार और उनकी कृतियां:-

द्विवेदी युग वस्तुतः कुछ सीमा तक 'अनुवाद' युग है। क्योंकि इस काल में बंगला और अंग्रेजी के दर्जनों एकांकियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे। मौलिक एकांकियों का इस युग में अभाव-सा है। इस युग नाम लिया जा सकता है के सफल एकांकीकार के रूप में बद्रीनाथ भट्ट का 'पुराने हकीम का नया नौकर', 'ठाकुर दान सिंह', 'हिन्दी की खींचातानी', 'घोंघा बसन्त', 'विद्यार्थी' आदि इनकी प्रसिद्ध एकांकियां हैं। इनकी एकांकियों में समाज की दुर्बलताओं का चित्रण हुआ है। इनमें व्यंग्यात्मकता अधिक है। भट्ट जी के अलावा राधेश्याम कथावाचक (परिवर्तन, कृष्ण सुदामा) जी.पी. श्रीवास्तव (गड़बड़ झाला, दुमदार आदमी), पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (चार बिचारे) आदि उल्लेखनीय हैं।

इस युग में एकांकी के शिल्प में निखार आने लगा। शिल्प पर पाश्चात्य प्रभाव बढ़ने लगा । पारसी रंगमंच से मुक्त होने का प्रयत्न शुरू हुआ, परंतु पूर्ण मुक्ति नहीं मिली है। धार्मिक और ऐतिहासिक विषयों के अलावा सामाजिक विषयों को भी विषय रूप में स्वीकार किया जाने लगा । अर्थात् यथार्थवाद की ओर झुकाव बढ़ने लगा। संवादों में स्वाभाविकता आने लगी। शिल्प संक्षिप्त और आकर्षक बनने लगा। इन विशेषताओं के साथ यह भी ध्यान रखना होगा कि इस काल की एकांकियों में अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से अनेक कमियाँ हैं । इनमें रंग संकेत संक्षिप्त और अपूर्ण हैं ।

1) **जयशंकर प्रसाद :-**

नाटककार जयशंकर प्रसाद 1910-1911 से ही एक अंक में नाटक की किसी कथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे थे। महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित 'सज्जन' नामक एकांकी उन्होंने लिखा । सम्राट

चंद्रगुप्त का सेल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया के ऐतिहासिक विवाह का इतिवृत्त उन्होंने 'कल्याणी परिणय' इस एकांकी में (1922) प्रस्तुत किया । 'करुणालय' में प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं। इन एकांकियों का शिल्प निखर रहा था । 1926 तक प्रसाद तीन अंकों के नाटक लिखते रहे । 1929 में उन्होंने नये ढंग से एकांकी लिखने का प्रयत्न किया और इसी वर्ष 'एक घूंट' लिखा गया । यह हिन्दी का प्रथम सफल एकांकी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, रामचरण महेन्द्र, डॉ. विश्वनाथ मिश्र तथा अन्य आलोचक इसे हिन्दी के सर्वप्रथम एकांकी के रूप में स्वीकार करते हैं। 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय' और 'प्रायश्चित' की अपेक्षा इस एकांकी, में बुद्धितत्व की प्रधानता है। यहीं से पाश्चात्य टेकनीक से प्रभावित होकर एकअंकीय नाटकों का आरम्भ हो जाता है । स्त्री-पुरुष की प्रेम समस्या को मएक घूंटफ में विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वच्छन्दतावादी वायवी अथवा रोमान्टिक प्रेम की अपेक्षा यथार्थवादी, व्यावहारिक और प्रत्यक्ष जीवन के प्रेम रूप का आग्रह इसमें किया गया है । ''एक घूंट पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, वातावरण की प्रभावशाली सृष्टि, समय और स्थल संकलन का निर्वाह, सुगठित कथा संगठन, घटनागत संघर्ष की उत्तरोत्तर क्षिप्रता, संवाद की स्वाभाविकता, मार्मिकता, भावना के स्पर्श, रचना कौशल आदि सभी दृष्टियों से अपने पूर्वगामी भारतेन्दु कालीन रूपक-एकांकियों से नितान्त भिन्न है।'' (साहित्यकोश, भाग-1) उपर्युक्त टिप्पणी में मएक घूंटफ की सारी विशेषताएँ स्पष्ट हुई हैं ।

इस एकांकी में प्रसाद की समन्वयात्मक दृष्टि के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र के मआत्म तत्व रसफ तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के मसंघर्ष तत्वफ का इसमें समन्वय है । भारतेन्दु युगीन शिथिल नाट्य संविधान के स्थान पर यहाँ अत्यन्त सुगठित शिल्प है । इसमें रंग निर्देश भी दिये गये हैं। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण 'एक घूंट'को पाश्चात्य पद्धति का पहला एकांकी और प्रसाद हिन्दी के प्रथम एकांकीकार सिद्ध हो जाते हैं।

3) आधुनिक काल का एकांकी साहित्य तथा प्रमुख एकांकीकार और उनकी कृतियां:-

1) डॉ. रामकुमार वर्मा :-

प्रसाद के बाद इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य डॉ. वर्मा का ही है। वास्तव में महिन्दी एकांकीफ को कथा, शिल्प, अभिनय, रंगमंच आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न करने का ऐतिहासिक कार्य डा. वर्मा ने किया है। बर्नाड शॉ, मॅटरलिंक और सिंज की प्रेरणा लेकर आरम्भ में आप एकांकियाँ लिखते रहे। बाद में दर्जनों मौलिक एकांकियाँ लिखी । इनका पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' नाम से 1930 में प्रकाशित हुआ। यह एक प्रतीकात्मक एकांकी है। डा. वर्मा ने पाश्चात्य टेकनीक को अपनाया, पचाया और भारतीय समस्याओं को नये ढंग में उपस्थित किया। पश्चिम के एकांकी कला को पूर्णतः आत्मसात करके भारतीय समस्याओं को इस नये शिल्प में प्रस्तुत करने में वर्मा जी को अत्याधिक सफलता मिली। इसी कारण उन्हें आधुनिक एकांकी का पथ प्रदर्शक माना जाता है। हिन्दी एकांकी साहित्य को डा. वर्मा का योगदान निम्नलिखित रूपों में है. -

1. चरित्र चित्रण, समस्या विवेचन और नाटकीय परिस्थिति में सूक्ष्मता ला दी ।

2. शिथिल और अव्यवस्थित शिल्प का सुस्थिर रूप ला दिया ।

3. भारतीय संस्कृति और समाज का सजीव चित्रण किया।

4. जीवन्त, सजीव और संस्कारों से मुक्त पात्रों की सृष्टि की।

5. एकांकियों में वर्णनात्मकता की अपेक्षा अभिनयात्मकता को सर्वोपरि महत्व दिया। इसी कारण इनके एकांकी मंच पर अत्याधिक सफल रहे ।

वर्मा जी के दर्जनों एकांकी प्रकाशित हुए हैं। इनमें से प्रत्येक एकांकी के दर्जनों प्रयोग हुए हैं। उनके सम्पूर्ण एकांकी साहित्य को विषय के अनुरूप विभाजित किया गया है। भी

(अ) **सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी :–** '16 जुलाई की शाम', 'आशीर्वाद', 'इलेक्सन', 'उत्सर्ग', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'कलाकार का सत्य', 'कहां से कहां', 'दस मिनट', 'रजनी की रात', 'रेशमी टाई' आदि ।

(आ) **ऐतिहासिक आदर्शवादी एकांकी :–** वर्मा जी को अत्याधिक सफलता इसी क्षेत्र में मिली। इस क्षेत्र में वे अद्वितीय हैं। 'शिवाजी', 'औरंगजेब की आखरी रात', 'प्रतिशोध', 'समुद्र गुप्त', 'कौमुदी महोत्सव', 'चारूमित्रा', 'पृथ्वीराज की आखें' आदि इनके अमर एकांकी है।

(इ) **भावात्मक आदर्शवादी एकांकी :–** वर्माजी मूलतः कवि हैं, और वह भी छायावादी कवि । इसी कारण उनका कवि ह्रदय भावात्मक एकांकियों में अधिक रमता है। 'बादल की मृत्यु', 'स्वागत है ऋतु राज' 'वर्षा नृत्य', 'उत्सर्ग', 'अंधकार' इनके उत्कृष्ट भावात्मक एकांकी हैं।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि वर्मा जी ने हिन्दी एकांकी को पूर्णतः प्रतिष्ठित करने का कार्य किया है। पात्र, कथावस्तु, वातावरण आदि के अनुकूल रंगमंचीय संकेत वे देते जाते हैं। इन रंग संकेतों के कारण ये एकांकी जीवन्त बन जाते हैं।

भाषा के क्षेत्र में वर्मा जी का योगदान असाधारण है। इतिहास, पुराण, समाज तथा कल्पना आदि विभिन्न धरातल से वे कथावस्तु का चयन करते हैं। इन विभिन्न कथानकों के माध्यम से वे मानवी जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। प्रखर मनोवैज्ञानिक दृष्टि के कारण पात्र जीवन्त बन जाते हैं। चरित्र चित्रण में आदर्शवादी भावना प्रमुख है। एकांकी को प्रतिष्ठित करने के लिए एकांकी की समीक्षा भी इन्होंने प्रस्तुत की। इनके एकांकी संकलन की भूमिकाएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

2) **भुवनेश्वर :–**

19 वीं शती में भावनावादी नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप 'समस्या नाटकों' की सृष्टि यूरोप में हो गयी। प्रखर यथार्थवादी दृष्टि को लेकर नये नाटक लिखे जाने लगे । पश्चिम की इस प्रखर यथार्थवादी और समस्यामूलक दृष्टि को लेकर भुवनेश्वर हिन्दी में आये । 1933 में 'श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना' नामक इनका पहला एकांकी प्रकाशित हुआ । 'प्रतिभा का विवाह', 'रोमान्स और रोमान्स', 'स्ट्राईक', 'ऊसर',

'एक साम्यहीन साम्यवादी', 'बॉम्बे के कीड़े', 'लाटरी', 'शैतान', 'सिकंदर' आदि इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। इनमें भी 'स्ट्राईक' और 'ऊसर' को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इनके करीब-करीब सभी एकांकियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित हैं। एक स्त्री और दो पुरुष यही त्रिकोण इन्होंने बनाये रखा है। इस त्रिकोण का निर्वाह वे परम्पराबद्ध ढंग से नहीं करते। प्रखर बौद्धिकता और आधुनिकता को यहां स्वीकार किया गया है। सेक्स की समस्या को वे अत्यन्त यथार्थ रूप में बिना किसी पर्दे के रखते हैं। यहाँ केवल समस्याएँ हैं; समस्याओं का समाधान नहीं । इन एकांकियों को लेकर अब तक यह कहा जाता था कि इन पर पश्चिम का प्रभाव अधिक है। परंतु अब उनकी मौलिकता को स्वीकारा जा रहा है। डा. विपिन कुमार अग्रवाल के अनुसार, ''भुवनेश्वर का सबसे बड़ा कार्य भाषा के क्षेत्र में है । जीवन्त, शक्तिशाली और हरकत की भाषा का प्रयोग भुवनेश्वर ने किया।'' नाटकों की आदर्श भाषा को ही मानों उन्होंने प्रस्तुत किया है।

4) **गणेशप्रसाद द्विवेदी :-**

मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक एकांकीकार के रूप में द्विवेदीजी का कार्य महत्वपूर्ण है। इनके एकांकियों में पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं है। वे पश्चिमी मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए भारतीय परिवेश और भारतीय मानसिकता का विश्लेषण करते हैं। 'सुहाग बिन्दी' यह एकांकी संग्रह 1935 में छपा। 'परदे का अपर पार्श्व', 'अंगूर खट्टे हैं', 'शर्मा जी', 'सर्वस्व', 'समर्पण' आदि इनके अन्य प्रसिद्ध एकांकी हैं। आरम्भ के एकांकियों में यौन समस्याओं को ही महत्व दिया गया था। परन्तु बाद में वे जीवन के विविध समस्याओं को स्वीकार करने लगे। अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से इनके एकांकी सफल रहे हैं।

4) **सेठ गोविंददास :-**

इनके अधिकतर एकांकी सामाजिक विषयों पर आधारित हैं। आरम्भिक एकांकियों में देशाभिमान की वृत्ति अधिक प्रकट हुई है। मानव मन के विविध स्तरों का उद्घाटन सेठ जी करते गये हैं। सेठ जी त्रिक संगति का उचित निर्वाह नहीं करते एकांकी के लिए वे इसे आवश्यक भी नहीं मानते। इनके एकांकी में दो-दो, तीन-तीन दृश्य होते हैं। 'मानव मन', 'मैत्री', 'धोखेबाज', 'ईद और होली', 'स्पर्धा', 'अधिकार और लिप्सा', 'महाराज', 'यूनो', 'हंगर स्ट्राइक', 'विटामिन' आदि इनके प्रसिद्ध सामाजिक एकांकियाँ हैं । 'जनश्रुति', 'जाबाल', 'सत्यकाम', 'महावीर का मौन भंग', 'बुद्ध की शिष्या', 'शिवाजी का सच्चा स्वरूप', 'कृष्ण मुरारी', 'गुरु तेग बहादुर की भविष्यवाणी' आदि इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक एकांकियों हैं। राजनीतिक स्वर की एकांकियाँ भी इन्होंने लिखी। इस प्रकार सेठ जी का एकांकी साहित्य विस्तृत है। इन विविध एकांकियों में प्रयोगशीलता की वृत्ति भी दिखलाई देती है। एकपात्री एकांकी हैं; एक दृश्य के हैं; विविध दृश्य के हैं। ये सभी एकांकियाँ उद्देश्य प्रधान हैं। कथानक बड़े ही स्पष्ट हैं। रंग निर्देश भी दिये गये हैं। भाषा अभियात्मक है। पात्रों के अन्तर जगत का चित्रण बहुत कम हुआ है । डा. विश्वनाथ मिश्र के अनुसार, ''इनकी रचनाएँ हमें जीवन के आदर्श स्वरूप की ओर अग्रेसर करती हैं और यही उनका उद्देश्य है।''

5) **उदयशंकर भट्ट :–**

1921-1922 से ही भट्टजी के एकांकी प्रकाशित हो रहे हैं। असहयोग आंदोलन से प्रेरणा लेकर 'असहयोग और स्वराज्य' नामक एकांकी इन्होंने 1921 में लिखा था। डॉ. वर्मा की तरह इनके एकांकी पाश्चात्य टेकनीक के अधिक निकट हैं । 1936 में लिखे गये 'कब्र ही कब्र में' इनकी नाट्य प्रतिभा के पूर्ण दर्शन होते हैं। एकांकी असहयोग आंदोलन से प्रेरणा लेकर 'असहयोग और स्वराज्य' नामक एकांकी इन्होंने 1921 में लिखा था। डॉ. वर्मा की तरह इनके एकांकी पाश्चात्य टेकनीक के अधिक निकट हैं। 1936 में लिखे गये 'कब्र ही कब्र में' इनकी नाट्य प्रतिभा के पूर्ण दर्शन होते हैं। एकांकी कला की दृष्टि से यह रचना सुन्दर और सफल है। अलावा इसके 'स्त्री का हृदय', 'समस्या का अन्त', 'धूम शिखा', 'आदिम युग', 'पर्दे के पीछे', 'आज का आदमी' इनके कतिपय प्रसिद्ध एकांकी संकलन हैं। आधुनिक जीवन की समस्याओं को एकांकियों के माध्यम से सफलता के साथ व्यक्त करने में भट्ट जी को अत्याधिक सफलता मिली है। एकांकी में किसी विशिष्ट सामाजिक उद्देश्य को वे महत्वपूर्ण मानते हैं । उच्च और मध्यवर्ग की विडम्बना पर गहरी चोट इनकी एक अन्य विशेषता है। सामाजिक एकांकियों के अलावा पौराणिक प्रसंगों पर भी इन्होंने एकांकियाँ लिखी हैं। 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगंधा', 'राधा' आदि चर्चित एकांकियाँ हैं । रंगमंच की दृष्टि से भी ये एकांकियाँ सफल रही हैं। इनकी एकांकी कला निरन्तर विकासशील रही है ।

6) **उपेन्द्रनाथ अश्क :–**

'अश्क' हिन्दी के लोकप्रिय एकांकीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका पहला एकांकी संग्रह 'देवताओं की छाया में' 1940 में छपा। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अश्क यथार्थवाद और रंगमंचीय दृष्टि लेकर आये। कम से कम साधनों द्वारा रंगमंचीय व्याख्या इन एकांकियों की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 'चरवाहे', 'पक्का गाना', 'अन्धी गली', 'साहब को जुकाम है', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'अधिकार का रक्षक', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'चुम्बक', तौलिए आदि इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। अधिकतर एकांकियाँ मध्यवर्ग स सम्बन्धित हैं। प्रखर व्यंग्यात्मकता के कारण अश्क के एकांकी अधिक शक्तिशाली बन गये हैं। डॉ. विश्वनाथ मिश्र ने लिखा– ''उनके एकांकी पाठ्यरूप में ही अपने सशक्त, सूक्ष्म, निर्देशात्मक और प्रतीकात्मक रंग संकेतों से हमें पकड़ लेते हैं। अनेक कथानक, घटनाओं के घात–प्रतिघात, त्वरापूर्ण परिवर्तन एवं कलात्मक सुसंगठन से हमारी कौतूहल और जिज्ञासा की प्रवृत्तियों को निरन्तर जागरूक रखते हैं तथा एक गंभीर प्रभाव छोड़ जाते हैं ।'' इनके चरित्र सहज–स्वाभाविक होते हैं। संवाद हरकत की भाषा में लिखे गये हैं, इस कारण उनमें अभिनेयता की जबरदस्त शक्ति है। संकलनत्रय का वे पूर्णतः निर्वाह करते हैं। व्यंग्यात्मकता यह इनकी शैली की प्रधान विशेषता है

7) **जगदीशचन्द्र माथुर :–**

'भोर का तारा', 'ओ मेरे सपने' इनके दो प्रसिद्ध एकांकी संकलन हैं। विवाह सम्बन्धी प्रश्न को लेकर लिखा गया 'रीढ़ की हड्डी' इनका प्रसिद्ध एकांकी है। माथुर अपनी एकांकियों में आधुनिक जीवन की विसंगति का पर्दाफाश करते हैं। कहीं वह पर्दाफाश हास्य और विनोद के स्तर पर प्रकट होता है। (घोंसला)

और कहीं व्यंग्य के रूप में (ओ मेरे सपने) प्रदर्शन वृत्ति, कृत्रिमता, फिल्मी सितारों के प्रति अतिरिक्त आकर्षण आदि आधुनिक मूल्यों और विश्वासों की सहज अभिव्यक्ति इनकी एकांकियों में हुई है । रंगमंच और अभिनय की दृष्टि से ये एकांकी अधिक सफल रहे हैं ।

8) **विष्णु प्रभाकर :–**

विष्णु प्रभाकर गांधीवादी चिन्तन से प्रेरित साहित्यकार हैं। गांधीवादी विचारों की सात्विकता इनकी एकांकियों में भी प्रकट हुई है। 'प्रकाश और परछाई', 'इन्सान' 'बारह एकांकी', 'क्या वह दोषी था' 'दस बजे रात', 'ये रेखायें ये – दायरें' – इनके प्रसिद्ध एकांकी संकलन हैं। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, ''विष्णु प्रभाकर ने आदर्शवाद, सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्यों और मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर सामाजिक एकांकियों की रचना की है। मनुष्य के मन में उठने वाले प्रश्नों और जटिल समस्याओं को वे एकांकी के विषय के रूप में स्वीकार करते हैं तथा उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।''

9) **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल:–**

सफल नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने एकांकी के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग दिये हैं। आरम्भ में इन्होंने ऐतिहासिक एकांकियाँ लिखीं । परन्तु इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। फिर सामाजिक समस्याओं और मानव चरित्र की दुर्बलताओं को लेकर लिखने लगे। डा. लाल की एकांकियों में वर्तमान जीवन की कटु वास्तविकताओं, विषम परिस्थितियों एवं मानव चरित्र की दुर्बलताओं का ही चित्रण अधिक हुआ है। 'ताजमहल के आंसू', 'पर्वत के पीछे', 'नाटक बहुरंगी', इनके तीन प्रसिद्ध एकांकी संग्रह हैं। रंगमंच की दृष्टि से इन एकांकियों की उपलब्धि महत्वपूर्ण है ।

इन प्रमुख एकांकीकारों के अलावा आज इस क्षेत्र में दर्जनों लेखक कार्यरत हैं। स्कूलों और कॉलेजों के स्नेह सम्मेलनों के कारण एकांकियों की मांग बढ़ रही है। रेडियो के कारण एकांकी का स्वतंत्र रूप से विकास हो रहा है। रंगमंचीय एकांकीकारों में उपर्युक्त प्रमुख एकांकीकारों के अलावा डा. धर्मवीर भारती, सत्येन्द्र शरत्, विनोद रस्तोगी, रेवती शरण वर्मा, नरेश मेहता, विमला लूथरा, रमेश बक्षी, चिरंजीत, सिद्धनाथ कुमार, जयनाथ नलिन, राजीव सक्सेना आदि महत्वपूर्ण हैं ।

3.3 शब्दार्थ :

नवजागरण – नए युग का आंदोलन, जाग उठना।

इतिवृत्तात्मक – जैसा है वैसा वर्णन

जासूसी – गुप्त रुप से किसी बात का पता लगाना।

एयारी – चालाकी, धूर्तता

तिलस्मी – जादू, अद्‌भूत कार्य, चमत्कारिक

ऑचलिक – प्रादेशिक, विशिष्ट प्रदेश का जीवन-वर्णन

यथार्थ - वास्तविक, सच्चा।

मूल्य - नीति-नियम

आधुनिक बोध - नये बदले हुए समाज, व्यवहार, वातावरण का वर्णन.

3.4 स्वयं अध्ययन प्रश्न तथा उत्तर :

1) हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास .... को माना गया है।

क) परीक्षा गुरु   ख) चंद्रकांता   ग) सुता   घ) सेवासदन

2) देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकांता' .... उपन्यास है।

क) जासूसी   ख) तिलस्मी   ग) चमत्कारी   घ) ऐतिहासिक

3) प्रेमचंद के .... उपन्यास के प्रकाशन से हिंदी उपन्यासों को नयी दिशा मिली।

क) गबन   ख) गोदान   ग) सेवासदन   घ) मंगलसूत्र

4) 'अंधेरे बंद कमरे' आधुनिक बोध के उपन्यासकार .... है।

क) प्रेमचंद   ख) जैनेंद्र   ग) यशपाल   घ) मोहन राकेश

5) यशपाल .... विचारधारा के कहानीकार है।

क) मनोवैज्ञानिक   ख) साम्यवादी   ग) आंचलिक   घ) राजनैतिक

6) हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी .... है।

अ) उसने कहा था   ख) इन्दुमती   ग) रक्षाबंधन   घ) बेघर

7) प्रेमचंद की प्रथम कहानी .... है।

क) पंचपरमेश्वर   ख) गबन   ग) ईदगाह   घ) कफन

8) हिंदी में नाटक लेखन का प्रारंभ .... से हुआ।

क) भारतेन्दु   ख) द्विवेदी   ग) प्रसाद   घ) गुप्त

9) हिंदी का सर्व प्रथम गीतिनाट्य .... है।

क) शिल्पी   ख) अंधायुग   ग) दर्पण   घ) एक कंठ

10) लहरों के राजहंस .... नाटक है।

अ) सामाजिक   ख) प्रतीकात्मक   ग) आंचलिक   घ) राजनैतिक

- **प्रश्नों के उत्तर**

1) परीक्षा गुरु, 2) तिलस्मी, 3) सेवासदन, 4) मोहन राकेश, 5) साम्यवादी, 6) इन्दुमती, 7) पंच परमेश्वर, 8) भारतेन्दु, 9) अंधायुग, 10) प्रतीकात्मक

3.5 सारांश :

हिंदी साहित्य के इतिहास के सं. 1900 से आजतक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। इसी काल में हिंदी गद्य साहित्य का उद्भव, विकास हुआ। इसी कारण इस काल को गद्यकाल कहा जाता है। भारतेन्दु को आधुनिक हिंदी गद्य-साहित्य का जनक कहा जाता है। हिंदी उपन्यास साहित्य का प्रारंभ आधुनिक काल में भारतेन्दु युग में हुआ। श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' उपन्यास को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना गया। प्रेमचंद के उपन्यास क्षेत्र में आने से हिंदी उपन्यासों को नयी दिशा, गति मिली। हिंदी उपन्यासों में जन जीवन का चित्रण होने लगा। इसी कारण प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है। प्रेमचंदोत्तर काल में हिंदी उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक, साम्यवादी, आंचलिक, समस्या मूलक, समाजवादी, आधुनिक बोध आदि अनेक प्रवृत्तियाँ निर्माण हुयी। आधुकिता, बदले हुए युग के अनुसार कई उपन्यास लिखे गये।

हिंदी में सर्व प्रथम कहानी लाने का श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी माना गया। प्रसाद, जैनेद्र, यशपाल के आगमन से हिंदी कहानी का विकास होने लगा। जैनेद्र ने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी तो यशपाल ने साम्यवादी कहानियाँ लिखी। साठोत्तरी कहानियों में आधुनिक बोध, भूख, बेकारी, देश विभाजन से हुए साम्प्रदायिक दंगे, औद्योगिकरण से निर्मित विभिन्न समस्याएँ आदि का चित्रण हुआ।

भारतेन्दु को हिंदी नाटक साहित्य का जनक माना जाता है। उन्होंने अनेक मौलिक, अनुदित नाटकों की रचना की। जयशंकर प्रसाद के आगमन से हिंदी नाट्य-साहित्य उत्कर्ष पर पहुँचा। प्रसाद ने नाटकों के पात्रों का मनसंघर्ष चित्रित किया, पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। 'चंद्रगुप्त' प्रसाद का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। राष्ट्रीय जागरण, देशभक्ति, अतीत गौरव, नवीन आदर्श प्रसाद के नाटकों की विशेषता है। प्रसाद के बाद समस्यामूलक, आधुनिक बोध अनेक प्रकार के नाटक लिखे गए। अनुवाद होते रहे।

3.6 स्वाध्याय :

1) हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास का परिचय दीजिए।
2) हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों का परिचय दीजिए।
3) साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों की चर्चा कीजिए।
4) हिंदी कहानी साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।
5) हिंदी के प्रमुख कहानीकारों का परिचय दीजिए।

6) विविध कहानी आंदोलन पर प्रकाश डालिए।

7) हिंदी नाटक साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।

8) हिंदी के प्रमुख नाटककारों का परिचय देकर उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

9) समकालीन हिंदी नाटकों की चर्चा कीजिए

3.7 क्षेत्रीय कार्य :

1) आधुनिक काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें।

2) हिंदी के प्रमुख उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, एकांकी और अन्य विधा की रचनाओं को प्राप्त करके उनका अध्ययन करें।

3) साठोत्तरी उपन्यास, कहानी, नाटकों का अध्ययन करें।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) आ. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, इकतीसवाँ सं.स. 2053

2) डा. टण्डन पूरनचंद, डॉ. विनिता कुमारी, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्र. जगतराम एण्ड संस, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2002

3) डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नॅशनल पब्लिसिंग हाऊस, नयी दिल्ली प्र.सं. 1973

4) डॉ. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि. जी-17, जगतपूरी, दिल्ली, पहला सं. 1996.

5) डॉ. खण्डेलवाल जयकिशन प्रसाद, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियॉ प्र. विनोद पुस्तक मंदीर, आगरा-3, सप्तम सं. 1969.

❑❑❑

इकाई–4
आधुनिक हिंदी कथेतर साहित्य का विकास

● **पाठ्य विषय**

– निबंध साहित्य – उद्‌भव, विकास

– यात्रा, जीवन, संस्मरण, आत्मकथा

अनुक्रम :

4.0 उद्‌देश्य।

4.1 प्रस्तावना।

4.2 विषय विवेचन

4.2.1 निबंध साहित्य - उद्‌भव, विकास, प्रमुख निबंधकार

4.2.2 यात्रा साहित्य - उद्‌भव, विकास, प्रमुख यात्र साहित्यकार

4.2.3 संस्मरण साहित्य - उद्‌भव, विकास, प्रमुख संस्मरणकार

4.2.4 आत्मकथा साहित्य - उद्‌भव, विकास, प्रमुख आत्मकथाकार

4.3 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

4.4 शब्दार्थ

4.5 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.6 सारांश

4.7 स्वाध्याय।

4.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

4.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त निम्न बातों से परिचित होंगे -

1) हिंदी निबंध साहित्य के उद्‌भव और विकास का परिचय प्राप्त करेंगे।

2) हिंदी यात्रा साहित्य के उद्‌भव और विकास को समझ सकेंगे।

3) हिंदी संस्मरण साहित्य के उद्‌भव और विकास से परिचित होंगे।

4) हिंदी आत्मकथा साहित्य समज सकोगे।

4.1 प्रस्तावना :

हिंदी गद्य का क्रमबद्ध इतिहास भारतेन्दु युग से ही प्राप्त होता है, पर इसके पूर्व मैथिली गद्य, राजस्थानी गद्य, ब्रजभाषा गद्य और खड़ी बोली गद्य की परंपराये क्षीण, मंद एवं शिथिल गती से प्रवाहित थी। अंग्रेज शासकों के शिक्षा नीति और प्रेरणा से मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल, सदल मिश्र इन्ह हिंदी अध्यापक के साहित्य लेखन का हिंदी गद्य के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व है। साथ ही ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार हेतू प्रकाशित पुस्तकों के कारण हिंदी के विकास में सहायता पहुँची। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध में शिक्षा संस्थाओं के विकास के फलस्वरूप पाठ्यपुस्तकों का निर्माण हुआ और हिंदी गद्य का विकसित रुप सामने आ गया। साथ ही समाचार पत्रों की बढ़ती संख्या ने हिंदी भाषा के विकास को सहायता की। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतेंन्दु हरिशचन्द्र (सन 1850 - 1885) तक के कालखंड में साहित्यकारों के मंडल ने हिंदी भाषा के विकास का लक्ष्य स्विकार कर हिंदी गद्य जगत को सम्पन्न बनाने हुए पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ भाषाशैली को परिष्कृत व परिमार्जित कर उसे सजीवता और विशुद्धता प्रदान करते हुए गद्य शैली का निर्माण किया तथा दुसरी ओर हिंदी के गद्य के विविध साहित्य रुपों को विकसित करने की ओर प्रवृत्त किया। जिसमें कहानी, आलोचना, उपन्यास, नाटक विद्या ने हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया। कालान्तर में निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा, जीवनी, डायरी, पत्र, रिपार्ताज आदि हिंदी गद्य के विविध साहित्य रुपों का उद्भव होकर उसका विकास होता गया और हिंदी गद्य आज समृद्ध है। हिंदी गद्य को समृद्ध करनेवाले कथेत्तर साहित्य विकास पर हम इस इकाई में प्रकाश डालेंगे।

4.2 विषय विवेचन

4.2.1 निबंध साहित्य-उद्भव एवं विकास :

हिंदी गद्य साहित्य में निबंध की जन्मदाता भारतेन्दु युगीन पत्र-पत्रिकाएँ रही हैं। तत्कालीन भारतीय समाज में एक नई सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना का उदय हुआ। स्वतंत्रता और संस्कृति रक्षण इस विषय को लेकर उस समय में पत्र-पत्रिकाओं में निबंध प्रकाशित होते रहे। इनके प्रारंभिक लेखक उसी पत्र-पत्रिकाओं मे संपादक थे। तत्कालीन युग की माँग के नुसार विषय की विविधता, सामाजिक और राजनीतिक जाग्रति, शैली की रोचकता, तीक्ष्णता और चंचलता, अभिजात्य गौरव और गांभीर्य का आभाव आदि गुणों से युक्त निबंधों में पत्रकारिता के गुण दिखाई देते है। क्यों कि, तत्कालन पत्र-पत्रिका के संपादक एक साथ अनेक कार्य कर रहे थे, एक ओर संपादन के साथ साहित्य के विभिन्न अंगो का उन्नयन, समाज-सुधार, नाट्यकला का प्रसार, शिक्षा-प्रसार, राजनीतिक गतिविधि का निरीक्षण जनता को जागरूक बनाना। इस तरह पुर्नजागरण काल में निबंध लेखन साहित्य का अन्य माध्यमों से अधिक सहायक माध्यम सिद्ध हुआ। इसलिए उस युग में अधिक निबंध लिखे गए और उनमें तत्कालीन समाज का सच्चा रुप दृष्टिगत होता है। भारतेन्दु युग के लेखकों ने साधारण से साधारण और गंभीर से गंभीर विषयों पर निबंध लेखन किया, जिसमें साधारण, वैचारिक, वैयक्तिक, व्यंग्यात्मक, ललित आदि निबंध के रुप सामने आए। परंतु, उस समय गद्य

का कोई एक स्विकृत रुप सामने न होने के कारण निबंध लेखन का प्रयास वैयक्तिक शैली में ही अधिक हुआ। जिसमें सर्वसाधारण भाषा, प्रान्तीय लोकोक्तियाँ, मुहावरों और शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया। अंग्रेजी में निबंध के पर्याय 'ऐसे' का अर्थ है 'प्रयास'। हिंदी गद्‌य साहित्य के आरंभ में निबंध लेखन का यह 'प्रयास' भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखको नें निबंध विधा को अपनी अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम बनाया। और भारतेन्दु से आज तक हिंदी में प्रचुर मात्रा में निबंध लेखन हो रहा है। निबंध विधा के विकास काल को हम निम्न प्रकार से देखते हैं।

भारतेंदु युग (सन 1857 से 1900 तक)

द्विवेदी युग (सन 1900 से 1920 तक)

शुक्ल युग (सन 1920 से 1940 तक)

शुक्लोत्तर युग (सन 1940 से आज तक)

- **भारतेंदु युग (सन** 1857 से 1900 **तक)**

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी को हिंदी साहित्य के जनक माना जाता है। निबंध, नाटक, इतिहास, आत्मकथा, उपन्यास, इतिहास, यात्रा वर्णन आदि विविध गद्‌य विधाओं का अविर्भाव करते हुए हिंदी साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया। नाटक को छोड़कर सभी विधाएँ नई थी। हिंदी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ, निबंध विधा इस माटी की नयी उपज थी। जिसमें हिंदी भाषा-भाषी लगों की मीटी की गंध, स्वच्छन्दता और यथार्थता के दर्शन होते है। उन्होंने अनेक विषयों पर निबंध लिखे, जिसमें होली, त्यौहार, श्रृतिरहस्य, एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न, नाटक, भुकम्प, मित्रता, अपव्यय, सूरदासजी की जीवन-चरित्र, सरयापूर की यात्रा, पाँचवे पैगंबर, काश्मीर कुसुम, अंग्रेज स्त्रोत तथा जातीय संगीत आदि विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस तरह उन्होंने ऐतिहासिक पुरावृत्तात्मक, धार्मिक आख्यानात्मक, साहित्यिक भाषापरक, यात्रात्मक, जीवनी, विचारात्मक निबंध लिखे। जिसमें अन्तर्विरोध और उपनिवेशवाद विरोधी विचारधारा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस नवजागरण काल में देशवासियों को जागृत करनेवाले भारतेंदुजी ने किसी भी समाज के लिए वे धर्म को आवश्यक मानते हैं। और साथ ही उसमें स्थित बाह्यांडबर का विरोध भी करते है। परन्तु, धार्मिक निबंधों में बाह्यांडबर का समर्थन करते दिखाई देते है, जैसे कार्तिक कर्म विधि, माघ स्नानविधि आदि। उनकी धर्म की अवधारणा प्रगतीशील थी, जो 'भारतदुर्दशा' का मुख्य दायित्व धर्म पर ही है। 'अथ अंग्रेज' स्त्रोत और 'पाँचवा पैगंबर' में उन्होंने अंग्रेजों और मुसलमानों का विरोध किया है। परंतु साथ ही अंग्रेजों को भगाने के लिए मुसलमानों को हिंदुओं के साथ होने का आव्हान करते है, और अंग्रेजों के उधारनीति को भी स्विकारते है। मुहम्मद, बीवी फातिमा, अली इमाम हसन और इमाम हुसेन को वो 'पंच परमात्मा' मानते है। दूसरी ओर महारानी विक्टोरिया, ड्युक ऑफ एडिनवरा, प्रिंस ऑफ वेल्स, रिपन मेथो आदि की प्रशंसा भी करते है। इस तरह भारतेंदु सभी धर्मों और संस्कृतियों के मेल जोल से राष्ट्रीय जागरण और एकता पैदा करना चाहते थे। भारतेदु जी के निबंध विचारात्मक और व्याख्यात्मक, व्यंग्यात्मक आदि विविध शैली में लिखे जिसमें नाटकीय और व्यंग्य विनोद शैली के निबंध प्रभावशाली रहे। ताजगी, जिंदादली, आत्मीयता, हास्य

व्यंग्य इनके निबंधों के प्रमुख गुण है। उन्होंने अपनी भाषा में निबंध लिखकर अपनी भाषा को उन्नत किया है। उन्होंने कहा भी है, 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।'

भारतेंदु के बाद इस काल में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त माने जाते हैं। बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में विषयवस्तु और शैली दोनों में वैविध्य मिलता है। इन्होंने साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक विषयोंपर निबंध लिखे। इनके निबंध एक ओर व्यंग्य-विनोदपूर्ण है तो दूसरी ओर विचारप्रधान मनोवैज्ञानिक है। इन्ह निबंधों में गांभीर्य और विनोदी प्रियता दोनों गुण एक साथ मिलते है। इनके निबंध शैली के भी विश्लेषणात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक आदि कई रुप हैं। इन्होंने अपने निबंधों में विनोद प्रियता एवं गंभीर बात को सुबोध और रोचक ढंग से कहने का प्रयास किया है, तो विचारात्मक निबंध तर्क-पृष्ट शैली में व्यवस्थित ढंग से लिखे है। इनके निबंध 'भट्ट निबंधावली' में संग्रहीत है। साथ ही 'नवीन', 'प्रताप-पीयूष' और 'प्रताप समुच्चय' यह तीन निबंध संग्रह प्रकाशित हुए है। इन्हे गद्य काव्य के 'आदिआचार्य' भी माना जाता है। इनके 'चंद्रोदय' निबंध से गद्य काव्य का आरंभ माना जाता है। इन्होंने उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी सहजता से किया है। 'फीलिंग' 'परसेप्शन' आदि शब्दों को भी वे कोष्टक में रखते है। उनकी भाषा पर पूर्वीपन का प्रभाव है। यथास्थान मुहावरों का प्रयोग उनकी भाषा को अत्यंत सजीव और प्रसन्न बना देता है।

प्रताप नारायण मिश्रजी को भारतेंदु से अत्याधिक आदर था। उनके निबंधों पर भारतेंदु के निबंधों का प्रभाव था, ज्यों व्यंग्य की पैनी धार उनकी अपनी थी। मिश्रजी ने हिंदी निबंध साहित्य में हास्य रस के निबंधों और व्यंग्यात्मक शैली को जन्म दिया। वह खुद अत्यंत मनमौजी और मस्त लेखक थे, जो उनके लेखों का चुलबुलापन पाठकों को आकर्षित करता था। जिससे उनके मस्ती और उल्लास भरे स्वभाव का परिचय होता है। परिणाम स्वरूप; उनकी भाषा भी ग्रामीण अकृत्रिम प्रवाह और सजीवता को लेकर विद्यमान हो जाती है। वे व्यक्तिनिष्ठ शैली के निबंधकार होकर भी अपने समय के प्रवृत्ति के अनुसार साधारण और गंभीर विषयों पर निबंध लेखन किया है। उनके निबंधों के शीर्षक है - 'दाँत', 'भौ', 'वृद्ध', 'मनोयोग', 'बात', 'क्रोध', 'समझदार की मौत है आदि।

तीसरे प्रसिद्ध निबंध लेखक बालमुकुंद गुप्त 'शिवशम्भु का चिट्ठा' और 'खत' इन व्यंग्यात्मक शैली के निबंध के कारण हिंदी जगत में प्रसिद्ध है। इन्होंने गंभीर बात को विनोद पूर्ण ढंग से या व्यंग रुप में प्रस्तुत करते हुए हृदय के क्षोभ और दुःख को अत्यंत प्रवाहपूर्ण ढंग से सहजता से व्यक्त करने की गुप्तजी की अपनी विशेष शैली है। उन्होंने गद्य को परिमर्जित कर उसे भी प्रांजल बनाया। इन्होंने सर्वप्रथम हिंदी समाचार पत्र और पत्रिकाओं का इतिहास प्रस्तुत किया और गद्य भाषा के व्याकरणिक रुप का विवेचन भी किया। इनके द्वारा संपादित 'बंगवासी' को 'भाषा गढ़ने की टकसाल' कहा जाता था। इन्होंने 'हिंदी भाषा, लिपी व्याकरण, राष्ट्रभाषा, जीवन चरित, राजनीतिक व्यंग्य आदि विविध विषयों पर निबंध लिखे।

इस युग के अन्य निबंधकारों में 'आनंद कादम्बिनी' पत्रिका के सम्पादक चौधरी पं. बद्रीनारायण उपाध्याय, 'प्रेमद्यन' जी विचारात्मक निबंधों के जन्मदाता कहे जाते है। इन्होंने ठेठ तत्सम शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ आलंकारिकता का प्रयोग किया है। इनके 'दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली', 'नेशनल काँग्रेस की

दुर्दशा', 'समय' आदि निबंध 'प्रेमद्यन सर्वस्व' के द्वितीय भाग में संकलित है। इसके बाद जगमोहन सिंह भी आलंकृत एवं भावप्रधान शैली के निबंधकार के रुप में महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने ग्राम्य प्रकृति और मानवीय सौंदर्य के भावात्मक रुप चित्रि किये। है इस काल के अन्य निबंधकारों में लाला श्रीनिवासदास, मोहनलाल विष्णुलाल पाठक, हरि मुकुन्द शर्मा, गणेशदत्त शर्मा, भानुदत्त, गोविंदराम प्रभाकर, हरिचन्द्र उपाध्याय, कार्तिक प्रसाद खत्री, देवकीनंदन त्रिपाठी, किशोरीलाल गोस्वामी, नन्दकिशोर देवशर्मा तथा गोपीनाथ प्रभूति उल्लेखनिय है। इन्ह निबंधकारों ने धर्म, समाज, धार्मिक और साम्प्रदायिक विषयों, सदाचार, शरीर-विज्ञान आदि विषयों पर निबंध लिखे। जो तत्कालिन पत्र एवं पत्रिकाओं के प्रकाशित हुए। जिसमें रोचकता, सरसता और विषय-प्रतिपादन के लिए एक विशेष प्रकार की शैली मिलती है। जिनमें साहित्यिक प्रवृत्ति कम होते हुए भी हिंदी निबंध साहित्य के प्रारंभिक युग के इन्ह निबंधकारों और निबंध साहित्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है। डॉ. रामविलास शर्मा कहते है- ''जितनी सफलता भारतेंदु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में नही मिली।'' इस तरह नवजागरण युग में गद्‌य रचना के प्रारंभिक युग में लिखे निबंधों का विशेष महत्त्व है।

● द्‌विवेदि युग :

20 वीं शताब्दी के आरंभ काल में पं. महावीर प्राद द्‌विवेदी जी द्‌वारा हिंदी साहित्य और साहित्यकारों में अभिजात्यपन लाया गया। इन्होंने सबसे पहले भाषा की शुद्‌धता और शब्द समृद्‌धि की ओर ध्यान दिया। द्‌विवेदीजी ने निबंध लेखकों को शिष्टतापूर्वक बात करने का ढ़ंग सिखाया। परिणाम स्वरूप; गंभीर और साहित्यिक निबंधों की परंपरा का प्रारंभ हुआ। निबंध का रुप सार्वजनिक न रहकर शिष्ट समाज की वस्तु बना और देश की परंपरागत भावना, पर्व, त्यौहार इत्यादि विषय की जगह वर्णनात्मक और भावात्मक शैली का सुंदर समन्वय होकर निबंध लिखे गये। जिसमें चिंतन, भाव प्रधानता और मधुरता को विशेष स्थान था। द्‌विवेदी जी का उपदेश था की शुद्‌ध व्याकरण सम्मत भाषा में ऐसे साहित्य का सृजन किया जाए, जिससे उच्च मानवीय गुणों का आदर्श परक अंकन हो। उनकी इस नीति का तत्कालन निबंधोंपर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षि होकर इस युग के निबंधकारों ने राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सामान्य ज्ञानवर्धक, साहित्य समीक्षात्मक इस तरह सभी प्रकार के निबंध लिखे।

इस युग में पत्रकारिता की स्वच्छंदता कम हो गई और निबंध जनसामान्य की अपेक्षा शिक्षित समाज के समीप आकर शिष्ट बनते गये। द्‌विवेदीजी के नैतिकता प्रिय होने के कारण शुद्‌ध भाषा प्रणाली का स्विकार कर विचारों को शालीन बनाने के काम में नैतिक निबंध अधिक लिखे गये। जिससे निबंध में बौदिधकता बढ़ गई और हार्दिकता कम होने लगी। इसलिए द्‌विवेदीजी के अधिकतर निबंध 'बातो का संग्रह' बन गये। उनमें साहित्य के तत्त्वों का अभाव दिखाई देता है। अत: इस काल के निबंधकारों ने अपने निबंधों को ज्ञान का संचित कोश बनाने का प्रयास किया। साथ ही दूसरी भाषा के निबंधों के अनुवाद भी होने लगे।

निबंधकार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का महत्त्व एक शैलीकार के रुप में नहीं, किन्तु शुद्ध भाषा प्रणाली स्थापित करने में है। इसलिए उनके निबंधों का ऐतिहासिक, साहित्यिक महत्त्व नहीं है। परंतु, उनके निबंध 'ज्ञान के संचित कोश' है, जिसमें मौलिक चिंतन नहीं है। उनके 'साहित्य की महत्ता', कवि और कवित्त', कवि कर्तव्य', 'प्रतिभा', 'नाटक', उपन्यास आदि निबंध सरल और सुबोध भाषा शैली में पाठकों के ज्ञान की वृद्धी करने में सक्षम है। द्विवेदी जी 'बेकन' से प्रभावित थे, उन्होंने 'बेकन विचार रत्नावली' नाम से बेकन के निबंधों का अनुवाद किया था। इस तरह द्विवेदी अपने काल के साहित्य की भाषा को शुद्ध बनानेवाले निबंधकार रह चुके है।

● **अन्य निबंधकार :**

द्विवेदी युग के अन्य प्रसिद्ध लेखकों में माधव प्रसाद मिश्र, बाबू गोपालराम गहमरी, बालमुकुंद गुप्त, पं. गोविंदनारायण मिश्र, पं. चंद्रधरशर्मा गुलेरी, डॉ. शामसुंदर दास, बाबू गुलाबराय, मिश्रबंधु, पद्मसिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय आदि उल्लेखनीय है। इनमें माधव प्रसाद मिश्र, पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी और सरदारपूर्ण सिंह को इस युग के प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ठ निबंधकार माना जाता है।

माधव प्रसाद मिश्र के निबंध 'सुदर्शन' में प्रकाशित हो चुके थे। इनके निबंधों का संग्रह 'माधवमिश्र निबंधमाला' नाम से प्रकाशित है। इनके निबंधों का क्षेत्र व्यापक रहा है। अनेक विषयों पर बड़ी रोचक शैली में अत्यंत सारगर्भित निबंधकार रहे मिश्रजी ने पर्व, त्यौहार, पुरातत्व, साहित्य, राजनीति, संस्कृति, भूगोल जीवन-चरित्र अदि विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे है। जिसकी शैली, भाव-प्रणव, रोचक और कहीं कहीं अत्यंत गंभीर है, जिसमें धार्मिक एवं ओजस्वी शैली के दर्शन होते है।

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रतिभाशाली निबंधकार है। इन्होंने कहानियों के समान निबंध लिखे जो अत्यल्प होते हुए भी अद्वितीय और अनूठे हैं। 'कछुआ धर्म', 'संगीत', मोरिस मोहि कुठॉव' बहुचर्चित निबंध है। इनकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और विषयानुकूल है। इनकी निबंध शैली में व्यंग्यात्मकता का पूट भी मिश्रित है, जिसमें गंभीरता और विचारों की नवीनता है। उनका व्यंग्य अत्यंत मार्मिक और तीखा है। इन्होंने विभिन्न प्रसंगों, संभाषणों लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोगकर निबंध की रोचकता बढ़ाई है। इस युग के लेखकों में सबसे अधिक विकसित ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना इनके निबंधों से प्राप्त होती है। इनके निबंधों की विशेषता भाषा और शैली की प्रौढ़ता के साथ विचारों की प्रगतिशीलता एवं ज्ञान की अपूर्व जिज्ञासा दिखाई पड़ती है। जिनके व्यंग्यों में अधिक तीव्रता एवं मार्मिकता है।

सरदार पूर्णसिंह इस आलोच्य युग के एक श्रेष्ठ निबंधकार है। इनके भावात्मक निबंधों में मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता है। इन्होंने एक नई गति और लय के निबंधों की परंपरा को नए मानवतावादी मार्ग की ओर उन्मुख किया। इसके बारे में डा. विजयशंकर मल्ल कहते है- ''निबंध निबंधों की परंपरा की एक नई लय और गति के साथ नये मानवतावादी मार्ग पर ले जाने का कार्य उदार प्रकृति और परमभावुक लेखक सरदार पूर्ण सिंह ने किया।'' इन्होंने विविध संप्रदायों के बाहरी विधिविधान को हटाकर उन सबको भीतर एक

आत्मा का स्पंदन, एक सार्वभौम मानवधर्म का स्वरूप देखा और अपने निबंधों के माध्यम से पाठकों तक मानवतावाद की महत्ता पहुँचा दी। अपने नये ढंग की व्यंजनात्मक शैली एवं भावों की मूर्तिमत्ता प्रदान करने के कारण इनके निबंध भावात्मक शैली में नहीं आते। बल्कि, इसे प्रभावाभिव्यंजक शैली कहना उचित है। क्योंकि, ''सजीव चित्रोपम वर्णन, मार्मिक भाव-व्यंजना, गंभीर विचार-संकेत और भाषिक शैली की ओजस्विता के कारण इनके निबंध एक विशेष प्रभाव की सृष्टि करते हैं। इस तरह स्वतंत्र चिंतन, भावप्रवण अभिव्यक्ति तथा लाक्षणिकता और व्यंजकता का समावेश कर इन्होंने निबंधों का एक सर्वथा नवीन रुप प्रस्तुत किया। जिसमें श्रम, श्रमिक, सरल जीवन, आत्मिक उन्नति आदि विषयों के कारण एक नई चेतना प्रदान की गई। इनके 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'पवित्रता' और 'कन्यादान' अदि अत्यंत प्रसिद्ध निबंध है।

इस युग के अन्य निबंधकारों में बाबू श्यामसुंदर दास के निबंधों में ओजपूर्ण शैली एवं सुष्ठविचारों को पिरो देने से वे उत्कृष्ठ विचारात्मक निबंधकार के रुप में प्रसिद्ध है। इनके निबंध प्राय: आलोचनात्मक शैली में लिखे हैं। 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ', 'समाज और साहित्य', 'कर्तव्य और सभ्यता' आदि इनके उल्लेखनिय निबंध है। इन्होंने गंभीर विचार के निबंधों में विचारों की ही अभिव्यक्ति को प्रधानता देते हुए साहित्यिक, सांस्कृतिक और भाषा वैज्ञानिक विचारों पर निबंध लिखे। बाबु गुलावराय की निबंधकला निरंतर विकास एवं प्रौढता को प्राप्त करती दिखाई देती है। जिसमें उत्कृष्ठ विचारात्मक, भावनात्तमक एवं निजी निबंध है। पद्मसिंह शर्मा के फडकती हुई शैली में लिखे गए निबंधों की भावुकता एवं व्यंग्य दर्शनीय है।

इस तरह द्विवेदी युग के निबंधों में विचारों की प्रधानता और गंभीरता है। सभी लेखक निबंध के व्यक्तिपक्ष को दबा रहे थे। जिसमें भारतेंदुजी युगसी ताजगी, जिंदादली और व्यंग्य-विनोद-प्रियता नहीं है। अर्थात, बुद्धि और भावात्मक ह्दय का सामंजस्य परिलक्षीत नहीं होता है। परंतु, इस युग के निबंध भाषा की दृष्टि से अधिक शुद्ध और परिष्कृत है।

● शुक्ल युग (समृद्ध काल) :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी को हिंदी निबंध साहित्य का युग प्रवर्तक माना जाता है। उनके आगमन से हिंदी निबंध साहित्य का नया युग प्रारंभ हुआ। उनकी साहित्य साधना का यह युग निबंध विधा का समृद्ध काल है। रामचंद्र शुक्ल के रुप में हिंदी को सर्वप्रथम एक महान निबंध-लेखक मिला। उन्होंने विचारात्मक और व्यक्तिप्रधान दोनों प्रकार के निबंध लिखे। विचारात्मक निबंधों में आलोचनात्मक, गवेषणात्मक और विवेचनात्मक रुपों का विकास किया। जिसमें मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा सैद्धांतिक प्रकार के निबंध लिखे। इनके भावों या मनोविकारों पर लिखे निबंधों का विशेष महत्त्व है। शुक्ल जी का ह्दय कवि का, मस्तिष्क आलोचक का और जीवन अध्यापक का रहा, ज्यों इनके निबंधों में सरसता और गंभीरता के साथ कल्याण-भावना घुली-मिली है। समाज में व्यवऱ्हत प्रधान भावों का विवेचन करते समय शास्त्रीय पक्ष में आत्मानुभूति का सम्नवय करके निबंध प्रस्तुत किये। जिसमें उनके व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट झलकती है। डा. विजयशंकर मल्ल शुक्ल जी की विशेषता के बारे में कहते है - ''उनके निबंधों में गहन विचार-विधियॉ

के बीच में सरस भाव-स्त्रोत मिलते हैं। लोभ और प्रीति, करुणा तथा श्रद्धा-भक्ति जैसे निबंधों में जगह-जगह उनकी तन्मयता देखने योग्य है। वैयक्तिकता का प्रदर्शन संस्मरणात्मक संकेत, व्यंग-विनोद के छींटे और कहीं-कहीं विषयान्तर भी उनके निबंधों में मिलते है, पर प्रतिपाद्य विषय को वास्तव में वे कभी भूलते नहीं, उनकी विचारधारा बराबर प्रतिपाद्य विषय से नियंत्रिण होती है।'' इस तरह शुक्ल जी ने एक व्यावहारिक दर्शन का साहित्य और जीवन से संदुर सामंजस्य स्थापित किया है। इसी कारण बाबू गुलाबराय उनके बारे में कहते है - ''आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया।''

इस तरह आ. शुक्लजी ने द्विवेदी युग की शास्त्रीय गद्य शैली को एक नया रुप देकर उसे बहुत ऊँचा उठा दिया। जिसमें विषयों के विश्लेषण और पर्यालोचन की दृष्टि से वैज्ञानिक की सूक्ष्मता और सतर्कता दृष्टिगत होती है। भावों को प्रेरित करने के विचार से पूर्ण सन्हृदयता के दर्शन हेते है। इनके हानीभूत वाक्यों की ध्वनी दूर तक जाती है। इसलिए आलचकों में यह विवाद खड़ा हुआ था कि, शुक्लजी के इन निबंधों को विचार-प्रधान, भाव-प्रधान या वैयक्तिकता प्रधान माना जाए। इनके निबंधों में भारतेन्दु की सी मौलिकता, द्विवेदी युग की सी विचारात्मकता है और सतहीपन और शुष्कता का सर्वथा अभाव है। जिसमें अपूर्व प्रतिभा और मौलिक चिंतन का मेल है। इनके निबंध 'चिंतामणी' (भाग 1 और 2) में संकलित है।

● **अन्य निबंधकार :**

शुक्ल युग के अन्य निबंधकारों में डॉ. बाबुगुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियाराम शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, हरिभाऊ उपाध्याय, रामकृष्णदास वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी, पीतांबरदत्त, बड़थ्वाल, राहुल सांकृत्यायन, निराला आदि शुक्ल युग के प्रसिद्ध एवं सफल निबंधकार हैं।

डा. गुलाबराय के निबंध दर्शनिय एवं विचारात्मक, साहित्यिक व समीक्षात्मक, आत्मसंस्मरणात्मक और हास्य विनोदात्मक है। इनके निबंधों में ललित निबंधों की सारी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है। शुष्क विषयों को भी सुबोध एवं सरल भाषा में रोचक ढंग से प्रस्तुत करते है। व्यक्ति और विषय, विचार और अनुभूति, कथ्य और कथन-शैली का समन्वितरुप इसके निबंधों की विशेता है। 'मेरी असफलताएँ', फिर निराश क्यों' आदि निबंध संग्रह और 'मन की बातें', 'कुछ उथले कुछ गहरे', 'अध्ययन और आस्वाद', 'मेरी मकान', 'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ, 'प्रीतिभोज' आदि इनके निबंध प्रसिद्ध है।

पद्मलाल बख्शी के निबंध में विचारों की मौलिकता एवं शैली की नवीनता है। इनके 'पॉच पात्र', 'विश्वसाहित्य', 'मकरन्द बिंदू', 'प्रबंध-पारिजात', 'त्रिवेणी' आदि महत्त्वपूर्ण निबंध है। सियारामशरण गुप्त के विचारात्मक, संस्मरणात्मक और वर्णनात्मक प्रकार के निबंध 'झूठ और सच' में प्रकाशित है। इनके निबंधों की शैली प्रभावोत्मक है। माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्यिक निबंध भावात्मक शैली में लिखे है, जो 'साहित्य देवता' में संग्रहित है। वासुदेवशरण अग्रवाल के सांस्कृतिक विषयोंपर निबंध लिखे है वियोगी हरी, रामकृष्णदास तथा शांताप्रिय द्विवेदी के निबंधों में भावात्मकता की प्रधानता है। जिसमें विचारों की अपेक्षा नीजि अनुभूतियों की प्रधानता दि है।

इस तरह शुक्ल युग के निबंधों में विषय विविध्य, गंभीरता और सूक्ष्मता है। इस युग के निबंध के स्तर में प्रौढता एवं विषयों का विस्तार होकर भाषा में एक नई अभिव्यंजना पद्धति का उदय हुआ।

● शुक्लोत्तर युग :

शुक्ल युग के बाद निबंध के क्षेत्र में कई लेखकों के प्रयोग निबंध की नवीन शैलियाँ एवं विधाओं के रुप में प्रस्तुत हुई। शुक्ल परंपरा के निबंधकारों में आ. हाजारीप्रसाद द्विवेदी, आ. नंददुलारे वाजपेयी, डा. रामविलास शर्मा, डा. नगेंद्र, शिवदानसिंह चौहान, यशपाल आदि विशे उल्लेखनीय है। विचारप्रधान और सांस्कृतिक विषयोंपर निबंध लिखनेवालो में वासुदेव शरण, धीरेंद्र वर्मा, रामकृष्ण भगवतशरण उपाध्याय, कलयाणमाल लोढ़ा प्रमुख है। साथ ही इलाचंद जोशी, जैनेंद्रकुमार, शांतिप्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर' सच्चिदानंद हिरानंद वात्सायन, प्रभाकर माचवे, भगीरथी मिश्र, अमृतराय धर्मवीर भारती, विद्यानिवास मिश्र, नामवरसिंह, विवेकीराय, शिवप्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, विष्णुकांत शास्त्री, कुबेरनाथ राय तथा रामअवध शास्त्री आदि निबंधकारों ने विविध विषयोंपर निबंध लिखे है। परंतु इस युग कि विशिष्ट उपलब्धि ललित निबंधों की सर्वाधिक है।

शुक्लोत्तर युग के निबंधकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का नाम सर्वोपरि है। जिन्होंने भारतेन्दु युग के बाद ललित निबंधों को एक काल माध्यम के रुप में पुर्नप्रतिष्ठापित किया। व्यापक मानवतावादी दृष्टि और एक गंभीर सांस्कृतिक निष्ठा इनके निबंधों कि विशेषता है। जो उनकी गहरी और पैनी विनोद वृत्ति के सहयोग से निबंधकला चमक उठती है। अतीत की सांस्कृतिक उपलब्धी का मूल्यांकन उन्होंने एक नयी और स्पष्ट दृष्टि से किया है। उनके निबंधों मे कबीर जैसा फक्कड़पन और मस्त मौलापन भाव है। कबीर का प्रभाव रहे आ. हाजरी प्रसाद द्विवेदीजी ने अपने पांडित्य को ललित रुप में परिवर्तीत किया। 'अशोक के फूल' निबंध में वह स्वयं कहते है', पंडिताई भी एक बोझ है- जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बनजाती है तो सहज हो जाती है। इस तरह इनके निबंधों में चिंतन की गंभीरता और मौलिकता के साथ-साथ व्यक्तित्व की कलात्मकता, सरसता और सहजता है, जिससे साहित्य दर्शन तथा सामाजिक व्यवस्था संबंध उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण उद्भावनाएँ मूलत: उनके निबंधों में ही मिलती है। मानव की जिजीविषा और उसकी जय-यात्रा, समाज की तिरस्कृत और पतित जातियों का प्रतिशोध, दरिद्रनारायण की शक्ति ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय उनके 'अशोक के फूल', 'मेरी जन्मभूमि' तथा 'प्रायश्चित की घड़ी' शीर्षक निबंधों में मिलतें है। कबीर की तरह उन्होंने विद्रोह प्रकट करते हुए समाज को जोडने की भावना व्यक्त की है। एक ओर विचारों की तेजस्विता और दूसरी ओर कथन का लालित्य इनका अपूर्व सामंजस्य इनके निबंधों की विशेषता है। जिसमें कबीर और रवींद्र एक स्थान पर मिलते है।

डा. नागेंद्रजी निबंध साहित्य में समीक्षात्मक निबंधकार के रुप में प्रसिद्ध है। इनके निबंधों में विशेष साहित्य क्षेत्र की मौलिक समस्याएँ है। 'काव्यचिंतन', 'विचार और अनुभूति', 'विचार विवेचन', 'विचार और विश्लेषण', 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' आदि इनके निबंध संग्रह है। इनके निबंधों की भाषाशैली गंभीर एवं विश्लेषण प्रधान है। 'वाणीपाणी के कम्पाऊण्ड' और 'हिंदी उपन्यास निबंधों में

रुपात्मकता, अप्रस्तुताकशैली का प्रयोग किया है। गंभीर विचार, मौलिक चिंतन एवं रोचकता इनके निबंधों की विशेषता है।

आलोचनात्मक निबंधों में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा के नाम उल्लेखनीय है। नंददुलारे वाजपेयीजी ने भी आलोचनात्मक निबंध लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

वैयक्तिक निबंधकारों में शांतिप्रिय द्विवेदी अग्रगण्य है। इनके निबंधों में स्वच्छदंता और संवेदनशीलता है। 'सामायिकी', 'संचारिणी', 'साहित्यिकी', 'शाकल्य' इनके निबंध संग्रह है। जिसमें विवेचनात्मकता और भावात्मकता दोनों है, इनमें हास्यव्यंगता, सजीवता और विचारों की गंभीरता साथ-साथ झलकती है।

जैनेंद्रकुमार उत्कृष्ठ विचारात्मक ललित निबंधकार है। इन्होंने सामान्य विषय को भी गंभीर, दार्शनिक पुट देकर प्रस्तुत किया है फिर भी इनकी भाषाशैली सरस एवं आत्मपरक है। 'मंथन','साहित्य का श्रेय और प्रेम', 'सोचविचार' में इनके निबंध संग्रह है। जिसमें दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक साहित्यिक विषयोंपर लिखा गया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण लेकर निबंध लिखनेवाले देवेंद्रसन्याशी प्रमुख है। इन्होंने भारतीय संस्कृति के परंपरागत अक्षुण्ण रुप को अपने निबंधों के विषय बनाये तथा लोकजीवन, लोककला, लोक साहित्य और सांस्कृति का चित्रण किया। देश की मिट्टी की गंध और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरुकता ये दोनों उनके निबंधों की विशेषता है। जिसमें से आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति और लोकगितों के संग्रह कर्ता का घुमंतू और उन्मुक्त जीवन दिखाई देता है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल भी भारतीय संस्कृति और पुरातत्व संबंध अनेक सुंदर निबंध लिखे है; जिसमें गंभीर और विस्तृत अध्ययन के साथ मौलिक चिंतन प्रस्तुता हुआ है।

इस काल में हस्य व्यंग्यात्मक निबंध भी प्रस्तुत हुए हैं, जिसमें हरिशंकर परसाई का नाम सर्वश्रेष्ठ है। 'भूत के पाँव', 'सदाचार का ताबीज', 'बेढब बनारसी', 'निढले की डायरी' इनके निबंध संग्रह है। उन्होंने राजनीतिक, सांस्कृतिक और पीढ़ी-गत मूल्यों की विसंगतियों पर करारा व्यंग किया है। साथ ही शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, नरेंद्र कोहली, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि हस्य-व्यंग निबंधकार के रुप में प्रसिद्ध है।

आत्मपरक निबंधों में रामवृक्षबेनीपुरी का नाम उल्लेखनीय है। 'वन्दे वाणी विनायकी' इनका निबंध संग्रह है। जिसमें समाज और जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को उठाकर उसका समाधान खोजने का प्रयास किया है। संस्मरणात्मक निबंधों में श्री सुंदरलाल त्रिपाठी का 'दैनंदिनी' प्रमुख है। डा. पद्मसिंह शर्मा, कमलेश का 'मै इनसे मिला' दो भागों में संग्रहीत है। और 'इंटरव्यू' टाइप के निबंधों में कैलाश कल्पित का नाम भी प्रमुख है। इस काल के ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, प्रभाकर माचवे, ठाकूर प्रसाद सिंह उल्लेखनीत है।

विद्यानिवारस मिश्र जी ने हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा को प्रशस्त किया। संस्कृत पंडित्य के साथ-साथ लोकजीवन में रुचि तथा गहरी सन्हृदयता के साथ हल्का व्यंग-विनोद इनके निबंधों कि विशषेता है।

इनके प्रमुख निबंध है– 'छितवन की छाँह', 'कदम की फुली डाल', 'मैंने सिल पहुँचाई', 'परंपरा बंधन नहीं', 'अंगद की नियति आदि। इन्होंने ललित निबंध के विषयक्रम का निरंतर विकास किया।

आज हिंदी निबंध साहित्य को समृद्ध बनानेवाले नए लेखकों में– नामवार सिंह, निर्मल वर्मा, नेमिचंद जैन, रमेशचंद्र शहा आदि उल्लेखनीय है। आज निबंध साहित्य प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध है। जिसमें राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक, दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक, कलात्मक, साामजिक, मानव जीवन का यथार्थ, ज्ञान–विज्ञान का चित्रण करनेवाले निबंध लिखे जा रहे हैं।

4.2.2 यात्रा साहित्य : उद्‌भव विकास :

हिंदी गद्‌य साहित्य में यात्रा विधा भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। यात्रा वर्णन रेखाचित्र, संस्मरण तथा कहानी शिल्प का अद्‌भूत समिश्रण है। यात्रा साहित्य का प्रारंभ भी आधुनिक काल में भारतेंदु युग में ही हुआ। जीवनी तथा आत्मकथा साहित्य में जैसे एक बिंदु पर इतिहास का स्पर्श होता है, उसी तरह यात्रा संस्मरण में एक पक्ष भूगोल के आकर्षण से जुड़ा है। जिसमें प्रत्येक स्थल क्षेत्र के व्यक्तित्व उभरकर पाठक को प्रभावित करता है। भारतेंदु युग से लेकर आज तक यात्रा साहित्य विधा का विकास निम्न प्रकार से है–

- **भारतेन्दु युग :**

हिंदी में यात्रा साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ । भारतेदुजी ने 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा' और 'लखनऊ की यात्रा' आदि शीर्षक से यात्रा वृत्तांतो का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। परंतु वे संक्षिप्त निबंध रुप में है। भारतेंदु युग में अनेक पत्र–पत्रिकाओं में यात्रा साहित्य लिखा गया। इस युग के यात्रा साहित्यकारों में दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' (1885), देवी प्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' (1893), शिवप्रसाद गुप्त की 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (1924), स्वामी सत्यदेव कृत 'मेरी कैलाश यात्रा' (1931), : रामायण मिश्र कृत 'युरोपयात्रा के छह मास', कन्हैयालाल मिश्र कृत 'हमारी जपान यात्रा' (1931), मौलवी महेश प्रसाद कृत 'मेरी ईरान यात्रा' (1930), श्रीमती हरदेवी कृत 'लंदन यात्रा', 'भगवानदास वर्मा कृत 'लंदन की यात्रा' आदि इस काल के महत्त्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत रहे है। 'लंदन यात्रा' के कई वृत्त भगवानदीन दुबेजी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित किये है।

- **द्‌विवेदी युग :**

द्‌विवेदी युग में भी पत्र–पत्रिकाओं में अनेक यात्रावृत्त प्रकाशित हुए। इस युग के यात्रावृत्तकारों में स्वामी मंगलानंद, श्रीधर पाठक, उमा नेहरु के यात्रावृत्त महत्त्पूर्ण है। साथ ही देवीप्रसाद खत्री, गोपालराम गहमरी, गदाधर सिंह, स्वामी सत्यदेव परिवाज्रक के यात्रावृत्त पुस्तक रुप में प्रकाशित हुए थे। इनमें स्वामी सत्यदेव परिवाज्रक के 'अमरीका दिग्दर्शन', 'मेरी कैलास यात्रा' तथा 'अमरीका भ्रमण', उल्लेखनीय यात्रा वृत्तांत है, जो औपन्यासिक शैली में लिखे हुए है।

● **छायावाद युग :**

इस युग के यात्रा वृत्तांत लेखकों में भगवतशरण उपाध्याय का 'कलकत्ता से पैकिंग', पं. जवाहरलाल नेहरु का 'रुस की सैर', सत्यदेव परिव्राजक का 'यात्री-मित्र', 'युरोप की सुखद स्मृतियाँ' आदि महत्त्वपूर्ण है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ यात्रावृत्त लेखक है- अप्रतिम घुमक्कड और गाथाकार राहुल सांस्कृत्यायन। जिनके यात्रावृत्तों में भूगोल के अतिरिक्त समाज, इतिहास और संस्कृति का वृत्तांत आ जाता है। जिसकी शैली इतिवृत्त प्रधान है। इनकी प्रमुख रचाएँ है - 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'लंका यात्रावली', 'तिब्बत में सवावर्ष', 'मेरी युरोप यात्रा', 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'यात्रा के पन्ने', 'जपान', 'इरान', रुस में पच्चीस मास', 'किन्नर देश में', 'एशिया के दुर्गम खेडों में'। और इन सबसे अतिरिक्त उनका 'घुमक्कड शास्त्र' (1948) प्रसिद्ध है। ये सारा लेखन 1926 से सन 1956 के बीच किया गया है। सभी रचनाएँ समानत्तर नहीं है। परंतु इतिवृत्त की प्रधानता और वर्णन शैली सब में समान परिलक्षित होती है। हिंदी यात्रा साहित्य में राहुलजी का योगदान परिणाम और वैविध्य दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। साथ ही सेठ गोविंददास कृत 'हमारा प्रधान उपनिवेश' में दक्षिण अफ्रिका की सामाजिक, राजनीतिक स्थिती का सुंदर प्रस्तुतीकरण हुआ है। इस युग के अन्य यात्रावृत्तांतकारों में शिवदास प्रसाद गुप्त, प्रो. मनोरंजन नागार्जुन, केदारनाथ आदि महत्त्वपूर्ण है।

● **छायावादोत्तर युग :**

छायावादोत्तर युग स्वतंत्रभारत का युग है, जिसमें देश का विश्व के अन्य देशों से राजकीय एवं सांस्कृतिक संबंध दृढ बनाने कि प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। परिणाम स्वरूप; लेखक देश-विदेश की यात्राओं को ग्रंथ रुप में प्रकाशित करने लगे। इनमें प्रमुख है - रामवृक्ष बेनीपुरी का 'पैरों में पंख बांधकर' (1952) , भगवतशरण उपाध्याय का 'सागर की लहरों पर' (1959), धर्मवीर भारती का 'ढेले पर हिमालय', ब्रजकिशोर नारायण का 'नंदन से लंदन', अक्षयकुमार जैन का 'दूसरी दुनिया', यशपाल जैन का, 'रुस में 46 दिन', तथा 'पडोसी देश में', मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक' (1953), अमृतराय का 'सुबह के रंग', 'विठ्ठलदास मोदी का 'काश्मीर में 15 दिन', डॉ. जगदीश शर्मा का 'ज्ञान की खओज में', रामकृष्ण बजाज का 'आतलांतिक के उस पार', डा. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल का 'त्रिगर्त की यात्रा', 'विविध परिदृश्य', निर्मल वर्मा का 'चीड़ो पर चांदनी' (1964), आदि महत्त्वपूर्ण यात्रावृत्त है। इस काल में अज्ञेय जी का यात्रावृत्त 'अरे यायावर रहेगा याद' (1956), तथा 'एक बूंद सहसा उछली' (1964) हिंदी साहित्य के उल्लेखनीय यात्रावृत्त हे है। जिसमें चित्रात्मक एवं वर्णनात्मक शैली में यात्रा वृत्त को प्रस्तुत कर यात्रा साहित्य को एक नया आयाम दिया गया है।

इस युग में विषय वैविध्य, रचना शिल्प तथा परिणाम इन तीनों को दृष्टि में रखकर यात्रावृत्त लिखे गये जो अपने पूर्ववर्ती युग से संपन्न रह चुके है। इस काल में 'रुस देश से भारत देश का घनिष्ठ संबध स्थापित होने के कारण रुस के आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक जीवन से संबंधित रोचक तथा ज्ञानवर्धक यार्ा वृत्त लिखे गये। इनमें प्रमुख है - डा. सत्यनारायण, महेश प्रसाद श्रीवास्तव, बनारसीदास चतुर्वेदी, अक्षय कुमार जैन, डा. नगेंद्र तथा यशपाल जैन आदि।

पिछले बीस-बाईस वर्षों में विपुलता से यात्रा साहित्य लिखा जा रहा है। इस में प्रमुख है - अमृता प्रितम कृत 'इक्कीस पंक्तियों का गुलाब', रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'मेरी यात्राएँ', डा. नागेंद्र कृत 'अप्रवासी की यात्राएँ', 'श्रीकान्त शर्मा कृत 'आपेलो का रथ', गोविंद मिश्रकृत 'धुन्धभरी सुर्खी' कमलेश्वर कृत 'खण्डित यात्राएँ', विष्णुप्रभाकर कृत 'ज्योति पुंज हिमालय', रामदास मिश्र कृत 'तना हुआ इंद्रधनुष्य' आदि। आज यात्रा वृत्तांतों का स्वरूप लेखक की रुची, संस्कार, संवेदनशीलता और मानसिकता के अनुसार पृथक-पृथक दिखाई देता है। आज आवागमन के बढ़ते साधनों से यात्रावृत्त लेखन विपुलमात्रा में लिखा जा रहा है। साथ ही विदेशी भाषाओं के यात्रावृत्तों का अनुवाद भी हो रहा है। इस तरह आज का यात्रा साहित्य एक स्वतंत्र विधा के रुप में विकसित होकर समृद्ध हो रहा है।

4.2.3 संस्मरण साहित्य : उद्भव, विकास :

संस्मरण का क्षेत्र रेखाचित्र की अपेक्षा अधिक व्यापक और विस्तृत है। संस्मरण व्यक्ति को गत्यात्मक रुप में प्रस्तुत करता है; जिसमें व्यक्ति के अतिरिक्त बाह्य घटनाओं को भी महत्त्व होता है। इसलिए इसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति या विशिष्ट घटना से संबंधित स्मृति को संवेदनशीलता से अंकित किया जाता है। डा. रामगोपाल सिंह चौहान 'संस्मरण' के वैशिष्ट्य के बारे में कहते है- 'संस्मरण' नाम से ही संस्मरण की विशिष्टता स्पष्ट हो जाती है। संस्मरण में लेखन किसी ऐसी घटना, स्थल या व्यक्ति से संबंधित नीजि अनुभूति की स्मृति को साकारता प्रदान करता है, जो अंदर ही अंदर उसके मन को कुरेदती रहती है, और अभिव्यक्ति के लिए उसके मन प्राण में बनी रहकर भाव, संवेदना और राग के पुटपाक से आकर वायु के स्पर्श से फिर सजग हो उठते है, वैसे ही मन में बसी भाव-रस में पली स्मृति अनुकूल स्थिति-विशेष में सजग हो अभिव्यक्ति में सवाक् रुप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार अरुप स्मृति, रुपाकार ग्रहण कर लेती है। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि, संस्मरणकार किसी देश, काल और पात्र के अतित की स्मृतियों को अपने संस्मरण का साधन बनाकर अपनी भावनाओं को अंकित करता है, जिसमें लेखक की अधिक आत्मनिष्ठता रहती है। संस्मरण में विषय का निकटम चित्रण ही नहीं वरन् लेखक भी उस चित्रण में एक पात्र बन जाता है।

बीसवी शताब्दी के प्रारंभ से ही हिंदी में संस्मरण लेखन शुरु हुआ था। बालमुकुंद गुप्त ने सन 1907 ई. में प्रतापनारायण मिश्र पर एक अत्यंत रोचक संस्मरण लिखा था। उसके बाद श्यामसुंदरदास ने लाला भगवानदीन पर और रामदास गौड ने राय देवीप्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर सुंदर संस्मरण लिखे है। साथ ही आचार्य रामदेव ने स्वामी श्रद्धानंद पर और बनारसदास चतुर्वेदी ने भी श्रीधर पाठक पर संस्मरण लिखे है। भावुकता पूर्ण साहित्यिक संस्मरण लिखनेवालो में पद्मसिंह प्रमुख है, इनका 'पद्म-राग' शीर्षक से लिखा संस्मरण संग्रह संस्मरणीय है।

हिंदी संस्मरण लेखकों में महादेवी वर्मा का नाम शीर्षस्थ है। उनके 'पथ के साथी' (1956) में अपने समय के लेखको को चितेरा है, जिसमें रवींद्रनाथ ठाकुर, मैथिलिशरण गुप्त, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियाराम' शरण गुप्त के संस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत किये

है। 'मेरा परिवार' (1972), में लिखो संस्मरण में पशु–पक्षियों के चित्र उकेरे है। जिसमें महादेवी वर्मा का कवि ह्दय अपनी भावुकता, कोमलता, करुणा, कल्पना और माधुर्य के साथ मुखरित हो उठा है, जिसमें गद्‌य के सृजनात्मकता का प्रारंभ दिखाई देता है।

संस्मरणात्मक साहित्य के विकास में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'संस्मरण' तथा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के 'दीप जले शंख बजे' से विशेष योगदान दिया। शांतिप्रिय द्‌विवेदी का 'पथचिन्ह' संकलन है। सियारामशरण कृत 'झूठ–सच' में संस्मरण विधी भी सामग्री है। प्रसिद्‌ध रेखाचित्रकार श्रीराम शर्मा का 'सन बयालीस के संस्मरण' (सन 1948) संस्मरण संग्रह प्रसिद्‌ध है। साहित्य संस्कृति एवं कलाप्रिय रायकृष्णदास कृत 'प्रसाधिका की प्राप्ति' महत्त्वूर्ण है। बाद में भारतेंदु और प्रसाद पर संस्मरण लिखे गये। विश्वंभरनाथ कौशिक का 'मेरा वह बालकालय' रोचक शैली में लिखा संस्मरण है।

अन्य उल्लेखनीय कृतियों में 'शेष स्मृतियाँ (सन 1939), महाराजकुमार रघुवीर सिंह की कृति है। भगवतशरण उपाध्याय ने 'मैने देखा' 1950 में लिखा संस्मरण है। जैनेंद्रजी ने 'ये तथा वे' और 'गांधी' कुछ स्मृतियाँ ये दो संस्मरण लिखे। जिनमें प्रेमचंद के व्यक्तित्व का बड़ी गहराई से चित्रण किया है। जो साक्षात्कार–रेखाचित्र का मिश्रण है। प्रेमचंद के जीवन संबधी अनेक तथ्यों के आ जाने से यह जीवनी विधा के निकट का संस्मरण है। साथ ही इसमें मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, शुक्ल, शरद, महादेवी आदि साहित्यकारों पर विपुल सामग्री है।

व्यक्तिगत जीवन पर भी अनेक संस्मरण लिखे गये। जिनमें शिवरानी देवी की कृति 'प्रेमचंद घर में', ब्रजमोहन व्यास की कृति 'बालकृष्ण भट्‌ट' संस्मरण में जीवन आदि है।

श्रीरामनाथ सुमन के संस्मरण भी व्यक्तियों के मूल व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करते है। इन्होंने 'हमारे नेता', छायावाद युगीन 'स्मृतियॉ', 'स्मृति के पंख', और 'मैंने स्मृति के दीप जलाए' (1976), संस्मरण लिखे। 'मैंने स्मृति के दीप जलाए' में चौदह साहित्यकारों से संबंधित संस्मरण संकलित है। कुछ संस्मरणों में विश्लेषण को प्रधानता दी है। कुछ में घटनाओं को इसकी भाषा में सरसता और सहजता है।

'पुरानी स्मृतियाँ', प्रो. प्रकाश चन्द्र गुप्त के संस्मरण में उन्होंने जीनके बीच शैशव बीताया, चाचा, विश्वविद्‌यालय आदि के संस्मरणात्मक चित्र उकेरे है। 'वे दिन' वे लोग संस्मरण में श्री मार्तण्ड उपाध्याय जी ने साहित्य मनीषियों तथा राष्ट्र पुरुषों पर संस्करण लिखे है। संस्मरण साहित्य में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की कृतियाँ, 'साहित्यिक जीवन के अनुभव एवं संस्मरण' तथा आचार्य द्‌विवेदी और उनके संगी' महत्त्वपूर्ण स्थान देते है। पं. श्रीनारायण चतुवेदी जी की कृति 'मनोरंजन संस्मरण' तथा 'साहित्यिक चुटकुले' में दीर्घ जीवन के अनुभव और संपादन कला के अनुभव जुटाए गए है। जिसमें लगभग डेढ़सौ संस्मरणों का संकलन है। आचार्य चतुरसेन के 'सुगंधित संस्मरण' भी पठनीय है, यह काफी ज्ञानवर्धक सामग्री प्राप्त करना ने के साथ मनोरंजन शैली में उपस्थित किये गये है।

पं. बनारसीदास की दो कृतियों (1) संस्मरण जिसमें श्रीधर पाठक, रामानंद चट्‌टोपाध्याय, गणेश शंकर विद्‌यार्थी आदि पर महत्त्वपूर्ण संस्मरण है। साथ ही हमारे आराध्य (सन 1952) भी महत्त्वपूर्ण है। श्री सुरेश

सिंह की कृति 'यादों के झरोखे' (सन 1980) में अनेक साहित्यकारों पर सामग्री है। सेठ गोविंददास की कृति 'स्मृतिकण', पी.डी. टंडन की कृति 'कुछ देखा, कुछ सुना', बख्शी की कृति 'जिन्हें नही भूलूँगा', तथा रामानारायण उपाध्याय की कृतियाँ 'जिन्हें भूल न सका', 'धुँधले काँच की दीवार', और 'जिनकी छाया भी सुखकर हैं' सशक्त संस्मरण है। माखनलाल चतुर्वेदी की कृति 'समय के पाँव' (सन 1962) उल्लेखनीय पुस्तक है।

रामकृष्ण दास ने भारतेंदु के जीवन से संबंधित तथ्योंपर आधारित संस्मरण 'भारतेन्दु संस्मरण' नाम से लिखा। जिसे 'धर्मयुग' ने धारावाहिक रुप में 29 अगस्त, 1976 से प्रकाशित किया था।

अज्ञेय जी के आत्मकथत्मक शैली में लिखे संस्मरण भी उल्लेखनीय है। जैसे - 'स्मृति लेखा', 'आत्मनेपद' (सन 1960), 'मन से परे', 'मैं क्यों लिखता हूँ', 'अज्ञेय', 'अपनी निगाह में' और 'लेखक अभियुक्त' आदि।

नागार्जुन कृत 'साहित्यिकों के संस्मरण (सन 1955), बच्चन कृत 'नए पुराने झरोखे', 'दिनकर कृत 'लोकदेन नेहरु' (सन 1965), जानकीवल्लभ शास्त्री कृत 'स्मृति के वातायन' (सन 1968) भारतभूषण अग्रवाल कृत 'लीक अलीक' (1980), आदि महत्त्वपूर्ण संस्मरण है।

इनके साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है - शिवशर्मा कृत 'संस्मृतियाँ, राकेश कृत, 'स्मृतियों के रागचित्र', भगवान सिंह कृत 'उजाले अपनी यादों के', जगदीश चंद्र माथुर 'जिन्होंने जीना जाना', शिवाजी कृत 'झुला', अंचल कृत 'क्षितिज बिंब', डा. रामकुमार वर्मा कृत 'संस्मरणों के सुमन (सन 1962) और 'स्मृति के राजनैतिक अंकुर (सन 1960), काका कालेलकर कृत 'बापू की झाँकियाँ', राजेंद्रप्रसाद कृत 'बापू के कदमों में', इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति' (सन 1953), इन्द्र कृत 'मेरे पिता' (सन 1950) अदि संस्मरण उल्लेखनीय है।

राहुल संकृत्यायन के संस्मरण भी उल्लेखनीय है। प्रारंभिक जीवन पर 'बचपन की स्मृतियाँ' (सन 1955), 55 व्यक्तियों पर 'जिनका मैं कृतज्ञ हुँ' (1957) और 'मेरे असहयोग के साथी' तथा 'अतीत से वर्तमान' अदि।

महन्त आनंद कौशल्यायन की कृतियाँ - 'जो न भूल सका' (सन 1948) और 'जो लिखना पड़ा (सन 1948) महत्त्वपूर्ण संस्मरण है।

यायावर देवेंद्र सत्यार्थी की कृतियाँ 'क्या गौरी क्या साँवली', उल्लेखनीय है। रामदुलारे त्रिवेदी कृत 'काकोरी के दिल जले' (सन 1939) और गुप्त जी की कृति 'एक क्रांतिकारी के संस्मरण' (सन 1960) आदि संस्मरण महत्त्वपूर्ण है।

सन 1960 के बाद संमरण विधा में विपुल मात्रा में कृतियाँ प्रकाशित हुई जिनमें से कुछ उल्लेखनीय है- डा. नगेंद्र - 'चेतना से बिंब' (सन 1967), अजितकुमार ओंकारनाथ श्रीवास्तव - 'बच्चन निकटसे' (1968), काका साहब कालेलकर 'गांधी संस्मरण और विचार' (सन 1968), दिनकर - 'संस्मरण और

श्रद्धांजलियाँ' (सन 1969), सुधांशु 'व्यक्तित्व की झाँकियाँ' (सन 1970), पदमलाल पुन्नालाल बख्शी 'अंतिम अध्याय' (सन 1972), जोश मलीहावादी 'यादों की बारात' (सन 1972) , लक्ष्मीशंकर व्यास 'स्मृति की त्रिवेणिका' (सन 1974), अनीता राकेश 'चंद संतरे और (1975), 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' 1975 में कलमेश्वर द्वारा संपादित है, जिसमें प्रख्यात लेखकों ने अपने साथियों पर लिखा है। क्षेमचन्द्र सुमन- 'रेखाएँ और संस्मरण' और 'जैसा हमने देखा', सुमंगल प्रकाश - 'बापू के साथ (सन 1976), परिपूर्णानंद - 'बीती यादे', (सन 1976), दुर्गावती सिंह - 'सीधी सादी यादे' (सन 1976), विष्णुकांत शास्त्री - 'स्मरण को पाथेय बनने दो' (सन 1978), शंकर दयाल सिंह 'कुछ ख्वाबो में कुछ' (सन 1978), जिसमें यात्रा संस्मरण और रेखाचित्र भी है। भगवतीचरण वर्मा - 'अतीत के गर्त सें' (सन 1979), पन्द्रंह पत्रकारों-साहित्यकारों पर संसमरण। मैथिली शरण गुप्त 'श्रद्धांजलि संस्मरण' (सन 1979) सुलोचना - 'पुन' (सन 1979), विष्णु प्रभाकर 'यादों की तीर्थ यात्रा' (सन 1981), अठराह साहित्यकारों पर संस्मरण है। रामविलास शर्मा 'पंचरत्न' (सन १९८०), राजेंद्र यादव 'और के बहाने' (सन 1981), अमृतलाल नागर 'जिनके साथ जिया' और 'टुकडे-टुकडे दास्तान', प्रतिभा अग्रवाल 'सृजन का सुख-दुःख' (सन 1981), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', 'युगपुरुष' (सन 1983), इसमें निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, नवीन आदि पर संस्मरण है। मुकुधर पांडेय 'स्मृति पुंज' (सन 1983), पद्मा सचदेव की कृति 'दीवानखाना' (सन 1984) इसमें साक्षात्कार के तत्व भी है। और 'मितावघर'। अज्ञेय कृत 'स्मृतिलेखा' (सन 1986) इसमें निराला, पंत, होमवती देवी,रेणु, दिनकर आदि पर संस्मरण लिखे है। कमल प्रसाद गोयनका ने प्रेमचंद (सन 1980) से यशपाल संस्मरण संपादित करने के साथ 'हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ संस्मरण' नाम से सन 1988 में संस्मरण प्रकाशित किया। कृष्णदत्त पालीवाल की कृति 'स्मृति बिंब' सन 1988 में संस्मरण प्रकाशित किया। कृष्णदत्त पालीवाल की कृति 'स्मृति बिंब' सन 1988, बिंदू अग्रवाल कृत 'भारत भूषण अग्रवाल' सन 1989 और कुछ यादे कुछ चर्चाएँ, शोभाकांत कृत 'नागार्जुन मेरे बाबू जी' सन 1990 में लिखे संस्मरण में बेटी ने जीवन से साक्षात्कार करानेवाली घटनाओं का अंकन किया है। शिवपूजन सहायजी ने 'स्मृतिशेष' में साहित्यकार, संपादकों पर लिखा है। सुप्रसिद्ध कहानीकार काशीनाथ सिंह ने सन 1992 में 'याद हो कि न (याद) हो' वारणसी की अद्भूत यादों पर लिखा है। अजित कुमार ने सन 1992 में 'निकटमन में' साहित्यकारों की निकटता, स्नेह और मित्रता अंकित की है। मनमोहन ठाकुर ने सन 1949 से 1988 तक के चालीस वर्षा कालखंड के साहित्यकारो के अंतरंग को 'अंतरंग' संस्मरण में एकत्रित किया है।

रामशेखर शुक्ल अंचल ने 'आस्था कल्प, क्षितिज बिंब और शिलालिपी' संस्मरण लिखे, जिसमें प्रसाद, गुप्त, राहुल, महादेवी, माखनलाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा आदि महान विभूतियो के चरित्र का परिचय करा दिया है। डा. कृष्णाचंद्र गुप्त की कृति 'कालजयी स्मृतियॉ' तथा धर्मवीर भारती की कृति कुछ चेहरे कुछ चिंतन' श्री महत्त्वपूर्ण संस्मरण संकलन है। गिरीश चतुर्वेदी नें 'यमुना से यमुना तक' संस्मरण के दो संकलन लिके जिसमें पहले भाग में संपादक के संस्मरण है, तो दूसरे भाग में विद्वानों पर लिखा है। रामदरश मिश्र की कृति 'स्मृतियों के छंद' भी उल्लेखनीय है।

कमलेश्वर की कृति ''आधारशिलाएँ – एक (जो मैने जिया)'' में अपने साथ जुड़े लोगों पर लिखा है, जिसमें नयी कहानी के तत्व लक्षित होते है।

हिंदी संस्मरण विधा में छोटे-बड़े सभी साहित्यकारों ने लेखन किया है, जो किसी युग विशेष की जानकारी प्राप्त करनी हो तो संस्मरण विधा सहाय्यभूत सामग्री के रुप में महत्त्वपूर्ण सिद्‌ध होगे। इसमें डा. प्रेम, तेज नारायण टंडन द्‌वारा संपादित संकलन 'हिंदी साहित्यिको के पुण्य संस्मरण' नाम से निकली पुस्तक महत्त्वपूर्ण सामग्री है।

हिंदी के किसी साहित्यकार, संपादक अभिनंदन या स्मृति पर ग्रंथ संपादित होता है। तो स्वत: एक संस्मरण का संकलन तयार होता है। जैसे – पं. सीताराम चतुर्वेदी द्‌वारा संपादित 'मालवीय अभिनंदन ग्रंथ' (सन 1937) हरिऔंध अभनंदन ग्रंथ (सन 1936), श्री पराड़कर द्‌वारा संपादित 'प्रेमचंद स्मृति अंक हंस द्‌वारा निकाला गया था। अमृतराय द्‌वारा संपादित 'प्रेमचंद स्मृति' (सन 1959), कमल किशोर गोयंका द्‌वारा संपादित 'प्रेमचंद', 'कुछ संस्मरण' (सन 1980), डा. दशरथ ओझा द्‌वारा संपादित 'सावित्री सिन्हा' स्मृति लेख, श्रीकांत जोशी द्‌वारा 'माखनलाल चतुर्वेदी' यात्रा पुरुष आदि स्मृति ग्रंथो में संस्मरण प्राप्त होते है। डा. माचवे पर भी संस्मरण लिखे है। 'सुमित्रानंदन पंत स्मृति चित्र' में मार्केपर संस्मरण प्राप्त होता है। 'स्मारिका' इस महादेवी की कृति में मानवीय पक्ष अधिक उद्‌घाटित होकर मानवीय गुणों की ये बोलती तस्वीरे है। तथा 'संस्मरण' संग्रह में कविता, संस्कृति और राजनीति के ग्यारह-पुरुषों के संस्मरण है।

इस विधा को आगे बढ़ाने का कार्य पत्र-पत्रिकाओं ने किया है। धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्थान, सरस्वती, हंस, नई धारा, आजकल, कादंबिनी आदि पत्रिकाओं से संस्मरण प्रकाशित होत रहे। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' तथा जगदीश दोनों अपनी सूझबूझ, चिंतनधारा और शिल्प सौंदर्य का परिचय देते हुए 'ज्ञानोदय' का संस्मरण विशेषांक प्रकाशित किया। 'सारिका' से (अंक 282-283) प्रकाशित कर संस्मरण विधा में योगदान दिया।

आज कई लेखकों के संस्मरण प्रकाशित किये जा रहे है। साथ में इस विधा में लेखन शुरु है। विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण संस्मरण दो खंडो में प्रकाशित हुए है।

खंड – 1 : 'साहित्य सृजन के प्रति समर्पित शब्दयोगी'

खंड – 2 : इसमें चार भाग है – i) राष्ट्रीय। भाग्यलिपी लिखनेवाले – गांधी, नेहरु, राजेंद्र प्रसाद, मालवीय आदि। (ii) प्रियजन और पुरजन – समाज सेवी, राष्ट्रकर्मी कुल 33 संस्मरण। (iii) जीवन सहचर। घनिष्ठतम परिवारी इसमें माताजी, स्नेहमयी सहधर्मिणी। (iv) सामान्य जन 66 संस्मरण।

विष्णु प्रभाकर जी ने इस संपूर्ण संस्मरणों को विविधता से संपन्न बनाकर ऐसी विविधता युक्त दुनिया से साक्षात्कार करा दिया है। जिसे पढ़कर मनुष्यता पर विश्वास जमता है। लेखक स्वयं कहते है कि, संस्मरण लिखना एक सचमुच दुष्कर कार्य है। प्राथ: देखा जाता है कि मैं इतना उभर आता है कि व्यक्ति पीछे छूट जाता है। संस्मरण में एक सहज निजीपन होता है। लेखक ने 'दो शब्द' में संस्मरण संबंधी कहा है – ''मैंने'

'अपने' 'में' को महिमामंडित करने की कोशिश से बचने की निरंतर चेष्टा की है।'' इस तरह संमरण लेखन में 'मैं' से बचने की सलाह विष्णु प्रभाकर जी ने दी है।

आज हिंदी गद्य के नवीन विधाओं में 'संस्मरण' विधा अन्यतम है। और वह निरंतर विकसित होती जा रही है और होती रहेगी।

4.2.4 हिंदी आत्मकथा कथा साहित्य उद्भव और विकास, प्रमुख आत्मकथाकार

जीवनी साहित्य की भाँति ही आत्मकथा भी हिन्दी गद्य साहित्य की एक सरस संस्मरणात्मक विधा है। संस्मरणात्मक होते हुए भी यह विधा संस्मरण साहित्य से भिन्न है। यह भी हिन्दी की आधुनिक नवीन विधाओं में एक मुख्य विधा है। हिन्दी साहित्य में आत्मकथा का प्रचलन अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम है। तथ्य विवेचना के संदर्भ में हिन्दी की अन्य विधाओं की तुलना में आत्मकथा को अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक माना जाता है। जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने बीते जीवन का व्यवस्थित वर्णन लिखता है, तब आत्मकथा की सृष्टि होती है।

आत्मकथा का आशय आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ है 'अपनी कथा'। जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करे, उसे 'आत्मकथा' कहते हैं । अर्थात् आत्मकथा ऐसी जीवन कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है, जिसके जीवन-वृत्त का वर्णन अभीष्ट है। दूसरे शब्दों में अपने विषय में लिखे गये संस्मरणों का अधिक व्यवस्थित और विस्तृत रूप ही आत्मकथा है। इसे कुछ विद्वान् 'आत्मचरित' या 'आत्मचरित्र' भी कहते हैं।

हिंदी साहित्य की अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आत्मकथा लिखने की प्रथा यद्यपि नवीन है पर इसका थोड़ा बहुत लिखने का प्रयास आरंभ से ही चला आ रहा है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम आत्मकथा सन 1941 ई में 'अर्द्ध कथा' नाम से 'बनारसी दास' जी ने लिखी है। एक अच्छी आत्मकथा में जिन प्रमुख गुणों का समावेश होना चाहिए वे सभी इसमें यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से भी कृति का महत्व कम नहीं है। रचना के आरंभ में ही लेखक उसकी भाषा के संबंध में कहता है कि वह मध्य देश की बोली बोल कर अपनी कथा कहता है। केवल कविता की दृष्टि से से भी ङ्गअर्द्ध कथाफ का स्थान ऊंचा है साहित्यिक घटनाओं से मुक्त प्रयास रहित शैली में घटनाओं के संजीव और यथा तथ्य वर्णन करने तक का संबंध है। इतनी सुंदर रचना हमारी हिंदी साहित्य में कम समय में प्रस्तुत हुई। आत्मकथा का महत्व अन्य दृष्टि से और भी अधिक है मध्यकालीन सामाजिक अवस्था तथा धनी और निर्धन प्रजा के सुख दुख का यथार्थ परिचय देती है। इसका प्रथम संस्करण सन 1943 में प्रयाग विश्वविद्यालय हिंदी परिषद से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक माता प्रसाद गुप्त हैं।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतेंदु के आगमन से पहले 'अर्द्धकथा' ही आत्मकथा प्राप्त होती है। हिन्दी का 'आत्मकथा' साहित्य लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्राचीन आत्मकथा बनारसीदास जैन रचित 'अर्द्धकथा' (1941 ई.) है। इसके सम्बन्ध में सम्पादक का कहना है कि ''कदाचित् समस्त आधुनिक आर्य भाषा साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्मकथा नहीं है ।'' डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने भी

आत्मकथा-लेखन का प्रारम्भ यहीं से माना है। उनका कथन है कि ''आत्मकथा लिखने वालों में जिस निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह निश्चय ही बनारसीदास में थी। उसने अपने सारे गुण-दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता। इस आत्मकथा में अकबर के समय की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। हिन्दी आत्मकथा का जन्म और विकास भी गद्य की अन्य विधाओं की भाँति वस्तुतः भारतेन्दु-युग से ही होता है। आत्मकथा के विकासक्रम को हम इस प्रकार से देख सकते हैं-

(क) भारतेंदु युग :-

1) **भारतेंदु हरिश्चंद्रः-**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रथम आत्मकथा-लेखन का श्रेय भारतेन्दु को ही दिया जाता है। उन्होंने 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' नामक आत्मकथा लिखी जिसमें उनकी यौवनकालीन रोचक काव्यात्मक घटनाएं निरूपित हैं, किन्तु यह कृति अपूर्ण है । इस युग की भाषा शिथिल है, पर तथ्यपरक स्पष्टता उत्कृष्ट है। केवल दो पृष्ठ वह लिख पाए हैं इसीलिए यह अपूर्ण है। आरंभ में यह लिखते हैं ''हम कौन हैं और किस स्कूल में उत्पन्न हुए हैं आप लोग पीछे जानेंगे आप लोगों को क्या किसी का रोना हो पड़े चल चलिए जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूं कि मेरा जन्म जिस स्थिति को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में ही बड़ा पवित्र दिन है।'' इन पृष्ठों में भारतेंदु ने अपने जीवन के विषय में कोई विशेष बात नहीं लिखी, केवल आत्मकथा लिखने का प्रयास लक्षित होता है।

2) **राधाचरण गोस्वामीः-**

भारतेंदु युग के एक प्रभावशाली तथा प्रगतिशील विचार के लेखक राधाचरण गोस्वामी थे। इन्होंने अपना छोटा सा जीवन परिचय लिखा था जो मथुरा प्रेस से प्रकाशित राधा चरण गोस्वामी का जीवन चरित्र नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तक जीवनी साहित्य के आत्म चरित्र का रूप मात्र है। इस पुस्तक में उसे समय के समाज और प्राचीन कवियों का पता लगता है। यह पुस्तक केवल 12 पृष्ठों की है। वह भी बड़ी मनोरंजक है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है, ''मुझे अंग्रेजी शिक्षा पर बहुत श्रद्धा हुई और मैं अंग्रेजी पढ़ने की ठान ली। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि मैं जिस स्कूल में उत्पन्न हुआ उसमें अंग्रेजी पढ़ना तो दूर की बात है यदि कोई फारसी अंग्रेजी का शब्द भूल से मुक से निकल जाए तो बहुत पश्चाताप करना पड़े। वास्तु मैंने गुप्त रीति से अंग्रेजी आरंभ की... राधाचरण गोस्वामी के जीवन चरित्र भारतेंदु युग की प्रवृत्तियों के विषय में विशेष रूप से अधिक पता चलता है गोस्वामी जी ने अपने विषय में कुछ कम ही कहा है।

3) **प्रताप नारायण मिश्रः-**

प्रताप नारायण मिश्र ने भी आत्मकथा लेखन का आरंभ किया था पर दुर्भाग्य की बात यह है कि वह उसे अधूरा ही छोड़ गए। मिश्रा जी ने अपने लेखन की भूमिका में आत्मचरित्रों की महिमा का वर्णन बहुत सुंदर ढंग पर किया था

4) **अंबिका दत्त व्यास:-**

सन 1901 में अंबिका दत्त व्यास द्वारा लिखा हुआ 'निज वृतांत' प्राप्त होता है। व्यास जी ने व्यास जी ने 56 पृष्टों में अपने जीवन के संवत 1935 से लेकर संबंध 1953 तक का वर्णन किया है। प्रत्येक संवत के शीर्षक को लिखकर संवत क्रमानुसार जीवन का वर्णन है। इन्होंने अपने साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम मनुष्य का परिचय देकर विद्याध्ययन का वर्णन कर फिर अपनी साहित्यिक सेवाओं का वर्णन किया है। इसके साथ ही लेखक ने जहां-जहां नौकरी की है वहां का भी वर्णन किया है। इसके अध्ययन से लेखक के विस्तृत अध्ययन का भी पता चलता है। मेरे पिता के ग्रंथ साहित्य भंडागार में घर-घर पाए जाते हैं और उनका जीवन चरित्र बिहार के प्रसिद्ध शिक्षा संबंधी विद्या विनोद नामक पत्र में बाबू चंडी प्रसाद सिंह छाप चुके हैं तथा इस ग्रंथ में उद्धृत कर कर बाबू साहब प्रसाद सिंह अलग भी खंग विलास ग्रंथालय से प्रकाशित किया है। इसी के अवलोकन से मेरे जन्म तक वृतांत तथा मेरे पूर्वजों का संक्षिप्त चरित्र विदित हो सकता है तो भी सूचना मात्र यहां लिख देता हूं।

इतना विस्तृत उदाहरण देने का मेरा अभिप्राय यह है कि भारतेंदु युग में लेखकों का मन आत्म चरित्र लिखने को अवश्य था। परंतु किसी कारणवश वह अपनी इच्छाओं को पूर्ण न कर सके। थोड़ा बहुत ही अपने जीवन का वर्णन कर सके जिसको की आत्मकथा लिखने का थोड़ा बहुत प्रेयसी कहा जा सकता है पर आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति अवश्य उनमें थी।

5) **श्रीधर पाठक:-**

सन 1927 में श्रीधर पाठक द्वारा लिखी हुई स्व जीवनी प्राप्त होती है यह दो पृष्ठों की जीवनी श्रीधर पाठक ने लिखी है। इसमें उनके जन्म स्थान एवं तिथि का ही विशेष रूप से पता चलता है। साथ ही उनकी शैली संबंधी विशेषताओं का पता चलता है की इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है इनकी स्वजीवनी का उदाहरण उल्लेखनीय है।

इस प्रकार भारतेंदु युग के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस युग के लेखकों ने आत्मचरित्र लिखने का प्रयास भी किया परंतु पूर्ण सफलता किसी को नहीं हुई केवल जन्म स्थान, जन्मतिथि एवं मनुष्य परिचय से ही यह लोग आगे नहीं बढ़े।

(ख) द्विवेदी युग :-

1) **महावीर प्रसाद द्विवेदी:-**

हिंदी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन से पहले आत्मचरित्र लिखने के महत्व को साहित्य सीवियों ने जान लिया था और कुछ लेखकों ने प्रयास भी किया। द्विवेदी जी ने अपने विषय में ङ्गमेरे जीवन रेखाफ नाम से पांच पृष्ठ का चरित्र लिखा है। इस जीवनी में द्विवेदी जी ने अपने संपूर्ण व्यक्तित्व की सच्ची झांकी पाठकों के संमुख की प्रस्तुति है।

इन पृष्ठों में द्विवेदी जी ने अपने व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को बड़ी ईमानदारी और सच्चाई से वर्णन किया है। कुछ पंक्तियों में ही अपने साहित्यिक व्यक्तित्व की स्पष्ट रूप से रेखा खींची है। एक आत्मकथा लेखक की शैली में जो गुण होने चाहिए वह उनकी शैली में विद्यमान है।

यही नहीं इन्होंने नि:संकोच आत्म विश्लेषण किया है इनके द्वारा लिखे हुए पांच पृष्ठ की साहित्यओं के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध होते हैं अगर आचार्य जी अपना संपूर्ण व्यक्तित्व और विस्तार से लिख देते तो वह हिंदी साहित्य में एक और द्वितीय स्थान रखता। फिर भी इन्होंने आत्मचरित्र लिखने का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

2) **आचार्य रामचंद्र शुक्ल:–**

आचार्य शुक्ल जी ने अपने जीवन के कुछ पहलुओं को आत्म संस्मरण शीर्षक से लिखा है। तीन पृष्ठों के इस आत्म चरित्र में शुक्ला जी ने साहित्यिक जीवन में प्रविष्ट होने से पहले जीवन का वर्णन किया है। उन्होंने अपने जीवन की किसी अन्य विशेषता का वर्णन न कर केवल साहित्यिक रुचि का ही वर्णन किया है। किन साहित्यिकों का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा इसका भी इन्होंने स्पष्ट रूप से वर्णन किया।

संस्मरण रूप में लिखा हुआ यह आत्मचरित्र संबंधी निबंध उल्लेखनीय है। शुक्ल जी द्वारा लिखी हुए यह तीन – तीन पृष्ठ उनकी आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति के दयोतक है।

4) **मुंशी प्रेमचंद**

मुंशी प्रेमचंद ने अपने जीवन के विषय में मेरा जीवन सफर शीर्षक से हंस आत्मकथा अंक में सन 1932 में ही प्रकाशित करवाया। मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखे हुए अपने विषय में यह कुछ पृष्ठ उनके समस्त जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं जी इमानदारी और परिश्रम से उन्होंने अपना समस्त जीवन चरित्र लिखा है उसका वर्णन स्पष्ट रूप से लेखक ने किया है लेखक ने निरपेक्ष भाव से अपने जीवन का विश्लेषण किया है।

5) **डॉ. श्याम सुंदर दास:–**

सन 1941 में डॉ श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्म कहानी' प्राप्त होती है यह भी एक विचारणीय कृति है, डॉक्टर श्यामसुंदर दास हिंदी खड़ी बोली के उन्नायकों में से है हिंदी भाषा और साहित्य के महाप्राण है और हिंदी संसार के प्रसिद्ध लेखक है इस दृष्टिकोण से इनका स्थान साहित्य के क्षेत्र में बहुत ऊंचा होने से इनका आत्मचरित्र विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है श्यामसुंदर दास उच्च कोटी के निबंध लेखक थे। इसीलिए उनके जीवनी में भी निबंध शैली की नीरसता प्रकट होती है साहित्यिक और उच्च कोटि की भाषा होने पर भी उसमें माधुरी नहीं है और जीवनी साहित्य की भाषा यदि माधुर्य पूर्ण नहीं है तो उसका रसात्मक साहित्य की दृष्टि से मूल्य बहुत कम हो जाता है इस पुस्तक में हिंदी की सेवाओं और हिंदी से संबंधित अन्य बातों के विषय में विशेष रूप से लिखा गया है यह तो कहा जा सकता है कि श्याम सुंदर दास का जीवन हिंदी साहित्य से परे और क्या था तो कोई आपत्ति नहीं होगी। परंतु मनुष्य अपने जीवन की महत्वपूर्ण सेवाओं के अतिरिक्त कुछ और भी है आत्मचरित्र जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख मात्र नहीं है अतः

वह इतने बड़े साहित्यिक के आत्मचरित्र में चरित्र चित्रण के पूर्ण विकास की कमी खलती है यदि श्याम सुंदर दास हिंदी संसार के अत्यंत प्रसिद्ध व्यक्ति ना होते तो उनकी आत्मकथा पर विचार करने की आवश्यकता ही न होती।

6) **श्री. पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी:–**

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध आलोचकों में श्री पद्मलाल पुन्ना लाल बक्शी का नाम भी अग्रणी है। इन्होंने अपने जीवन का संक्षिप्त विवरण मअपनी बातफ में किया है। साहित्यिक जीवन के अतिरिक्त बाल्यावस्था एवं यौवनावस्था के विषय में लेखक ने एक झांकी – सी प्रस्तुत की है। जीवन पर पड़ी अन्य व्यक्तियों के प्रभाव का वर्णन भी लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है। इस वर्णन के अतिरिक्त लेखक ने अपने विचारों एवं भावों का स्पष्ट चित्रण किया है।

7) **अंबिका प्रसाद वाजपेई:–**

इस युग के आत्मकथा लेखको में अंबिका प्रसाद वाजपेई का नाम उल्लेखनीय हैं। वाजपेई जी हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में भीष्म साहनी का स्थान रखते हैं अपने जीवन का महत्वपूर्ण भाग अपने हिंदी पत्रकारिता और भाषा की समृद्धि में ही लगाया है। इसीलिए आपके द्वारा लिखी हुई आत्मकथा हिंदी साहित्य सेवाओं के लिए लाभप्रद है। इसमें वाजपेई जीने तत्कालीन साहित्यिक व्यक्तित्व के विषय में लिखा है आत्मकथा के इन पृष्ठों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने दैनिक भारत मित्र तथा स्वतंत्र आदि हिंदी के पत्रों का संपादन अत्यंत सफलतापूर्वक किया है इसके अतिरिक्त यानी आत्मकथा में इन्होंने अपनी विद्वत्ता कर्म कुशलता एवं सहज सरलता का उल्लेख स्पष्ट रूप में किया है।

8) **बाबू गुलाब राय:–**

बाबू गुलाब राय द्विवेदी युग के श्रृंखला के लेखक है। आपने दर्शनशास्त्र विषय के लिखो और पुस्तकों के प्राणायाम द्वारा हिंदी साहित्य के मंदिर में प्रवेश किया और धीरे-धीरे एक प्रसिद्ध आलोचकों के प्रतिस्थापक पद पर विराजे। इन्होंने अपनी आत्मकथा स्फुट निबंधों के रूप में लिखी है, 'मेरी और मेरी कृतियां: आत्मविश्लेषण'। मैं विशेष रूप से इन्होंने अपने जीवन के ऐसे पक्षों का साहित्यिक एवं व्यक्तिगत का विश्लेषण किया है। जीवन की घटनाओं का वर्णन ही नहीं किया अपितु आलोचक होने के कारण टीका टिप्पणी भी की है। इसके अतिरिक्त 'मेरी असफलताएं' में लिखे वैयक्तिक निबंधों में या उनकी उनके जीवन का पाठक अनुमान लगाते हैं।

सन 1932 अनेक साहित्यिक लेखक कौन है? जिन्होंने अपने जीवन के विषय में लिखा है। इन लेखकों में पंडित विनोद शंकर व्यास, डॉ धनीराम प्रेम, सद्गुरु शरण अवस्थी, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, पंडित गया प्रसाद शास्त्री, श्रीहरि, महावीर प्रसाद गहमरी, एवं राधेश्याम कथावाचक मुख्य है। इन सभी लेखकों के आत्मचरित्र संबंधी लेख हंस आत्मकथा अंक में प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार हिंदी आत्मकथा

साहित्य के विकास में इस अंक में विशेष सहयोग दिया है। यही नहीं मुंशी प्रेमचंद जी ने भी मेरा जीवन सार इसी अंक में प्रकाशित करवाया है।

पंडित विनोद शंकर व्यास ने ममैंफ नामक शीर्षक में अपने गृहस्थ जीवन तक का वर्णन स्पष्ट रूप से किया है। अपने जीवन की उत्तम घटनाओं का यहां लेखक ने वर्णन किया है। वहां अपनी त्रुटियों का भी स्पष्ट वर्णन किया है वह एक आत्माभिमानी लेखक है। इसी प्रकार विशंभर नाथ कौशिक ने 'मेरा वह बोल बाल्यकाल' शीर्षक में बचपन के कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। 'धनीराम' ने 'मेरा साहित्यिक जीवन' में अपने जीवन की उन सभी घटनाओं का वर्णन किया है जो प्रत्येक नवयुवक लेखक के मार्ग में अनिवार्य रूप से आती है इसी प्रकार 'गया प्रसाद शास्त्री', 'श्री हरि' ने मेरी आत्मकथा में अपने जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है, जो की उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का दिग्दर्शन करवाने में सहायक है।

सन 1935 में आचार्य रामदेव जी द्वारा लिखी हुई 'मेरे जीवन के कुछ पृष्ठ' एवं 'हीरानंद शास्त्री' की आत्मकथा के कुछ पन्ने प्रकाशित हुए आचार्य रामदेव ने अपनी जीवन कथा में अंग्रेजी के प्रति निर्भरता का परिचय स्कूल में मास्टर होते हुए एक अंग्रेज कैप्टन की पटना ट्रेनिंग कॉलेज में विद्यार्थी के रूप में प्रीमियम में झगड़ा करना आदि घटनाओं के वर्णन से अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है

हीरानंद शास्त्री ने 'दो सन्यासी' शीर्षक में एक दो घटनाओं का वर्णन किया है जो की सावित्री और ब्रह्मा के मंदिरों को देखने के लिए घटी थी 'दलाई लामा' और 'दैवी शक्ति' शीर्षक है।

सन 1939 में विद्यावती प्रेस लहरिया सराय, से प्रकाशित प्रोफेसर अक्षय वट मित्र विप्रचंद द्वारा लिखा हुआ आत्मचरित्र 'चंपू' प्राप्त होता है। यह गद्य - पद्य भयी चरित्र आत्मकथा है। इसके 10 अध्याय हैं और सभी के नाम लेखक ने दिए हैं अर्थात समस्त जीवन के भिन्न-भिन्न पहलूओं को लेखक ने शीर्षकों में बांट दिया है जैसे मेरी जन्मभूमि, वंश परिचय, शिक्षा दीक्षा, प्रवास, कोलकाता निवास आदि प्रोफेसर साहब ने अपने जीवन को विस्तार पूर्वक लिखा है।

सन 1939 मैं ही देवी तत्व शुक्ल ने 'मुंशी लुत्फुल्ला' की आत्मकथा का अनुवाद 'एक आत्मकथा' शीर्षक से किया है। अनुवाद करते समय शुक्ला जी ने विषयांतर को छोड़कर केवल आत्मकथा संबंधी बातों का ही इसमें संकलन किया है। यही नहीं महात्मा टाल्सटाय की आत्मकथा का अनुवाद किया है, इसी सन में राजाराम अग्रवाल ने मेरी आत्म कहानी शीर्षक से किया है। इसके अतिरिक्त राजा राम ने भी अपनी आत्मकथा मेरी कहानी नाम से इस सन में प्रकाशित की है।

सन 1940 में स्वामी सत्य भक्त की आत्मकथा सत्याश्रम वर्धा से प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में न तो कोई ऐसी घटना है जो लोगों को चकित करें ना कोई ऐसी सफलता दिखाई है जो लोगों को प्रभावित करें, ना जीवन इतनी पवित्रता के शिखर तक पहुंचा है कि लोग उसकी वंदना करें यह साधारण पुरुष की साधारण कहानी है। सन 1940 में ही रामनाथ लाल सुमन और परमेश्वर दयाल की 'मेरी मुक्ति की कहानी' प्राप्त होती है।

ग) स्वातन्त्र्योत्तर युगः-

द्विवेदी युग के बाद स्वातन्त्र्योत्तर युग में आत्मकथा का बहुमुखी विकास हुआ। स्वाधीन भारत में प्रकाशित प्रथम उल्लेखनीय आत्मकथा यशपाल रचित 'सिंहावलोकन' है। इसमें क्रान्तिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता दर्शनीय है। इसके बाद पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने अपने 20 वर्षों की कथा को निष्पक्ष, पर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। सेठ गोविन्ददास रचित 'आत्म-निरीक्षण' तीन भाग, आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्म-कहानी', वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अपनी कहानी' आदि इस विषय की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इधर एक दशक के अन्तराल में सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा डॉ. हरिवंशराय बच्चन की है जो चार खण्डों में प्रकाशित है। (1) 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (2) 'नीड़ का निर्माण फिर' (3) बसेरे से दूर और (4) 'दश द्वार से सोपान तक चार खण्डों में प्रकाशित हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा स्वयं उन्हीं के शब्दों में एक स्मृति यात्रा यज्ञ' है । ''इसमें उनका प्रारम्भिक जीवन-संघर्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अँगरेजी विभाग के प्रोफेसर के अनेक संदर्भ, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, केम्ब्रिज से डॉक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, केम्ब्रिज से डॉक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में ऑफ़िसर आन स्पेश ड्यूटी (हिन्दी) के रूप में राजनयिक कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए किये गये उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहाँ से अवकाश लेने के बाद का उनका जीवन अनुभव एक वृहद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवन्त और साकार हो उठा है। इस 'स्मृति-यात्रा यज्ञ' में प्रकारान्तर से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का हिन्दी भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्रावृत्त, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएँ और शैलियाँ गुफित हैं। सबसे बड़ी बात है लेखक के आत्म स्वीकार का साहस ।'' डॉ. बच्चन की आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. रामचन्द्र तिवारी की ही तरह धर्मवीर भारती ने भी कहा है- ''हिन्दी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेवाकी, साहस और सद्भावना से कह देना यह पहली बार हुआ है।''

डॉ. बच्चन की आत्मकथा के अतिरिक्त डॉ. देवराज उपाध्याय कृत मयौवन के द्वार पर, राजकमल चौधरी कृत 'भैरवी-तन्त्र', डॉ. रामविलास शर्मा कृत 'घर की बात' शिवपूजन सहाय कृत 'मेरा जीवन', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' कृत 'तपती पगडंडियों पर पद-यात्रा, फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'आत्मपरिचय', डॉ. नगेन्द्र कृत 'अर्धकथा' अमृतलाल नागर कृत 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' आदि आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हैं।

'घर की बात' डॉ. रामविलास शर्मा की विस्तृत आत्मकथा है। स्वयं शर्मा जी के शब्दों में ''घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय सम्बन्धों का चित्रण अधिक है। इसमें कई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।'' 'मेरा जीवन' आत्मकथा में लेखक शिवपूजन सहाय का व्यक्तिगत जीवन तो उद्घाटित हुआ ही है, साथ ही अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं और संदर्भों का प्रामाणिक दस्तावेज भी सामने आया है। मतपती पगडंडियों पर पद-यात्राफ में कन्हैयालाल मिश्र मप्रभाकरफ के तेजस्वी,

सिद्धान्तवादी और कर्मठ व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उद्घाटित हुए हैं। अपनी आत्मकथा 'आत्मपरिचय में रेणु ने अपने जीवन और रचना-संघर्ष को बड़ी सहजता के साथ उजागर किया है। डॉ. नगेन्द्र की 'अर्धकथा' में उनके जीवन का 'अर्धसत्य' व्यक्त हुआ है।

उन्हीं के शब्दों में, 'यह मेरे जीवन का केवल अर्ध सत्य है अर्थात् उपर्युक्त तीन खण्डों में मैंने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है । 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' अपनी आत्मकथा की भूमिका में नागर जी ने कहा है- ममैं पत्थर पर उकेरी गई ऐसी मूर्ति हूँ जो कहीं-कहीं छूट गयी हो। वस्तुतः इसमें कथा-रस भरा हुआ है। यह आत्मकथा आधुनिक सांस्कृतिक जागरण का जीवन्त इतिहास कही जा सकती है।

इधर 'जहाँ मैं खड़ा हूँ', 'रोशनी की पगडंडियाँ', 'टूटते बनते दिन', और 'उत्तर पथ' इन चार भागों में लिखी गयी रामदरथ मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' के नाम से प्रकाशित हुई है। इस कृति में स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण परिवेश से निकलकर संघर्ष के रास्ते अपने जीव का लक्ष्य ढूँढ़ने वाला एक साहित्यकार का पूरा अनुभव-संसार अपने विस्तार में लगभग आधे भारत को समेटे हुए, सजीव रूप में उजागर हो उठा है। 'सहचर है समय' के सम्बन्ध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है - ''इसमें रामदरथ मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है, बनते-बिगड़ते गाँव हैं जिनका जीवन-रस सूख रहा है, उभरते हुए नगर हैं जिनमें मनुष्यता मर रही है और सैकड़ों सामान्य लोग हैं जिनके रोजी-रोटी के लिए किये जाने वाले ऊपर खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्मकथा आज के भारत के सामान्य आदमी के जीवन का दस्तावेज है।''१

इसके अतिरिक्त 'सारिका' पत्रिका ने 'गर्दिश के दिन' नामक स्तम्भ में साहित्यकारों को अपनी संघर्ष-पूर्ण कथा को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया था जिसमें भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कामतानाथ और दूधनाथ सिंह की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। ये आत्मकथ्यपूर्ण आत्मकथा नहीं हैं। कारण यह कि इनमें रचनाकारों का अलग-अलग व्यक्तित्व और अलग-अलग मिज़ाज व्यक्त हुआ है।

घ) भारतीय लेखकों की अनूदित आत्मकथाएँ :-

स्वातंत्र्योत्तर काल में अन्य भाषाओं में प्रकाशित श्रेष्ठ आत्मकथा साहित्य के अनुवाद हिंदी में तत्काल प्राप्त होते गये। कुछ आत्मकथाओं के हिंदी अनुवाद धारावाहिक रूप में पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते रहें। सन् 1953 में काका कालेलकर की 'स्मरण यात्रा' का अनुवाद खुशालसिंह चौहान ने गुजराती से हिंदी में किया विनायक दामोदर सावरकर की आत्मकथा 'कालापानी' शीर्षक से अनुवाद सन् 1956 में हुआ। स्त्री लेखिका श्रीवास्तव सहगल की कृति 'प्रीजन एण्ड चॉकलेट केक' का अनुवाद मुकुंदीलाल ने 'मेरे बचपन की कहानी' शीर्षक से किया। इसके बाद वेद मेहता की आत्मकथा 'फेस टू फेस' का अनुवाद 'मेरा जीवन संघर्ष' से हुआ। महाकवि मीर की आत्मकथा का हिंदी अनुवाद सन् 1961 ई. में अजमल अजमली ने 'जिक्रेमीर' शीर्षक से किया। जहरूदीन मुहम्मद बाबर की फारसी में लिखी आत्मकथा का हिंदी में 'तुजक-ए-बाबरी' के शीर्षक अनुवाद हुआ। अमृता प्रीतम के 'रसीदी टिकट' का अनुवाद बटूक शंकर

भटनागर ने किया। जो सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में मौलिक आत्मकथाओं के साथ अनूदित आत्मकथाओं ने इस विधा को समृद्ध बनाया।

च) हिंदी साहित्यिकों की मौलिक आत्मकथाएँ :-

सन् 1980 के बाद हिंदी साहित्य जगत में जिन महत्त्वपूर्ण आत्मकथाओं का उल्लेख आता है। उनके अधिकतर साहित्यिकों की आत्मकथाएँ हैं। कमलेश्वर ने अपनी आत्मकथा को तीन शीर्षकों के अंतर्गत लिखा 'जो मैंने जिया', 'यादों के चिराग', 'जलती हुई नदी'। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के सहयोगी रहे नानकचंद सू ने 'जीवन के अंतिम वर्ष' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी मोहन राकेश की 'समय सारथी', भगवती चरण वर्मा की 'ये सात और हम', बजगोपालदास अग्रवाल की 'नदिया से सागर तक' रेणु की 'ऋणजल- धनजल', 'भूत-अछूत पूर्व', 'समय की शिला पर आदि। भीष्म साहनी की 'आज के अतीत', कृष्णा सोबती की 'हम हशमत', राजेंद्र यादव की 'मुड मुड के देखता हूँ'' आदि अनेक आत्मकथाओं से यह विधा उत्कर्ष तक पहुँच पाई है।

छ) हिंदी दलित आत्मकथा विकास यात्रा :-

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाओं की संख्या बहुत कम है। सर्वप्रथम हिंदी में भगवानदास की आत्मकथा 'में भंगी हूँ' 1981 में प्रकाशित हुई। किंतु साहित्य जगत् में इसकी चर्चा आत्मकथा से ज्यादा उपन्यास के रूप में हुई। इसके बाद लंबे समय की प्रतिक्षा के उपरांत बीसवी सदी के अंतिम दशक में दलित लेखकों की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई। उनमें मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' भाग-1, सन् 1995 में प्रकाशित हुई। तथा दूसरा भाग सन् 2000 में। सन् 1997 में ओमप्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा 'जूठन' का पहला संस्करण आया। इसके उपरांत कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' प्रकाशित हुई। सन् 2000 में प्रकाशित सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' दलितों की नारकीय वेदनाओं का जिवंत दस्तावेज है। भूतपूर्व राज्यपाल ममता प्रसाद की आत्मकथा 'झोपडी से राजभवन' दलितों की व्यथा गाथा है। दलित आत्मकथाएँ दलित वर्ग की वेदना, शोषण, उत्पीडन, लैंगिक अत्याचार, छुआ-छूत भावना, गरीबी भूखमरी आदि का पर्दाफाश करने में सफल रही है। दलित साहित्य को समृद्ध करने में इस विधा का योगदान है।

उपर्युक्त आत्मकथाओं के प्रकाशन के बावजूद हिन्दी का आत्मकथा साहित्य अभी समृद्ध नहीं कहा जा सकता। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि हिन्दी को माध्यम बनाकर लिखने-पढ़ने वाले पण्डित और मनीषी महान् और गौरवशाली नहीं हो सकते। इसलिए भारत की महान विभूतियों ने अपने को व्यक्त करने के लिए हिन्दी को माध्यम नहीं बनाया। फिर भी कह सकते है भारतीय साहित्य परंपरा में आत्मकथा विधा विकसशील अवस्था में रही है। आत्मकथा अपने विविध रूपों में हिंदी साहित्य जगत को सुशोभित करती रही है। इस कार्य में हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्ध कथा' से स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर युग की मौलिक एवं अनूदित आत्मकथाओं ने इस विधा को समृद्ध किया हैं। आज दलित

आत्मकथाएँ दलित विमर्श की केंद्रबिंदु बना रही है। निश्चित रूप में आत्मकथा विधा उत्कर्ष तक पहुँचने में सफलता हासिल कर पायेगी।

4.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न।

1) हिंदी साहित्य के जनक किसे माना जाता है।

अ) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ब) भारतेंदु

क) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ड) बालमुकुंद गुप्त

2) 'पाँचवा पैगंबर' निबंध संग्रह कर्ता है?

अ) भारतेंदु ब) बालकृष्ण भट्ट क) प्रतापनारायण मिश्र ड) बालमुकुंद गुप्त

3) गद्य के आदिआचार्य किसे कहा जाता है?

अ) बालकृष्ण भट्ट ब) बालमुकुंद गुप्त

क) पं. बद्रीनारायण उपाध्याय ड) अम्बिकादत्त व्यास

4) 'हास्य' रस के निबंधो को जन्म देनेवाले निबंधकार है?

अ) भारतेंदु ब) प्रतापनारायण मिश्र

क) हरिश्चंद्र उपाध्याय ड)आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी

5) 'चिंतामणी' निबंध संग्रह के लेखक कौन है?

अ) आ. रामचंद्र शुक्ल ब) आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

क) भारतेंदु ड) डा. नागेंद्र

6) 'शिवशम्भु का चिट्ठा' यह व्यंग शैली में लिखे निबंध के लेखक है।

अ) भारतेंद्र ब) प्रतापनारायण मिश्र

क) बालमुकुंद गुप्त ड) बालकृष्ण भट्ट

7) विचारात्मक निबंधो के जन्मदाता कौन है।

अ) पं. बद्रीनारायण उपाध्याय ब) हरिमुकुंद शर्मा

क) भानुदत्त प्रभाकर ड) हरिचंद्र उपाध्याय

8) 'बेकन विचार रत्नावली' निबंध संग्रह कर्ता कौन है।

अ) आ. हजारीप्रसाद द्विदी ब) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी

क) सरदार पूर्ण सिंह ड) पद्मसिंह शर्मा

9) माधव प्रसाद मिश्र के निबंध किस पत्रिका से प्रकाशित होते थे।

अ) सारिका ब) सुदर्शन क) भारत दुर्दशा ड) धर्मयुग

10) निबंध को मानवतावादी मार्गपर ले जानेवाले निबंधकार है।

अ) सरदार पूर्णसिंह ब) भारतेंदु

क) आ. शुक्ल ड) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

11) 'कामायणी के अध्ययन की समस्याएँ' निबंध के लेखक है।

अ) भारतेंदु ब) आ. शुक्ल क) डा. नागेंद्र ड) पद्मसिंह शर्मा

12) हस्य व्यंगात्मक निबंध 'भूत के पॉव' के लेखक है।

अ) श्रीलाल शुक्ल ब) नरेंद्र कोहली क) हरिशंकर परसाई ड) शरद जोशी

13) 'सरयूपार की यात्रा' यात्रावृत्त के लेखक है।

अ) भारतेंदु ब) आ. शुक्ल

क) आ.महावीर प्रसाद द्विवेदी ड) महादेवी वर्मा

14) 'मेरी लद्दाख यात्रा' किस की रचना है।

अ) भगवतशरण उपाध्याय ब) राहुल सांस्कृत्यायन

क) शिवदासप्रसाद गुप्त ड) केदारनाथ

15) धर्मवीर भारती का यात्रावृत्त है।

अ) ठेलेपर हिमालय ब) दूसरी दुनिया क) काश्मीर में 15 दिन ड) सुबह के रंग

16) 'गुसाई चरित' में किसका जीवन चरित्र है।

अ) सूरदास ब) गोस्वामी तुलसीदास क) नाभादास ड) रामानंद

17) शिवाजी एवं अहिल्याबाई पर सुंदर जीवनी किसने लिखी है।

अ) भारतेंदु ब) बालमुकुंद गुप्त क) कार्तिक प्रसाद खत्रीड) जगन्नाथ

18) भारतेंदुजी के जीवनी संग्रह का नाम है।

अ) चरितावली ब) रतनसिंह क) पूर्णमल ड) बीरबल

19) 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' जीवन ग्रंथ के लेखक है।

अ) बालमुकुंद गुप्त ब) प्रतापनारायण मिश्र

क) शिवनंद सहाय ड) अयोध्यासिंह उपाध्याय

20) 'बापू' यह म. गांधी पर लिखी जीवनी के

अ) भारतेंदु ब) आ. द्विवेदी क) घनश्यामदास ड) पूर्णचंद्र सनक

21) 'ममतामयी मदर टेरेसा' यह जीवनी किसने लिखी है।

अ) जगदीशचंद्र माथुर ब) मधुरेश क) विजयदेव ड) विष्णुचंद्र शर्मा

22) 'पथ के साथी' किसका संस्मरण संग्रह है।

अ) महादेवी वर्मा ब) बनारसीदास चतुर्वेदी

क) रामवृक्ष बेनीपुरी ड) सुभद्राकुमारी चौहान

23) 'दीप जले शंख बजे' संस्मरण के लेखक है।

अ) पं. बनारसीदास ब) कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

क) श्रीराम शर्मा ड) रामकृष्ण प्रसाद

24) शिवरानी देवी के संस्मरण कृति का नाम है।

अ) हमारे नेता ब) प्रेमचंद घर में क) ये तथा वे ड) स्मृति के पंख

25) हिंदी रेखाचित्र के जनक किसे माना जाता है।

अ) महादेवी वर्मा ब) रामवृक्ष बेनीपुरी क) पं. श्रीराम शर्मा ड) सुभद्राकुमारी चौहान

26) 'माटी की मूरते' संस्मरण के लेखक है।

अ) पं. बनारसीदास ब) रामकृष्ण प्रसाद क) रामवृक्ष बेनीपूरी ड) सत्यजीवन वर्मा

27) 'डायरी' शब्द का लैटिन भाषा का मूल स्त्रोत शब्द क्या है?

अ) दिवस ब) दैनंदिनी क) बासरी ड) डायस

28) म. गांधी ने अपने 'डायरी' में किस बात को प्रधानता दी।

अ) स्वतंत्रता ब) सत्य क) संघर्ष ड) न्याय

29) समाजसेवक सीताराम सेकसरिया के 'डायरी' किस नाम से प्रसिद्ध है।

अ) कारावास कहानी ब) एक कार्यकर्ता की डायरी

क) एक साहित्यिक की डायरी ड) मेरी कालेज डायरी

30) पं. हरिशंकर शर्माजी ने किस पत्रिका से 'पत्र' का महत्व विशद किया है।

अ) सारिका ब) धर्मयुग क) आजकल ड) नवपथ

31) 'निराला की साहित्य साधना' यह पत्र संकलन किसने प्रकाशित किया है।

अ) श्री रत्नशंकर प्राद ब) डा. रामविलास शर्मा

क) ज्योर्तिमयी ठाकूर ड) वियोगी हरी

32) 'चन्द हसीनो के खतून' पत्रशैली में लिखे उपन्यास के रचनाकार है।

अ) प्रेमचंद ब) वियोगी हरी

क) अज्ञेय ड) पांडेय बचन शर्मा 'उर्ग'

33) वीर सावरकर जी ने लिखे पत्रों के संकलन संग्रह का नाम है।

अ) मेरी जेल यात्रा ब) अंदमान की गुंज-क्रांतिकारी चिठ्ठिँ

क) कैदी के खत ड) बापू के आशिर्वाद

34) हिंदी में 'रिपोर्ताज' विधा का प्रारंभ करने का श्रेय किस पत्रिका को चला जाता है।

अ) सारिका ब) धर्मयुग क) हंस ड) नयायुग

35) 'रिपोतार्ज विधा' का जन्मकाल कौनसा माना जाता है।

अ) सन 1939 ब) सन 1936 क) सन 1935 ड) सन 1932

36) 'विषादमठ' रिपोतार्ज शैली में लिखा उपन्यास किस की कृति है।

अ) शिवदानसिंह चौहान ब) भगवतशरण उपाध्याय

क) डा. रागेय राघव ड) प्रकाशचंद्र गुप्त

38) जपानी युद्‌ध बंदियोंपर किसने रिपोर्ताज लिखे है।

अ) राहुल सास्कृत्यायन ब) श्री लक्ष्मीचंद्र जैन

क) भं. आनंद कौशल्यायन ड) कामाताप्रसाद

39) 'सुखे सरोवर का भूगोल' किससे संबंधित रिपोर्ताज है।

अ) अमृतलाल नगर ब) प्रेमचंद क) मासूम राजा राही ड) ईश्वर चंद्र

4.11 शब्दार्थ, संदर्भ, टिपण्णियाँ।

1) पूर्ववर्ती : जो पहले हो चुका है, पहले का।
2) परिवर्ती : बाद में हुआ हो।
3) पुनरुत्थान : पतन होने के बाद फिर से उठना।
4) अंकन : चित्रण।
5) सृजन : निर्माण करना।
6) गरिमा : गौरव, महत्त्व।
7) नवजागरण : नई विश्वदृष्टि (पुरोगामी विचारों से) समाज में आनेवाला परिर्वतन।
8) करारा : तीखा, तीव्र।
9) योगदान : कार्यो में सहयोग
10) संपादकीय : दैनिक पत्रका वह स्तंभ जिसे संपादक लिखता है।
11) विधा : साहित्य के विविध प्रकार।
12) परिमार्जन : शुद्‌धीकरण
13) कोटि : प्रकार

14) बासरी : डायरी

15) अलमोडा : उत्तरप्रदेश का जिला।

4.12 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) ब- भारतेंदु

2) अ - भारतेंदु

3) अ - बालकृष्ण भट्ट

4) ब - प्रतापनारायण मिश्र

5) अ - आ. रामचंद्र शुक्ल

6) क - बालमुकुंद गुप्त

7) अ - पं. बद्रीनारायण उपाध्याय

8) ब - आ. महावीर प्रसाद

9) ब - सुदर्शन

10) अ - सरदार पूर्णसिंह

11) क - डा. नगेंद्र

12) क - हरिशंकर परसाई

13) अ - भारतेंदु

14) ब - राहुल संस्कृत्यायन

15) अ - ढेले पर हिमालय

16) ब - गोस्वामी तुलसीदास

17) क - कार्तिक प्रसाद खत्री

18) अ - चरित्रावली

19) क - शिवनंद सहाय

20) क - घनश्यामदास

21) क - विजयदेव

22) अ- महादेवी वर्मा

23) अ - कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

24) ब - सत्य

25) पं. श्रीराम शर्मा

26) क - रामवृक्ष बेनीपुरी

27) ड - डायस

28) ब - सत्य

29) ब - एक कार्यकर्ता की डायरी

30) क - आजकल

31) ब - डा. रामविलास शर्मा

32) ड - पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

33) ब - अंदमान की गुंज - क्रातिकारी - चिठ्ठियॉ

34) क - हंस

35) ब - सन 1936

36) क - रागेय राघव

37) क - भं. आनंद कौशल्यायन

38) ड - रेगिस्तान

39) क - मासूम राजा राही

4.4 सारांश :

भारतेंदु युग हिंदी साहित्य जगत में पुनर्जागरण, (पुनरुत्थान) काल से जाना जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी और नाटक विधाओं के साथ-साथ अन्य विधाओं का जन्म और विकास हुआ। उनमें निबंध यात्रा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र और रिपोर्ताज साहित्य भी है। जिसे कथेत्तर साहित्य के रुप में स्विकारा गया है।

हिंदी निबंध विधा का प्रारंभ भी भारतेंदु युग से हुआ पुर्नजागरण काल में निकाली गई पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। भारतेंदु तथा उनके सहयोगी लेखको नें विविध प्रकार के निबंध लिखे। तत्कालीन समय में सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक पुर्नजागरण हेतु निबंध के विषय रहे दिखाई देते है। निबंध साहित्य के विकास को चार कालखंड़ों में विभाजित किया गया है- भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग। इस काल के प्रसिद्ध निबंधकारों में आ. महावीर प्रसाद, द्विवेदी, भारतेंदु, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी और आ. रामचंद्र शुक्ल प्रसिद्ध रहे है।

हिंदी कथेत्तर साहित्य में यात्रा विधा भी अपना विशेष महत्त्व है। एक समय था देश से विदेश का भ्रमण करना धर्म विरोधी था। परंतु, अंग्रेजों के आगमन से आधुनिक विचारों से प्रेरित होकर शिक्षा प्राप्ती हेतू कई भारतीय विदेश से शिक्षा प्राप्त करके आये और बाद में देश के स्वतंत्रता के बाद राजकीय, सांस्कृतिक आदान-प्रदान विदेश से बढ़ता चला गया। परिणामस्वरूप; कई राजकीय, साहित्यिक लोगों ने अपने अनुभव पत्र-पत्रिकाओं में लिखना प्रारंभ किया और विपुल मात्रा में हिंदी मे यात्रा साहित्य लिखा गया। साथ ही धार्मिक स्थलो की यात्रों का वर्णन करनेवाला और प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करनेवाला साहित्य भी विपुल मात्रा में यात्रा साहित्य में चित्रत होकर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हुआ। इसमें पुनर्जागरण काल के सत्यदेव, भारतेंदु, रामनारायण मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र, श्रीमती हरदेवी, भगवानदास के विदेश से संबंधित यात्रावृत्त प्रसिद्ध रहे है। द्विवेदी काल में राजकीय नेताओं और साहित्यकारों के विदेश से संबंधित यात्रा वृत्तोंमें उमा नेहरु, श्रीधर पाठक, सत्यदेव परिवाज्रक के यात्रावृत्त प्रसिद्ध रहें है। छायावाद युग में राहुल सांस्कृत्यायन, पं. जवाहरलाल नेहरु भगवतशरण उपाध्याय के विदेश वर्णन के यात्रा साहित्य श्रेष्ठ है। छायावादोत्तर युग में स्वतंत्र भारत के अन्य देशों से सांसकृतिक संबंध को बढ़ाने हेतू की गई यात्राओं का वर्णन करते हुए रामवृक्ष बेनीपूरी, धर्मवीर भारती, अक्षयकुमार जैन, यशपाल जैन के यात्रा वृत्त प्रसिद्ध है। यात्रावृत्त में भौगोलिकता के वर्णन के साथ-साथ आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक जीवन से संबंधित ज्ञानवर्धक यात्रा वृत्त लिखे गये। आज पत्र-पत्रिकाओं और संचार युग के अनेक माध्यमों ने यात्रा विधा समृद्ध हो रही है।

मनुष्य में मनुष्य के प्रति जिज्ञासा का होना जीवनी लेखन की मूल प्रेरणा है और इसी जिज्ञासावश अनेक साहित्यकारों ने अपने जीवनमें आये प्रभावशाली व्यक्तियों के जीवन की स्थूल बाह्य घटनाओं एवं सूक्ष्म अन्यवृत्तियों का चित्रण करते हुए प्रभावशाली, समाज को प्रेरित-प्रेरणा देनेवाले लोगों की जीवनियाँ लिखी। इसमें भारतेंदु युग में प्राचीन संत, भक्त, कवि, धार्मिक नेता, राजा-महाराजा-रानियाँ, देश-विदेश के महापुरुष एवं समकालीन साहित्यकारों पर जीवनियॉ लिखी। इनमें रमाशंकर व्यास, जगन्नाथदास, बालमुकुंद गुप्त, लाला खंग बहादूर, प्रतापनारायण मिश्र आदि प्रमुख जीवनीकार रहे है। द्विवेदीयुग में भारतेंदु कालीन सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक क्षेत्र में कार्यरत लागोंपर जीवनियाँ लिखी गई जिसके माध्यम से तत्कालीन परिवेश का परिचय मिलता है। द्विवेदी युग के बाद जीवनी लेखकों में राहुल संस्कृत्यायन जी का नाम महत्त्व पूर्ण है, उन्होंने देश-विदेश के अनेक महानुभूतियों पर जीवनियाँ लिखी। साथ ही बलराज मोधक, पूर्णचंद्रसनक, इंद्रविद्यावाचस्पति, अमृतराय आदि तत्कालन प्रमुख जीवनी लेखक है। जीवन अनेक

विभूतियों पर लिखी गई इसलिए उन्हें अलग-अलग कोटियों में रखकर संत जीवनी, स्वतंत्र सेनानियों की जीवनी, विदेशी चरित्रोंपर जीवनी, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञ, महिलाओं, उद्योजक आदि पर विपुल जीवनी लेखन होकर जीवनी विधा समृद्ध होती जा रही है।

संस्करण विधा में विशिष्ट व्यक्तिया घटना, पशु-पंछियों से संबंधित स्मृतियों का अंकन किया जाता है। जो उस व्यक्ति, घटना या पशु-पक्षियों की यादे लेखक को अंदर ही अंदर कुरेदती है, और लेखक उनकी स्मृतियों की संस्मरण का साधन बनाकर अपनी उस व्यक्ति, घटना, पशु-पंछियों संबंधित भावनाओं को व्यक्त करता है। संस्मरण लेखकों में महोदवी वर्मा, बनारसीदास, चतुर्वेदी, चतुरसेन शास्त्री आदि लेखकों का साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

रेखाचित्र विधा का हिंदी साहित्य में विशेष महत्त्व है। क्योंकि, रेखाचित्र साहित्य में परंपरागत नायक को हटाकर सामान्य व्यक्ति के साथ-साथ प्राणी या वस्तु अपनी विशिष्टताओं के कारण गहरी छाप छोड़कर लेखक के कलम से उनका स्केच निकाला जाता है, उसमें नीजीवन, कहानीसी जीवंतता के साथ लेखक अपनेपर प्रभाव छोडनेवाले का अंकन करता है, जिसमें करुणा और सहानुभूति घुलि-मिली होती है। इस विधा में चित्रण करनेवाले प्रमुख साहित्यकार है, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशचंद गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि।

डायरी विधा का प्रयोजन स्वात: सुखाय होता है। परंतु, यही लेखन कालांतर में समाजोपयोगी बन जाता है। इसमें लिखे विचार समाज को दिशादर्शक बन सकते है। इसलिए कई महानविभूतियों की डायरी प्रकाति होने लगी और हिंदी साहित्य में डायरी विधा को विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया। इस विधा को अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने स्थान देकर महनिय लोगों की डायरी प्रकाशित की, जिसके माध्यम से समय-समय के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक गतिविधियों से पाठक परिचित हो जाता है। और उसे प्रेरणा भी प्राप्त हो जाती है। हिंदी साहित्य की डायरी विधा संपन्न है। आज डायरी विधा में उपन्यास, कहानी भी लिखे जा रहे है।

पत्र लेखन आधुनिक गद्य की नई विधा है, जिसके माध्यम से महान लोगों के अंतरंग की खोज होती है। इसलिए कई महान लोगों के पत्रों का प्रकाशन होता रहा है। आज कई प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों के पत्र साहित्य के अक्षय निधी बन गये है। उनके पत्रों के माध्यम से समाज को दिशा, विचार प्राप्त होते हुए है, किस्से, कहानियों की तरह पत्रों का भी विशेष स्थान है। आज हिंदी साहित्य में पत्र संकलनों का विपुल मात्रा में प्रकाशन होकर यह विधा संपन्न बनी है। जिसमें राजनितीक, साहित्यिक, स्वतंत्र सेनानी, आदि के पत्र संकलन महत्त्वपूर्ण है।

दुसरे महायुद्ध के समय रिपोर्ताज विधा का जन्म होकर वह हिंदी साहित्य में भी आधुनिक, जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता का परिचय करा देनेवाली महत्त्वूर्ण विधा के रुप में आज पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से सदृढ रुप प्राप्त कर चुकी। भारतेंदु युग से आज के आधुनिक युग के अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रिपोर्ताज विधा को विशेष स्थान देकर यह विधा संपन्न एवं समृद्ध बनी है।

4.5 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न।

1) हिंदी निबंध-साहित्य की विकास यात्रा को स्पष्ट कीजिए।

2) हिंदी यात्रा-साहित्य का विकास स्पष्ट कीजिए।

4) संस्मरण साहित्य का विकास स्पष्ट कीजिए।

5) आत्मकथा साहित्य का उद्‌भव एवं विकास स्पष्ट कीजिए।

ब) टिप्पणियाँ लिखिए।

1) निबंध साहित्य के शुक्ल युग का परिचय दीजिए।

2) निबंध साहित्य के भारतेंदु युग पर चर्चा कीजिए।

3) यात्रा साहित्य का छायावादोत्तर युग।

4) आत्मकथा साहित्य

4.6 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) शुक्ल रामचंद्र - 'हिंदी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारण सभा, वाराणसी, संस्करण - 2045 संवत।

2) डा. शील ईश्वरदत्त 'हिंदी साहित्य का इतिहास', गरिमा प्रकाशन, 132 शिवराम कृपा, मथुर पार्क, बसंत बिहार, कानपूर-12, प्र.सं. 2007.

3) डा. नागेंद्र 'हिंदी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2135, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, प्र.सं.-2006

4) डा. सिंह बच्चन 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', नया संशोधित परिवर्धित संस्करण, 2006.

5) डा. मिश्र सभापति - हिंदी साहित्य का प्रकृत्रत परक इतिहास, विनय प्रकाशन कानपूर - 12, प्र.सं. 1994.

6) द्विवेदी हजारीप्रसाद - हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, मूलप्रकाशन - 1952, नई आवृत्ती - 1982

7) डा. कैलाचन्द भाटिया, रचना भाटिया, 'साहित्य में गद्‌य की नई विविध विधाएँ, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अन्सारी दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्र.सं. 1996.

❑❑❑